

मार्कण्डेय पुराण

(द्वितीय खंड)

५१—भद्राश्वादिवर्ष वर्णन

एवंतुभारतंवर्षयथावत्कथितंमुने ।
कृतत्रेताद्वापरंचतथातिष्यंचतुष्टयम् ॥१॥
अत्रैवैतद्युगानान्तुचातुर्वर्ण्यचवैद्विज ।
चत्वारित्रीणिद्वेचैवकथैकैकंशरच्छतम् ॥२॥
जीवन्त्यन्नराब्रह्मन्कृतत्रेतादिषुक्रमात् ।
देवकूटस्यपूर्वस्यशेलेन्द्रस्यमहात्मनः ॥३॥
पूर्वेण्यत्स्थितंवर्षभद्राश्वंतस्त्रिवोधमे ।
श्वेतपर्णश्चनीलशैवालश्चाचलोत्तमः ॥४॥
कौरश्चःपर्णशालाग्रःपंचैतेहिकुलाचलाः ।
तेषांप्रभूतिरन्येयेबहवःक्षुद्रपर्वताः ॥५॥
तैर्विशिष्टाजनपदानानारूपाःसहस्रशः ।
ततःकुमुदसंकाशाःशुद्धसानुसुमङ्गलाः ॥६॥
इत्येवमाऽयोऽन्येऽपिशतशोऽथसहस्रशः ।
सीतावतीभद्राचक्रावर्त्तादिकास्तथा ॥७॥
नद्योऽथत्थोविस्तीर्णाःशीततोयौघवाहिकाः ।
अत्रवर्त्तंशङ्खशुद्धहेमसमप्रभाः ॥८॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—भारतवर्ष का यह वास्तविक वर्णन किया गया, इसी भारतवर्ष में अत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग यह चारों युग विद्यमान हैं ॥१॥ इसी स्थान में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र के भेद से चार वर्ण हैं, यही अत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के भेद से मनुष्यगण क्रमशः चार मो, तीन सौ, दो सौ और एक सौ की घाट्टी पाते हैं, पूर्व दिशा देवदूत नामक विशाल पर्वत के ॥२-३॥ पूर्व की ओर जो वर्ष अवस्थित है, उसे भद्राश्ववर्ष कहते हैं, जब उसके विषय में कहता है, स्वर्ण, नील सेवास ॥४॥ कीरख, पशुमालाय यह पाँच कुलावन इन वर्षों में स्थित हैं तथा इसी वर्ष में इन सब पर्वतों से उत्पन्न हुए अनेक छोटे पर्वत भी स्थित हैं ॥५॥ कुमुद, संकाश, सुदमानु, सुम-हान आदि अनेकान्य सहस्रो जनपद विभिन्न प्रकार से इस वर्ष में ही स्थित हैं, सोता, शलावती, मद्रा और चन्द्रावर्त आदि ॥६-७॥ यहूतभी अत्यन्त शीतल जल वाली नदियाँ इन में प्रवहमान हैं, इस वर्ष में उत्पन्न होने वाले सभी मनुष्य शैल तथा स्वच्छ स्वर्ण के समान प्रभा सम्पन्न हैं ॥८॥

दिव्यसम्पन्न पुण्याश्ववर्षसतायुषः ।
मयमोत्तमनतेस्त्वस्ति सर्वे ते मम दर्शना ॥९॥
तितितिलादिनिरष्टाभिः प्रकृत्यात्मगुणैर्गुता ।

तत्राप्यश्वसिरादेव शत्रुर्वाहृजनादन ॥१०॥
तिरोहृदयमेढ्राद्भिहस्तश्चादित्रयान्वित ।
तस्याप्ययैव विषयाविज्ञं याजगत प्रभो ॥११॥

केतुमालमतो वर्षनिबोधममपश्चिमम् ।
विशालः कष्यल कृष्णोजयन्तो हरिपर्वत ॥१२॥

विशोकोवद्धं मानश्चर्म तेनुलपर्वता ।
मन्येन ह्ययम शैलायेषु नोऽगणः स्थित ॥१३॥

मीलवत्ते महाकायाः शारुपांतरकरम्भरा ।
मृचबुनप्रमुखाश्चापि वमन्ति तनसोजना ॥१४॥

वे सत्ता सहित पवित्रा पूर्वक निवास करने हुए रह्य वर्ष पर्वत कीबिन रहते हैं, उनमें कोई श्रेष्ठ भयवा क्षय नहीं है ॥१५॥ वहाँ क सब

मनुष्य सभी प्रकार के गुणवान् होते हैं, इस वर्ष में चतुर्भुजी भगवान् हयग्रीव स्वरूप में १०। शिर, हृदय, भेद, चरण हाथ और अक्षित्रयान्वित होकर अवस्थित हैं, उन जगदीश्वर का सम्पूर्ण विषय इसी प्रकार समझो ॥११॥ अब सुमेरु के पश्चिम में स्थित केतुमालवर्ष का वर्णन सुनो—इस वर्ष में जो सात कुलाचल हैं वे विशाल, कम्बल, कृष्ण, जयन्त, हरि पर्वत ॥१२॥ विशोक और वद्धमान नामक हैं, इनके अतिरिक्त और भी हजारों विशाल पर्वत हैं, जिनमें अनेक प्राणी निवास करते हैं ॥१३॥ उनमें शाक, पोत, करम्भक और अच्युलाख्यादि अनेक प्रकार के लोगों का निवास है ॥१४॥

येपिवन्तिमहानद्योर्वंधुश्यामांस्वकम्बलाम् ।

अमोधां कामिनीं श्यामांतथैवान्याः सहस्रशः ॥१५॥

अत्राप्यायुः समपूर्वरत्रापि भगवान् हरिः ।

वराहरूपीपादोस्य हृत्पृष्ठे पार्श्वतस्तथा ॥१६॥

(मुखेनासादतश्चैव कण्ठतः पुच्छतस्तथा) ।

त्रिनक्षत्रयुते देशे नक्षत्राण्युतानि च ।

इत्येतत्केतुमालं ते कथितं मुनिसत्तम ॥१७॥

अतः परं कुरुन्वक्ष्ये निबोधेह ममोत्तरान् ।

तत्र वृक्षामधुफलानित्यपुष्पफलोपगाः ॥१८॥

वस्त्राणि च प्रसूयन्ते फलेष्वाभरणानि च ।

सर्वकामप्रदास्ते हि सर्वकालफलप्रदाः ॥१९॥

भूमिर्मणिमयी वायुः सुगन्धः सर्वदा सुखः ।

जायन्ते मानवास्तत्रैव लोकपरिच्युताः ॥२०॥

मिथुनानि प्रसूयन्ते समकालस्थितानि च ।

अन्योन्यमनुरक्तानि च क्रवाकोपमानि च ॥२१॥

जिन महानदियों के जल का यह लोग पान करते हैं, वे वधु, श्यामा, कम्बला, अमोधा, कामिनी सुमेषा नाम की महानदी हैं, इनके अतिरिक्त अन्य सहस्रों नदियाँ वहाँ प्रवाहित हैं ॥१५॥ मनुष्यों की आयु वहाँ भी पूर्वोक्त ही है, उस देश में भगवान् श्रीहरि का निवास बाराह रूप से है, उनके चरण,

हृदय, मुख, पृष्ठ देश तथा पार्श्व में मुख, नासिका, कण्ठ, दाँत श्री पूँछ सहित
तीन नक्षत्रों से पूरा हो कर सम्पूर्ण देश अवस्थित है, वहाँ भी नक्षत्र शुभाशुभ
को सूचित करते रहते हैं ॥१६॥ हे मुने ! इस प्रकार वेतुमाल वर्ष का वर्णन
भी कर दिया गया ॥१७॥ अब उत्तर कुर्देश का वर्णन करता हूँ, उमे मुनो—
इस देश में सब श्रुतियों के फल, पुण्य आदि से युक्त सर्व कामना एवं सर्व फल
के देने वाले वृक्ष ॥१८॥ वस्त्र उत्पन्न करते हैं तथा उनके सब फलों से आभरण
उत्पन्न होते हैं ॥१९॥ वहाँ की भूमि मणियुक्त, सुन्दर सुगन्धित वायु से सम्पन्न
तथा सुख के देने वाली है स्वर्गलोक से भ्रष्ट हुए व्यक्ति ही वहाँ मनुष्य रूप में
जन्म लेते हैं ॥२०॥ उनमें चक्रवाक के समान पारस्परिक प्रेम रहता है तथा
समकाल में बातचीत को उत्पन्न करते हैं ॥२१॥

चतुर्दशसहस्राणि तेषां साक्षाद्निर्वस्थितिः ।

चन्द्रकान्तश्च जलेन्द्र सूर्यकान्तस्तथापर ॥२२॥

तस्मिन्कुलाचले वर्षे तन्मध्ये च महानदी ।

भद्रसोमाप्रयात्युर्व्यापुष्या मलजलाधिनी ॥२३॥

सहस्रशस्तयं वान्यानद्यो वर्षेऽपि चोत्तरे ।

तथान्या क्षीरवाहिन्यो घृतवाहिन्येव च ॥२४॥

दध्नी हृदास्तथा तत्र तथान्ये चानुपश्वता ।

अमृतास्वादकल्पानि फलानि विविधानि च ॥२५॥

वनेषु ते पुरम्याणि शतशोऽथ मह्यशः ।

तत्रापि भगवान्विष्णु प्राविद्ध रामस्त्यरूपवान् ॥२६॥

विभक्तो न बध्ना विप्रनक्षत्राणां त्रयत्रयम् ।

देशास्तत्रापि न बध्ना विभक्ता मुनिसत्तम ॥२७॥

चन्द्रद्वीप समुद्र च भद्रद्वीप तस्यापर ।

तत्रापि पुण्या विख्यात ममुद्रान्तर्महामुने ॥२८॥

इत्येतत्कथितं ब्रह्मन्कुरुवर्षं मयोत्तरम् ।

शृणु किंपुरपादीनि वर्षाणि गदतो मम ॥२९॥

वह साढ़े चौदह हजार वर्ष तक जीवित रहते हैं, इस वर्ष में चन्द्रकान्त और सूर्यकान्त नामक दो कुलाचल स्थित हैं ॥२२॥ उस पर्वत में भद्रसोमा नाम की स्वच्छ जल वाली महानदी प्रवाहित है ॥२३॥ इसके अतिरिक्त अन्य सहस्रों छोटी-छोटी नदियाँ वहाँ हैं, अन्य नदियों में कोई दुग्ध वाहिनी और कोई घृत वाहिनी है ॥२४॥ तथा कोई दही के ताल से युक्त है, सात कुलाचलों के अतिरिक्त अन्य क्षुद्र पर्वत बहुत से हैं, उत्तर कुरु में स्थित शत सहस्र वनों के मध्य स्थित सभी वृक्षों में विभिन्न प्रकार के सुस्वादु फल लगते हैं, इसी स्थान में पूर्व की ओर भस्तक करके भस्वरूप से श्रीनारायण भगवान् का वास है ॥२५-२६॥ इस उत्तर कुरु में नक्षत्र नौ भागों में बँट कर तीन-तीन के क्रम से रहते हैं, इसी प्रकार सब देश नौ भागों में विभाजित हैं ॥२७॥ इस वर्ष में चन्द्रीप और भद्रद्वीप नामक दो पवित्र द्वीप हैं, जो समुद्र के मध्य में स्थित हैं ॥२८॥ हे ब्रह्मन् यह उत्तर कुरु वर्ष का वर्णन हुआ, अब किम्पुरुषादि के विषय में कहता हूँ ॥२९॥

५२--किम्पुरुषादि वर्णन

यत्तु किम्पुरुषं वर्षतत्प्रवक्ष्याम्यहं द्विज ।
 तत्रायुर्दशसाहस्रं पुरुषाणां वपुष्मताम् ॥१॥
 अनामयाद्यशोकाश्च नारायणतथास्त्रियः ।
 प्लक्षः क्षण्डश्च यत्रोक्तः सुमहान्नन्दनोपमः ॥२॥
 तस्य ते वै फलरसं पिबन्तः पुरुषाः सदा ।
 स्थिरयौवननिष्पन्नास्त्रियश्चोत्पलगन्धिकाः ॥३॥
 अतः परं किंपुरुषाद्वरिहर्षं प्रचक्षते ।
 महारजतसंकाशा जायते तत्र मानवाः ॥४॥
 देवलोकच्युताः सर्वे देवरूपाश्च सर्वशः ।
 हरिवर्षे नराः सर्वे पिबन्तीक्षुरसं शुभम् ॥५॥

नजरावाधतेतशनजीयन्तेऽर्कहिचित् ।
 तावन्तमेवतेजालजीवन्त्ययनिरामया ॥६॥
 मेरुवर्षमयाप्रोक्त मध्यमयादिनावृतम् ।
 नतनमूर्यस्तपतिनतेजीयन्तिमानवाः ॥७॥

मावण्डेयजी ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! जब किम्पुण्ड नामक वर्ष का वृत्तान्त कहना है, सुनो—वहाँ देहधारी मनुष्यों की आयु दस हजार वर्ष की है ॥१॥ वहाँ के सभी स्त्री पुरुष नीराग तथा भोक् रहित होते हैं वहाँ नन्दन वन के समान एक महान् प्लक्ष खण्ड स्थित है ॥२॥ उन वृक्षों के रस का पान करके ही मनुष्य स्थिर यौवन बाने एवं भारिमा पद्मगन्धा होती है ॥३॥ इस वर्ष के पृष्ठ भाग में हरि वर्ष नामक एक अन्य वर्ष है ॥४॥ देव लोक से पतित हुए प्राणी हरि वर्ष में मनुष्य रूप में उत्पन्न होते हैं तथा वहाँ श्रेष्ठ ईश का रस पान करते हैं ॥५॥ वृद्धावस्था उनको पीड़ित नहीं करती, इसलिये जीर्णता को कोई भी प्राप्त नहीं होता, वे जब तक जीवित रहते हैं तब तक यौवनावस्था स्थित रहती है तथा वे मदा नीरोग रहते हैं ॥६॥ मेरुवर्ष नामक मध्यम वर्ष को इलावृत भी कहते हैं, वहाँ का मूर्य ताप रहित है और मनुष्य वहाँ भी वृद्धावस्था से जीर्ण नहीं होते ॥७॥

लभन्तेनात्मलाभचरममयश्चन्द्रमूर्ययो ।
 नक्षत्राणाग्रहाणाचमेरोस्तत्रपराद्युति ॥८॥
 पद्मप्रभा पद्मगन्धाजम्बूभन्तरसाग्नि ।
 पद्मपत्रायताक्षाम्नुजायन्तेतत्रमानवा ॥९॥
 वर्षाणान्मुमहन्नाणितप्राप्पायुस्त्वयोदस ।
 शरावाकारमस्तारोमेरुमध्येइलावृते ॥१०॥
 मेरुस्तत्रमहागोलस्तदास्यातमिलावृतम् ।
 रम्यकवर्षमस्माच्चवययिष्येतिबोधतम् ॥११॥
 वृक्षस्तत्रापिचोत्प्लोन्यग्रोघोहरितच्छदः ।
 तस्यापितेफलरसपिवन्नोन्नयन्निवै ॥१२॥

वर्षायुतायुषस्तत्रनरास्तत्फलभोगिनः ।

रतिप्रधानविमलाजरादौर्गन्ध्यवर्जिताः ॥१३॥

तस्मादथोत्तरं वर्षं नाम्नाख्यातं हिरण्यम् ।

हिरण्वतीनदीयत्र प्रभूतकमलोज्ज्वला ॥१४॥

महाबलाः स तेजस्का जायन्ते तत्र मानवाः ।

महाकायामहासत्त्वाधनिनः प्रियदर्शनाः ॥१५॥

चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह और सब नक्षत्रों की किरणें वहाँ उज्ज्वलता को प्राप्त नहीं हो पातीं, क्योंकि वहाँ सुमेरु का तीव्र प्रकाश रहता है ॥१३॥ जो मनुष्य उस मेरु वर्ष में उत्पन्न होते हैं, वह सभी कमल के समान प्रभात युक्त, पद्मगन्ध और पद्म पत्र के समान विस्तीर्ण नेत्र वाले तथा जामुन के फलों का रस पान करने वाले होते हैं ॥१४॥ वे मनुष्य तेरह सहस्र वर्ष की आयु वाले होते हैं, उस झलावृत्त के बीच में जो मेरु पर्वत स्थित है उसका आकार सकोरे के समान है ॥१०॥ उस वर्ष में वह महापर्वत मेरु ही प्रसिद्ध है, अब तुम्हें रम्यक वर्ष के विषय में सुनाता हूँ, उसे श्रवण करो ॥११॥ उस रम्यक वर्ष में एक अत्यन्त ऊँचा न्यग्रोध नामक वृक्ष है, उसके समस्त पत्र हरे रंग के हैं, उस वृक्ष के रस पान द्वारा ही वहाँ के मनुष्य जीवन धारण करते हैं ॥१२॥ उसके फलों के रस का पान करने वालों की आयु दस सहस्र वर्ष होती है, वह रति क्रिया में चतुर, सुन्दर तथा दुर्गन्धि और जराबस्था से रहित होते हैं ॥१३॥ उसके उत्तर में हिरण्यमय वर्ष स्थित है इसमें अनेक कमल पुष्पों से सुसोभित हिरण्यवती नदी हिरण्ययुक्त जल से परिपूर्ण प्रवाहित है ॥१४॥ वहाँ उत्पन्न होने वाले मनुष्य अत्यन्त बली, तेजस्वी, सत्व सम्पन्न, प्रिय दर्शन, विशाल काय तथा धनवान् होते हैं ॥१५॥

५४-स्वारोचिष मन्वन्तरारम्भ (२)

कथितं भवता समग्यत्पृष्ठोऽसि महामुने ।

भूतमुद्रादिसंस्थानं प्रमाणानितयाग्रहाः ॥१॥

तेपात्रैवप्रमाणयन्नक्षत्राणाचसंस्थिति ।
 भूरादयस्तथालोका पातालान्यखिलान्यपि ॥१॥
 स्वायम्भुव तथाख्यातमुनेमन्वन्तरमम ।
 तदन्तराण्यहश्चोतुमिच्छेमन्वन्तराणिव ॥
 मन्वन्तराधिपान्देवानृषीस्तत्तनयान्पुत्रान् ॥३॥
 मन्वन्तरमयाख्याततत्तत्स्वायम्भुवचयत् ।
 स्वारोचिपाह्यमन्यत्तु श्वरानुत्स्मादनन्तरम् ॥४॥
 कश्चिद्विजातिप्रवरःपुरेऽभूदरुणास्पदे ।
 वरुणामास्तटेविप्रोरूपेणात्यश्विनावपि ॥५॥
 मृदुस्वभाव सद्बृत्तोवेदवेदागपारण ।
 सदातिथिप्रियोरात्रावागतानाममाश्रय ॥६॥
 तस्यबुद्धिरियत्वासीदहपश्येवमुन्धराम् ।
 अतिरम्यवनोद्यानानानानगरशोभिताम् ॥७॥

कौण्डिक बोले—हे महामुने । आपने मेरे समस्त प्रश्न का भले प्रकार
 समाधान किया पृथिवी और समुद्रादि की स्थिति, विस्तार एवं ग्रह का परिमाण
 ॥१॥ नक्षत्रादि की स्थिति और परिमाण, भूरादि सप्तलोक, सप्त पाताल ॥२॥
 तथा स्वायम्भुव नामक प्रख्यात मन्वन्तर आदि का भी वृत्तान्त कहा है, अब उक्त
 मन्वन्तर के पञ्चान् अन्य सब मन्वन्तर, उनके अधिपति, उनके वक्ष्य राजा
 गण देवता एवं ऋषियों की कथा मुनने की मुझे उत्तम इच्छा है ॥३॥ मार्क-
 ण्डेयजी ने कहा—जिस स्वायम्भुव मनु का विषय तुम्हारे प्रति कहा है, अब
 उसके पञ्चान् स्वायम्भुव मन्वन्तर का वृत्तान्त सुनो ॥४॥ दोनो अभिनिकुमारी
 से भी अधिक रूपवान् पान्त स्वभाव वाला, चरित्रवान्, वेद वेदाङ्ग का ज्ञाता
 एक ब्राह्मण वर्णा नदी के तट पर स्थित धरणास्पद नामक नगर में रहता
 था, वह अतिथि के आगम पर अत्यन्त प्रसन्न होता था तथा रात्रि के मध्य
 आने वाले धर्मियों के लिये वह आश्रय स्वरूप था ॥५-६॥ उसके मन में एक
 इच्छा चलती थी कि मैं अत्यन्त सुख्य बना और उपवनी से सम्पन्न और
 अनेक नगरों में सुतोभित इस पृथिवी को सम्पूर्ण रूप से देखूँ ॥७॥

अथागतोऽतिथिः कश्चित्कदाचित्तस्यवेश्मनि ।

नानौषधिप्रभावज्ञो मन्त्रविद्याविशारदः ॥८॥

अभ्यर्थितस्तु तेनासौ श्रद्धापूतेन चेतसा ।

तस्याचख्यौ सदृशांश्चरम्याणि नगराणि च ॥९॥

नदीवनानि शैलांश्च पुरयान्यायत नानि च ।

स ततो विस्मया विष्टः प्राह तं द्विजसत्तमम् ॥१०॥

अनेकदेशदर्शित्वेनातिश्रमसमन्वितः ।

त्वं नातिवृद्धो वयसानातिवृत्तश्चर्यावनात् ।

कथमल्पेन कालेन पृथिवीमटसि द्विज ॥११॥

मन्त्रौषधिप्रभावेण विप्राप्रतिहता गतिः ।

योजनानां सहस्रं हि दिनार्द्धेन व्रजाम्यहम् ॥१२॥

ततः स विप्रस्तंभूयः प्रत्युवाचे दमादरात् ।

श्रद्धधानो वचस्तस्य ब्राह्मणस्य विपश्चितः ॥१३॥

मम प्रसादं भगन्कुरु मन्त्रप्रभावजम् ।

द्रष्टुमेतां मम महीमती वेच्छा प्रवर्तते ॥१४॥

एक दिन उसके घर में सब औषधियों के प्रभाव का ज्ञाता तथा मन्त्र विद्या में विद्वान् एक अतिथि का आगमन हुआ ॥८॥ ब्राह्मण द्वारा श्रद्धायुक्त मन से प्रश्न करने पर उसके अतिथि ने उसे अनेक देश, रमणीय नगर ॥९॥ वन, नदी, पर्वत और सभी पवित्र स्थानों का वर्णन सुनाया तब उससे वह अरुणास्पद नगर निवासी ब्राह्मण आश्चर्य से कहने लगा ॥१०॥ हे द्विज ! आपने अनेक देशों को देखा है, तो भी आप श्रमाक्रान्त प्रतीत नहीं होते, आप न तो वृद्ध हैं और न अधिक तरुण ही हैं, आपकी आयु भी अधिक प्रतीत नहीं होती, तो आपने इस अल्प अवस्था में ही सब पृथिवी में कैसे भ्रमण कर लिया ॥११॥ ब्राह्मण ने कहा— हे ब्रह्मन् मन्त्रों और औषधियों के प्रभाव से मुझे अप्रतिह्व गति की प्राप्ति हुई है और इन कारणों में आधे दिन में सहस्र योजन चल सकता हूँ ॥१२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा— तब उस ब्राह्मण विद्वान् अतिथि के वचन में श्रद्धा युक्त मन हो कर उससे सादर निवेदन किया ॥१३॥ हे

भगवन् ! आप मुझे भी औषधि प्रदान करने की कृपा करिये, क्योंकि इस पृथिवी को देखने के लिये मैं अत्यन्त उत्कण्ठित हूँ ॥१४॥

प्रादात्सन्नाह्मणश्चास्मैपादलेपमुदारधीः ।

अभिसन्त्रयामामदिशतेनारयाताचयस्ततः ॥१५॥

तेनानुलिप्तपादोऽथसद्विजोद्विशत्तम ।

हिमवन्तमगाद्द्रष्टुं नानाप्रथवरणान्वितम् ॥१६॥

सहस्रं योजनानाहिदिनार्धेनव्रजामियत् ।

प्रायास्यामीतिसचिन्त्यतदद्वैतापरेणहि ॥१७॥

सप्राप्तोहिमवत्पृष्ठं नानिश्चान्ततनुद्विज ।

विचचारततस्तत्रनुहिनाचलभूतसे ॥१८॥

पादाक्रान्तेनतम्यायतुहिनेनविलीयता ।

प्रक्षालित पादजेन परमौषधिसम्भव ॥१९॥

तनोजङ्गतिःसोऽथइतदचेतश्चपर्यटन् ।

ददर्शानिमनोज्ञानिसानूनिहिमभूभृत ॥२०॥

मिद्वगन्धर्वजुष्टानिक्लिन्नगभिरतानिच ।

क्रीडाविहाररम्याग्निदेवादीनामितस्ततः ॥२१॥

यह सुन कर उम उदार चेता अतिथि न उम ब्राह्मण के पाँव में औषधि का लेप कर दिया और अभिसन्त्राल पूर्वक उसे दिक्षादि का ज्ञान दिया ॥१५॥ जब अतिथि ने ब्राह्मण के पाँव में लेप लगा दिया तब वह सोचने लगा कि 'अब मैं दिन के पूर्वार्द्ध में एक हजार योजन गमन करूँगा तथा अपराद्ध में वही मे लौट आऊँगा, ऐसे विचार कर वह अनेक भरनो वाते हिमालय पर्वत को देखने की इच्छा में चला ॥१६-१७॥ वह सहस्र में ही हिमालय के पृष्ठ दल पर पहुँच कर उम हिमभूमि में धमका करन लगा ॥१८॥ वहाँ घूमने-घूमने उनके पाँव में अत्यन्त शीतलता के नमने से औषधिपुन लेप धुल गया ॥१९॥ और उम ब्राह्मण की जड़ गति हो गई, फिर वह इधर-उधर घूमता हुआ वहाँ के मनोहर मानुषान्तर का भाग देखने लगा ॥२०॥ उनसे देखा मिद्व,

गन्धर्व, किन्नर वहाँ विहार कर रहे हैं तथा पर्वत के किनारे ही देवताओं के क्रीड़ा और विहार करने के लिये अत्यन्त मनोहर स्थान निर्मित हैं ॥२१॥

दिव्याप्सरोगणशतैराकीर्णान्यवलोकयन् ।

नातृप्यतद्विजश्रेष्ठः प्रोद्भूतपुलकोमुने ॥२२॥

क्वचित्प्रसन्नवणाद्भ्रष्टजलपातमनोरमम् ।

प्रनृत्यच्छिखिकेकाभिरन्यतश्चनिनादितम् ॥२३॥

दास्यूहकोयष्टिकाद्यैः क्वचिच्चातिमनोहरैः ।

पुंस्कोकिलकलापैश्चश्रुतिहारिभिरन्वितम् ॥२४॥

प्रफुल्लतगुरुगन्धेनवासितानिलवीजितम् ।

मुदायुक्तसदृशेहिमवन्तमहागिरिम् ॥२५॥

दृष्ट्वा चैतद्विजसुतोहिमवन्तमहाचलम् ।

श्वोद्वक्ष्यामीतिसंचिन्त्यमतिचक्रगृहंप्रति ॥२६॥

विभ्रष्टपादलेपोऽयचिररोजडितक्रमः ।

चिन्तयामासकिमिदमयाज्ज्ञानादनुष्ठितम् ॥२७॥

यदिप्रलेपोनष्टोमेविलीनोहिमवारिणा ।

शैलोऽतिदुर्गमश्चायंदूरंचाहमिहागतः ॥२८॥

उसने उस स्थान को सैकड़ों अप्सराओं से भरा हुआ देखा, जिससे उसका शरीर-पुलकित हो गया और वह अपने मन की किसी प्रकार भी तृप्ति नहीं कर पाया ॥२२॥ उसने देखा कि यह पर्वत कहीं तो पर्वतों से गिरती हुई जलराशि से सुशोभित है, कहीं नृत्य करते हुए मयूरों के रव से शब्दायमान है तथा कहीं-विभिन्न प्रकार के पक्षी मन को लुभाने वाली बोली बोल रहे हैं ॥२३॥ कहीं पपीहा, कोयष्टि, टिटीहरी आदि से वह पर्वत व्याप्त है और कहीं झोल के समान मधुर ध्वनि से प्रतिध्वनित है ॥२४॥ कहीं वृक्षों के प्रफुल्लित पुष्पों की गन्ध से सुगन्धित हुई वायु से सुगन्धित है, इस प्रकार वह उस पर्वत की शोभा देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ ॥२५॥ फिर वह हिमाचल को देख कर सोचने लगा कि कल प्रातः काल आकर पुनः देखूँगा और फिर उसने चलने का विचार किया ॥२६॥ परन्तु पाँवों का लेप छूटने से जड़गति हुआ वह

ब्राह्मण सोचने लगा कि मेने अज्ञान के बशीभूत हो कर यह क्या कार्य कर डाला ॥२७॥ जब मेरा पद तेष धूल चुना है, तब यहाँ से जाना अत्यन्त दुष्कर है, क्यों कि यह पर्वत अत्यन्त दुर्गम है और मेरा घर भी बहुत दूर है ॥२८॥

प्रयास्यामि क्रियाहानिमग्निमुत्थू पलादिकम् ।

वथमन्नकरिष्यामि सकटमहदागतम् ॥२९॥

इदम्परमिदरम्यमित्यस्मिन्वरपर्वते ।

सक्तदृष्टिरहर्तृतिनयास्येज्जदन्तैरपि ॥३०॥

किन्नराणां कलालापा ममन्ताच्छ्रोत्रहारिणः ।

प्रफुल्लतरुगन्धाश्च घ्राणमत्यन्तमृच्छति ॥३१॥

सुखस्पर्शस्तथावायु फलानिरसवन्ति च ।

हरन्ति प्रसभचेतो मनोज्ञानि सरासि च ॥३२॥

एव गते तु पश्येय यदि कचिरापो निधिम् ।

समोपदिशेन्मार्गं गमनाय गृहं प्रति ॥३३॥

स एव चिन्तयन् विप्रो बभ्राम च हिमाचले ।

भ्रष्टपादोपधिबलावैबल्य परमगत ॥३४॥

तददर्शं भ्रमन्तं च मुनिश्चेष्टवन्निमी ।

वराप्सारा महाभागामौलिमाह पशानिनी ॥३५॥

अब तो महान् सकट आगया है, यहा अग्नि सेवारि का कार्य कैसे करूँगा ? इस प्रकार तो निरथ कम भी नष्ट हो गया ॥२९॥ 'यह भी मनोहर है, यह भी' इत्यादि सोचना हुआ पर्वत के देवने की इच्छा को मैं वर्ष में भी पूर्ण नहीं कर सकता ॥३०॥ सब ओर से किन्नरो का कर्ण सुखप्रद मधुरालाप सुनाई पड़ रहा है और पुष्पिन वृक्षा से छाती हुई मुग्धि मे नामिका भी वृत्त हो गई है ॥३१॥ यहाँ सुख-स्पर्श पवन चल रहा है, सभी प्रकार के फलों में रस है, और सुरम्य सरोवर में मन पिचा जा रहा है ॥३२॥ प्रथम इस प्रकार कुछ समय व्यतीत होने पर यहा किसी तपोवन का दर्शन करूँ तो उनसे घर जाने का उपाय पूछूँ ॥३३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—पाव सगे तेष के धूल जाने से शोषणिकति का दाय हुआ जान कर अत्यन्त दुःखित हुआ ब्राह्मण

चिता पूर्वक हिमालय में घूमने लगा ॥३४॥ उस समय उस श्रेष्ठ ब्राह्मण को वहां घूमते हुए वरूथिनी नाम की मौलेया रूपवती अप्सरा ने देखा ॥३५॥

तस्मिन्हृष्टेततःसाभूदद्विजवर्येवरूथिनी ।

मदनाकृष्टहृदयासानुरागाहितत्क्षणात् ॥३६

चिन्तयामासकोन्वेषरमणीयतमाकृतिः ।

सफलमेभवेज्जन्मयदिमांनावमन्यते ॥३७

अहोऽस्यरूपमाधुर्यमहोस्यललितागतिः ।

अहोगम्भीरतादृष्टेःकुतोऽस्यसदृशोभुवि ॥३८

दृष्टादेवास्तथादैत्याःसिद्धगन्धर्वपन्नगाः ।

कथमेकोऽपिनास्त्यस्यतुल्यरूपोमहात्मनः ॥३९

यथाहमस्मिन्मय्येषसानुरागस्तथायदि ।

भवेदत्रमयाकार्यस्तत्कृतःपुण्यसंचयः ॥४०

यद्येषमयिसुस्निग्धादृष्टिमद्यनिपातयेत् ।

कृतपुण्यानमत्तोऽन्यात्रैलोक्येवनिताततः ॥४१

वह उसे देखते ही काम बाण से जर्जरित हो उठी और उसके प्रति तुरन्त ही अनुरागवती होगई ॥३६॥ उसने सोचा कि यह सुन्दर आकृति वाला पुरुष कौन है ? यदि यह मेरा आश्र करे तो मैं कृतकृत्य हो जाऊँ ॥३७॥ इसकी कैसी अपूर्व माधुरी है, कैसी मनोहर बाल, इसकी गम्भीर दृष्टि में कैसा चमत्कार है, पृथिवी पर इसके तुल्य अन्य पुरुष कौन-सा है ? ॥३८॥ देवता, दैत्य, सिद्ध, गन्धर्व, पन्नग इन सबको मैंने देखा है, परंतु उनमें इसके समान रूपवान् कोई भी दिखाई न दिया ॥३९॥ मैं इसके प्रति जैसी प्रीतिवती हुई हूँ, वैसी ही प्रीति यह भी मेरे प्रति करे तो मेरे पूर्व जन्म के कर्म का ही फल उदय हुआ समझो ॥४०॥ यदि यह मुझ पर अपनी स्निग्ध दृष्टि डालें, तो तीनों लोक में मेरे समान और कौन-सी नारी होगी ॥४१॥

एवंसंचिन्तयन्तीसादिव्ययोषित्स्मरातुरा ।

आत्मानंदशंयामासकमनीयतराकृतिम् ॥४२

तानुदृष्ट्वा द्विजसुतश्चास्त्वावस्थितोऽसौ ।
 मोपचारसमागम्यवाक्यमेतदुवाच ह ॥४३॥
 वात्सव्य कमलगर्भाभिवस्य किं वानुतिष्ठसि ।
 ब्राह्मणोऽहमिहायातो नगरादरुणाम्पदात् ॥४४॥
 पादलेपोऽग्रमेव्यस्तो विनीनो हिमवारिणा ।
 यस्यानुभावादनाहमागतो भदिरेक्षणे ॥४५॥
 मौलेयाहमहाभागानाम्नात्वा तावस्थिनी ।
 विचरामि मदं वाग्धरमणाय महाचले ॥४६॥
 साहस्यदर्शनाद्विप्रकामवैकल्यव्यतागता ।
 प्रशाधियन्मया रायं त्वदधीनास्मिमाप्रतम् ॥४७॥
 येनोपायेन गच्छेय निजगेहं शुचिस्मिते ।
 तन्ममाचक्ष्वत्याणि हानिर्नोऽखिलकर्मणाम् ॥४८॥
 नित्यनैर्मित्तकानां तु महाहानिर्द्विजन्मनः ।
 भवत्यतस्त्वहे भद्रे मामुद्धरहिमालयात् ॥४९॥

मार्चण्डेयजी ने कहा—दिव्यवान्ना वरुणिनी कामातुर हुई इसी प्रकार
 विचार करती करती उस ब्राह्मण का अपने अङ्ग पर अङ्ग दिगम लगी ॥४२॥
 उस रूपवती का उस ब्राह्मण ने जैसा ही देखा वैसा ही विधि पूर्वक पाद्यादि
 उपचार के सहित उसके पास जा कर बोला ॥४३॥ हे मुन्दरे ! तुम्हारा वर्ण
 पद्म गर्भ जैसा मनोहर है, तुम बौन, कसकी पत्नी हो ? यहाँ क्या कर रही
 हो ? मैं ब्राह्मण हूँ और यहाँ अरुणारपद नगर से आ पहुँचा हूँ ॥४४॥ मैं जिस
 स्त्रीपवित्र पद लेप के द्वारा यहाँ आया था, वह क्षीतलज्ज में धुल गया है
 और मैं अब इसमें विनीन हो गया हूँ ॥४५॥ वरुणिनी ने कहा—हे महाभाग
 मेरा नाम वरुणिनी है, मैं अग्रगण्य हूँ इस सुरम्य पर्वत पर मदा भ्रमण करती
 रहती हूँ ॥४६॥ हे ब्रह्मन् ! तुम्हें देना क्या मैं काम के वश में हुई हूँ, मैं आपके
 अर्थात् मैं, मुझे आज्ञा कीजिय कि आपका क्या प्रिय कर्म ? ॥४७॥ ब्राह्मण
 बोला—हे शुचिस्मिते ! मैं जिस प्रकार अपने घर लौट सकूँ, वह उपाय बतौ,
 परदेश में रहने में यहाँ भोगे निज नैमित्तिक कर्म नष्ट हो रहे हैं ॥४८॥ ब्राह्मण

के लिये इन कर्मों का नष्ट होना अत्यन्त अनिष्ट कारक है, इस लिये हे भद्रे !
मुझे इस हिमालय से निकालो ॥४६॥

प्रशस्यतेन प्रवासो ब्राह्मणानां कदाचन ।
अपराध्यति मे भीरुदेश दर्शनकौतुकम् ॥५०॥
सतो गृहे द्विजाग्र्यस्य निष्पत्तिः सर्वकर्मणाम् ।
नित्यं नैमित्तिकानां च हानिरेवं प्रवासिनः ॥५१॥
सा त्वं किं बहु नोक्तं न तथा कुर्यशस्विनि ।
यथानास्तंगते सूर्यपद्यामिनिजमालयम् ॥५२॥
मैं ब्रह्म हिमहाभागमाभूत्सदिवसोभम ।
मां परित्यज्य यत्र त्वं निजगेहमुपेक्ष्यसि ॥५३॥
अहो रम्यतरः स्वर्गो न यतो द्विजनन्दन ।
अतो वयं परित्यज्यतिष्ठामोऽत्र सुरालयम् ॥५४॥
स त्वं सह मया भीष्टं कान्तेऽत्र जुहिना चले ।
रममाणो न मर्त्यानां बान्धवानां स्मरिष्यसि ॥५५॥
स्रजो वस्त्राण्यलङ्काराभक्ष्यभोज्यानुलेपनम् ।
दास्याम्यत्र तथा हुन्ते स्मरेण वशगाहता ॥५६॥

ब्राह्मण का परदेश निवास अनुचित ही है, मैं देशों को देखने की इच्छा
से ही यहां आया था, मैंने कभी कोई अपराध नहीं किया है ॥५०॥ घर में
रहते हुए नित्य नैमित्तिक कर्म सहज ही पूर्ण हो जाते हैं, और परदेश में
पहुँचने पर उन कर्मों का क्षय होता है ॥५१॥ हे यशस्विनी ! अधिक क्या कहूँ,
सूर्यास्त से पूर्व ही अपने घर पहुँच सकूँ वंसा करो ॥५२॥ बरुथिबी ने कहा—
हे महाभाग ! आप जिस दिन मुझे त्याग कर अपने घर को लौटें, मेरे लिये
वह दिन ही न आवे ॥५३॥ इस स्थान की अपेक्षा तो स्वर्ग भी रमणीक नहीं
है, इस लिये मैं स्वर्ग का त्याग करके इस स्थान में रहूँगी ॥५४॥ आप इस
सुरम्य हिमालय में मेरे साथ विहार करेंगे तब आपको बाँधवों की याद नहीं
आयेगी ॥५५॥ यहां मैं माला, चूड़ा, अलंकार, भक्ष्य, भोज्य, अनुलेपन आदि

निर्वाहार्थ मैं अपने घर जिस प्रकार पहुँच सकूँ, वही मुझे सीध बताना, वरूथिनी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! तुम मुझे देखकर प्रसन्न क्यों नहीं होते ? क्या यह हिमालय मनोहर नहीं है ? गन्धर्व, किन्नर आदि के अतिरिक्त तुम्हें और किसकी इच्छा है ? ॥६३॥

निजमालयमप्यस्माद्भुवान्यास्यत्यसंशयम् ।

स्वल्पकालंमयासाद्धंभुङ्क्वभोगान्सुदुर्लभान्

अभीष्टागार्हपत्याद्याःसत्तत्तेमन्त्रयोजनयः ।

रम्यंममाग्निशरणंदेवीविष्टरिणीप्रिया ॥६४॥

अष्टावात्मगुणायेहितेषामादौदयाद्विज ।

तांकरोषिकथंनत्वंमयिसद्धर्मपालकः ॥६५॥

त्वद्विमुक्तानजीवामितथाप्रीतिमतीत्वयि ।

नैतद्वदाम्यहंमिथ्याप्रसीदकुलनन्दन ॥६६॥

यदिप्रीतिमतीसत्यंनोपचाराद्ब्रवीषिमाप् ।

तदुपायंसमाचक्ष्वयेनयामिस्वमालयम् ॥६७॥

निजमालयमप्यस्माद्भुवान्यास्यत्यसंशयम् ।

स्वल्पकालंमयासाद्धंभुङ्क्वभोगान्सुदुर्लभान् ॥६८॥

नभोगार्थायविप्राणांशस्यतेहिवरूथिनी ।

इहक्लेशायविप्राणांचेष्टाप्रेत्यफलप्रदा ॥६९॥

तुम अपने घर अवश्य ही जा सकोगे, परन्तु इस समय तो मेरे साथ इस दुर्लभ सुख का भोग करो ॥६४॥ ब्राह्मण बोला—गार्हपत्य, आबहनीय और दक्षिणाग्नि यह तीनों अग्नियाँ ही मेरी इच्छित हैं, अग्नि गृह ही मेरे लिये सुरम्य स्थान है तथा विष्टरिणी देवी ही मेरी प्रिया है ॥६५॥ वरूथिनी ने कहा—आठ प्रकार के जो अस्त्र गुण कहे गये हैं, उनमें दया ही प्रमुख गुण है, फिर भी तुम मेरे प्रति प्रीति रूपी दया क्यों नहीं करते ? ॥६६॥ तुम्हारे प्रति मैं जैसी प्रीतिमती हुई हूँ उस कारण तुम्हारे बिना जीवित नहीं रह सकती, मैं असत्य नहीं कहती, तुम मुझ पर प्रसन्न होओ ॥६७॥ ब्राह्मण बोला यदि तू मुझ पर सत्य ही अनुरागमयी हुई है, और भुभक्ते तुने सत्य बात कही

हे तो मैं जिस प्रकार घर पहुँच सकूँ वही मुझे बता ॥६८॥ वरुणिनी ने कहा—
तुम अवश्य ही यहाँ से अपने घर जा सकोगे, परन्तु अभी कुछ समय के लिये
मेरे साथ दुर्लभ सुख भोग करो ॥६९॥ ब्राह्मण बोला—हे वरुणिनी ? ब्राह्मण
को सुख भोग की आज्ञा शस्त्र नहीं देता क्यों कि स्त्री की चेष्टा से ब्राह्मण
इहलोक में क्लेश और परलोक में भी विपरीत फल पाता है ॥७०॥

सन्ध्याणम्रियमाणायाममकृत्वापरत्रते ।

पुण्यस्यैवफलभाविभोगाश्चान्यत्रजन्मनि ॥७१॥

एवचद्वयमप्यत्रतपोपचयकारणम् ।

प्रत्यास्पानाद्दहमृत्यु त्वचपापमवाप्स्यसि ॥७२॥

परस्त्रियताभिलषेदित्यूचुर्गुरवोमम ।

तेनत्वानाभिवाञ्छामिकामविशुलपप्यवा ॥७३॥

इत्युक्त्वासमहाभाग मृष्ट्वाप प्रयत शुचि ।

प्राह्दप्रणिपत्याग्निगार्हपत्यमुपाशुना ॥७४॥

भगवन्गार्हपत्याग्नेयोनिस्त्वसर्वकर्मणाम् ।

त्वत्तग्राहवनोयोऽग्निर्ददित्वाग्निश्चनान्यत ॥७५॥

युष्मदाप्यायनाद्वावृष्टिमस्यादिहेतव ।

भवन्तिसम्यादखिलजगद्भवतिनान्यत ॥७६॥

एवत्वत्तोभवत्येतद्येनसत्येनर्बजगत् ।

तथाहमद्यस्वगेहपश्येयमतिभास्करे ॥७७॥

यथाद्वैदिकवर्मस्वकालेनोज्ज्वलतमया ।

तेसत्येनपश्येयगृहस्थोऽद्यदिवावरम् ॥७८॥

यथाचनपरद्भ्येपरदारेचमेमति ।

वदान्तिस्सालिपाभूत्तथैतत्सिद्धिमेतुमे ॥७९॥

एवतुवदतस्तस्यद्विजपुत्रस्यपावक ।

वरुणिनी ने कहा—मैं मृतक के समान हो रही हूँ, मेरी प्राण रक्षा
करने के कारण परलोक में तुम्हें उसी ने समान पुण्य फल मिलेगा और
अपर जन्म में तुम्हें उसी के अनेक भोगों की प्राप्ति होगी ॥७१॥ परलोक में

सुख और जन्मान्तर में सुख भोग यह दोनों ही फल लाभदायक हैं, परन्तु, यदि मुझे निराश करोगे तो मेरी मृत्यु के कारण पाप के भागी होंगे ॥७२॥ ब्राह्मण बोला—मेरे गुरु का उपदेश है कि परस्त्री में मन न लगाना, इसलिये तू चाहे रुदन कर या प्राण त्याग, मैं तुझे नहीं चाहता ॥७३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—वरुथिनी के प्रति ऐसा कह कर ब्राह्मण ने आचमन द्वारा शुद्ध हो कर गार्हपत्य अग्नि को प्रणाम किया और उपांशु जप द्वारा निवेदन करने लगा ॥७४॥ हे गार्हपत्य अग्ने ! तुम सभी कर्मों के बीज स्वरूप हो, क्योंकि अहवनीय और दक्षिणाग्नि की उत्पत्ति तुम से ही हुई है ॥७५॥ तुम प्रसन्न होते हो तभी देवता वर्षा द्वारा शस्य प्रदान करते हैं, और उस शस्य से ही जगत् की स्थिति है, वह अन्य प्रकार से स्थित नहीं रह सकता ॥७६॥ जिस सत्य के द्वारा यह विश्व तुम में प्रतिष्ठित है, मैं भी उसी सत्य से सूर्यास्त से पूर्व ही अपने घर को देखूँ ॥७७॥ जिस सत्य के द्वारा सब वैदिक कर्म यथोचित समय में सम्पन्न हो जाते हैं, उसी सत्य से मैं भी घर में निवास करके सूर्य के वर्णन करूँ ॥७८॥ जिस सत्य से नदी मति पर ब्रह्म या परनारी से नहीं लगी है, उसी सत्य से मेरी मति इस विषय में भी सिद्धि को प्राप्त हो ॥७९॥

५४—कलिवरुथिनी समागम

गार्हपत्यःशरीरेतुसन्निधानमथाकरोत् ॥१॥
 तेनचाधिष्ठितःसोऽथप्रभामण्डलमध्यगः ।
 व्यधीपयततंदेशंमूर्तिमानिवहव्यवाट् ॥२॥
 तस्यास्तुसुतरांतत्रतादृग्रूपेद्विजन्मनि ।
 अनुरागोऽभवद्विप्रं पश्यन्त्यादेवधोषितः ॥३॥
 तःतःसोऽधिष्ठितस्तेनहव्यावाहेनतत्क्षणात् ।
 यथापूर्वतथागन्तुं प्रवृत्तोद्विजन्मन्दनः ॥४॥
 जगामचत्वरायुक्तस्तयासम्प्रनिरीक्षितः ।
 आदृष्टिपातात्तन्वद्भयानिश्वासोत्कम्पिकन्धरम् ॥५॥

तत क्षणेनैवतदानिजगेहमवाप्यस ।

यथाप्रोक्तद्विजश्रेष्ठश्चकारसकलाःक्रिया ॥६॥

अथसाचारसर्वा गीतत्रासक्तात्ममानसा ।

निश्वासपरमानिन्येदिनशेषतथानिशाम् ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—इस प्रकार निवेदन करते हुए ब्राह्मण पुत्र के गार्हपत्याग्नि अधिष्ठित हुई ॥१॥ उसकी प्रभा के मध्य में स्थित हो कर वह ब्राह्मण साक्षात् अग्नि यमान तेजस्वी हो कर उस स्थान को प्रवर्णित करने लगा ॥२॥ हे ब्रह्मन् ! बरुचिनी ने जब उस ब्राह्मण का ऐसा स्वरूप देखा तब वह अत्यन्त अनुराग से और भी मोह युक्त हुई ॥३॥ जब उस ब्राह्मण ने अग्नि ने अधिष्ठान किया तब वह पहिले के समान शक्ति युक्त हो कर गमन में प्रवृत्त हुआ ॥४॥ उस समय बरुचिनी खड़ी हुई देख रही थी कि तभी यह ब्राह्मण द्रुतगति से चल् दिया, जब वह अदृश्य हो गया, तब बरुचिनी दीर्घ श्वास लेती हुई वापन लगी ॥५॥ यह श्रेष्ठ ब्राह्मण क्षण भर में ही अपने घर पहुच गया और वहा अपनी नित्य नैमित्तिक क्रिया के करने में लगा ॥६॥ इसपर उस सर्वाङ्ग सुन्दरी बरुचिनी ने उस ब्राह्मण में अनुगमनशील रह कर दीर्घ श्वास छोडते हुए उस दिन का शेष भाग एवं रात्रि काल व्यतीत किया ॥७॥

निश्वासन्त्यनवद्याङ्गीहाहेतिरुदतीमुहु ।

मन्दभाग्येतिचात्माननिनिन्दमदिरेक्षणा ॥८॥

नविहारेनचाहारेरमणीयेनवावने ।

नकन्दरेपुरम्येपुसाववधतदारतिम् ॥९॥

चकाररममाणंचचक्रवाक्युगेस्पृहाम् ।

मुक्तातेनवरारोहानिनिन्दनिजयौवनम् ॥१०॥

क्वागताहमिमंशलदुष्टदेववलात्कृता ।

क्वचप्राप्तसमेष्टेर्गोचरतादृशोनर ॥११॥

यदद्यसमहाभागोनभेसगमुपप्यति ।

सत्वामाग्निर्वश्यमाक्षपयिष्यतिदुसह ॥१२॥

रमणीयमभूद्यत्तत्पुंस्कोकिलनिनादितम् ।

तेनहीनंतदेवतदृहतीवाद्यमामलम् ॥१३॥

इत्थं सामदानाविष्टाजमाममुनिसत्तमम् ।

वदृधेचतदारामस्तस्यास्तस्मिन्प्रतिक्षणम् ॥१४॥

वह अप्सरा घोर रुदन करती हुई दीर्घश्वास छोड़ने लगी और अपने को मन्द भाग समझ कर अपनी निन्दा करने लगी ॥८॥ आहार, विहार, सुरम्य वन, मनोहर गिरि कन्दर। किसी से भी उसकी तृप्ति न ही रही थी ॥९॥ चक्रवाकों का विहार देख कर रति कर्म में उसे स्पृहा हुई, वह ब्राह्मण द्वारा त्यागी जाने के कारण अपनी युवावस्था को दोसने लगी ॥१०॥ मैं दुष्ट दैव के वश से ही इस पर्वत में आई थी अन्यथा वह सर्वाङ्ग सुन्दर पुरुष जो मुझे दिखाई दिया था, उसका देखा जाना क्या कभी संभव था ? मैं उसे क्या जानती थी ? ॥११॥ यदि वह महाभाग इस समय मुझे न मिलेगा, तो दुःसह कामाग्नि में दग्ध होकर मुझे अपने जीवन का परित्याग करना पड़ेगा ॥१२॥ जो कोकिला का शब्द मेरे कानों को मनोरंजक प्रतीत होता था, वह आज अग्नि के समान ही मुझे भस्म कर रहा है ॥१३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इस प्रकार कामासक्त हुई वरूथिनी ने उस मुनि श्रेष्ठ को मन से देखा तो उसका अनुराग क्षण-क्षण में उसके प्रति वृद्धि को प्राप्त होता रहा ॥१४॥

कलिर्नाम्नातुगन्धर्वःसानुरागोनिराकृतः ।

तयापूर्वमभूत्सोऽथतदवस्थाददर्शताम् ॥१५॥

सचिन्तयामासतदाकिन्वेषागजगामिनी ।

निश्वासपवनम्लानागिरावत्रवरूथिनी ॥१६॥

मुनिशोपक्षताकिंनुकेनचिर्त्तिकविमानिता ।

बाष्पवारिपरिविलम्बमियंधत्तेयतोमुखम् ॥१७॥

ततःसदध्यौसुचिरंतमर्थकौतुकत्कलिः ।

ज्ञातत्रांश्चप्रभावेणसमाधेःसयथातथम् ॥१८॥

पुनःसचिन्तयामासतद्विज्ञायमुनेःकलिः ।

ममोपदादितंसाधुभाग्यैरतेत्पुराकृतैः ॥१९॥

मयंपायानुरागेणवहुश प्रार्थितामनी ।

निराकृतवतीसेयमद्यप्राप्याभविष्यति ॥२०॥

मानुषेमानुरागेयतत्रतद्रूपधारिणि ।

रम्यतेमय्यमन्दिग्धकिंवाले नकरोमितन् ॥२१॥

इम अम्भरा के प्रति पहिले एक बनि नामक गन्धर्व आमत था, परन्तु
इमने उमका निरादर किया था, उसने इम अम्भरा को ऐसी दशा में देखा तो
॥१८॥ सोचने लगा कि यह गजगामिनी इस पर्वत में दीर्घ श्वाभ छोड़ती हुई
प्रतिक्षण म्लान होनी जा रही है, क्या यह बन्धुिनी ही है ? ॥१९॥ क्या यह
किसी मुनि के शिष्य से अस्त हुई है अथवा किसी ने इमका निरादर किया है,
क्यों कि हमके मुख पर अश्रु बिन्दु दिखाई दे रहे हैं ॥२०॥ फिर उम गन्धर्व
ने कुतूहल पूर्वक बहुत समय तक ध्यान किया और उसके द्वारा सब वृत्तान्त
उसे ज्ञान हो गया ॥२१॥ वृत्तान्त ज्ञान होने पर उमने सोचा कि मेरे पूर्ववृत्त
पुण्य के फल स्वरूप मेरी यह इच्छा पूर्ण हुई है ॥२२॥ जिनने मेरी अनुगम-
नयी विनय की कृपा दिया था, यह वही बन्धुिनी अब मुझे सहज में प्राप्त
हो जायगी ॥२३॥ अब यह जिम मनुष्य के प्रति प्रीतिमयी हुई है, मैं उसी
मुनि का रूप धारण करूँ तो यह मुझ से भी प्रीति करेगी, इसनिसे अब देर
क्यों करूँ ॥२४॥

आन्मप्रभावेणततस्तम्यरूपद्विजन्मन ।

कृत्वावचारयत्रास्तेनियपण्णामावरुधिनी ॥२२॥

सातदृष्ट्वावगरोहाकिंचिदुत्फुल्ललांचना ।

समेत्यप्राहृतन्वगीप्रमीदेतिपुनःपुनः ॥२३॥

खयायक्तानसन्देह परित्यज्यामिजीविनम् ।

तत्राघमं वष्टारःक्रियालोपोभविष्यति ॥२४॥

मयासमेत्यरम्येऽस्मिन्महात्मन्जनकन्दरे ।

मत्परित्राणजर्वममवश्यप्रतिपत्स्यसे ॥२५॥

आयुषःभावोपमेनूनमस्मिन्महामते ।

निवृत्तस्तेनूनहिहृदयाद्वादादवारव ॥२६॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—इसके पश्चात् उसने आत्म प्रभाव से उस ब्राह्मण का रूप धारण किया और जहाँ वरूथिनी बैठी थी, वहाँ जाकर घूमने लगा ॥२२॥ वरूथिनी ने जैसे ही उस मुनि वेशधारी कलि को देखा तभी आह्लादयुक्त नेत्रों से उसे देख और निकट पहुँचकर उससे बारम्बार प्रसन्न होओ कहने लगी ॥२३॥ और बोली कि यदि तुम मेरा त्याग करोगे तो मैं अपना जीवन समाप्त कर लूँगी, जिससे अघर्म होगा और तुम्हारी सम्पूर्ण क्रिया का भी लोप हो जायगा ॥२४॥ यदि इस हिमालय की सुरम्भ कन्दरा में मेरे साथ विहार करोगे तो उससे मेरी रक्षा होगी और उसका धर्म फल तुम्हें प्राप्त होगा ॥२५॥ हे महामते ! मेरी श्रायु अभी तक शेष नहीं हुई है, इसीलिए तुम निवृत्त होकर मेरे हृदय में आनन्द का संचार कर सके हो ॥२६॥

किं करोमि क्रियाहानिर्भवत्यत्र सतो मम ।

त्वमप्येवं विधं वाक्यं ब्रवीषितनुमध्यमे ॥२७॥

तदहं संकटं प्राप्नोयद्ब्रवीमि करोषितत् ।

यदि स्यात्संगमो मेद्य भवत्यासह नान्यथा ॥२८॥

प्रसीदयद्ब्रवीषित्वं तत्करोमि न ते मृषा ।

ब्रवीम्येतदनाशङ्क्यद्यत्कार्यं मया ध्रुता ॥२९॥

नाद्यत्संभोगसमये द्रष्टव्यो हं त्वया वने ।

निमीलिताक्ष्याः संसर्गस्तव सुभ्रुमया सह ॥३०॥

एवं भवतु भद्रं ते यथेच्छं सितथास्तु तत् ।

मया सर्वप्रकारं हि वशे स्थेयं तवा ध्रुता ॥३१॥

कलि बोला—हे सुन्दरी ! समझ में नहीं आता कि क्या करूँ ? यहाँ रहने से मेरे कर्म का लोप हो जायगा, परन्तु तुम भी इस प्रकार से अनुरोध कर रही हो ॥२७॥ ऐसे सङ्कट में पड़कर ही मुझे तुम्हारी बातों से अब सहमत होना पड़ा है, परन्तु मैं जो कहता हूँ, वह बात तुम्हें स्वीकार हो तभी तुम्हारे साथ संयोग हो सकता है, अन्यथा नहीं हो सकता ॥२८॥ वरूथिनी ने कहा—आर कओ, जो कहाँये वही मैं करूँगी इसमें असत्य

मही है जो कहते हो वह अभी बरूँगी ॥२६॥ कलि बोला—तुम विहार के समय मुझे न देखना, समय काल में तुम्हें नेश बन्द किये रहना होगा ॥३०॥ वरूयिनी ने कहा—यही होगा, जैसा तुम चाहते हो, वैसा ही होगा, मैं सब प्रकार से तुम्हारे अधीन हूँ, तुम्हारा भगल हो ॥३१॥

५५—स्वरोचि का जन्म और विवाह

ततःसहस्रयासोथररामगिरिसानुषु ।
 फुल्लकाननहृद्येपुमनोज्ञेपुमरःसुच ॥१॥
 कन्दरेपुचरम्येपुनिम्नगापुलिनेपुच ।
 मनोज्ञेपुतथान्येपुदेशेपुमुदितोद्विज ॥२॥
 वह्निनाधिष्ठितस्यासौद्यद्रपतस्यतेजसा ।
 अचिन्तयद्भोगकालेनिमीलितविसोचना ॥३॥
 तत कालेनसागर्भमवापमुनिसत्तम ।
 गन्धर्भवीर्य्यंतरूपचिन्तनान्चद्विजन्मन ॥४॥
 सागर्भधारिणीसोऽयसान्त्वयित्वावरूयिनीम् ।
 विप्ररूपधरोयातस्तयाप्रीत्याविसर्जित ॥५॥
 जज्ञेसबासोद्युतिमान्ज्वलन्निवविभावमु ।
 स्वरोचिर्भिर्यथासूर्य्योभासयन्सकलादिशः ॥६॥
 स्वरोचिर्भिर्यतोभातिभाम्बानिवसबालक ।
 ततःस्वरोचिरित्येवंनाम्नाख्यातोवभूवस ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—पर्वत के कपूरे, सुरम्य एवं पुष्पित वन तथा मनोज्ञ सरोवर ॥१॥ रमणीय कन्दरा, नदी तट तथा अन्यान्य स्थानों में वह प्रसन्न चित्त से वरूयिनी के साथ विहार करने लगा ॥२॥ अग्नि के अधिष्ठान में उस ब्राह्मण का जो तेजोमय रूप हो गया था, उसी रूप का चिन्तन वरूयिनी समागम काल में करने लगी ॥३॥ फिर उस अप्सरा ने उस गर्दभ के धीरेन से यथा समय गर्भ धारण किया, समागम काल में ब्राह्मण के

तेजोजमय स्वरूप का चिन्तन करने के कारण, उगी ब्राह्मण के समान उसके पुत्र उत्पन्न हुआ ॥४॥ ब्राह्मण रूप धारी वह गधर्व बरूथिनी को समझाकर वहाँ से चला गया ॥५॥ जिस प्रकार सूर्य की किरणों से सभी दिशाएँ प्रकाशित होती हैं, वैसे ही शरीर के तेज में चारों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए उस बालक ने समय पाकर जन्म लिया ॥६॥ अपने शरीर की प्रभा से भास्कर जैसी दीप्ति प्राप्त करने के कारण उस बालक का नाम स्वरोचि हुआ ॥७॥

ववृधेचमहाभागोवयसानुदिनंतथा ।
गुणौघैश्चयथाबालकलाभिःशशलाञ्छनः ॥८॥
सजग्राहधनुर्वेदवेदांश्च वयथाक्रमम् ।
विद्याश्चैवमहाभागस्तदायौवनगोचरः ॥९॥
मन्दराद्रौकटाचित्सविचरंश्चारुचेष्टितः ।
ददर्शकांतदाकन्यांगिरिप्रस्थेभयातुराम् ॥१०॥
प्रायस्वेतिनिरीक्ष्यनंसातदावाक्यमब्रवीत् ।
माभैवीरितिसप्राहभयविप्लुतलोचनाम् ॥११॥
किमेतदितितेनोक्तवीरवाक्येमहात्मना ।
ततःसाकथयामासश्वासाक्षेपप्लुताक्षरम् ॥१२॥
अहमिन्दीवराख्यस्यसुताविद्याधरस्यवै ।
नाम्नामनोरमाजातासुतायामरुधन्वनः ॥१३॥
मन्दारविद्याधरजासखीममविभावरी ।
कलावतीचाप्यपरासुतापारस्यवैमुनेः ॥१४॥

हे महाभाग ! जैसे शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा की कला प्रति दिन वृद्धि की प्राप्त होती है, वैसे ही उस बालक के गुणों में प्रतिदिन वृद्धि होने लगी ॥८॥ इस स्वरोचि ने चारों वेद, सभी शास्त्र और धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करके युवावस्था में प्रवेश किया ॥९॥ उस सुन्दर गति वाले स्वरोचि को किसी एक समय मन्दराचल पर भ्रमण करते हुए एक भयातुरा कन्या दिखाई दी ॥१०॥ उसने इसे देखकर 'रक्षा करो' कहा और इसने भी कन्या

१४]

को भयातुरा देवकर 'अथ नही' वह वर प्राप्तवस्तु किया ॥१॥ फिर उसने
वीरगोविन्द शब्दी में 'तुम्हें क्या अथ हुआ है ?' यह पूछा, इस पर स्वाम
छोड़नी हुई उस वस्तु में अच्युत शब्दों से उत्तर दिया ॥१२॥ वह बोली—
मैं हन्दीवर गानक विद्याधर की मरगवा मुता के गर्भ से उत्पन्न पुत्री हूँ, मेरा
नाम मनोरमा है ॥१३॥ मेरी दो मन्त्री विभावरी और बनावती नाम की हैं,
इनमें प्रथम मन्दार विद्यालय की और द्वितीय पार भुनि की बन्धी है ॥१४॥

ताम्रप्रासहमयायातकैलासतटमुत्तमम् ।
तत्रदृष्टोमुनि कश्चित्पसातिकृशाकृति ॥१५॥
धृतराजमवण्ठोनिस्तेजादूरपाताक्षितारक ।
मयावहसितं त्र द्र सनदामाशनापह ॥१६॥
क्षामक्षामस्वर्ग विचित्रकृतिधरपल्लव ।
तत्रयावहमिनायम्मादनायैदुष्टातापमि ॥१७॥
तस्मात्स्वामचिरेणैवराक्षसोभिभविव्यति ।
वत्तापेमत्तस्यीम्यामनुनिर्भस्तितामुनिः ॥१८॥
विक्रमेणैवाक्षयमक्षान्त्याहृततेनितिलतप ।
अमर्षमर्षपितोऽमिनपसानातिक्रान्त ॥१९॥
क्षान्त्यास्पदवैवाहाण्यक्रोधमयमनतप ।
एतन्नुत्प्राददीशापतयोत्पद्यमितद्युति ॥२०॥
एकस्या कुत्रमङ्गेषुभाष्यन्यस्यास्तथाशय ।
तयोस्तयैववज्रातयथोक्त तेनतत्क्षणात् ॥२१॥

एक दिन मैं उनके साथ बैठा कि उनके वर यदि भी और यहाँ हमें एव
भुनि दिखाई दिखे थे, उनका अङ्ग उपस्था के वर में घटित हुआ हो रहा
था ॥१२॥ उनका घट भूल के कारण घीस हो रहा था, तेज तेज रहित
हो गया थे, मैंने उन्हें देवकर उनकी हमी उड़ाई, इसमें काचित होकर उन्होंने
मुख वणित में होकर मुझे आप दे दिया—अरी अनायें ! दुष्टे ! तुने मुझ
काम्यो को हँसी उड़ाई है ॥१६-१७॥ इसविषे तू राक्षस से पराभूत होगी
इस वरान् भुनि द्वारा आप दे दिया हुआ मुनवर मेरी मतिश ने उनकी भर्त्सना

की ॥१८॥ तुम्हारे जैसे क्षमाहीन ब्राह्मण को धिक्कार है और सम्पूर्ण तप निरर्थक है, तुम्हारा शरीर तप के कारण दुबला हुआ प्रतीत नहीं होता, क्रोध से ही हुआ होगा ॥१९॥ ब्राह्मण तो क्षमा के आश्रय रूप और क्रोध पर नियंत्र ॥ ही उनका तप है, तुम तप में परिपक्व नहीं हो पाये, क्योंकि क्रोध ने तुम्हें क्षीण कर दिया है, उनकी ऐसी बात सुनकर उस मुनि ने उन्हें भी शाप दे दिया ॥२०॥ एक से कहा 'तू सर्वाङ्ग में कुछ से पीड़ित होगी' दूसरी से कहा—'तू श्रय रोग से पीड़ित होगी' मुनि द्वारा शाप देते ही उन दोनों के वे रोग तत्काल उत्पन्न हो गये ॥२१॥

ममाप्येवंमहद्रक्षःसमुपैतिपदानुगम् ।

नशृणोषिमहानादंतस्यादूरेऽपिगर्जतः ॥२२

तृतीयमद्यादिवसंयन्मेपृष्ठंमुंचति ।

अस्त्रग्रामस्यसर्वस्यहृदयज्ञाहमद्यते ॥२३

तंप्रयच्छामिमारक्षरक्षसोऽस्मान्महामते ।

प्रादात्स्वायम्भुवस्वयंरुद्रः साक्षात् पिनाकधृक् ॥२४

स्वायम्भुवोवसिष्ठायसिद्धवर्यायदत्तवान् ।

तेनापिदत्तंमन्मातुःपित्रेचित्रायुधायवै ॥२५

प्रादादौद्वाहिकंसोऽपिमत्पित्रेश्वशुरःस्वयम् ।

मयापिशिक्षितंवीरसकाशाद्वालयपितुः ॥२६

हृदयंसकलास्त्राणामशेषरिपुनाशनम् ।

तदिदंगृह्यतांशीघ्रमशेषास्त्रपरायणम् ॥२७

ततोजहिदुरात्मानमेनंराक्षसमागतम् ॥२८

तभी एक महाराक्षस प्रकट होकर मेरे पीछे भी दौड़ पड़ा, वह तीन दिन से मेरे पीछे लगा है, देखो समीप में ही गरज रहा है, क्या आप उस शब्द को नहीं सुन रहे हैं ? मैं अब सभी अस्त्रों का सार रूप यह प्रख्यात अस्त्र ॥२२-२३॥ आपको दे रही हूँ, इसी से आप मेरी रक्षा करें, पुराकाल में यह अस्त्र स्वायम्भुव मनु को स्वयं रुद्र ने प्रदान किया था ॥२४॥ यह परमोत्तम सिद्ध अस्त्र स्वायम्भुव ने वसिष्ठ को प्रदान किया और वसिष्ठ से इसे मेरे नाना

विश्रायुध ने प्राप्त किया ॥२५॥ और उन्होंने विवाह के दहेज में मेरे पिता को दिया, सब अस्त्रों के मारभूत इस अस्त्र की शिक्षा मैंने वात्स्यावस्था में अपने पिता से प्राप्त की थी ॥२६॥ यह अस्त्र सभी अस्त्रों का हृदय एवं शत्रु नाशक है, इसे शीघ्र ग्रहण करिये, इसके द्वारा सभी अस्त्रों से होने वाले कार्य सिद्ध हो जाते हैं ॥२७॥ इसके ग्रहण पूर्वक इस राक्षस का वध करिये, जो कि विप्र साय ने मेरा वीर्य कर रहा है ॥२८॥

सधेत्युक्तेततस्तेनवाय्युं पस्पृश्यतस्म्यतत् ।

अम्भ्राणाहुदयप्रादात्मरहस्यनिवर्तनम् ॥३६॥

एतस्मिन्नन्तरेरक्षस्तत्तदाभीपणाकृति ।

नर्दमानमहानादभाजगामत्स्वरान्वितम् ॥३७॥

मयाभिभूताकिंशालामुपेतिद्रुतमेहिमे ।

भक्षायकिंचिरेणतिद्रुवाणतद्दशंस ॥३८॥

स्वर्गोविश्रिन्तयामासदृष्टातसमुपागतम् ।

गृह्णात्येवञ्च सत्यतस्यास्त्विमहामुने ॥३९॥

जग्राहसमुपेत्यनात्वरयासोऽपिराक्षसः ।

नाहिनाहीतिकरुणविधपन्तीसुमध्यमाम् ॥४०॥

ततस्वरोचि सक्त्वाश्रण्डास्त्रमतिभैरवम् ।

दृष्ट्वानिवेक्ष्यनद्रक्षाददशानिमिपेक्षण ॥४१॥

तदाभिभूत सतदातामुत्सृज्यनिशाचर ।

प्रसीदशाम्यतामस्त्रश्रूयताचेत्यभापत ॥४२॥

मार्कण्डेय जी ने कहा—जब स्वर्गोचि ने अस्त्र ग्रहण करना स्वीकार किया, तब उस मनोरमा ने वह अस्त्र उन्हें आज्ञा देने करके रहस्य तथा निवर्तन मन्त्र के सहित प्रदान किया ॥३६॥ उसी समय स्वरोचि ने उस भयङ्कर आकार वाले राक्षस को गर्जन पूर्वक वहाँ आता हुआ दृष्टा दिया ॥३७॥ उसने आते ही कहा—मेरे आक्रमण से कोई क्षा को प्राप्त नहीं हो सकता, अब दूर मत बरो, मैं तुम्हारा शीघ्र ही भोजन करना चाहता हूँ ॥३८॥ उसे वहाँ दृष्टकर स्वर्गोचि ने विचार किया कि यदि यह राक्षस इस वन्या को पकड़ लेगा, तो ही उन महा-

मुनि का शाप सत्य हो सकता है ॥३२॥ स्वरोचि के ऐसा विचार करते ही राक्षस ने तुरन्त उस विद्याधरी को पकड़ लिया, इस पर वह आहि-वाहि करती हुई रोने लगी ॥३३॥ तब स्वरोचि ने क्रोध में भर कर उस प्रचण्डास्त्र को धनुष पर चढ़ाया और उस राक्षस की ओर देखा ॥३४॥ उन्हें इस प्रकार उद्यत देखकर राक्षस भय-विह्वल हो गया और कन्या को छोड़कर स्वरोचि से बोला—आप अस्त्र का परित्याग करिये, मुझ पर प्रसन्न होकर मेरा वृत्तान्त सुनिये, उसे मैं आपसे कहता हूँ ॥३५॥

मोक्षितोऽहं त्वया शापादतिघोरान्महाद्युते ।

प्रदत्तादतितीव्रेण ब्रह्ममित्रेण धीमता ॥३६॥

उपकारो न मे त्वत्तः महाभागाधिकोपरः ।

येनाहं सुमहाकष्टान्महाशापाद्विमोक्षितः ॥३७॥

ब्रह्ममित्रेण मुनिना किमिति मत्तमहात्मना ।

शप्तस्त्वं कीदृशश्चैव शापो दत्तोऽभवत्पुरा ॥३८॥

ब्रह्ममित्रोऽष्टधाभिन्नमायुर्वेदमधीतवान् ।

त्रयोदशाधिकारं च प्रगृह्णाथर्वणोद्विजः ॥३९॥

अहं चेन्दीवराक्षेति स्थातोऽस्या जनकोऽभवम् ।

विद्याधरपतेः पुत्रो न लनाभस्य स्वाङ्गिनः ॥४०॥

मया च याचितः पूर्व ब्रह्ममित्रोऽभवन्मुनिः ।

आयुर्वेदमशेषं मे भगवन् दातुमर्हसि ॥४१॥

यदा तु बहुशो वीरप्रश्रया वनतस्य मे ।

न प्रादाद्यचितो विद्यामायुर्वेदात्मिकां मम ॥४२॥

हे तेजस्विन् ! अत्यन्त तेज सम्पन्न ब्रह्ममित्र मुनि ने मुझे एक बार घोर शाप दिया था, आपने मुझे शाप से मुक्त कर दिया है ॥३६॥ हे महाभाग ! मेरा ऐसा उपकार करने वाला कोई उपकारी आपके समान नहीं है, क्योंकि आप ही ने मुझे घोर बलेशप्रद ब्रह्म शाप से मुक्त किया है ॥३७॥ स्वरोचि बोले—मुनिवर ब्रह्ममित्र ने तुम्हें जो शाप दिया था, वह कैसा तथा किसलिये दिया था ? ॥३८॥ राक्षस बोला—उन मुनिवर ब्रह्ममित्र ने अथर्व के तेरह

अधिकार में ज्ञान प्राप्त किया था तथा आठ भाग वाले सम्पूर्ण आयुर्वेद को पढ़ा था ॥३६॥ मेरा नाम इन्दीवर है, मैं खड्गीनस नाम नामन विद्याधर का पुत्र तथा इस रज्ज्या का पिता हूँ ॥४०॥ मैंने उन ब्रह्मर्षि से निवेदन किया था कि मुझे सम्पूर्ण आयुर्वेद का ज्ञान दीजिये ॥४१॥ परन्तु बारम्बार विनम्र पूर्वक निवेदन करने पर भी मुनि ने मुझे आयुर्वेद का ज्ञान नहीं दिया ॥४२॥

शिष्येभ्योददतस्तस्यमयान्तर्धानगेनहि ।
 आयुर्वेदात्मिकाविद्यागृहीताभूत्तदातय ॥४३॥
 गृहीतायातुविद्यायामासैरष्टाभिरन्तरात् ।
 ममातिहर्षादभवद्वासोऽन्येषुनःपुनः ॥४४॥
 प्रत्यभिज्ञायमाहासान्मुनिःकापसमन्वितः ।
 विक्ल्बिकन्धर प्राहमामिदपरुषादारम् ॥४५॥
 राक्षसेनेवयस्मान्मेत्वयाऽदृश्येनदुर्मते ।
 हृताविद्यावहामश्चमामवज्ञाययेकृत ॥४६॥
 तस्मात्स्वराक्षस पापमच्छापेननिराकृत ।
 भविष्यसिनस-देह सप्तरात्रेणदारुण ॥४७॥
 इत्युक्तेप्रणिपाताद्यैरुपचारै प्रसादित ।
 समामाहपुनर्विप्रस्तत्क्षणान्मृदुमांस ॥४८॥

तब, जब वे अपने शिष्य को आयुर्वेद का ज्ञान दे रहे थे, उस समय छिप कर मैं उस विद्या को प्राप्त किया ॥४३॥ जब आठ महीने से मुझे सम्पूर्ण आयुर्वेद का ज्ञान होगया, तब मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई और मैं बारम्बार हँसने लगा ॥४४॥ मुनि ने जब मेरा इस प्रकार हँसना जाना तो उन्होंने क्रोध से कम्पित बनें होकर यह बठोर वचन कहे ॥४५॥ हे दुर्मते ! तूने राक्षस के समान छिप कर विद्या को चुराया है और अवज्ञा पूर्वक मेरी हँसी उड़ाई है ॥४६॥ इसलिये तू मेरे क्षाप से अधिकार च्युत होकर मात रात्रि से ही घोर राक्षस हो जायगा ॥४७॥ इस प्रकार का क्षाप सुनकर मैंने मुनि का विनम्रता युक्त उपासी से प्रसन्न किया ता वह पुनः प्रसन्न होगये और बोले ॥४८॥

यन्मयोक्तमवश्यंतद्भाविगन्धर्वनान्यथा ।
 किन्तु त्वं राक्षसो भूत्वा पुनः स्वंप्राप्त्यसेवपुः ॥४९॥
 नष्टस्मृतियंदा क्रुद्धः स्वमपत्यं चिखादिपुः ।
 निशाचरस्वेगन्तासितदस्त्रानलतापितः ॥५०॥
 पुनः संज्ञामवाप्य स्वामवाप्त्यसिनिजं वपुः ।
 तथैव स्वमधिष्ठानं लोके गन्धर्वसंज्ञिते ॥५१॥
 सोऽहं त्वयामहाभागभोक्षितोऽस्मान्महाभयात् ।
 निशाचरत्वाद्यद्वीरतेन मे प्रार्थनां कुरु ॥५२॥
 इमां ते तनयां भार्याप्रयच्छामि प्रतीच्छताम् ।
 आयुर्वेदश्च सकलस्त्वष्टांगो यो मया ततः ।
 मुनेः सकाशात्संप्राप्तस्तं गृह्णीष्व महामते ॥५३॥
 इत्युक्त्वा प्रददौ विद्यां स च दिव्याम्बरो ज्ज्वलः ।
 स्रग्भूषणधरो दिव्यं पौराणं वपुरास्थितः ॥५४॥
 दत्त्वा विद्यां ततः कन्यां सदा तु मुपचक्रमे ।
 तमाह सा तदा कन्या जनितारस्वरूपिणम् ॥५५॥

हे गन्धर्व ! मेरा कहा हुआ तो मिथ्या नहीं होगा, परन्तु तू राक्षस होने के पश्चात् पुनः अपने शरीर को प्राप्त होगा ॥४९॥ जब तू राक्षस होकर पुरानी बात भूलता हुआ क्रोधवश अपनी ही पुत्री का भक्षण करने को तत्पर होगा, तभी अस्त्रानल से संतप्त होकर ॥५०॥ पुनः स्मृति लाभ करेगा और अपने उसी शरीर, गन्धर्वलोक और अधिकार को पूर्ववत् प्राप्त करेगा ॥५१॥ हे महाभाग ! आपने मुझे इस घोर राक्षसत्व से मुक्त किया है, इसलिये मुझसे वर मांगो ॥५२॥ हे महामते ! इस कन्या को मैं आपको प्रदान करता हूँ, इसे पत्नी रूप में स्वीकार करो तथा मुनि से मुझे जिस अष्टांग आयुर्वेद की प्राप्ति हुई है, उसे भी मुझसे ग्रहण करो ॥५३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—दिव्य वसन, दिव्य भूषण एवं माला तथा पूर्ववत् दिव्य देह को धारण विये हुए उस गन्धर्व ने ऐसा कहकर स्वरोचि को ॥५४॥ सम्पूर्ण आयुर्वेद विद्या प्रदान की तथा

उमने जब कन्याशन का उद्यम किया तभी उस कन्या ने अपने स्वरूप को प्राप्त हुए पिता से कहा ॥५५॥

अनुरागाममाऽप्यत्रतातातीवमहात्मनि ।
 दशनादेवसजातोविशेषेणोपकारिणी ॥५६॥
 किन्त्वेवामेसखीसाचमत्सृतेदुःखपोडिते ।
 अतोनाभिलषेभोगान्भोक्तुमेतेननेसमम् ॥५७॥
 पुरुषैरपिनोशक्याकर्तुमिस्थनृशसता ।
 स्वभावहृचिरैर्माहृकययोपित्करिष्यति ॥५८॥
 साह्यथातेदुःखात्तमत्सृतेवन्यकेपित ।
 तथास्थास्यामिदुःखातांतच्छोकानलतापिता ॥५९॥
 आयुर्वेदप्रसादेनतेवरिष्येपुनर्नवे ।
 सख्यौतयमहातीकसमुत्सृजसुमध्यमे ॥६०॥
 ततःपित्रास्वयदत्ताताकन्यासविधानतः ।
 उपयेमेगिरीनस्मिन्स्वरोचिश्चास्लाचनाम् ॥६१॥

इन महात्मा को देखते ही मेरा अनुराग इनक प्रति होगया था, और यह इन ममय भी विशेष रूप से उपकारी है ॥५६॥ परन्तु मेरी दो नालियाँ मेरे ही कारण दुःख का भोग रही है, इसलिए इनके साथ सुख-भोग करना मेरे लिये अनुचित ही है ॥५७॥ जब पुरुष भी ऐसा कठोर व्यवहार नहीं कर सकते, तब मेरे जैसी सरल नारी ही क्या कैसे कर सकती है ? ॥५८॥ जिस अवस्था में एक बार वह दानो कन्याएँ दुःख भोग रही हैं, उसी प्रकार मैं भी दुःख में सतस होकर उन्हीं के समान दुःख भागूंगी ॥५९॥ स्वरोचि बोले—हे सुमध्यमे ? शोक को छोड़ो, मैं आयुर्वेद के प्रभाव से तुम्हारी यतियों को रोग मुक्त करूँगा ॥६०॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इसके पदचान् स्वरोचि ने मन्दराक्षस से पिता-प्रदत्त उम सुशोभित नयन वाली कन्या के साथ विवाह किया ॥६१॥

दत्तातृतातदाकन्यामभिसान्तव्यचभाविनीम् ।

जगामदिव्ययागत्यागन्धर्वं स्वपुरतत ॥६२॥

सचापिसहितस्तन्यातदुद्यानंतदाययौ ।
 कन्यकायुगलंयत्रतच्छापोत्थगदातुरम् ॥६३
 ततस्तयोःसतत्त्वज्ञोरोगघ्नैरौषधैरसैः ।
 चकारनीरुजेदेहेस्वरोचिरपिराजितः ॥६४
 ततोऽतिशोभनेकन्येविभुवतेव्याधितःशुभे ।
 स्वकान्त्योज्ज्योतिदिग्भागंचक्रातेतन्महीधरम् ॥६५

कन्यादान करके गन्धर्व उसे हर प्रकार से समझा कर दिव्य विमान पर चढ़ कर अपने लोक को गया ॥६२॥ इवर स्वरोचि अपनी पत्नी के सहित वहाँ गये, जहाँ मनोरमा की दोनों सखियाँ रोगाक्रान्त हुई उद्यान में रह रही थीं ॥६३॥ और आयुर्वेद के तत्त्वज्ञाता स्वरोचि ने रोग नाशक औषधियों के रसों से उन दोनों के शरीर को रोग रहित किया ॥६४॥ तब उन अत्यन्त रूप-वती कन्याओं की देह-कान्ति से पर्वत की सभी दिशाएँ प्रकाशित होने लगीं ॥६५॥

५६.... स्वरोचि के अन्य विवाह

एवविमुक्तरोगातुकन्यकातंमृदान्विता ।
 स्वरोचिषमुवाचेदंशृणुष्ववचनंप्रभो ॥१
 मन्दारविद्याधरजानाम्नाख्याताविभावरी ।
 उपकारिन्स्वमात्मानंप्रयच्छामिप्रतीच्छामाम् ॥२
 विद्यांचतुर्भ्यंदास्यामिसर्वभूतरुत्तानिते ।
 ययाभिव्यक्तिमेध्यन्तिप्रसादप्रवणोभव ॥३
 एवमस्त्वितितेनोक्तेधर्मज्ञेनस्वरोचिषा ।
 द्वितीयातुतदाकन्याइदंवचनमब्रवीत् ॥४
 कुमारब्रह्मचार्यासीत्पारोनामपितामम ।
 ब्रह्मर्षिःसुमहाभागोवेदेवेदांगपारगः ॥५

तस्यपु स्कोक्तितालापरमणीयेमघीपुरा ।

भ्राजगाम्राप्सरोभ्याशप्रह्यातापुञ्जिक्स्थला ॥६॥

कामवैक्लव्यतानीत सतदाभुनिपुञ्जव ।

तत्सयोगेऽहमुत्पन्नातस्यामनमहाचले ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—मनोरमा की दोनों सक्षियों में से एक ने रोग-
मुक्ति की प्रसन्नता से स्वरोचि ने प्रति कहा कि मेरी बात सुनिये ॥१॥ मैं
मन्दार नामक विद्याधर की कन्या विभावरी हूँ, आपने मेरा महान् उपकार
किया है, उसके बदले मैं आपको द्रवना धारमा ही अर्पित करती हूँ ॥२॥ तथा
जित विद्या के द्वारा सब प्राणियों के स्वर का ज्ञान होता है, वह भी आपको
देती हूँ, उसे आप ग्रहण करिये ॥३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—धर्मज्ञाता स्वरोचि
ने विभावरी की बात को स्वीकार कर लिया, इसका पश्चात् दूसरी कन्या ने
उत्तरे कहा ॥४॥ मेरे पिता कुमारवत्सा से ही ब्रह्मचर्य का आलम्बन करने वाले,
वेद वेदांग के ज्ञाता ब्रह्मर्षि पार हैं ॥५॥ एक समय जब वसन्त ऋतु प्राप्त हुई
तब कामोजनो के मन की हरण करने वाले पुस्कोक्ति के मधुर स्वर से तपोवन
गूँज रहा था तभी एक पुञ्जिक्स्थला नामक अप्सरा ने उनके निकट आगमन
किया ॥६॥ इससे वह मुनिवर काम व वश में होगया और तब उस अप्सरा के
गर्भ से मैं इसी महापवन में उत्पन्न हुई ॥७॥

विहायमागतासाचमातास्मिन्निजंनेवने ।

वालामेकामहीपृष्ठेव्यालश्चापहसकुले ॥८॥

तत कलाभि मीमस्यवर्द्धन्तीभिरह क्षये ।

आप्यायमानाहरहोवृद्धियातास्मिन्सत्तम ॥९॥

तत क्षलापतीत्येतन्ममनाममहात्मना ।

गृहीताया कृतपित्रागन्धर्वेणशुभ्रमत्मना ॥१०॥

नदत्ताहतदातेनयाचितेनमहात्मना ।

देवारिणानिग्रामुमन्ततोमेघातित पिता ॥११॥

तनोऽहमतिनिर्बेदादात्मव्यापादनोद्यता ।

निवारिताशम्भुपत्न्यासत्यासत्यप्रतिश्रवा ॥१२॥

माशुचःसुभ्रुभर्त्तातिमहाभागोभविष्यति ।

स्वरोचिर्नागपुत्रश्चमनुस्तस्यभविष्यति ॥१३

आज्ञांचनिधयःसर्वेकरिष्यंतितवाट्टताः ।

यथाभिलषितंवित्तंप्रदास्यन्तिचतेशुभे ॥१४

फिर मेरी माता मुझे इस हिंसक जन्तुओं से परिपूर्ण निर्जन वन में एकाकी पड़ी छोड़ कर चली गयी ॥८॥ तब एक महात्मा गन्धर्व ने मेरा पालन किया, वहाँ शुक्ल पक्ष में वृद्धि को प्राप्त होती हुई शशिकला से परिपुष्ट होती हुई मैं बढ़ने लगी, परन्तु कृष्ण पक्ष में चन्द्रकला के क्षय होने पर भी मेरा क्षय न होता हुआ देखकर उस गन्धर्व ने मेरा नाम कलावती रखा ॥९-१०॥ कुछ काल के पश्चात् अलि नामक एक साक्षस मेरे पिता के पास आकर मुझे मँगने लगा और जब मेरे पिता ने उसकी याचना स्वीकार न की तो उसने रात्रि में शयन करते हुए मेरे पिता का बध कर दिया ॥११॥ मैं उस दुःख से संतप्त होकर आत्मघात को उद्यत हुई, तब भगवान् शिव की भार्या सती ने मुझे रोका ॥१२॥ उन्होंने कहा—तुम शोक को छोड़ दो, महाभग स्वरोचि तुम्हारे पति होंगे और उनका पुत्र मनु होगा ॥१३॥ सभी निधियाँ तुम्हारी आज्ञा का सदैव पालन करेंगी और तुम्हारे लिये इच्छित बन देंगी ॥१४॥

यस्यावत्सेप्रभावेणविद्यायास्तांगृहाणामे ।

पद्मिनीनामत्रिद्येयमहापद्मासिपूजिता ॥१५

इत्याहमादक्षसुतासतीसत्यपरायणा ।

स्वरोचिस्त्वध्रुवंदेवीनान्यथासावदिष्यति ॥१६

साहंप्राणप्रदायाद्यतांविद्यांस्वंतथावपुः ।

प्रयच्छामिप्रतीच्छत्वंप्रसादसुमुखोभव ॥१७

एवमस्त्वतितामाहसनुकन्यांकलावतीम् ।

विभार्याःकलावत्याःस्निग्घदृष्ट्यानुमोदितः ॥१८

जग्राहचततःपाणीसतयोरमरद्भुतिः ।

नमत्सुदेवतूर्येषुनृत्यन्तीस्वप्सरःसुच ॥१९

सत्य परायणा दक्ष सुता का वचन मिथ्या नहीं हो सकता, इसलिये आप अवश्य ही वह स्वरोचि हैं ॥१६॥ मैं आपको अपना शरीर, प्राण और विद्या समर्पित करती हूँ, आप प्रमदता पूर्वक ग्रहण करिये ॥१७॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इस पर स्वरोचि ने 'ऐसा ही हो' कहा और विभावरी एवं कलावती दोनों की अनुमति से ॥१८॥ स्वरोचि ने उस कन्या का भी पाणिग्रहण कर लिया, उस समय दिव्य वाद्य बजने लगे और अप्सरायें नाचने लगी ॥१९॥

५७—चक्रवाक और मृग का तिरस्कार

तत मताभि सहितःपत्नीभिरमरद्युति ।
 ररामतस्मिञ्छैलन्द्रेरभ्य कानननिर्झरे ॥१॥
 सर्वोपभोगरत्नानिमघूनिमधुराणिच ।
 निघय समुपाजग्म पद्मिन्यावशवर्तिनः ॥२॥
 सजोवस्थाप्यलङ्कारान्गन्धाढ्यमनुलेपनम् ।
 आसनान्यतिशुभ्राणिकाचनानियथेच्छया ॥३॥
 सौवर्णानिमहाभागवरकान्भाजनानिच ।
 तथाशय्याश्चविविधादिव्यैरास्तरणैर्गुप्ता ॥४॥
 एवसताभिःमहितोदिव्यगन्धाधिवासिते ।
 ररामस्वश्चिर्भाभिर्भासितेवरपर्वते ॥५॥
 ताश्चापिसहतेनेतिलेभिरेमुदमुत्तमाम् ।
 रममाणायथास्वर्गेतथातत्रशिलोच्चये ॥६॥
 यलहसीजगादेवाचक्रवाकीजलेमतीम् ।
 तस्यतामाचललितेसम्बन्धेचस्पृहावती ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—फिर अमर दीप्ति वाले स्वरोचि अपनी तीनो पतियों के साथ मलयचल के उस सुरम्य वन एवं निर्झर स्थानों में बिहार करने लगे ॥१॥ पवित्री विद्या के वश में हुई निघियाँ उपभोगार्थ नाना प्रकार

के रत्न एवं मधुर मद्य ॥२॥ माला, वस्त्राभूषण, सुगन्धित लेप, आसन, चाँदी एवं स्वर्ण ॥३॥ तथा स्वर्ण के विभिन्न पात्र, दिव्य विछोनों से युक्त शय्या एवं अन्य द्रव्य उन्हें प्रदान करने लगीं ॥४॥ इस प्रकार वह स्वरोचि दिव्य गंधादि से सुवासित और रत्नादि से सुशोभित पर्वतीय प्रदेश में तीनों पत्नियों के साथ विहार-रत हुए ॥५॥ उस स्वर्ग तुल्य रमणीक श्रेष्ठ पर्वत में विहार करती हुई तीनों भार्या भी अत्यन्त सुखी हुईं ॥६॥ उस समय उनको इस प्रकार प्रणय युक्त विहार करते देखकर एक कलहंसी ने जल में स्थित अन्य चक्रवाकी के प्रति कहा ॥७॥

धन्योऽयमतिपुण्योऽयं योऽयं यौवनगोचरः ।

दयिताभिः सहैताभिर्भुङ्क्ते भोगानभीप्सितान् ॥८॥

सन्तियौवनिनः श्लाघ्यास्तत्पत्न्यो नातिशोभनाः ।

जगत्यामल्पकाः पत्न्यः पतयश्चातिशोभनाः ॥९॥

अभीष्टाकस्य चित्कान्ताकान्तः कस्याश्चिदीप्सितः ।

परस्परानुरागाढ्यं दाम्पत्यमतिदुर्लभम् ॥१०॥

धन्योऽयं दयिताभीष्टो ह्येताश्चास्यातिवल्लभाः ।

परस्परानुरागो हि धन्यानामेव जायते ॥११॥

एतन्निशम्य वचनं कलहंसी समीरितम् ।

उवाच चक्रवाकी तां नातिविस्मितमानसा ॥१२॥

नायं धन्यो यतो लज्जानान्यस्त्रीसन्निकर्षतः ।

अन्यांस्त्रियमयं भुङ्क्ते न सर्वास्वस्यमानसम् ॥१३॥

चित्तानुराग एकस्मिन्नधिष्ठानेयतः सखि ।

ततोतिप्रीतिमानेष भार्यासु भविता कथम् ॥१४॥

इन स्त्रियों के साथ समस्त इच्छित भोगों को भोगने वाला यह युवक ही धन्य है ॥८॥ संसार में रूप और यौवन से सम्पन्न ऐसे अनेक पुरुष हैं, जिनकी भार्या असुन्दर हैं, ऐसे दम्पति कोई विरले ही हैं, जो पति-पत्नी दोनों ही सौन्दर्य से शोभायमान हों ॥९॥ कोई पति अपनी पत्नी में और कोई पत्नी अपने पति में अनुगृह्य हैं, परन्तु समान आसक्ति वाले स्त्री-पुरुष कठिन्ता से ही

मित्रते हैं ॥१०॥ इसलिये अपनी पत्नियाँ के यह प्रियाम और इनकी प्रियतमा पत्नियाँ भी धन्य हैं, क्योंकि कृतकृत्य प्राणिया में ही परस्पर अनुराग की उत्पत्ति होती है ॥११॥ कलहंगी की वान से चक्रवाकी अधिक विस्मित नहीं हुई, उसने कहा ॥१२॥ यह स्वरोचि धन्य नहीं हो सकते क्योंकि एक स्त्री के सामने ही दूसरी से बिहार करते हैं, इसलिये इन्हें किंचित् भी नज्जा नहीं आती, मग पत्नियों के प्रति इनकी समान दृष्टि भी नहीं है ॥१३॥ जब वित्त का अनुराग एक ही में अवस्थान करता है, तब यह स्वरोचि सब पत्नियों में समान अनुराग कैसे रख सकते हैं ॥१४॥

एतानदयिता पर्युर्नैतामादयित पति ।

विनोदमायमेवतायथापरिजनोपर ॥१५॥

एतासाचयदीष्टोऽयत्तत्किंप्राणान्मुञ्चति ।

आलिङ्ग्यपरावान्तादयातोर्वैकान्तयान्यया । १६॥

विद्याप्रदानमूल्येनऋतीनोऽपसुभृत्यवत् ।

प्रवर्तन्तो न हि प्रेमसमवह्नीपुतिष्ठति ॥१७॥

कलहतिपतिर्धन्यो मम धन्याहमेव च ।

यस्यैकस्याचिरचित्तस्य दकं कत्रसंस्थितम् ॥१८॥

बहुपत्नीपतिर्लोक शरणापुण्यपापयोः ।

गृहादानामनार्थश्च भूपगुणश्च सहागमे ॥१९॥

विपर्मं त्रियमारोहिषु ज्यते महदेनसा ।

ज्येष्ठाकनीयभावेन कनिष्ठा ज्येष्ठतानयेत् ॥२०॥

गुरवे तु वरदत्वाहुत्वा न्यासमिधयथा ।

ऊढ्यासहकर्तव्या नित्यनैमित्तिकी क्रिया ॥२१॥

इनकी यह सब पत्नियाँ प्रियतमा नहीं हैं और न उन सबकी ही यह समान रूप से प्रिय हैं, जैसा वित्त को विनोद प्राप्त हो सके उसी विनोद की सामग्री यह पत्नियाँ भी हैं ॥१५॥ यदि यह सब में समान प्रीति वाले होने तो सबकी सब समय सन्तुष्ट करने में समर्थ होकर क्या इतने बाल पर्यन्त जीवित रह सकते थे, इनमें परस्पर का अनुराग और समान प्रेम बहो से हो सकता

है ? ॥१६॥ यह स्वर्गोच्च विद्या प्राप्ति के मूल्य में विक कर पत्नियों के समक्ष भृत्य के समान ही हैं, सभी पत्नियों में प्रेम का समान भाव से रहना सम्भव नहीं है ॥१७॥ हे सखी ! धन्य तो मैं हूँ और मेरे पति हैं, क्योंकि मैं ही उनकी एकमात्र भार्या हूँ, उनके चित्त का अनुराग मेरे ही प्रति है और मैं भी उन्हीं में अनुरक्त हूँ ॥१८॥ अनेक भार्याओं का पति पुण्य और पाप का कारण है, गृह निवासिनी के शब्दायमान आभूषणों से और विपम शास्त्रों के द्वारा हुए निश्चय से ॥१९॥ युक्त मनुष्य विपमता के कारण महापापी होता है, तथा बड़ी को छोटी और छोटी को बड़ी मानने से ॥२०॥ तथा गुरु को दक्षिणा के रूप में घर देकर समिधाओं के द्वारा हवन करने जैसा है, विवाहिता पत्नी के सहित निश्चय नैमित्तिक कर्मों को करे ॥२१॥

जगादाथान्यभावेनपापीयाञ्जायतेनरः ।

सर्वसत्वरुतज्ञोऽसौस्वरोच्चिरपराजितः ॥२२॥

निशम्यलंजितोदध्यौसत्यमेवहिनानृतम् ।

सतोवर्षशतेयातेरममाणोमहागिरी ।

एममाणःसमन्ताभिर्ददर्शपुरतोमृगम् ॥२३॥

सुस्निग्धपीनावयवंमृगीयूथविहारिणम् ।

वासिताभिःस्वरूपाभिर्मृगीभिःपरिवारितम् ॥२४॥

आकृष्टघ्राणपुटकाजिघ्रन्तीस्तास्ततोमृगीः ।

उवाचसमृगोऽलंबोलज्जात्यायेनगम्यताम् ॥२५॥

नाहंस्वरोचिस्तच्छीलोनचैवाहंसुलोचनाः ।

निर्लज्जावहवःसन्तितादृशास्तत्रगच्छत ॥२६॥

एकात्वेनैकानुगताथथाहासास्पदंजने ।

अनेकाभिस्तथैवैकोभोगदृष्टयानिरीक्षितः ॥२७॥

तस्यधर्मक्रियाहानिरहत्यहनिजायते ।

सक्तोऽन्यभार्ययाचान्यकामासक्तःसदैवसः ॥२८॥

यस्तादृशोज्यस्तच्छीलःपरलोकपराङ्मुखः ।

तंकामयतमद्रवोनाहंतुल्यःस्वरोचिषा ॥२९॥

अन्य प्रकार में करने वाला पापी कहा जाता है, मार्कण्डेयजी ने कहा—
मम जीवो वी धार्ता को समझने वाले पराजय-रहित स्वरोचि ॥२२॥ उसी
घात सुनकर लज्जित हुए और विचारने लगे कि इमका वचन सत्य है, इममें
अनृत कुछ भी नहीं है, फिर भी उस महाचल में पत्नियों के संग विहार करते
हुए उन्हें सौ वर्ष व्यतीत होगये, तदनन्तर एक दिन अत्र पत्नियों के साथ
विहार रत थे तभी उन्होंने सामने स्थित ॥२३॥ एक स्थूलकाय, सर्वाङ्ग पुष्ट
मृगी-मूष के साथ विहार करने वाले एक मृग को देखा, वह चारों से अपनी
समान आयु वाली मृगियों से घिरा हुआ था ॥२४॥ तत्र नासिका निकोड कर
मृग के शरीर को मूँपनी हुई मृगिया को देखकर मृग ने उनसे कहा—अरी
मृगियो ! तुमन नज्जा छोड़ दी है, इमलिये अत्र घोर कही जायो ॥२५॥ हे
मुन्वर नयन धालियो ! मैं स्वरोचि नहीं हूँ और न मेरा स्वभाव ही उनके जैसा
है, उनके समान अनेक नज्जाहीन पुरुष मिल सकते हैं, तुम उन्हीं के पास जाओ
जोम एक स्त्री अनेक पुरुषों की अनुगामिनी होने पर समाज में हैमी के योग्य
होती है, वैसे ही अनेक स्त्रियों से विहार करने वाला पुंष भी हास्यास्पद होता
है ॥२७॥ उसकी नित्यक्रिया नष्ट हो जाती है, वह पत्नी के साथ रहकर भी
अन्य स्त्रियों की सदा इच्छा करता रहता है ॥२८॥ इमलिये परलोक से विमुख
स्वभाव वाले स्वरोचि जोमा कोई अन्य पुरुष हो तुम उमी के पास जाओ, मैं
वैमा नहीं हूँ ॥२९॥

५८-स्मारोचि मनु की उत्पत्ति

एयनिगस्यमानास्ता हरिणोनमृगाङ्गना ।
श्रुत्वास्वरुचिरात्मानमेनेमपतितयथा ॥१॥
त्यागेचकारचमन सतामामुनिसत्तम ।
चक्रवाकीमृगप्रोक्तो मृगचर्याजुगुप्सित ॥२॥
समेत्यताभिर्भूयश्चवद्धं मानमनोभव ।
प्राक्षितनिर्वेदस्थोरेमेवर्षशतानिपट् ॥३॥

किन्तु धर्माविरोधेन कुर्वन् धर्माश्रिताः क्रियाः ।
 भुङ्क्ते स्वरोचिर्विषयान्सहताभिरुदारधीः ॥४॥
 ततश्च जजिरे तस्य त्रयः पुत्राः स्वरोचिषः ।
 विजयो मेरुनन्दश्च प्रभावश्च महाबलः ॥५॥
 मनोरमा च विजयं प्रासूते न्दीवरात्मजा ।
 विभावरी मेरुनन्दं प्रभावं च कलावती ॥६॥
 पद्मिनी नाम या विद्या सर्वभोगोपपादिका ।
 सतेषां तत्प्रभावेण पिता च क्रेपुर्नयम् ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—इस प्रकार उस मृग के द्वारा वे हरिणियाँ निराश हुईं और इस वार्ता को सुनकर स्वरोचि ने स्वयं को पतित समझा । १। हे मुनिवर ! चक्रवाकी और मृग द्वारा ऐसी निन्दा को पाकर तथा मृग के आचरण को देखकर अपने को निन्दित समझा और पत्नियों को त्यागने का विचार किया ॥२॥ परन्तु पत्नियों से मिलते ही पुनः काम की प्रवृत्ति के सबल होने से उनका विरक्त भाव नष्ट हो गया और इसके पश्चात् उन्होंने छः सौ वर्ष तक पत्नियों के साथ विहार किया ॥३॥ परन्तु जब वे विषय-रत होते तब वे अपने धर्म-मार्गानुसार सभी क्रिया यथा विधि सम्पन्न करते थे ॥४॥ फिर उनके विजय, मेरुनन्द और प्रभाव नाम तीन अत्यन्त बलवान् पुत्र उत्पन्न हुए ॥५॥ इन्दीवर की पुत्री मनोरमा से विजय, विभावरी से मेरुनन्द और कलावती से प्रभाव की उत्पत्ति हुई थी ॥६॥ सर्व भोगों का सम्पादन करने वाली पद्मिनी विद्या के प्रभाव से स्वरोचि ने तीन पुरों की रचना की ॥७॥

प्राच्यां तु विजयं नाम कामरूपेण गोत्तमे ।
 विजयाय सुताया दौ सददौ पुरमुत्तमम् ॥८॥
 उदीच्यां मेरुनन्दस्य पुरीं नन्दवतीमिति ।
 ख्यातां च कारप्रतुङ्गवप्रप्राकारमालिनीम् ॥९॥
 कलावतीसुतस्यापि प्रभावस्य निवेशितम् ।
 पुरं तालमिति ख्यातं दक्षिणापथमाश्रितम् ॥१०॥

एवनिवेश्यपुत्रान्सपुरेपुपुरपपंभः ।
 रेमेनाभि समविप्रमनाज्ञास्वद्विभूमिषु ॥११॥
 एकदातुगतोऽरण्येविहरन्सधनुर्द्धर ।
 चरपंधनुरालोक्यवराहमतिदूरगम् ॥१२॥
 अथाहवाचिदम्येत्यततदाहरिणागता ।
 मध्यवपात्यतात्राण प्रसीदेतिपुन पुन ॥१३॥
 किमनेनहतनाद्यमामाशुविनिपातय ।
 त्वयानिपातितोवाणोदु स्यान्मामोक्षयिष्यति ॥१४॥

पूर्व दिशा में कामरूप पर्वत पर विजय नामक पुर बनाकर विजय को ॥८॥ उत्तर दिशा में अयन ऊँची प्राचीगे घाला नन्दवती नामक पुर मेरु-
 नन्द को दिया ॥९॥ और दक्षिण में ताल नामक पुर बनाकर प्रभाव को प्रदान
 किया ॥१०॥ इस प्रकार पुरुष श्रेष्ठ स्वरोचि ने तीनो पुत्रो उन तीनो पुरो में
 बना कर पत्निया महिष अत्यन्त मुग्ध प्रदेष्ट म विहार किया ॥११॥ एक
 दिन धनुष ग्रहण करके विहार करत हुए बहुत दूर पर उन्हाने एक वाराह को
 देखकर शर मगान किया ॥१२॥ तभी एक हरिणी वहाँ आई और वह बारबार
 प्रार्थना करने लगी—‘मुझ पर प्रसन्न होकर इस शाला को मुझ पर बलाघो
 ॥१३॥ इस वाराह का वध किया जाना व्यर्थ होगा, इसलिये आप मुझ पर
 अपना बाण बला कर मुझे दुःख में डुबाइये ॥१४॥

ननेशरीरमरुजमस्माभिरुपलक्ष्यते ।
 किन्नुतत्कारणयनत्वप्रागान्हातुमिच्छसि ॥१५॥
 अन्यास्वासक्तहृदयेयस्मिश्चेत वृतास्पदम् ।
 ममतेनविनामृत्युरोपधकिमिहापरम् ॥१६॥
 वस्त्वानाभिलपेद्धीरुसानुरागासिकुत्रवा ।
 यदप्राप्नोनिजान्प्राणान्परित्यक्तु व्यवस्यसि ॥१७॥
 त्वामेवेच्छामिमद्र तेत्वयामेऽपहृतमन ।
 वृणोम्यहमतोमृत्यु मयिवाणोनिपात्यताम् ॥१८॥

त्वंमृगीचंचलापांगीनरूपधरावयम् ।
 कथंत्वयासंमयोगोमद्विघस्यभविष्यति ॥१६॥
 यदिसापेक्षितंचित्तंमयितेमांपरिष्वज ।
 यदिवासाधुचित्तंतेकरिष्यामियथेप्सितम् ॥२०॥
 एतावताहंभवताभविष्याम्यतिमानिता ।
 आलिङ्गिततस्तांसस्वरोचिर्हरिणांगनाम् ॥२१॥

स्वरोचि बोले—तेरा देह किसी प्रकार भी रोग ग्रस्त प्रतीत नहीं होता फिर तू क्यों अपना देह त्यागना चाहती है ? ॥१५॥ मृगी ने कहा—मेरा चित्त उसके प्रति आकर्षित है, जिसका चित्त किसी अन्य नागि में अनुरक्त हुआ है, इस लिये उसे प्राप्त न करने रूप रोग की एक मात्र औषधि आपके बाण से प्राण त्याग करना ही है ॥१६॥ स्वरोचि बोले—मुझे कौन नहीं चाहता ? तू किस के प्रति असक्ति वाली हुई है ? जिसके प्राप्त न होने से तू प्राण त्याग करने को दृढ़ निश्चय है ॥१७॥ मृगी ने कहा—आपने मेरा चित्त चुरा लिया है मैं आपकी ही अभिभाषा करती हूँ, इसी लिये प्राण त्याग के लिये तत्पर हुई हूँ, आप क्षीघ्र ही मुझ पर बाण चलाइये ॥१८॥ स्वरोचि बोले—तू चपल अङ्ग वाली मृगी है और मैं मनुष्य शरीर में हूँ, इस लिये मेरा तुम्हारा संग किस प्रकार संभव है ? ॥१९॥ मृगी ने कहा—यदि मेरे प्रति आपके चित्त में भी अनुराग है तो मुझे आलिङ्गन प्रदान करिये यदि आप साधु चित्त वाले हैं तो मैं आपके इच्छित कार्य को सम्पादित करूँगी ॥२०॥ इस प्रकार मैं आपके द्वारा अत्यन्त सम्मान को प्राप्त होगी, मार्कण्डेयजी ने कहा—यह सुन कर स्वरोचि ने उस मृगी का आलिङ्गन किया ॥२१॥

तेनचालिङ्गितासद्यःसामूहिव्यवपुर्धरा ।
 ततःसविस्मयाविष्टःकात्वमित्यम्यभाषत ॥२२॥
 साचास्मैकथयामासप्रेमलज्जाजडाक्षरम् ।
 अहमभ्यर्थितादेवैःकाननस्यास्यदेवता ॥२३॥
 उत्पादनीयोहिमनुस्त्वयामयिमहामते ।
 प्रीतिमत्यांमयिसुतंभूलोकपरिपालकम् ॥२४॥

तमुत्पादयदेवानात्पामहं प्रचणाद्वदे ।

ततः सतस्यातनयसर्वलक्षणलक्षितम् ॥२५॥

तेजस्विनमिवात्मानं जनयामास तत्क्षणात् ।

जातमात्रस्य तस्याथ देववाद्यानि सस्वनुः ।

जगुर्गन्धर्वपतयोननृतुश्चाप्सरोगणा ॥२६॥

सिपिचु शीकरं रमेष्वाश्रयश्च तपोधना ॥२७॥

देवाश्च पुष्पवर्षचमुमुचश्च समन्ततः ।

तस्य तेजः भमालोक्य नाम चक्रं पिता स्वयम् ॥२८॥

द्युतिमानिति येनास्य तेजसा भासिता दिशः ।

सवालोक्य द्युतिमाप्तामहाबलपराक्रम ॥२९॥

उनका आलिगन प्राप्त करते ही वह मृगी उमी समय दिव्य शरीर धारण करके एक सुन्दर भारी हो गई, इस पर स्वरोचि ने अत्यन्त विस्मय पूर्वक उससे कहा 'तुम वीर हो ?' ॥२२॥ तब उस मृगी ने लज्जा और प्रेम से गद्गद हो कर कहा कि मैं इस वन की अधिष्ठात्री देवी हूँ और देवताओं में प्राणित हो कर तुम्हारे निकट आई हूँ ॥२३॥ हे महामते ? मैं तुम पर अनुरक्त हुई हूँ मुझ में तो मनु को उत्पन्न करना तुम्हारे लिये कर्त्तव्य है, इस लिये उस भूतों के परिपालन पुत्र को मुझ में उत्पन्न करिये ॥२४॥ यह बात मीने देवताओं के वचन के अनुसार ही कही है, मार्कण्डेयजी ने कहा—फिर स्वरोचि ने उस वन देवी के शरीर से अपने ही समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न किया, उसके उत्पन्न होने ही सम्पूर्ण वायु बजने लगे, गन्धर्वपति गायन करने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगी ॥२५-२६॥ दिशाओं से हाथी जल सींचने लगे और तपोधन श्रुति ॥२७॥ तथा देवता सब और पुष्प बरसाने लगे, उस बालक के तेज सभी दिशाएँ प्रकाशित हो उठी, ऐसी अगदीप्ति देख कर स्वरोचि ने पुत्र का ॥२८॥ नाम द्युतिमान् रखा, यह बालक अत्यन्त बली और दृढ ॥२९॥

स्वरोचिः सुतोयस्मात्तस्मात्स्वारोचिपोऽभवत् ।

सचापिविचरयम्येव दाक्षिदिग्गिरिनिर्गरे ॥३०॥

स्वरोचिर्ददृशेहंसंनिजपत्नीसमन्वितम् ।

उवाचसतदाहंसीताभिलाषांपुनःपुनः ॥३१

उपसह्रियतामात्माचिरंतेकीडितंमया ।

किंसर्वकालंभोगैस्तेआसन्नंचरमंवयः ॥३२

परित्यागस्यकालोमेतवचापिजलेचरि ।

अकालःकोहिभोगानांसर्वभोगात्मकजगत् ॥३३

यज्ञाःक्रियन्तेभोगार्थंब्राह्मणैःसंयतात्मभिः ।

दृष्टादृष्टास्तथाभोगान्वाञ्छमानाविवेकिनः ॥३४

दानानिचप्रयच्छन्तिपूतान्धर्माश्चकुर्वते ।

सत्त्वंनेच्छसिंकिंभोगान्भोगश्चैफलनृणाम् ॥३५

स्वरोचि का पुत्र होने के कारण उसे स्वरोचिष भी कहा जाने लगा, फिर किसी एक समय सुरम्भ पर्वत और निर्भर में भ्रमण करते हुए ॥३०॥ उन स्वरोचि ने अपनी भार्या के सहित एक हंस को देखा, वह काम्या हँसी से कह रहा था ॥३१॥ हे हंसी ! अपने मन को अब निवृत्त कर, मैंने तेरे साथ बहुत समय तक विहार किया है, अब सदैव ही भोग-रत रहने से क्या लाभ है, क्यों कि वृद्धावस्था आ गई है ॥३२॥ यह हमारे द्वारा विषय भोगों के त्यागे जाने का समय उपस्थित है, इस पर हंसी ने कहा—भोग का समय—असमय क्या है, देखो यह सम्पूर्ण विश्व भोगमय ही है ॥३३॥ क्यों कि संयतात्मा ब्राह्मण भोग की इच्छा से ही यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं तथा ज्ञानीजन भी दृष्ट-अदृष्ट भोगों की अभिलाषा करते हुए ॥३४॥ दान और पुण्य के धर्म में लगे रहते हैं, जब ऐसे व्यक्तियों का भी कर्म फल भोग ही है तो तिर्यक् योनि वालों के विषय में कहा ही क्या जाय ? ॥३५॥

विवेकिनांतिरश्चांचकिंपुनःसंयतात्मनाम् ।

भोगेष्वासक्तचित्तानांपरमार्थान्वितामतिः ।

भविष्यतिकदासंगमुपेतानांचवन्धुषु ॥३६

पुत्रमित्रकलत्रेषुसक्ताःसीदन्तिजन्तवः ।

सरःपङ्कगणैर्वेमग्नाजीर्णविनगजाइव ॥३७

निनपश्यमिनाभद्रेजातसङ्गम्वरोचिपम् ।
 आवाल्यात्काममसक्त मग्नसाहाम्बुवर्दमे ॥३८॥
 योवनऽनात्रभायामुमाम्पतपुत्रनप्तृषु ।
 स्वराचिपोमनोमग्नमुद्गारप्राप्यतकुत ॥३९॥
 नाहस्त्रराचिपतुल्य स्त्रीवम्योवाजलेचरि ।
 त्रिवक्त्राश्चभागानानिवृत्तोऽस्मिचनम्प्रतम् ॥४०॥
 स्त्रराचिरनदाकण्यजाताह ग त्वगेरितम् ।
 आदायभार्यास्तपमययावन्यत्तपोवनम् ॥४१॥
 तदतप्त्वातपाधारसहताभिरदारधी ।
 जगामनावानमनात्रिवृत्तास्त्रिनकल्मष ॥४२॥

इस विषय तुम उस भाग को क्या नहीं चाहते ? हम जाना—भोगों में
 जितना चित्त वृत्ति नहीं उनही मनि परमात्मा की अनुगामिनी है बंधिवा क
 समग वात मनुष्य की बुद्धि क्या कभी इस प्रकार की हो सकती है ? ॥३९॥
 पुत्र मित्र और वस्त्र में आसक्ति वादे जीव सरोवर के पत्र में कम हुए जगती
 हाथा क गमान गया इ गिन रहन है ॥४०॥ ह भद्रे ! क्या तुमने बाराबाबसा
 ग कामागक एव स्नेह पत्र में पत्र हुए स्वराचि को नहीं देखा है ? ॥४१॥
 योवनवना पनिया पुत्रा और पीत्रा में दूज हुए उस स्वरोचि का मन त्रिग प्रकार
 उद्गार को प्राप्त हो सकना ? ॥४२॥ उस स्वराचि के समान मैं मिया के
 अपान नहीं हूँ और अब भाग्य का परित्याग करता हूँ ॥४३॥ माकण्डेयजी
 ने कहा—हम के यह बचन सुन कर स्वरोचि अपनी तीनों पत्नियाँ को साथ
 लेकर तप करना न उद्देश्य में तपोवन का प्राप्त हुए ॥४४॥ वहाँ उन्होंने पत्नियाँ
 के महिम्न धार तप किया और सभी पापा से मुक्त हो कर मन रहित नाश
 का गये ॥४५॥

५६—स्वारोचिष मन्वन्तर कथन

ततःस्वारोचिषं नाम्नाद्युत्तिमन्तंप्रजापतिम् ।
 मनुं चकार भगवांस्तस्य मन्वन्तरं शृणु ॥१॥
 तत्रान्तरे तु ये देवा मुनयस्तत्सुताश्च ये ।
 भूपालाः क्रौष्टुके ये तान्गतस्त्वं निशामय ॥२॥
 देवाः पारावतास्तत्र तथैव तुषिता द्विज ।
 स्वारोचिषेऽन्तरे चेन्द्रो विपश्चिदिति विश्रुतः ॥३॥
 ऊर्जस्तम्बस्तथा प्राणो दत्तो लिङ्ग ऋषभस्तथा ।
 निश्चरश्चार्बवीराश्च तत्र सप्तर्षयोऽभवन् ॥४॥
 चैत्रकिं पुरुषाद्यश्च सुतास्तस्य महात्मनः ।
 सप्तासन्सुमहावीर्याः पृथिवीपरिपालकाः ॥५॥
 तस्य मन्वन्तरं यावत्तावत्तद्वंशविस्तरे ।
 भक्त्येयमवनिः सर्वा द्वितीयं वतदन्तरम् ॥६॥
 स्वारोचिषस्तु चरितं जन्म स्वारोचिषस्य च ।
 निशम्य मुच्यते पापैः श्रद्धधानो हि मानवः ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—इसके पश्चात् भगवान् ने स्वारोचिष अर्थात्
 द्युत्तिमान् नामक प्रजापति को मनु बनाया अब उनके मन्वन्तर का वर्णन सुनो
 ॥१॥ हे क्रौष्टुके ! उस स्वारोचिष मन्वन्तर में जो देवता, मुनि, मनु पुत्र राजा
 आदि हुए, उनके विषय में कहता हूँ, उसे सुनो ॥२॥ हे द्विज ! उस स्वारोचिष
 मन्वन्तर में देवताओं को पारावत और तुषित तथा इन्द्र को विपश्चित् कहा
 जाता था ॥३॥ ऊर्ज, स्तम्ब, प्राण, दत्तोलि, ऋषभ, निश्चर और अर्बवी
 नामक यह सप्तर्षि थे ॥४॥ उन स्वारोचिष मनु के चैत्र और किम्पुरुष आदि
 नाम वाले सात पुत्र पराक्रमी एवं पृथिवी का पालन करने वाले थे ॥५॥ उन
 का मन्वन्तर जितने दिन का था, तब तक उनके वंशधरों ने पृथिवी का भार
 भोगा, मन्वन्तरों में स्वारोचिष मन्वन्तर द्वितीय है ॥६॥ स्वारोचिष का चरित्र

घोर स्वाराविष मनु की उत्पत्ति की जो कोई धृष्टा पूर्ववत् ध्वज वरता है,
वह पापों में मुक्त होता है ॥७॥

६०-निधि-निर्णय

भगवन्प्रथितमयंविस्तरेणत्वयामम ।
स्वराधिपस्तुचिन्तितजन्मस्वारोचिपस्यतु ॥१॥
यातुमापद्मिनीनामविद्याभोगोपपादिका ।
तस्मैश्रयायेनिधयस्तान्मेविस्तरतोवद ॥२॥
अष्टादशनिधयस्तैषाम्बन्धुद्वयसंस्थिति ।
भवताभिहितमम्यवद्भानुमिच्छाम्यहगुरो ॥३॥
पद्मिनीनामयाविद्यालक्ष्मीस्तस्याश्रदेवता ।
तदाधाराश्चनिधयस्तमेनिगवत शृणु ॥४॥
तत्रपद्ममहापद्मीनथामकरवच्छ्रयी ।
मृष्टुन्दोनन्दश्चैवनील गङ्गोऽष्टमानिधि ॥५॥
मत्पामृद्धोभयत्येवमिह्निस्तवाहिजायते ।
एतेह्यष्टौममाग्यातानिधयस्तवकौटुबे ॥६॥
देवताताम्रगादेनमाधुममेवनेनच ।
एभिरानोविनवित्त मानुषस्यमदागुने ॥७॥

श्रीकृष्ण बोले—१ भगवन् ! आपन स्वर्गोक्ति का चर्चित घोर स्वार्गे-
विष मनु की उत्पत्ति का वर्णन विस्तार पूर्वक सुनने किया है ॥१॥ परन्तु
मैं भोगों का सम्पादन करने वाली पद्मिनी विद्या की छात्रा निधियों का
बर्णन भी विस्तार सहित करिये ॥२॥ २ भूयो ! अष्ट निधियों का स्वरूप और
द्वय में शयित की भी सम्बन्ध प्रकाश में लाये मुझ से सुनने की इच्छा है ॥३॥
मार्कण्डेयजी ने कहा—पद्मिनी विद्या की छात्रात्री लक्ष्मीजी हैं, यह विद्या
अष्ट निधियों की प्रापण स्वर्गिणी है, इसने विषय में कहा है, तुम ध्वज

करो ॥४॥ पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुन्द, नन्दक, नील और शङ्ख यह आठों निधि उस विद्या की आश्रिता हैं ॥५॥ समृद्धि होने से ही इन निधियों की सिद्धि प्राप्त होती है, हे क्रीष्णके ! तुम्हें यह आठ प्रकार की निधियाँ बताई गई हैं ॥६॥ हे मुने ! देव प्रसाद और साधु सेवा के फल से मनुष्य का वित्त इन निधियों के द्वारा सदैव आलोकित होता है ॥७॥

यादृक्स्वरूपं भवति तन्मे निगदतः शृणु ।

पद्मो नाम निधिः पूर्वस्य स्य भवति द्विज ॥८॥

स तस्य तत्सुतानां च तत्पौत्राणां च नित्यशः ।

दाक्षिण्यसारः पुरुषस्तेन चाधिष्ठितो भवेत् ॥९॥

सत्त्वाधारो महाभागो यतोऽसौ सात्त्विको निधिः ।

सुवर्णं रूप्यताम्रादि धातूनां च परिग्रहम् ॥१०॥

करोत्यतितरांसोऽथ तेषां च क्रयविक्रयम् ।

करोति च तथा यज्ञान् दक्षिणां च प्रयच्छति ॥११॥

(संपादयति कामांश्च सर्वानेव यथाक्रमम् ॥)

स भां देव निकेतांश्च सकारयति तन्मनाः ।

सत्त्वाधारो निधिश्चान्यो महापद्म इति श्रुतः ॥१२॥

स त्वप्रधानो भवति तेन चाधिष्ठितो नरः ।

करोति पद्मरागादिरत्नानां च परिग्रहम् ॥१३॥

मौक्तिकानां प्रवालानां तेषां च क्रयविक्रयान् ।

ददाति योगशीलैश्च तेषामावसथांस्तथा ॥१४॥

स कारयति तच्छीलः स्वयमेव च जायते ।

तत्प्रसूतास्तथाशीलाः पुत्रपौत्रक्रमेण च ॥१५॥

इनका जो स्वरूप है, वह बताता हूँ—पद्म नामक निधि सदा ही मय दानव के पास थी ॥८॥ फिर उसके पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र के पास रही, इस निधि के अधिष्ठान से पुरुष चातुर्य एवं ॥९॥ सत्त्वगुण से सम्पन्न और अत्यन्त भोगवान् होता है, क्योंकि यह निधि सत्त्वगुण से युक्त है, इस निधि से सम्पन्न पुरुष सुवर्ण, रजत, ताम्रादि सब धातुओं का परिग्रह ॥१०॥ तथा क्रय-विक्रय

करता है तथा बटून में विष्णु दक्षिणा वाले यज्ञों का अनुष्ठान करता है ॥११॥
 (क्रम पूर्वक गव्य अभिनाषाग्नौ को पूर्ण करन में समर्थ होता है) तथा एकाग्र
 चित्त में मन्त्राभ्यसन और देव मन्दिर निर्मित कराता है, महापद्म नामक निधि
 सत्पादार के नाम से विख्यात है ॥१२॥ उसने अग्निष्ठित मनुष्य भी सतीभूत
 प्रदान होता है तथा पद्मराम आदि ग्लो को सचिन करने वाला होता है
 ॥१३॥ और मुक्ता आदि का हय-द्विहय करता है एवं योगियों को उनका
 स्थान देता ॥१४॥ तथा नाधारण व्यक्तियों को योगाभ्यास के लिए उत्साहित
 करता है और स्वयं भी योग में तत्पर रहता है, उसके पुत्र, वीणादि वद्यपर
 भी तभी के समान होते हैं ॥१५॥

पूर्वद्विमात्र सप्तासोपुरुषाश्चनमुचति ।
 तामसोमवरोनामनिधिस्तेननावलोकिता ॥१६॥
 पृथपोऽन्यतम प्राय मुत्तिलोऽपिहिजायते ।
 शरणं नृष्टिस्त्रनुषाचमंराजपरिग्रहम् ॥१७॥
 दशनानाचपुरनेयोतिमंश्रीचराजभिः ।
 ददानिशीर्षं नृत्तीनाभूमृजायेचनत्प्रिया ॥१८॥
 ऋषयिभ्यश्चैवरात्रागानान्यत्रग्रीनिमेतिच ।
 एवम्येवमवत्येपनग्न्यनमुनानुग ॥१९॥
 द्रव्यार्थदम्युतानाशमग्राभेवापिमत्रजेत् ।
 वच्छपश्चनिधिर्योऽग्नीनरस्ननाभिवोक्षित ॥२०॥
 तमप्रधानाभरनियनोऽग्नीनामसोनिधि ।
 ध्यवहारानेपास्तुपुण्यजाते वरोनिच ॥२१॥
 वमंस्थानश्रिनाद्वचनमिदमिति वस्यचिन् ।
 ममस्तानियथाह्वानितसहृत्त्येववच्छप ॥२२॥

यह महारथ नामक निधि पूर्व के अग्नेया उत्तरोत्तर आधी आधी
 तति में घटनी हुई गता केद्विधो तत्र रहती है तथा त्रिो मन्त्र नाम की तमोगुणी
 तिति है, उन्नत अधिष्ठित पुण्य ॥१६॥ तमोगुण प्रपात और वीणादि वद्यपर
 यह पद्म-नाथ, मन्त्र, वाद्य तथा धामुषा के धारण करने वाला होता है

॥१७॥ भोज्य पदार्थ का स्वाद ग्रहण करने में समर्थ होता है, राजाओं के साथ सख्यभाव स्थापित करता है तथा शौर्य वृत्ति वाले वीरों को दान देकर संतुष्ट होता है ॥१८॥ शस्त्रों का क्रय-विक्रय किये बिना वृष्ट नहीं होता परन्तु धनके लोभ से तस्करों द्वारा अथवा रणक्षेत्र में मृत्यु को प्राप्त होता है, यह निधि एक पीढ़ी तक ही रहती है, फिर नहीं रहती, इसे तामसी कहा गया है, इसकी दृष्टि जिस पर पड़ती है ॥१९-२०॥ वह पुरुष तमोगुण प्रधान, पुण्यमय एवं आचार व्यवहार तथा कर्म के बल में होकर सब भोगों को भोगता हुआ, किसी पर विश्वास नहीं करता और जैसे कछुआ अपने अङ्गों को समेट कर छिपा लेता है ॥२१-२२॥

तथाविष्टम्यरत्नानितिष्ठत्याकुलमानसः ।

नददातिनधाभुङ्क्तेतद्विनाशभयाकुलः ॥२३॥

निधानमुर्व्याकुस्तेनिधिःसोप्येकपूरुषः ।

रजोगुणमयश्चान्योमुकुन्दोनामयोनिधिः ॥२४॥

नरोऽवलोकितस्तेनतद्गुणोभवतिद्विज ।

वीणावेरुमुदङ्गानामातोद्यस्थपरिग्रहम् ॥२५॥

करोतिगायतांवित्तंतृत्यतांचप्रयच्छति ।

वन्दिमागधमूतानांविटानांलास्यपाठिताम् ॥२६॥

ददात्यहर्निशंभोगान्भुङ्क्तेतैश्चसमद्विज ।

कुलटासुरतिश्चास्यभवत्यन्यैश्चतद्विधैः ॥२७॥

प्रयातिसंगनेकंचयंनिधिर्भजतेनरम् ।

रजस्तमोमयश्चान्योतन्दोनाममहानितिधिः ॥२८॥

वैसे ही अपने अग्निप्राय को गुप्त रखता और वित्त को संयमित बनाता है तथा नष्ट होने के भय से धन का उपभोग स्वयं नहीं करता और न किसी दूसरे को ही प्रदान करता है ॥२३॥ यह निधि पृथिवी में एक पीढ़ी तक रहती है और मुकुन्द नाम की जो अन्य रजोगुणी निधि है ॥२४॥ उसकी दृष्टि जिस मनुष्य पर पड़ती है, वह रजोगुणी होता है तथा उससे अवलंबित मनुष्य वीणा, वेरु मृदङ्ग आदि आतोद्य वाद्यों का संग्रह करता है ॥२५॥ गायकों

और नर्तकों को बहुत धन देने वाला, बन्दी, मूक, भाग्य, बिट और लास्यपाठी मृत्प-गाल की विशेषता वालों को ॥२६॥ दिन रात्रि इच्छित भोग देता है तथा उनके साथ भोजन करता है, इसकी प्रीति अपने समान एवं पुनर्जात मनुष्यों में रहती है ॥२७॥ यह नित्य जिने चाहती है, उसी की अनुयायिनी रहती है, उससे शरापरो के पाप नहीं रहती, नन्द नाम की निधि रजोगुण और तमोगुण दोनों में युक्त है ॥२८॥

उपेतिस्तम्ममधिकनरस्तेनावलोकितः ।

समस्तधातुरत्नानांपुष्पधान्यादिकस्यच ॥२९॥

परिग्रहकरोत्येवतथैवमयविक्रयम् ।

प्राधारस्वजनानाचमागताभ्यागतस्त्वच ॥३०॥

सहतेनापमानोक्तिस्त्वत्पामपिप्रहामुने ।

स्तूपमानश्चमहतीप्रीतिवघ्नातिथ्यन्धति ॥३१॥

ययमिच्छतिनैवाममृदुत्वमुपयातिच ।

वह्नीभाष्याभवन्त्यस्यसूतिमत्योऽतिशोभना ॥३२॥

भजतेसप्तवनराभिधिर्नन्दोऽनुवर्तते ।

प्रवर्द्धमानोऽप्यनरमष्टभागेनसत्तम ॥३३॥

दोषायुष्ट्वमवेषापुरुषाणाप्रयच्छति ।

यन्धूनामेवभरणयेधदूरादुपागता ॥३४॥

तेषाकरोतिर्वनन्दपरलोकेनवाहता ।

भवत्यस्मनचम्नेहमहवामिपुजामते ॥३५॥

इसकी दृष्टि त्रिम पर पड़ती है, प्रत्यन्त रतभित रहता है, इससे अपिष्टि मनुष्य सब धातु, रत्न, धान्य आदि पुण्य द्रव्यों का ॥२६॥ मग्न और क्रय-विक्रय करता है तथा वह स्वजनो, अनिषिद्यो और अभ्यागतो को आप्य दत्त होता है ॥३०॥ यह निरादर सहन नहीं करता और प्रसन्न मुनवर प्रसन्न होता है ॥३१॥ यावको की प्रमिताया के अनुसार वस्तुएँ प्रदान करता है तथा मृदु स्वभाव का होता है, उससे प्रत्यन्त मुन्दरी पुनवती अनेक परितर्षा प्रेम करती हैं ॥३२॥ यह निधि प्रमश अष्टभास होती

हुई सात पीढ़ी तक रहती है ॥३३॥ और जिसमें अधिष्ठित होती है, उसकी दीर्घ आयु करती है, वह मनुष्य बांधवों और आगत मनुष्यों का परिपालक होता है ॥३४॥ परन्तु यह परलोक के लिए कोई यत्न नहीं करता और न नगर निवासियों से ही प्रीति रखता है ॥३५॥

पूर्वमित्रेषु शैथिल्यं प्रीतिमर्थैः करोति च ।

तथैव सस्वरजसीयो विभर्तिसहानिधिः ॥३६॥

सनीलसंज्ञस्तत्संगीनरस्तच्छीलवान्मवेत् ।

वस्त्रकर्पासिधान्यादिफलपुष्पपरिग्रहम् ॥३७॥

मुक्ताविद्रुमशङ्खानां शुक्त्यादीनां तथा मुने ।

काष्ठादीनां करोत्येष यच्चान्यज्जलसम्भवम् ॥३८॥

क्रयविक्रयमन्येषां नान्यत्र रभिजायते ।

तडागान्पुष्करिण्याऽथ तथारामान् करोति च ॥३९॥

बन्धंच सरितां वृक्षां स्पथारोपयते नरः ।

अनुलेपनपुष्पादिभोगभुग्वाभिजायते ॥४०॥

त्रिपौरुषश्चापि निधिर्नीलो नामैष जायते ।

रजस्तमोमयश्चान्यः शङ्खसंज्ञो ह्यिदं निधिः ॥४१॥

तेनापि नीयते विप्रतद्गुणित्वं निधीश्वरः ।

एकस्यैव भवत्येष नरं नान्यमुपैति च ॥४२॥

पहिले मित्र से मैत्रि भाव में शिथिलता और नयों से प्रीति स्थापित करता है, इसी प्रकार जो सत्व और रजोगुण से युक्त महानिधि है ॥३६॥ वह नीलनिधि नाम वाली अपने अधिष्ठान रूप पुरुष को सतोगुण और रजोगुण से युक्त करती है, इसकी दृष्टि जिस पर पड़ती है, वह वस्त्र, कपास, धान्यादि अन्न, फल एवं पुष्प ॥३६॥ तथा मोती, मूँगा, खंख, सीपादि तथा जल में उत्पन्न अन्य वस्तुओं और काष्ठादि का संचय करता है ॥३८॥ और इन पदार्थों का स्वयं उपभोग करता हुआ, क्रय-विक्रय भी करता है, इसके अतिरिक्त अन्य किसी विषय में वह प्रीतिमान् नहीं होता ॥३९॥ वह मनुष्य तडाग, पोखर, उपवन, बनवाता, नदी पर पुल बँधवाता तथा वृक्षारोपण

करता है और अनुनेप और पुण्यादि का अनुनेप करता हुआ प्रमिद्धि की प्राप्ति होता है ॥४०॥ यह नील निधि तीन पीढ़ी तक स्थिति रखती है तथा शङ्ख नाम की निधि रजोगुण और तमोगुण के मिश्रण से युक्त है ॥४१॥ इसके अधिष्ठान से पुण्य उक्त दोनों गुणों में युक्त होता है, यह एक ही पुण्य की अनुगामिनी होती है, किसी अन्य पुरुष तथा अन्य पीढ़ी में स्थिति नहीं रहती ॥४२॥

यस्यशतौ निधिस्तस्य स्वहृत्कौटुके शृणु ।

एव वा तमनामृष्टमत्र भुङ्क्ते तथा म्वरम् ॥४३॥

वदन्त भुक् परिजनो न च शोभन वस्त्र धृक् ।

न वदाति सुहृद्भ्रातृभ्यां भ्रातृपुत्रान्नुपादिषु ॥४४॥

स्वपोषणपरगृह्णीनरो भवति सर्वदा ।

इत्येते निधय ह्यात्मानराणामयं देवता ॥४५॥

मिश्रावलोकनान्मिश्रास्वभावफलदायिन ।

यथाख्यातम्यभावस्तु भवत्येव विनोक्तात् ।

सर्वेषामाधिपत्ये च श्रीरेपाद्विजपचिनी ॥४६॥

हे कौटुके ! जो पुरुष धननिधि को अपने वश में कर लेता है, उसका रूप सुनो, वह स्वोपाजन श्रेष्ठ भक्षण का भोजन करता और सर्वोत्कृष्ट वस्त्र पहनता है ॥४३॥ परन्तु उसके कुटुम्बियों को निष्कण्ट भोजन वस्त्र उपलब्ध होते और जिसका जीवन कष्ट से स्थगित होता है और राष्ट्र निधि युक्त पुरुष अपने गृह, भ्राता, पत्नी, पुत्र आदि व भरण पोषण को भी कुछ नहीं देता ॥४४॥ केवल अपना ही भरण-पोषण करने में लगा रहता है, मनुष्य के वित्त की देवता कहकर यह निधि विख्यात है ॥४५॥ इसके देने से मनुष्य उपयुक्त स्वभाव वाला होता है, परन्तु यह निधियाँ मिलकर देह में समुद्रा पल के देने वाली हैं तथा स्वतंत्र रूप से देणों तो स्वस्व फलप्रद हैं । यह श्री स्वर्णिनी पचिनी विद्या उक्त अष्ट निधियों के आश्रय में अधिष्ठित हैं ॥४६॥

६१—अर्त्तर मन्वन्तर आरम्भ (३)

विस्तरात्कथितं ब्रह्मन्ममस्वारोचिषं त्वया ।
 मन्वन्तरं तथैवाष्टीये पृष्ठानि घयो मया ॥१॥
 स्वायम्भुवं पूर्वमेव मन्वन्तरमुदाहृतम् ।
 मन्वन्तरं तृतीयं मे कथयौत्तमसंज्ञितम् ॥२॥
 उत्तानपादपुत्रोऽभूदुत्तमो नामनामतः ।
 सुख्यास्तनयः ख्यातो मेहाबलपराक्रमः ॥३॥
 धर्मात्मा च महात्मा च पराक्रमधनो नृपः ।
 अतीत्य सर्वभूतानि बभौ भानुपराक्रमः ॥४॥
 समः शत्रौ च मित्रे च परे पुत्रे च धर्मवित् ।
 दुष्टे च यमवत्साधौ सोमवच्च महामुने ॥५॥
 बाभ्रव्यां बहुलां नाम उपये मे स धर्मवित् ।
 उत्तानपादतनयः शचीमिन्द्र इवोत्तमः ॥६॥
 तस्यामतीव तस्यासीद्दिजवर्यमनःसदा ।
 स्नेहवच्छशिनो यद्वद्रोहिण्यां निहितास्पदम् ॥७॥

कौण्डकि बोले—हे ब्रह्मन् ! स्वरोचिष मन्वन्तर का विषय आपने विस्तर पूर्वक वर्णन किया है, अब आठ मन्वन्तर और मेरे द्वारा पूछी गई निधि के विषय में कहिये ॥१॥ आप स्वायम्भुव मन्वन्तर का पहिले वर्णन कर चुके हैं, अब औत्तम नामक तृतीय मन्वन्तर का वर्णन करिये ॥२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—राजा उत्तानपाद के एक अत्यन्त पराक्रमी उत्तम नामक पुत्र रानी सुवर्चि के गर्भ से उत्पन्न हुआ ॥३॥ वह धर्मवान् और पराक्रमी उत्तम राज्य को प्राप्त होकर अपने पराक्रम से अत्यन्त तेजस्वी हुए ॥४॥ वह धर्मज्ञ राजा शत्रु, मित्र तथा प्रजा और पुत्र में समान दृष्टि रखने वाले थे, वह दुष्टों के लिए सदा यम तुल्य और शिष्ट व्यक्तियों के लिए चन्द्रमा के समान शीतल थे ॥५॥ जिस प्रकार इन्द्र ने सभी लोकों में प्रसिद्ध शची का पाणिग्रहण किया, उसी प्रकार उत्तम ने बभ्रू-सुता बहुला नाम की विख्यात कन्या का

पाणिग्रहण किया था ॥६॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! जिस प्रकार चन्द्रमा का चित्त रोहिणी में अनुरक्त है, वैसे ही उत्तम का चित्त बहुला में आसक्त था ॥७॥

अन्यप्रयोजनासक्तिमुपैति न हितन्मनः ।

स्वप्ने चैव तदालम्बिमनोऽभूत्तस्य भूभृतः ॥८॥

सचतस्या सुचावंङ्ग्यादर्शनादेव पाथिव ।

वदाह लोचनं गर्त्रिगानस्पृशंश्चित्तन्मयः ॥९॥

श्रोतां द्वे गकरवाक्यप्रियमप्यवनीपते ।

तस्यापि भूरि सन्मानमेनेपरिभवततः ॥१०॥

प्रवमेने सजदत्ताशुभान्याभरणानि च ।

उत्सत्यावधेपोतेव पिबतोऽप्यवशमवभू ॥११॥

भुञ्जता च न रेन्द्रेण क्षणमात्रकरे घृता ।

दुभुजे स्वल्पकमक्ष्यद्विजनातिमुदावती ॥१२॥

एव तस्यानुकूलस्य नानुकूलामहात्मनः ।

प्रभूततरमस्य चक्रं रागमहीपति ॥१३॥

अथ पानगतो भूप वटाचित्तामनस्विनीम् ।

सुराभृतपानपात्रग्राहयामास सादर ॥१४॥

पश्यता भूमिपालानां वाग्मुख्यासमन्वितः ।

प्रगीयमानो मधुरं गेयं गायनतत्परं ॥१५॥

राजा का चित्त बहुला के अतिरिक्त और कहीं भी नहीं था और वह स्वप्न में भी अन्य नारा का चिन्तन नहीं करते थे ॥८॥ वह राजा अपनी रूप रानी भार्या को जैसे ही देखते, वैसे ही उमम तन्मय हो जाते थे ॥९॥ परन्तु रानी बहुला को उनके मधुर वचन भी बहुत प्रतीत होते और वह उनका सम्मान करने में भी अपनी क्षमता समझती थी ॥१०॥ उनके द्वारा प्रदत्त माना और मनोहर आभूषणों के प्रति रानी अवस्था व्यक्त करती और आसक्त-मान के समान दुःख अनुभव करती हुई उनके पास से उठ जाती थी ॥११॥ हे द्विज ! जब राजा भोजन के समय भगवत् प्रकार के आग्रह करते सब वह अग्रगण्य मन से भलाहार करती ॥१२॥ इस प्रकार रानी के अधिक अनुकूल न होने पर भी

राजा अपनी प्रिया के प्रति अत्यधिक अनुराग प्रकट करते थे ॥१३॥ एक समय जब श्रेष्ठ वारांगनाएँ मधुर स्वर से राजा के निकट गाय रही थीं तभी राजा ने सुर पान की इच्छा करके अपने सभासदों के समक्ष ही निकट बैठी बहुला को मद्य से परिपूर्ण पात्र दिया ॥१४-१५॥

सातुनेच्छतितत्पात्रभादातुं तत्पराङ्मुखी ।

समक्षमवनीशानांततः क्रुद्धः सपार्थिवः ॥१६॥

उवाच ह्वाः स्थमाहूय निःश्वसन्नुरगो यथा ।

निराकृतस्तया देव्या प्रियया पतिरप्रियः ॥१७॥

ह्वाः स्थैनां दुष्टहृदयामादाय विजनेवने ।

परित्यज्याशुनंतत्ते विचार्य वचनं मम ॥१८॥

ततो नृपस्य वचनमविचार्य मवेक्ष्य सः ।

ह्वाः स्थस्तत्याजतां सुभ्रूमारोप्य स्यन्दनेवने ॥१९॥

सा च तं विपिनेत्यागं नीता तेन महीभृता ।

अपश्यमाना तं मेने परं कृतमनुग्रहम् ॥२०॥

सोऽपि तत्रानुरागातिदह्यमानात्ममानसः ।

श्रीस्तानपादिभूपा लो नान्याभायमिविन्दत ॥२१॥

परन्तु रानी ने उनसे विमुख होकर मद्य पान को ग्रहण नहीं किया, तो राजा को अत्यन्त क्रोध हुआ ॥१६॥ और सर्प के समान निःश्वास को त्यागते हुए उन्होंने द्वारपाल को बुलाया और उससे बोले कि इस मेरी प्रियतमा बहुला ने मुझे अप्रिय मान कर मेरा निरादर किया है ॥१७॥ इस लिये इस दुष्ट हृदय वाली को शीघ्र ही यहाँ से ले जाकर वन में छोड़ आओ मेरी इस आज्ञा का तुरन्त पालन करो ॥१८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—द्वारपाल ने राजा की आज्ञा को प्राप्त कर रानी को रथ में चढ़ाया और उसे वन में छोड़ आया ॥१९॥ राजा द्वारा रानी को वन में छोड़े जाने पर, अब राजा को न देखना होगा, ऐसा सोच कर रानी ने राजा का अनुग्रह ही माना ॥२०॥ इधर राजा उत्तम ने रानी के प्रति अत्यन्त अनुराग होने के कारण दुःखित हृदय होते हुए अन्य पत्नी को ग्रहण नहीं किया ॥२१॥

मत्स्यारतामुचात्रेगीमहनिशमनिवृत्त ।
 चदारचनिजराज्यप्रजाधर्मेणपालयन् ॥२२॥
 प्रजा पालयन्मनस्यपितु पुत्रानिवोरसान् ।
 यागत्यब्राह्मण कश्चिदिदमाहातं मानस ॥२३॥
 महाराजभृशान्तोऽस्मिन् यतागदनीमम ।
 नृणामातिपरित्राणमस्यतो ननराधिपात् ॥२४॥
 ममभार्याप्रमुप्रस्यवेनाप्यपहृतानिधि ।
 गृहद्वारमनुदाट्यनासमानेतुमर्हसि ॥२५॥
 नवत्सिकेनापहृताववयानीतातुसाद्विज ।
 यतामिविग्रहेकस्यबुतोवाप्यानयामिताम् ॥२६॥
 तर्धैवमग्निनेद्वारिप्रमुप्रस्यगृहेमम ।
 हृताहिभार्यापिकेनेत्येतद्विज्ञायतेभवान् ॥२७॥
 त्वग्निनानानृपतेपटभागादानवेतन ।
 धर्मस्यतस्तानिश्चिन्तास्वपतितमनुजानिधि ॥२८॥

वह दु गिन बित्त म उभी सोभनाङ्गी का स्मरण करने लगा और इस
 अवस्था में भी धर्म-पूवक प्रजा पालन करते हुए राज्य-कार्य में लगे रहे ॥२२॥
 वह राजा अपनी प्रजा का पालन औरत पूत्र व समान करते थे, एक दिन एक
 ब्राह्मण उतने निरुद घामा और दु गिन हृदय में बोला ॥२३॥ हे राजन् ?
 मैं अत्यन्त वरुण म हूँ मरी बात सुनो, क्या कि मनुष्यों के केशी को राजा
 ही दूर कर सकता है ॥२४॥ मैं रात्रि व समय जब शयन कर रहा था,
 सभी पर व द्वार खोल बिना ही किमी व मरी पत्नी का हरण कर लिया है,
 अब आप मेरी उक्त पत्नी को साफर मुझे दीजिय ॥२५॥ राजा ने कहा—हे
 ब्रह्मन् ! आपकी पत्नी का हरण किसने किया है और कहाँ रखा है ? जब
 तब मैं मरू न जानूँ, तब तक उसे वहाँ से प्राप्त करूँ ॥२६॥ ब्राह्मण बोला
 हे राजन् ! मेरा घराब करन म घर का द्वार खोल बिना ही मरी पत्नी का
 हरण किम प्रकार हुआ, यह तो आप ही जान साने हैं ॥२७॥ तब कि आप

राजा हैं, धर्म का षष्ठांश वेतन स्वरूप लेकर रक्षा के लिये नियुक्त हैं, इसी लिये मनुष्य राजा काल में निश्चित शयन करते हैं ॥२८॥

नतेदृष्टामयाभार्यायाद्वभूपाचदेहतः ।

वयश्च वक्षमाख्याहि किंशीलाब्राह्मणोचते ॥२९॥

कठोरनेत्रासात्युच्चाह्रस्वबाहुःकृशानना ।

(लंबोदरीह्रस्वस्फिजंतथाह्रस्वस्तनीनृप) ।

विरूपरूपाभूपालननिन्दामितयैवताम् ॥३०॥

वाचिभूपातिपरुषानसौम्यासाचशीलतः ।

इत्याख्यातामयाभार्यासकरालनिरीक्षणा ॥३१॥

मनागतीतंभूपालतस्याश्चप्रथमंवयः ।

ताद्वरूपाहिमेभार्यासत्यमेतन्मयोदितम् ॥३२॥

अलंतेब्राह्मणतयाभार्यामिन्यांददामिते ।

सुखायभार्याकल्याणीदुःखहेतुर्हितादृशी ॥३३॥

अल्पाकुरूपताविप्रकारांशीलमुत्तमम् ।

रूपशीलविहीनायात्याज्यातेन्येनसाहृता ॥३४॥

राजा बोले—आपकी पत्नी को मैंने कभी भी नहीं देखा, इस लिये आप उसकी आकृति, आयु और स्वभाव का भले प्रकार वर्णन करिये ॥२९॥ ब्राह्मण बोला—हे राजा ! मेरी पत्नी कठोर नयन, दीर्घ आकार, छोटी भुजा, कृश मुख (लम्बा उदर और सूक्ष्म हाथ) वाली अत्यन्त कुरूप है, फिर भी मैं उसे निन्दनीय नहीं मानता ॥३०॥ वह वाणी और स्वभाव से अत्यन्त कर्कश है उसकी प्रथमावस्था कुछ-कुछ दण्ड चुकी है, इस प्रकार उसका सभी वर्णन सत्य-सत्य आपसे किया है ॥३१-३२॥ राजा ने कहा—हे विप्र ! ऐसी कुलक्षणा पत्नी का आप क्या करेंगे ? मैं आपको एक अन्य पत्नी प्रदान कर सकता हूँ, क्योंकि सुलक्षणा पत्नी से सुख और कुलक्षणा से दुःख ही प्राप्त होता है ॥३३॥ हे ब्रह्मन् ! सौन्दर्य और शील स्वभाव से ही मंगल होता है, इस लिये कुरूप तथा शील रहित पत्नी का तो परित्याग ही ठीक है ॥३४॥

रक्ष्याभार्यामिहीपालइतिचश्रुतिस्तमा ।
 भार्यायाश्च्यमाणायाप्रजाभवतिरक्षिता ॥३५॥
 आत्माहिजायतेतस्यसारदयातोत्तरेश्वर ।
 प्रजामारक्ष्यमाणायामात्माभवतिरक्षितः ॥३६॥
 तस्यामरक्ष्यमाणायामवितावरणंसङ्कुर ।
 सपातयेन्महीपालपूर्वांस्वर्गादिषु पितृन् ॥३७॥
 (अनुज्ञायगुरुं राजन्दत्त्वान्याजातवेदसे ॥३८॥
 समिधं तुमयाभार्याभृतेयवर्कंशायत ।
 कथमेताद्विहायान्यभार्ययामहसचरे ॥३९॥
 गृह्यधर्मोयतोद्गृह्यप्राप्यतेशाश्वतनरं ।
 पूर्वोद्गृह्यानुधर्मोऽगृहीकुर्वन्नसीदति ॥४०॥
 त्यक्त्वाताचक्रियाकुर्वन्नेवकर्मफललभेत् ।
 अग्निनासहयानूनसा जगामगृह्युभा ॥४१॥
 धर्मस्यग्रहणेसातुपूर्वोद्भवप्रशम्यते ।
 शठायाचारणात्तस्याजायतेवरणंसङ्कुर ॥४२॥

ब्राह्मण बोला—हे राजन् ! पत्नी सदैव रक्षा के योग्य होती है, मुझे यह श्रुति विदित है कि पत्नी की सम्पत्ति रक्षा में ही सन्तान की रक्षा हो सकती है ॥३५॥ हे राजन् ! पत्नी के गर्भ में अपने आत्मा की ही उत्पत्ति होती है, इसी विधि सन्तान की रक्षा करने में अपने आत्मा की ही रक्षा होना माना गया है ॥३६॥ इसविधि पत्नी की भले प्रकार रक्षा करे, उसकी रक्षा न करने से वर्णमत्सर की उत्पत्ति होती है, जिसके कारण पूर्व पितरों का स्वर्ग में पतन होता है ॥३७॥ (हे राजन् ! गुरुजनों की अनुमति से अग्नि को साक्षी करके) ॥३८॥ इस वर्कश पत्नी का मेरे साथ वरण हुआ है, इस विधि इसका त्याग करके अन्य नारी के साथ विग प्रकार यह आचरण न करें ॥३९॥ अब ऐसे आचरण में गृह्य धर्म के साथ ही अनुप्य को दाश्वन ब्रह्म की स्मृति होती है और विग स्त्री के साथ धर्म कार्य करना हुआ गृही दुष्ट को प्राप्त नहीं होता ॥४०॥ उग स्त्री को त्याग कर जो किया वह करना है वह

क्रिया फल रहित होती है, जो शुभ अग्नि की साक्षी में अपने गृह पर लायी गयी है ॥४१॥ वह प्रथम ही धर्म के ग्रहण में प्रशंसनीय है तथा उस दृष्टा के त्याग से वर्णसंकर की उत्पत्ति संभव है ॥४२॥

धर्महानिश्चानुदिनमभार्यस्यभवेन्मम ।

नित्यक्रियाणांविभ्रंशात्सचापिपतनायमे ॥४३॥

तस्यांचपृथिवीपालभवित्रीममसन्ततिः ।

तवषड्भागदात्रीसामवित्रीधर्महेतुको ॥४४॥

तदेतत्तेमयाख्यातापत्नीयामेहताप्रभो ।

तांसमानयरक्षायांभवानधिकृतोयतः ॥४५॥

सतस्यैवंवचःश्रुत्वाविमृष्यचनरेश्वरः ।

सर्वोपकरसौमुक्तमारुरोहमहारथम् ॥४६॥

इतश्चेतश्चतेनासौपरिबभ्राममेदिनीम् ।

ददशंचमहारथेतापसाश्रममुत्तमम् ॥४७॥

अवतीर्यचतत्रासौप्रविश्यददृशेमुनिम् ।

कौश्यांवृष्यांसमासीनंज्वलन्तमिवतेजसा ॥४८॥

सदृष्ट्वानृपतिप्राप्तं समुत्थायत्वरान्वितः ।

संभार्यस्वागतेनैवशिष्यमाहार्ध्यगानय ॥४९॥

पत्नी के न होने से धर्म की दिन-दिन हानि होती है तथा इस प्रकार नित्य क्रिया के नष्ट होने पर तुम्हें भी पतित भाव की प्राप्ति होगी ॥४३॥ हे राजन् ! मेरी उस पत्नी के गर्भ से जो सन्तान होगी, वह आपको धर्म पूर्वक अपनी आय का छठवां भाग देगी ॥४४॥ इन्हीं कारणों से मैं निवेदन कर रहा हूं कि आप मेरी उसी पत्नी को लाकर दीजिये, क्योंकि हमारी रक्षा के निमित्त आप ही नियुक्त हैं ॥४५॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—ब्राह्मण के ऐसे वचन सुन कर महाराज उत्तम कुल समय तक सोच विचार करके सर्व सामग्री सम्पन्न रथ पर चढ़े ॥४६॥ और रथ के द्वारा विचरण करते हुए एक महावन में श्रेष्ठ तपस्या मग आश्रम देखा ॥४७॥ तब रथ से उतर कर उन्होंने आश्रम में प्रवेश किया जहाँ कुशा के आसन पर अपने तेज से प्रकाशित एक श्रेष्ठ मुनि

की बंठे हुआ देता ॥४८॥ राजा का धाममन देख कर शीघ्रता पूर्वक उठते हुए मुनि ने उसका स्वागत-मन्तार किया और अपने शिष्य को भर्षा लाने की आज्ञा दी ॥४९॥

तमाहशिष्य जनवैर्दातव्योऽर्घ्योऽस्मिन्मुने ।

तदाज्ञापयसचिन्त्य । वाज्ञाहिम रोम्यहम् ॥

ततोऽश्वगतवृत्तान्तोभूयतेस्तस्यसद्विज ।

सम्भाषासनदानेनचक्रैस्सम्मानमात्मवान् ॥५०॥

विनिमित्तमिहायातोभवान्कितेचिकीर्षितम् ।

उत्तानपादननयवेष्टित्वामुत्तमनृप ॥५१॥

ब्राह्मणतयगृहाङ्गार्याकिनाप्यनहतामुने ।

अविज्ञातस्वस्त्येणतामन्वेष्टुमिहागत ॥५२॥

पृच्छामिपक्षे तस्मैत्वप्रणतस्यानुकम्पया ।

अभ्यागतस्याथगृहभगवन्वत्सुमहंसि ॥५३॥

पृच्छमाभवनीपानयत्प्रष्टव्यमसिद्धितः ।

वत्तव्यचेतवभयावयधिष्यामितस्वत ॥५४॥

गृहागताययामह्य प्रथमेदज्ञनेमुने ।

त्ययाममुचुनादातु पथमोऽर्घ्योनिवर्तित ॥५५॥

इस पर शिष्य ने कहा—मैं इन महाराज का भर्षादान उचित होगा या नहीं, इसका निवार करने ही आज्ञा दीजिये, मैं आपकी आज्ञा का तत्काल पालन करूँगा, तब आत्मवान् मुनि ने सब वृत्तान्त बतलिया और धाममन से कर सम्पादन द्वारा ही उत्तान राजा का सम्मान किया ॥५०॥ ऋषि बोले—हे राजन् ! धार उत्तमपादननय उत्तम है, यह मुझे विदित है, परन्तु धार यही क्यों पाये है ? धारका इच्छित विषय क्या है, यह बताइय ॥५१॥ राजा ने कहा—हे मुने ! एह ब्राह्मण ने घर से कोई अज्ञात व्यक्ति उसकी परनी की हार ले गया है, मैं उसी ब्राह्मणी की खोज न लिये क्या आया हूँ ॥५२॥ हे भगवन् ! मैं आज्ञा जा त्रिनम्र निवेदन करता हूँ और धार भी अनुग्रह पूर्वक मुझे देना के योग्य समझ कर उम कहन की आज्ञा दीजिये ॥५३॥ भूषि वाले—

हे राजन् ! आप जो पूछना चाहें, शंका रहित हो कर पूछें, कथन योग्य बात को मैं यथार्थ रूप में ही कहूँगा ॥५४॥ राजा ने कहा—मैं जब यहाँ आया था तब पहिले आप मुझे अर्घ्य देने की इच्छा करते थे, फिर आप उससे निवृत्त क्यों हो गये ? ॥५५॥

त्वद्दर्शनेनरभसादाज्ञप्तोऽयंमयानृप ।

यदातदाहमेतेनशिष्येणप्रतिबोधितः ॥५६॥

एषवेत्तिजगत्यत्रमत्प्रसादादनागतम् ।

यथाहंसमंतीतंचवर्त्तमानंचसर्वतः ॥५७॥

आलोच्याज्ञापयेत्युक्तेततोज्ञातंमयापितत् ।

ततो नदत्तवानर्घ्यमहतुभ्यंविधानतः ॥५८॥

सत्यंराजंस्त्वमर्घ्यहिःकुलेस्वायम्भुवस्यच ।

तथापिनार्घ्ययोग्यत्वांमन्यामोवयमुत्तमम् ॥५९॥

किंकृतंहिमयाब्रह्मञ्जानादज्ञानतोऽपिवा ।

येनत्वत्तोऽर्घ्यमहर्हिमिनाहमभ्यागतश्चिरात् ॥६०॥

किंविस्मृतंतेयत्पत्नीत्वयात्यक्ताचकानने ।

परित्यक्तस्तयासाढ्वंत्वयाधर्मो नृपाखिलः ॥६१॥

पक्षेणकर्मणोहान्याप्रयात्यस्पृश्यतांनरः ।

किमत्रवार्पिकीयस्यहानिस्तेनित्यकर्मणः ॥६२॥

पत्न्यानुकूलयाभाव्यंयथाशीलेऽपिभर्त्तरि ।

दुःशीलापितयाभार्यापोषणीयानरेश्वर ॥६३॥

श्रुति बोले—हे राजन् ! आपको देखते ही, जैसे ही मैंने अर्घ्य लाने की आज्ञा दी, वैसे ही इस शिष्य ने शंका व्यक्त की ॥५६॥ जैसे मैं अतीत, वर्त्तमान और भविष्य के सभी गुप्त या प्रकट वृत्तान्तों को भले प्रकार जानता हूँ, वैसे ही मेरा यह शिष्य भी मेरे प्रसाद से भूत, भविष्य, वर्त्तमान का ज्ञाता है ॥५७॥ इस शिष्य ने विचार कर आज्ञा देने का अनुरोध किया, तब मैंने सब बात जान कर आपको विधिवत् अर्घ्य नहीं दिया ॥५८॥ हे राजन् ! आप स्वायम्भुव मनु के वंशोत्पन्न हैं, इस लिये अर्घ्य के योग्य हो कर भी मेरे विचार

मे अर्घ्य के योग्य नहीं हैं ॥५६॥ राजा ने कहा—हे भगवन् ! मैंने जाने अनजाने में ऐसा कौन सा कार्य किया है, जिससे प्रथम बार आकर भी मैं अर्घ्य के योग्य नहीं रहा ? ॥६०॥ ऋषि बाने—हे राजन् ! आपने अपनी पत्नी को त्याग कर वन में भेज दिया है, क्या यह स्मरण नहीं रहा ? उस पत्नी के त्याग के साथ ही आपने धर्म का भी त्याग कर दिया रागभो ॥६१॥ धर्म-धर्म की हानि के एक पक्ष तक होने से मनुष्य स्पर्श के योग्य भी नहीं रहता, तुम्हारी तो बर्षों ही कर्म-हानि हुई है, इसलिये आपनी अर्घ्य विषयक योग्यता पर पर आप स्वयं ही विचार कीजिये ॥६२॥ हे राजन् ! जैसे पति के विपरीत चरित्र वाला होने पर भी पत्नी को पति की अनुमामिनी होना कर्त्तव्य है, वैसे ही पत्नी के दोष-रहित होने पर भी उसका भरण-पोषण पति का कर्त्तव्य है ॥६३॥

प्रतिहूलहि सापत्नी तस्य विप्रस्य याहता ।

तया पि धर्मं नामोऽनीत्वा मुद्घो तितवान् नृप ॥६४॥

चलत स्थापयस्य न्यास्व धर्मं पुमहो पते ।

त्वास्व धर्माद्विचलितोऽप्यग स्थापयिष्यति ॥६५॥

(द्वोपेव ह गरीये वारात्रि चाभ्यायवतिनि ।

पापवृत्सु च विद्वत्सु नियता जतुरग्रक ॥

विलक्ष्य समहीपाल इत्युल्मस्तेन धीमता ।

तथेत्पुनश्चावपश्च्छ्रुत्वा पत्नीद्विजन्मन ॥६६॥

भगवन् येन नीता सा पत्नी विप्रस्य कुत्र वा ।

अतीतानागत वेत्ति जगत्पवितथ भवान् ॥६७॥

ताजहाराद्विगतमो बलाको नाम राक्षस ।

द्रव्यते चाद्यताभू पक्षत्पलावतकेवने ॥६८॥

गच्छमयोजमानुत्तरमार्यया हि द्विजोत्तमम् ।

मापापास्पदनायातु त्वमिवासो दिनेदिन ॥६९॥

हे राजन् ! उस ब्राह्मण की हरण की गई पत्नी उसके प्रतिहूल है तब भी वह उसकी इतनी इतनी खोज कर रहा है ॥६४॥ हे राजन् ! धर्म धर्म

को धर्म में स्थापित करने वाले आप ही हैं, परन्तु जब आप स्वयं ही धर्म को छोड़ेंगे तब आपको उसमें कौन प्रवृत्त करेगा ? ॥३५॥ (वन का गेंडा खेत के धान्य का भक्षण करके अपना निर्वाह करे, राजा अन्यायी हो या विद्वान् पुरुष पाप कर्म करे तो फिर शिक्षा देने वाला कौन होगा ?) मार्कण्डेयजी ने कहा—ऋषि के ऐसे वचन सुन कर राजा लज्जित हो गये और सब दोष स्वीकार कर, विप्र पत्नी का वृत्तान्त उन्होंने पूछा ॥६६॥ हे भगवन् ! आप विश्व के सभी भूत, भविष्य, वर्त्तमान के ज्ञाता हैं, अब उस विप्र पत्नी को किसने हरण किया और कहाँ रखा है, यह बताने की कृपा करिये ॥६७॥ ऋषि बोले—हे राजन् उस ब्राह्मणी का हरण अग्नि के पुत्र बलाक नामक राक्षस ने किया है, उसे आप इस समय उत्पलावत नाम के वन में देखेंगे ॥६८॥ अब आप जाइये और ब्राह्मण को उसकी पत्नी को मिलाइये, जिससे उस ब्राह्मण को आपके समान पाप भागी न होना पड़े ॥६९॥

६२—द्विजभार्या को पति के घर भेजना

अथाहरोहस्वरथंप्रणिपत्यमहामुनिम् ।
 तेनाख्यातंवनंतच्चप्रययावुत्पलावतम् ॥१॥
 यथाख्यातस्वरूपावभाय्याभर्त्राद्विजस्यताम् ।
 भक्षयन्तीददशार्थश्रीफलानिनरेश्वरः ॥२॥
 पप्रच्छचकथंभद्रं त्वमेतद्वनमागता ।
 स्फुटं ब्रवीहि वेशालेरपि भाय्यासुशर्मणः ॥३॥
 सुताहमतिरात्रस्यद्विजस्यवनवासिनः ।
 पत्नीविशालपुत्रस्ययस्यनामत्वयोदितम् ॥४॥
 साहहृताबलाकेनराक्षसेनदुरात्मना ।
 प्रसुप्ताभवन्स्यान्तर्भातृमातृवियोजिता ॥५॥
 भस्मीभवतुतद्रक्षोयेनास्म्येवंवियोजिता ।
 मन्त्राभ्रातृभिरन्यैश्चतिष्ठाम्यत्रसुदुःखिता ॥६॥

अस्मिन्वनेऽतिगहनेयेनानीयाहमुज्झिता ।
नवेशिकारणवित्तशोपभुङ्क्तेनखादति ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—राजा उन महर्षि को प्रणाम करके स्वयं वड़े मोटे महर्षि द्वारा बताये हुए उत्पत्तान्त वन में पहुँचे ॥१॥ वहाँ देखा कि षडि के बताये हुए रूप बानो वह ब्राह्मणी शीघ्र ही खा रही है ॥२॥ उसे देखकर उन्होंने पूछा—हे भट्टे ! तुम वन में किस प्रकार घागरी ? तुम विद्याल पुत्र मुशर्मा नामक ब्राह्मण की ही परनी हो न ? यह स्पष्ट बताओ ॥३॥ ब्राह्मणी बोली— मैं अतिरात्र नामक वनवासी ब्राह्मण की पुत्री और जिन विद्याल पुत्र का आपने नाम लिया है, उनकी ही भावी हूँ ॥४॥ मैं घर में शयन करती थी, तभी पापी राक्षस मुझे भाई और भाता से वियोग करके यहाँ ले आया है ॥५॥ अब मैं सब आत्मीयजनो से पृथक् होकर अत्यन्त दुःख पूर्वक यहाँ रह रही हूँ, जिस राक्षस ने मेरी यह दया की है, वह भस्म होजाय ॥६॥ अब राक्षस ने इस निर्जन वन में मुझे ला रखा है, मुझे ज्ञात नहीं कि वह मेरा भक्षण या उपभोग क्यों नहीं करता है ? ॥७॥

अपितज्जायतेरक्षस्त्रामुत्तृज्यस्ववर्गगतम् ।
अहमर्षानर्थवाप्रपितोद्विजनन्दिनि ॥८
अभ्यंभवाननस्यान्त सतिष्ठतिनिशाचर ।
प्रविश्यपदयनुप्रयान्नविभेतितलोयदि ॥९
प्रविवेशतत सोयतयावर्त्मनिदग्धित ।
दहोपरिवारणसमवेतचराक्षमम् ॥१०
दृष्टमात्रेनस्तस्मिन्स्वरमाण मराक्षसः ।
दूरादेवमहीमूर्ध्नास्पृशन्पादान्निःशयो ॥११
ममात्रागच्छनामेष्टप्रसादस्तेमहान्वृतः ।
प्रनार्थिस्त्रोभ्येषवमामिविपयेतव ॥१२
अप्यंवेमप्रनीच्छन्वरीयतापेदमाग्नम् ।
दयभूत्याभवान्त्वामीदृष्टमाज्ञापयस्वमाम् ॥१३

कृतमेवत्वयासर्वसवमिपचितिःकृताः ।

किमर्थं ब्राह्मणवधूस्त्वयानीतानिशाचर ॥१४

राजा ने कहा—तुम्हारे पति ने ही मुझे यहाँ भेजा है, क्या तुम्हें विदित है कि वह राक्षस इस समय कहाँ गया होगा ? ॥८॥ ब्राह्मणी बोली—इसी वन—प्रान्त में कहीं होगा, यदि उससे डर न हो तो, वन में प्रवेश करो तो वह दिखाई पड़ जायगा ॥९॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—ब्राह्मणी द्वारा मार्ग प्रदर्शित करने पर राजा ने वन में घुस कर अपने परिवारी जनों से घिरे हुए उस राक्षस को देखा ॥१०॥ वह राजा को देखते ही तुरन्त उठा और मस्तक से पृथिवी को स्पर्श करता हुआ राजा के चरणों के समीप आकर बोला ॥११॥ राक्षस ने कहा—महाराज की मुझे क्या आज्ञा है, जिस लिए मेरे घर पर पधारे हैं, मैं आपके राज्य में निवास करता हूँ, आप मुझे आज्ञा करिये ॥१२॥ यह अर्घ्य ग्रहण करिये, इस आसन पर विराजमान होइये, आप स्वामी हैं और मैं सेवक हूँ, आप मुझे निःसंकोच आज्ञा दीजिये ॥१३॥ राजा ने कहा—तुमने अपने कर्त्तव्य का पालन और अतिथि सत्कार भी उचित रीति से किया है, परन्तु यह बताओ कि तुम उस विप्रपत्नी को किसलिये हरण कर लाये हो ? ॥१४॥

नेयंसुरुपासन्त्यन्याभार्यार्थचेद्धृतात्वया ।

भक्ष्यार्थं वै त्कर्त्तव्यं नात्तात्वर्यै तत्कथ्यतां मम ॥१५

न वयं मानुषा हाराग्रन्येते नृपराक्षसाः ।

सुकृतस्य फलयत्तु तददानीमो वयं नृपः ॥१६

(सुकृतस्य फलयत्तु तत्तव भ्याम्यहं नृप ।

राक्षसीयोनिमापन्नः क्रूरां लोकभयं करीम् ।)

स्वभावं च मनुष्याणां योषितां च विमानिताः ।

नामिषच समश्नीमो न वयं जन्तुखादकाः ॥१७

यदस्माभिर्नृणां क्षान्तिर्भुक्ता क्रुध्यन्ति ते तदा ।

भुक्ते द्रुष्टे स्वभावे च गुरावन्तो भवन्ति च ॥१८

सन्ति नः प्रमदाभूषणरूपेणाप्सरसांसमाः ।

राक्षस्यं स्तासु तिष्ठत्सु मानुषीषुरतिः कथम् ॥१९

यद्येवानोपभोगायनाहारायनिशाचर ।

गृहप्रविश्यविप्रस्यत्तत्किमेपाहतात्वया ॥२०॥

पत्नी बनाने को साथ हैं, यह भी नहीं कह सकता, क्योंकि वह कुरूप है, यदि भक्षणार्थ साथे हैं तो भक्षण क्यों नहीं करते ? यह सब मुझे यगार्थ रूप से बताओ ॥१२॥ राक्षस बोला—हे राजन् ! मनुष्य का भक्षण करने वाला नहीं हूँ, मनुष्य भक्षी राक्षस अग्न्य होते हैं, मैं तो पुण्यफल का ही भोजन करता हूँ ॥१६॥ (हे नृप ! अब मैं पुण्य का फल बताता हूँ, क्रूर और भय-दायक राक्षस योनि को प्राप्त हुआ मैं) सम्मान युक्त अथवा असम्मानित स्त्री-पुरुषों के स्वभाव का ही तदा भोजन करता हूँ, मैं जन्तुभोजी राक्षस नहीं हूँ ॥१७॥ इस प्रकार क्षमागुण वाले स्वभाव का भोजन करने से क्रोध उत्पन्न होता है और दुष्ट स्वभाव का भोजन करने पर वह गुण युक्त होते हैं ॥१८॥ हे राजन् ! मेरे पास अप्सराओं के समान रूपवती अनेक राक्षसी पत्नियाँ हैं, उनके होते हुए मैं मनुष्य स्त्री की वापना क्यों करता ? ॥१९॥ राजा ने कहा—यदि यह ब्राह्मणी तुम्हारे लिये भोज्य अथवा भक्ष्य नहीं थी तो तुमने इसका ब्राह्मण के घर से हरण क्यों किया ? ॥२०॥

मन्त्रवित्तद्विजश्रेष्ठोयज्ञेयज्ञेयज्ञेयगतस्यमे ।

रक्षाघ्नमन्त्रपठनात्स्वरात्पुञ्चाटननृप ॥२१॥

वयवुभुक्षितास्तस्यमन्त्राच्चाटनकर्मणा ।

वज्रयाम सर्वयज्ञेषुसृष्टिविभवतिद्विज ॥२२॥

ततोऽम्माभिरिदतस्यवैकल्यमुपपादितम् ।

पत्न्याविनापुमानिज्यावमयोग्यानजामते ॥२३॥

वैकल्योच्चारणात्तस्यब्राह्मणस्यमहामते ।

तन सराजातिभृशविपण्णःसमजायत ॥२४॥

वैकल्यमपविप्रस्यवदन्मामेवनिन्दति ।

अनर्हमर्घस्यचगामोऽप्याहमृनिसत्तम ॥२५॥

वैकल्यतस्यत्रिप्रस्यराक्षसाऽप्याहमेयथा ।

अपत्नीनितयासोऽहमद्धटमहदास्थिन ॥२६॥

एवंचिन्तयतस्तस्यपुनरप्याहराक्षसः ।

प्रणामंनमोराजानंवद्धांजलिपुटोगुने ॥२७॥

नरेन्द्राज्ञाप्रदानेनप्रसादः क्रियतामम ।

भृत्यस्यप्रणतस्येत्युष्मद्विषयवासिनः ॥२८॥

राक्षस बोला—हे राजन् ! वह ब्राह्मण मन्त्रवेत्ता है और सभी यज्ञों में जाकर रक्षोघ्न मन्त्र का पाठ करके मेरा उच्चाटन करते हैं ॥२९॥ जब वह मन्त्र पाठ द्वारा मेरा उच्चाटन करते हैं, तब मैं धुवा से पीड़ित होकर कहाँ जाऊँ ? क्योंकि वह सभी यज्ञों में ऋत्विक् बनते हैं ॥२२॥ इसीलिये मैंने उनके चित्त को उद्विग्न किया है, क्योंकि भार्या के बिना पति कभी किसी यज्ञ-कर्म में समर्थ नहीं होता ॥२३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—राक्षस द्वारा ब्राह्मण के चित्त का उद्विग्न किया जाना सुनकर राजा अत्यन्त क्षुब्ध हुए ॥२४॥ और उन्होंने सोचा कि ब्राह्मण को उद्विग्न किया कह कर यह राक्षस मेरी ही निन्दा करता है, इसी कारण उन ऋषिवर ने मुझे अर्घ्य के अयोग्य बताया था ॥२५॥ और अब यह राक्षस भी मुझ पत्नी-विहीन के समान ही ब्राह्मण की पत्नी का हरण करके उसको उद्विग्न किया कष्टा है, इसलिये मैं भी पत्नी-हीन होने से सङ्कट प्रस्त हो रहा हूँ ॥२६॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इस प्रकार राजा विचार कर ही रहे थे, तभी उस राक्षस ने पुनः विनम्रता पूर्वक प्रणाम करके, करबद्ध निवेदन किया ॥२७॥ हे राजन् ! मैं भी आपके राज्य का ही एक प्रजाजन हूँ, इस कारण इस सेवक को आज्ञा देकर कृतार्थ करिये ॥२८॥

स्वभावंवयमशनीमस्त्वयोक्तंयस्मिन्नाचर ।

तदर्थिनोवयंयेनकार्येणशृणुतान्मम ॥२९॥

अस्यास्त्वयाद्यब्राह्मण्यादौःशील्यमुपभुज्यताम् ।

येनत्वयात्तदौःशील्यात्तद्विनीताभवेदियम् ॥३०॥

नीयतांयस्यभार्येयंतस्यवेश्मनिशाचर ।

अस्मिन्कृतेकृतंसर्वगृहमभ्यागतस्यमे ॥३१॥

ततःसराक्षसस्तस्याःप्रविश्यान्तःस्वमायया ।

भक्षयामासदौःशील्यंनिजशक्त्यानृपाज्ञया ॥३२॥

दी शीत्येनातिगद्रेणपत्नीतस्यद्विजन्मन ।

तेनसासम्परित्यक्तातमाहजगतीपतिम् ॥३३॥

स्वकर्मफलपाकेनभर्तुंस्तस्यमहात्मन ।

वियोजिताहृतद्धेतुरयमागोत्रिणाचर ॥३४॥

नास्यदोषोनवातस्मममभर्तुंमहात्मन ।

ममंवदोषोनान्यस्यस्ववृत्तह्यपभृज्यते ॥३५॥

राजा बोले—हे निनाचर ! तुमने स्वभाव भक्षण करने की बात कही है, अब मैं जिस कार्य में लिये जाया हूँ, उसे मुनो ॥३६॥ तुम इस ब्राह्मणी के छोड़ स्वभाव का भक्षण करो, क्योंकि ऐसा होने से इसका स्वभाव में बिनाशना प्राप्त जायगी ॥३७॥ ऐसा करने के पदवात् तुम इसे उसी के घर में पहुँचा दो, जिसकी यह पत्नी है, ऐसा करने से तुम्हारे द्वारा मेरे आनिष्य भस्वार की भी पूर्ति होगी ॥३८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तब अपनी माता के प्रभाव से उस राम ने ब्राह्मणी के हृदय में प्रवेश किया और उसका दुष्ट स्वभाव का भक्षण कर लिया ॥३९॥ तदन्तर अपने अत्यन्त दुष्ट स्वभाव से मुक्त हुई वह ब्राह्मणी राजा से बोली ॥४०॥ मैं अपने कर्म में ही अपने महात्मा स्वामी के वियोग को प्राप्त हुई हूँ, यह राज्य उसका एकमात्र कारण है ॥४१॥ परन्तु इस राज्य का मेरे उन महात्मा पति का इसमें कुछ भी दोष नहीं है, दोष तो मेरा ही है, क्योंकि स्वकर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है ॥४२॥

अग्न्यजन्मनिक्म्यापिप्रियोगवृत्तोमया ।

सौम्यमयाप्युपमनवोदोषोऽग्न्यमहात्मन ॥४३॥

प्रापयामितवादेनादिमाभर्तुं गृहप्रभो ।

यदन्यत्स्वरणीयतेतदाज्ञापयपाचिव ॥४४॥

अग्निमृतेनृगमयेत्वयामेरजनीवर ।

आगन्तव्यवतेरीरकाथ्यवालेस्मृतेनमे ॥४५॥

तपेत्पुनवानुतद्रथस्तामादायद्विजाह्वनाम् ।

निन्येभर्तुं गृहमुदादी शोन्यापगमात्तदा ॥४६॥

प्रतीत होता है कि पूर्व किसी जन्म में मैंने किसी का वियोग कराया था, इसी से मेरा भी अपने पति से वियोग हुआ, इसमें इस राक्षस का क्या दोष है ? ॥३६॥ राक्षस ने कहा—हे महाराज ! आपकी वात्सा से मैं इसे अभी इसके पति-गृह में पहुँचाता हूँ, मुझे आज्ञा दीजिये कि आपका और क्या कार्य मैं करूँ ? ॥३७॥ राजा बोले—हे राक्षस ! इस कार्य को करके तुमने मेरे सभी कार्य कर दिये हैं, फिर भी हे धीर ! मेरे द्वारा स्मरण करने पर तुम मेरे पास उपस्थित होओ, यह स्वीकार करो ॥३८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—राक्षस ने राजा की बात स्वीकार करके दुष्ट स्वभाव से मुक्त हुई उस ग्राहणी को उसके पति-गृह में जा पहुँचाया ॥३९॥

६३—ऋषि से उत्तम का कथोपकथन

तांप्रेषायित्वाराजापिस्वभर्तृगृहमंगनाम् ।
 चिन्तयामासनिःश्वसन्किमत्रमुकृतंभवेत् ॥१॥
 अनर्घयोग्यताकष्टसमामाहमहामनाः ।
 वैकल्यंविप्रमुद्दिष्यतथाहायंनिशाचरः ॥२॥
 सोऽहंकथंकरिष्यामित्यक्तापत्नीमयाहिंसा ।
 अथवाज्ञानदृष्टितपृच्छामिमुनिसत्तमम् ॥३॥
 संचिन्त्येतत्संभूपालःसमारुह्यचतंरथम् ।
 ययौयत्रसधर्मात्मात्रिकालज्ञोमहामुनिः ॥४॥
 अवरुह्यरथात्सोऽथतंसमेत्यप्रणम्यच ।
 यथावृत्तंसमाचख्यौराक्षसेनसमागमम् ॥५॥
 ब्राह्मण्यादर्शनंचैवदोःशील्यापगमंतथा ।
 प्रेषणंभर्तृगेहेचकार्यमागमनेचयत ॥६॥
 ज्ञातमेतन्मयापूर्वयत्कृतंतेनराविप ।
 कार्यमागमनेचैवभत्समीपेतवाखिलम् ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—उस ब्राह्मणी को उमरे पति के घर भेजकर राजा दीपे द्वास सेते हुए सोचने लगे कि अब किम कर्म के द्वारा मेरी भनाई हो ॥१॥ उन महर्षि ने मुझे पत्नी त्याग के कारण अर्घ्य के अयोग्य बताया और द्वा राक्षस ने भी ब्राह्मण के प्रति पत्नी-विहीन से उत्पन्न कर्म हानि का विषय कहा ॥२॥ मैं अपनी पत्नी का परित्याग किया है, अब मुझे क्या करना चाहिये, इस विषय में उन्हीं ज्ञान दृष्टि वाले महर्षि से प्रश्न करूँ ॥३॥ ऐसा विचार करते राजा व्यास हुए और उन विद्वान्त्र मुनि के आश्रम में पहुँचे ॥४॥ रथ से उतर कर उनके निकट उपस्थित हुए और प्रणाम करके ब्राह्मणी से मिलना, राक्षस से ममागम होना, ब्राह्मणी के दुष्ट स्वभाव का नष्ट होना और उसे उसने पति-गृह भेजकर पुनः उनके पास आने का उद्देश्य भी प्राप्ति ही प्राप्त नर कहा ॥५-६॥ ऋषि से कहा—हे राजर्षि ! आपके द्वारा किया गया कार्य और आपके पुनरागमन का उद्देश्य यह सब मैं पहिले ही जान चुका हूँ ॥७॥

प्रप्लुमामिहृत्स्वार्थमयेत्युद्विग्नमानसः ।
 त्वभागतोमहीपालगृणुवार्थं च यत्त्वया ॥८॥
 पत्नीघमार्थं वामानावात्सल्यप्रवलनृणाम् ।
 विरोपतश्च घमं स्य सक्तम्यजताहिताम् ॥९॥
 अपत्नीवनरोभूषणयोग्यो निजकर्मणाम् ।
 ब्राह्मण दान्रियोवापि वेदय दूद्रोऽपि वानृष ॥१०॥
 त्यजता भवता पत्नीनशो भनमनुजितम् ।
 घत्पाज्यो हि यथा भर्ता स्त्रीणां भार्या न यानृणाम् ॥११॥
 भगवन्निबरो म्येष विपाको भवमर्मणाम् ।
 नानुत्त नानुत्तलस्य यस्मात्त्यक्ता ततो मता ॥१२॥
 यद्यत्करोति तत्क्षान्तदहमानेन चेतसा ।
 भगवस्तद्विद्योर्वा त्विभीतेनान्तरात्मना ॥१३॥
 राम्प्रतनुयनेत्यक्तानवेक्षिष्वनुमागता ।
 नक्षितावापि विपिनेति ह त्वया घनिष्ठानरं ॥१४॥

फिर भी आप स्वयं ही मुझसे प्रश्न करें, इसी की प्रतीक्षा में था. हे राजन् ! अब आप अपने कर्त्तव्य के विषय में सुनिये ॥८॥ मनुष्यों के धर्म, अर्थ और काम के साधन का प्रबल कारण भार्या ही है, जो भार्या का त्याग कर देते हैं, वह धर्म का भी त्याग करते हैं ॥९॥ हे राजन् ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र ही क्यों न हो, पत्नी को त्याग करके अपने कर्म के अनुष्ठान में समर्थ नहीं होते ॥१०॥ हे राजन् ! आपने पत्नी का त्याग करके उचित कार्य नहीं किया है, जैसे स्त्री के लिये पति का त्याग अनुचित है, वैसे ही पति के लिये पत्नी का त्याग भी उचित नहीं है ॥११॥ राजा बोले—हे भगवन् ! मैं तो पत्नी का त्याग कर ही बैठा, अब मुझे क्या करना चाहिये ? ॥१२॥ उसके वियोग के कारण मेरा अन्तरात्मा क्षोभ से भरा हुआ है और चित्त दग्ध हो रहा है, इसीलिये उस पत्नी द्वारा किये सब अप्रिय आचरण भूल गया हूँ ॥१३॥ परन्तु, वन में त्यागी हुई मेरी पत्नी न जाने कहाँ चली गई होगी ? अथवा उसे सिंह, व्याघ्र या राक्षसों ने भक्षण कर लिया होगा, यह मुझे ज्ञात नहीं है ॥१४॥

नभक्षितासाभूपालसिंहव्याघ्रनिशाचरैः ।

सात्वविप्लुतचरित्रासाम्प्रतंतुरसातले ॥१५॥

सानीताकेनपातालमास्तेसाऽदूषिताकथम् ।

अत्युद्भुतमिदं ब्रह्मन्यथावद्वक्तुमर्हसि ॥१६॥

पातालेनागराजोऽस्तिप्रख्यातश्चक्रपोतकः ।

तेनदृष्टात्वयात्यक्ताभ्रममाणामहावने ॥१७॥

सारूपशालिनीतेनसानुरागेणपार्थिव ।

वेदितार्थेनपातालनीतासायुवतीतदा ॥१८॥

ततस्तस्यसुतासुभ्रूनन्दानाममहीपते ।

भार्यामनोरमाचास्थनागराजस्यधीमतः ॥१९॥

तथामातुःसपत्नीयंसाभवित्रीतिशोभना ।

दृष्टास्वगेहंसानीतागुप्ताचान्तःपुरेशुभा ॥२०॥

यदातुयाचितानन्दानददातिनृपोत्तरम् ।

मूकाभविष्यसीत्याहतदातांतनयांपिता ॥२१॥

श्रुति ने कहा—हे राजन् । निह, व्याघ्र अथवा राक्षस किसी ने भी उसका भक्षण नहीं किया है, वह इस समय विभुद्ध चरित्र युक्त होकर रसातल में रह रही है ॥१३॥ राजा बोले—हे ब्रह्मन् । मेरी पत्नी रसातल में किसके द्वारा गई और किस प्रकार विभुद्ध होकर रहती है, यह अद्भुत बात मुझे यथा-वत् बताने की कृपा करिये ॥१६॥ श्रुति ने कहा—हे राजन् । कपोतक नाम के एक नागराज रसातल में रहते हैं, उन्होंने आपके द्वारा परित्यक्त उस रूपवती नारी को महावन में भ्रमण करते हुए देखा तो वह उस पर प्रसुरक्त होगये और अपना प्रयोजन बता कर वह उसे रसातल में ले गये ॥१७-१८॥ उन नागराज की पत्नी का नाम मनोरमा तथा बन्धा का नाम मन्दा है ॥१९॥ उस बन्धा ने इस सुन्दरी की अपनी माता की होने वाली सपत्नी जानकर उसे अन्त पुर में छिपा लिया ॥२०॥ जब नागराज इस सुन्दरी के विषय में अपनी पुत्री से कहते तब वह उन्हें कुछ उत्तर न देती थी, इस पर नागराज ने अपनी पुत्री मन्दा की भूमी होने का पाप दे दिया ॥२१॥

एवशाप्तामुनातेनमाचास्येतत्रभूपते ।
 नीतातेनोरगेन्द्रेणघृतातस्मृतयासती ॥२२॥
 ततोराजापरहर्षमवाप्यतमृच्छन् ।
 द्विजवर्यस्वदौर्भाग्यवारणदयिताप्रति २३
 भगवन्मर्षलोबम्यमप्रीतिरनुमा ।
 विन्नुत्तवारणयेनस्वपत्नीनातिवत्सला ॥२४॥
 ममचासाप्रतीषेष्टाप्रासेभ्यांऽपिमहामुने ।
 साचमाप्रतिदुःशीनायूहितत्कारणद्विज ॥२५॥
 पाणिग्रहणकालेत्तमूयमीमननश्चरः ।
 मुक्ताचस्पतिभ्यावतत्रभार्गवलोकिता ॥२६॥
 तामृतेऽभवच्चन्द्रस्तस्या सोममुतस्तया ।
 पत्स्परविपक्षातीननःपार्थिवतेभृशम् ॥२७॥
 उद्गच्छवस्त्वधर्मेणपरिपालयमेदिनीम् ।
 पत्नीमहामागर्वाञ्जुरुधर्मवतीं क्रिया ॥२८॥

इत्युवतेप्रणिपत्यैनमारुह्यस्यन्दनंततः ।

उत्तमःपृथिवीपालआजगामनिजंपुरम् ॥२६॥

हे राजन् ! वह नागकन्या इस प्रकार अपने पिता के द्वारा शापित हुई है, फिर भी उसने इस सुन्दरी को पकड़ रखा है ॥२२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा— इस पर राजा अत्यन्त हर्षित हुए और उन्होंने अपनी पत्नी के अपने प्रति अभ्रिय भाव का कारण ऋषि से पूछा ॥२३॥ राजा बोले—हे भगवन् ! सभी मनुष्य मुझसे अत्यन्त प्रेम करते हैं, परन्तु मेरी अपनी ही पत्नी मुझ में अनुरागिणी नहीं है, इसका कारण क्या है ? ॥२४॥ हे महामुने ! मेरे प्राणों से अधिक प्रिय होने पर भी वह पत्नी मेरे प्रति कुव्यवहार करती है, उसका कारण मुझे बता-इये ॥२५॥ ऋषि ने कहा—जित समय आपका विवाह हुआ था, उस समय आप पर सूर्य, मंगल और शनिश्चर की तथा आपकी पत्नी पर बुध और बृहस्पति की दृष्टि थी ॥२६॥ उसी भूहस्त में आपके बुध और आपकी पत्नी के चन्द्रमा परस्पर में घोर विपक्षी थे ॥२७॥ अब जाकर अपनी पत्नी से मिलो और सब प्रकार धर्म-कार्यों का अनुष्ठान और पृथिवी का पालन करो ॥२८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—महर्षि के ऐसा कहने पर महाराज उत्तम ने उन्हें प्रणाम किया और रथारूढ़ होकर अपने नगर में आये ॥२९॥

६४—गौतम मनु की उत्पत्ति

ततःस्वनगरंप्राप्यतंददर्शद्विजंनृपः ।

समेतंभार्ययाचैवशीलवत्यामुदान्वितम् ॥१॥

राजवर्यकृतार्थोऽस्मियतोधर्मोऽहिरक्षितः ।

धर्मज्ञेनेहभवताभार्यामानयतामम ॥२॥

कृतार्थस्त्वंद्विजश्चेष्टनिजधमनिपालनात् ।

वयंसङ्कटिनोविप्रयेषांपत्नीनवेश्मनि ॥३॥

नरेन्द्रसाहिविपिनेभक्षिताश्चापदर्यदि ।

क्रोधस्यवशमागम्यधर्मोऽनावेक्षितस्त्वया ।

अलतया किमन्यस्यानपाणिमृं ह्यतेत्वया ।
 सतिराज्ञागृहेकन्या शोभनानृपनन्दन ॥४॥
 नभक्षिताभेदयिताश्चापदे.माहिजीवति ।
 अविदूषितचारित्र्याकथमेतत्करोम्यहम् ॥५॥
 यदिजीवतितभार्थानचैवव्यभिचारिणी ।
 अपत्नीकत्वतो जन्मविपापक्रियतेरया ॥६॥
 घानोतापिहिंसाविप्रप्रतिकूलामदेवमे ।
 दुसायनसुषोयालतस्याभेन्नोनवमयि ।
 यथातेब्राह्मणीविप्रवशमातवसुदरी ।
 तथात्वकुह्यस्नमेयथामावशगामिनी ॥७॥

मानग्डेयजी ने कहा—महाराज उत्तम ने अपने नगर में पहुँचकर उस ब्राह्मण की अपनी लीलवती पत्नी के साथ हृष सहित स्थित देखा ॥१॥ ब्राह्मण ने राजा से कहा—ए नृपश्रेष्ठ ! आपने यम व ज्ञाता होने के कारण मेरी पत्नी को तात्पर धर्म की रक्षा की है इसमें मैं धन्य हुआ हूँ ॥२॥ राजा ने कहा—हे द्विजवर ! आप अपने धर्म पालन के कारण इतकृत्य हुए हैं, परन्तु धरे घर में भार्या नहीं है इर्वात्रए मैं घोर विपत्ति में पड़ा हूँ ॥३॥ ब्राह्मण बोला—हे राजन् ! आपने क्रोधवश उस समय धर्म को नहीं देखा, अब उसे वही हिमव जीवो ने भक्षण कर लिया हो या किसी घोर प्रकार से मर चुकी हो या उसे उमरे मिरने की आशा न करके किसी अन्य कथा से विशाह बंधो नहीं कर मन है राजन् ! राजाघ्रा के घर अनेक बच्चाएँ होती ॥४॥ राजा ने कहा—मेरी पत्नी का किसी ने भक्षण नहीं किया, वह अभी भी विष्णु चरित्र से जीवितावस्था में है फिर मैं अन्य स्त्री का ग्रहण करूँ ? ॥५॥ ब्राह्मण बोला—यदि आपकी पत्नी अभी तक श्रेष्ठ चरित्र वाली होकर जीवित है तो उस छोड़कर पाप क्यों करते हैं ? राजा ने कहा—हे ब्रह्मा ! मैं उससे भी आऊँगा तो वह मेरे घनुरन नहीं होगी, क्योंकि उसकी प्रीति मुझमें नहीं है इसमें मुझे दुःख ही होगा, अब आप वह उपाय करिये जिससे वह मेरे संग में हो सके ॥६॥

त्वयिसंप्रीतयेतस्यावरेष्टिरूपकारिणी ।
 क्रियतेमित्रकामैर्यामित्रविन्दांकरोमिताम् ॥८
 अप्रीतयोःप्रीतिकरीसाहिसंजननीपरम् ।
 भार्यापत्योमनुष्येन्द्रतांतवेष्टिकरोम्यहम् ॥९
 यत्रतिष्ठतिसासुभ्रूस्तवभार्यामहीपते ।
 तस्मादानीयतांसातेपरांप्रीतिमुपैष्यति ॥१०
 (तस्यास्तवहितार्थायघर्म्मोयत्रनसीदति)
 इत्युक्तःसतुनिखिलसम्भारानननीपतिः ।
 आनिनायचकारेष्टिसचतांद्विचसत्तमः ॥११
 सप्तकृत्वःसतुतदाचकारेष्टिपुनःपुनः ।
 तस्यराज्ञोद्विजश्रेष्ठोभार्यासम्पादनायवै ॥१२
 यदारोपितमंत्रांताममन्यतमहामुनिः ।
 स्वभर्त्तरितदाविप्रस्तमुवाचनराधिपम् ॥१३
 आनीयतांनरश्रेष्ठयातवेष्टात्मनोऽन्तिकम् ।
 भुंक्ष्वभोगांस्तयासाद्धयजयज्ञांस्तयादृतः ॥१४

ब्राह्मण बोला—मित्रता की कामना वाले उपकारी पुरुष जिस यज्ञ को करते हैं, उसी मित्रविन्दा नामक यज्ञ को मैं तुम्हारी पत्नी के लिए करूंगा ॥८॥ हे राजन् ! वह यज्ञ असन्तुष्ट स्त्री-पुरुष में प्रीति कराने वाला और शक्ति का देने वाला है, मैं उसी का आपके निमित्त अनुष्ठान करूंगा ॥९॥ आपकी वह पत्नी जहाँ रहती है, वहाँ से उसे ले आइये, वह अवश्य ही आपके प्रति परम कर्तव्य करने वाली हो जायगी ॥१०॥ (तुम्हारे हित के लिए ऐसे अवसर में धर्म की हानि नहीं होती) मार्कण्डेयजी ने कहा—ब्राह्मण का वचन सुनकर महाराज उत्तम ने सम्पूर्ण यज्ञ सामग्री उपस्थित की और उस ब्राह्मण ने भी यज्ञ का अनुष्ठान किया ॥१२॥ जब उसने उस राजमहिषी को अपने स्वामी के प्रति अनुरक्त समझा तब वह राजा से बोला ॥१३॥ हे राजन्, अब अपनी उस पत्नी को लाकर सांसारिक सुखों को भोगिये, और यत्न पूर्वक यज्ञ कार्यों को सम्पन्न करिये ॥१४॥

इत्युत्तमस्तेनविप्रेणभूपालोविस्मितस्तदा ।
 सस्मारतमहावीर्यसत्त्वसन्धनिशाचरम् ॥१५॥
 स्मृतस्तेनतदासद्य समुपेत्यनराधिपम् ।
 विकरोमीतिसोऽप्याहप्रणिपत्यमहामुने ॥१६॥
 ततस्तननरेन्द्रेणविस्तरेणनिर्वादते ।
 गत्वापातात्तमादायराजपत्नीमुपाययौ ॥१७॥
 धानीताच्चातिहादेनसाददशतदापतिम् ।
 उवाचचप्रसीदेतिभूयोभूयोमुदान्विता ॥१८॥
 सत सगजारभसापरिष्वज्याहमानिनीम् ।
 प्रियेप्रमत्तएवाहभूयाज्येवत्रवीपिकिम् ॥१९॥
 यदिप्रसादप्रवणनरन्द्रमयितेभन ।
 तदेतदभियाचेत्वातत्कुरुष्वममाहणम् ॥२०॥
 नि शक्नेत्रूहिमत्तायद्भवत्याकिचिदोप्सितम् ।
 तदलभ्यनतभीरतवायत्तोऽस्मिनान्यथा । ८

मार्कण्डेयजी न ब्रहा—ब्रह्माण की यह बात सुनकर राजा अत्यन्त
 विस्मय को प्राप्त हुए और उ होने उसी समय उस महान् पराक्रमी राक्षस का
 स्मरण किया ॥१५॥ स्मरण करत ही वह राक्षस उसी समय उपस्थित हुआ
 और उसी प्रणाम करना हुआ बोला—मुझे क्या आज्ञा है ? ॥१६॥ तब
 राजा न मब बात उस विस्तारपूर्वक बताया और तब वह पाला भ जाकर
 रानी को भीष्ट ही लहर मा गया ॥१७॥ रानी ने वहाँ आकर हादिक प्रीति
 सहित प्रपन्न पति को देखा और प्रसन्न होयो इस प्रकार बारम्बार विचार
 करने लगी ॥१८॥ फिर राजा ने उत्पुरुषापूर्वक उसे हृदय से लगा लिया
 और बोले—हे प्रिये ! मैं तो तुम पर प्रसन्न ही हूँ । फिर तुम बारम्बार इस
 प्रकार क्यों कहती हो ? ॥१९॥ रानी न ब्रहा—हे महाराज ! आप यदि मुझ
 पर प्रमत्त हैं तो मेरे योग्य सम्मान को प्राप्त रक्षा करें ॥२०॥ राजा बोले—
 अपनी निश्चय बात ब्रह्मा रहित मन में कहो, मेरे पास तुम्हारे लिए अप्राप्त
 वस्तु ही नहीं है, मैं तुम्हारे ही वश में हूँ ॥२१॥

मदर्थतेन नागेन सुता शप्तासखीमम ।

मूकाभविध्यसीत्याहसाचमूकत्वमागता ॥२२॥

तस्याःप्रतिक्रियांप्रीत्याममशक्रोतिचेद्भुवान् ।

वाग्विधातप्रशान्त्यर्थततःकिंकृतमम ॥२३॥

ततःसराजातंविप्रमाहास्मिन्कीदृशीक्रिया ।

तन्मूकतापनोदायसचतंप्राहपार्थिवम् ॥२४॥

भूपसारस्वतीमिष्टिकरोमिवचनात्तव ।

पत्नीतवेयमानृण्यंयातुतद्वाक्प्रवर्तनात् ॥२५॥

इष्टिसारस्वतींचक्रेतदर्थसद्विजोत्तमः ।

सारस्वतानिसूक्तानिजजापचसमाहितः ॥२६॥

ततःप्रवृत्तवाक्यांतांगर्गःप्राहरसातलं ।

उपकारःसखीभर्त्राकृतोऽयमतिदुष्करः ॥२७॥

इत्थंज्ञानंसमासाध्यनन्दाशीघ्रगतिःपुरम् ।

ततोराज्ञींपरिध्वज्यस्वसखोमुरगात्मजा ॥२८॥

तंचसंस्तूयभूपालंकल्याणोक्त्यापुनःपुनः ।

उवाचमधुरनागीकृतासनपरिग्रहा ॥२९॥

रानी ने कहा—नागराज की कन्या मेरी सखी है और वह नागराज के शापवश भूँगी हो गई है ॥२२॥ यदि आप मुझ पर प्रीति करते हैं और उसके भूँगेपन को दूर करने में समर्थ हैं, तो आपने अवश्य ही मेरा सब कुछ कार्य किया समझो ॥२३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तब राजा ने उस ब्राह्मण से नागकन्या के भूँगेपन को दूर करने का उपाय पूछा ॥२४॥ ब्राह्मण ने कहा—हे राजन् ! आपके वचन मानकर मैं सरस्वती की इष्टि करूँगा, क्योंकि आपकी यह पत्नी उसकी मूकता दूर होने पर ही ऋण से छूटेगी ॥२५॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तब उस ब्राह्मण ने सरस्वती की इष्टि का प्रारम्भ किया और यत्न पूर्वक सारस्वत सूक्त को जपने लगा ॥२६॥ तदनन्तर गर्ग ऋषि ने पाताल में वाक्शक्ति को प्राप्त हुई उस नागकन्या से कहा कि तुम्हारी सखी ने तुम्हारा

यह अत्यन्त कठिन उपकार किया है ॥२७॥ तब वह नागकन्या नन्दा अपनी सखी के लिए उस नगर में आई और उतने राती को आलिंगन किया ॥२८॥ और वह राजा के भी गुण गाती हुई आसन पर बैठकर मगलमय वचनो द्वारा कहने लगी ॥२९॥

उपकार कृनोवीरभवतायोममाधुना ।

॥३०॥

तस्याप्रतिहतचक्रमस्याभुविभविष्यति ॥३१॥

सन्धार्यंशाम्बतत्रजोधर्मानुष्ठानतत्पर ।

मन्वन्तरेऽत्रोपीमान्भविष्यतिसर्वमनुः ॥३२॥

इतिदत्तावरतस्मिन्नागराजमुनातत ।

सत्सीतासपरिव्यज्यपातालमगमन्मुने ॥३३॥

तत्रतस्यतयासाद्धैरमतपृथिवीपते ।

जगामयाम मुमहान्प्रजापालयतस्तथा ॥३४॥

ततःसत्तरमात्मनोऽङ्गेऽङ्गोमहात्मन ।

पीर्णमास्याययाकांतश्चन्द्रमपूर्णः ॥३५॥

हे बीर ! आपन जा मरा तो उपकार किया है, उससे मेरा हृदय अत्यन्त आनन्दित हुआ है । अब मैं जो कुछ कहती हूँ, उसे श्रवण करो ॥३०॥ हे राजन् ! आपकी अत्यन्त पराक्रमी पुत्र की प्राप्ति होगी और इस भूमण्डल पर उसका भगवद् राज्य होगा ॥३१॥ आपका स्वर्ण साधक, क्षात्र में उत्तमज्ञानी, धर्मनुष्ठान में सर्वत्र सत्पर वह मेनावी पुत्र मन्वन्तर का स्वामी मनु होगा ॥३२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इस प्रकार राजा की बारम्बार कर देनी हुई नागकन्या अपनी सखी का प्रगाढ़ आलिंगन करके अपने लीर को गई ॥३३॥ इस पानी के माय विहार करते हुए और प्रजा का पालन करते हुए राजा को बहुत समय व्यतीत हो गया ॥३४॥ फिर राती के गर्म में पूर्णिमा का चन्द्रमण्डल के मगन श्रेष्ठ कान्ति वाले पुत्र की उनसे उत्पत्ति हुई ॥३५॥

तस्मिंश्चातेमुदंप्रापुःप्रजाःसर्वाःसहामरा ।
 देवदुन्दुभयोनेदुःपुष्पवृष्टिःपपातच ॥३६॥
 तस्यदृष्ट्वावपुःकान्तंभविष्यशीलमेवच ।
 श्रौत्तमश्चेतिमुनयोनामचक्रुःसमागताः ॥३७॥
 जातोऽयमुत्तमेवंशेबालकालेतथोत्तमे ।
 उत्तमावयवस्तेनश्रौत्तमोऽयंभविष्यति ॥३८॥
 उत्तमस्यसुतःसोऽथनाम्नाख्यातस्तथोत्तमः ।
 मानुरासीत्तत्प्रभावोभागुरेश्रूयतांमम ॥३९॥
 उत्तमाख्यातमखिलंजन्मचैवोत्तमस्ययः ।
 नित्यंशृणोतिविद्वेषंसकदाचिन्नगच्छति ॥४०॥
 इष्टंदरिस्तथापुत्रैर्बन्धुभिर्वाकदाचन ।
 वियोगोनास्यभविताशृण्वतःपठतोऽपिवा ॥४१॥
 तस्यमन्वन्तरंब्रह्मन्वदतोममविस्तरात् ।
 श्रूयतांतत्रयश्चन्द्रोयेचदेवास्तथर्षयः ॥४२॥

उनके जन्म लेने पर समस्त प्रजा आनन्द में मग्न होगई, देवताओं द्वारा
 बाद्य वादन और पुष्प वृष्टि की गई ॥३६॥ आगत मुनियों ने उसके स्वभावादि
 को देखकर उसका 'श्रीसुतम' नाम रखा ॥३७॥ मुनिगण बोले कि इसने उत्तम
 कुल, उत्तम काल और उत्तम अङ्ग सहित जन्म ग्रहण किया है, इसलिये यह
 'श्रीसुतम' नाम से प्रसिद्ध होगा ॥३८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे मुने ! उत्तम
 के पुत्र होने से वह 'श्रीसुतम' नाम से प्रसिद्ध होकर मनु होगये, अब उनका
 प्रभाव कहता हूँ उसे सुनो ॥३९॥ जो मनुष्य राजा उत्तम के आख्यान और
 श्रीसुतम मनु के जन्म का वृत्तान्त श्रवण करते हैं, वे कभी विद्वेष को प्राप्त नहीं
 होते ॥४०॥ तथा इसके सुनने या पढ़ने वालों को कभी इष्ट, मित्र, पुत्र, स्त्री
 और बन्धुओं का वियोग सहन नहीं करना पड़ता ॥४१॥ अब उनके मन्वन्तर
 के वृत्तान्त का विस्तार पूर्वक वर्णन करता हूँ, उसे श्रवण करो, हे ब्रह्मन् ! उस
 समय के देवताओं और ऋषियों के विषय में भी कहता हूँ ॥४२॥

६५—श्रीचम मन्वन्तर कथन

मन्वन्तरेतृतीयेऽस्मिन्नात्तमस्यप्रजापते ।
 देवानिन्द्रमृषीन्भूपान्निवोधदतोमम ॥१॥
 स्वधामानस्तथादेवायथानामानुषारिण ।
 मत्पारयश्चद्वितीयाऽन्यस्मिन्दशानातयागण ॥२॥
 तृतीयेतुमगदवा सिगान्यामुनिसत्तम ।
 शिवास्वप्पतम्नेतुश्रुता पापप्रणाशना ॥३॥
 प्रतदनाख्यश्चगगोदेवानामुनिसत्तम ।
 चतुर्थं स्तप्रर्णयितओत्तमस्यान्तरेमनो ॥४॥
 वशवर्तिन पचमेऽपिदेवास्तनगणद्विज ।
 यथास्यातस्वरूपास्तुसर्वेवमहामुने ॥५॥
 एतेदेवगणा पचमृतायशभुजस्तथा ।
 मन्वन्तरेमनुश्रेष्ठे सर्वेद्वादशकागणा ॥६॥
 तेषामिन्द्राग्रहाभागम्येनाक्यम्यश्चराऽभवत् ।
 गतनगूनामात्यमुनान्निर्नामनामत ॥७॥
 यस्यापमगनाजायनामाक्षरविभूयिता ।
 यथापिमानर्ग्यामीयतेतुमहीतले ॥८॥
 मानन्देयजी न बह—ह मुन । अब श्रीतम प्रजापति व तृतीय मन्वन्तर
 के देवता, इन्द्र और क्षुण्डि के विषय में कहना है थवण करो ॥१॥ पहला
 'स्वधामा' नामक ३ देवताओं व नाम के अनुरूप ही स्वर्ग्योति से प्रवाशित
 है और द्वितीय गण का नाम 'स्तव्य' है ॥२॥ तृतीय गण 'सिब' नाम से प्रसिद्ध
 है तथा इमने नाम का स्मरण करते ही बड़े पाप को नष्ट करके 'सिब' नाम
 को सार्यक करता है ॥३॥ ह मुन । श्रीतम मन्वन्तर के देवताओं का चतुर्थगण
 'प्रतर्देन' नाम वाला है ॥४॥ पचम गण में 'वशवर्ती' नामक देवता स्थित है,
 वे सब नाम के ही अनुरूप कार्य करन वाले हैं, ठे द्विजवर । इस मन्वन्तर में
 मग भोगी देवताओं ने पाँच प्रकार के गण तथा प्रत्येक गण में द्वादश देवता

हैं ॥५-६॥ उन देवताओं के इन्द्र 'सुशान्ति' नामक हैं, जो सी अश्वमेध यज्ञ करके तीनों लोक के गुरु होते हैं ॥७॥ उन देवेन्द्र सुशान्ति का यह नाम और अक्षर से विभूषित वृत्तान्त भूतल में अब भी कहा जाता है ॥८॥

सुशान्तिर्देवराट्कान्तःसुशान्तिसंप्रयच्छति ।

सहितःशिवसत्याद्यैस्तथैववक्षर्वातिभिः ॥९

अजः परशुचिर्दिव्योमहाबलपराक्रमः ।

पुत्रास्तस्यमनोरासन्विख्यातास्त्रिदशोपमाः ॥१०

तत्सूतिसम्भवैर्भूतिःपालिताभून्नरेश्वरैः ।

यावन्मन्वन्तरंतस्यमनोरुत्तमतेजसः ॥११

चतुर्गुणानांसंख्यातासाधिकाह्येकसप्ततिः ।

कृतत्रेतादिसंज्ञानियान्युक्तानिपुरामया ॥१२

स्वतेजसाहितपसोवरिष्ठस्यमहात्मनः ।

तनयाश्चान्तरेतस्मिन्सप्तसप्तर्षयोभवन् ॥१३

तृतीयमेतत्कथितंतवमन्वन्तरमया ।

तामसस्यचतुर्थतुमनोर्गन्तरमुच्यते ॥१४

वियोनिजन्मनोयस्ययशसाद्यातितंजगत् ।

जन्मतस्यमनोर्ब्रह्मच्छूयतांगदतोमम ॥१५

अतीन्द्रियमशेषाणामनूनांचरितंतथा ।

तथाजन्मापिविज्ञेयंप्रभावश्चमहात्मनाम् ॥१६

वह तेजस्वी देवेन्द्र सुशान्ति शिवादि देवताओं के सहित सुख शान्ति के मे वाले हैं तथा उनके वंश में रहने वाले देवता भी इसी प्रकार के स्वभाव ले हैं ॥९॥ इन श्रीतम मनु के तीन पुत्र देवताओं के समान अत्यन्त पराक्रमी ए थे, जिनके नाम अज, परशुचि और दिव्य थे ॥१०॥ उनका मन्वन्तर जितने शतों तक रहा, उतने काल तक उनके वंशधर इस पृथिवी पर राज्य करते हैं ॥११॥ इस मन्वन्तर में सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलि यह चारों युग हुए , उक्त प्रकार की कुछ अधिक चतुर्गुणियों का मन्वन्तर कहा गया है ॥१२॥ इस मन्वन्तर में महातपा नामक महात्मा के सात पुत्र ही सप्तर्षि हुए थे ॥१३॥

यह तृतीय मन्वन्तर का कृतान्त हुआ, अब चतुर्थ मन्वन्तर के विषय में कहता है ॥१५॥ विभिन्न योनि जन्मा जिन मनु के मुख से सम्पूर्ण विश्व प्रकाशमान हुआ उन मनु की उत्पत्ति कहता हूँ, उसे तुम ध्यान करो ॥१५॥ इन सभी महात्मा मनुष्यों का चरित्र और उनके जन्म के प्रभाव को अवश्य जानना चाहिए ॥१६॥

६६—तामम मन्वन्तर

राजामूदमुविचिन्त्यात स्वराष्ट्रोनामवीर्यवान् ।
 भनेकयज्ञकृत्प्राज्ञ मयामेव्यपराजित ॥१॥
 तस्यायु मुमहृदतामूयैणमुमहाद्युते ।
 (पुराभगवताविप्रमग्निगागचितेनवं ।)
 पत्नीनाच्चक्षतस्तस्यघन्यानामभवद्दिदृज ॥२॥
 तस्यदोषायुपःपत्न्योनातिदीर्घायुगोमुने ।
 बालेनजग्मुर्निधनभृत्यमन्त्रिजनास्तथा ॥३॥
 समार्थाभिस्तयामुक्तोभृत्यश्चमहजन्मभि ।
 उद्विग्नचेता मप्रापवीयहानिमहर्निशम् ॥४॥
 तवीर्यहीननिभृतंभृत्यंस्त्यक्तमुदुग्धितम् ।
 प्रनन्तगोविमर्दाह्योराज्याक्ष्यावितवास्तदा ॥५॥
 राज्याक्ष्युक्तसौऽपिवनगत्वानिविष्णुमानस ।
 तपन्तेपेमहानागोवितस्तापुलिनेस्थित ॥६॥
 ग्रीष्मेपचतपाभूत्वावर्षास्वश्रावणाशक ।
 जलसायीवसिनिरेनिराहारोयतव्रत ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—स्वराष्ट्र नामक एक राजा भनेक यज्ञों का करने वाला, युद्ध में सदा जीतने वाले, अत्यन्त पराजयी और जानी धै ॥१॥ हे द्विज ! इनके मन्त्रियों की आराधना से प्रसन्न हुए भगवान् मास्तर ने उनको दोष-

दुष्य वज्रया था, उन राजा की 'धन्या' नाम की एक अत्यन्त सुन्दर भार्या थी ॥२॥ परन्तु, उन राजा की भार्याएँ दीघायु वाली नहीं थीं, इसलिये वे शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हुईं और मन्त्रिगण तथा भृत्यगण भी काल के बशी-भूत होगये ॥३॥ राजा अपने सुहृदों, भृत्यों और भार्याओं के वियोग में उद्विग्न रहते हुए दिनोंदिन पराक्रम-हीन होने लगे ॥४॥ अन्तर प्राप्त कर एक निकटस्थ विमर्द नाम के राजा ने इस बोर्यहीन और बिस्वासो भृत्यों से रहित दुःखित हृदय राजा को राज्य से 'अष्ट' कर डाला ॥५॥ वह राजा अपने राज्य से हटने के कारण दुःख पूर्ण हृदय से वितस्तानदी के तट पर वन में रहते हुए तप करने लगे ॥६॥ वह शीघ्र काल में पञ्चाग्नि से तपते, वर्षा के समय खुले में बैठ कर भीगते और शीतकाल में जल में शयन करते आहार त्याग कर संयम पूर्वक तप करते थे ॥७॥

ततस्तापस्यतस्तस्यप्रावृट्कालेमहान्प्लवः ।

बभूवानुदिनमेघैर्वर्षद्भिरनुसन्ततम् ॥८॥

नदिग्विज्ञायतेपूर्वादक्षिणावानपश्चिमा ।

नोत्तरातमसासर्वमनुलिप्तमिवाभवत् ॥९॥

ततोऽतिपूरेणनृपःसनद्याप्रैरितस्तटम् ।

प्रार्थयन्नपिनावापह्नियमाणोऽतिधेगिना ॥१०॥

अयदूरेजलीधेनह्नियमाणोमहीपतिः ।

आससादजलेरौहीसपुच्छेजगृहेचताम् ॥११॥

तैनप्लवेनसययाबूह्यामनोमहीतले ।

इतश्चेतश्चान्धकारेआससादतटंततः ॥१२॥

विस्तारिपङ्कमत्त्यर्थदुस्तरंसनृपस्तरम् ।

तथैवकुप्यमाणोऽन्यद्रम्यंवनमवापसः ॥१३॥

तत्रान्धकारेसारौहीचकर्षवसुधाधिपम् ।

पुच्छेलग्नमहाभागंकृशंधमनिसन्ततम् ॥१४॥

फिर एक दिन, जब राजा तपस्या में रत थे, तब घोर वृष्टि होने से पृथिवी सर्वत्र जलमयी होगई थी ॥८॥ दिशाएँ अन्धकार से ढक गई थीं, इस-

लिए दण्डिणादि रिमी भी दिया का ज्ञान नहीं हो रहा था ॥१६॥ तब वह राजा
 बन न वेग से नदी तट में प्रवाहित होत हुए उस नदी के तट को नहीं पा
 सके ॥१७॥ फिर वह बन प्रवाह में बहने लगे, तभी उन्हें एक रोही बिराई
 थी, ता उ होने उसकी पूछ पकड़ ली ॥१८॥ फिर उस विद्याल जल समूह के
 सिंचे हुए पृथिवी के उस में पड़ने और धँसे में इधर-उधर टटोल कर बिनारे
 को प्राप्त हुए ॥१९॥ मृगी के द्वारा लिखते हुए राजा उस विस्तृत और बंठिता
 से पार की जाने वाली कीचड़ से पार होकर एक सुरम्य वन में पहुँच गये ॥२०॥
 वह मृगी पूछ का पकड़े हुए उन महाभाग राजा को अधकार में लीने
 लगे ॥२१॥

तस्याश्चस्पृशसभूतामवापमुदमुत्तमाम् ।
 मोऽन्यकारेभ्रमन्भूपोमदनाकृष्टमानस ॥२२॥
 विजायमानुरामतपृष्ठस्पृशतत्परम् ।
 नरेन्द्र तवृषस्यतमामृगीतमुवाचह ॥२३॥
 विपृष्ठ वेपथुमतावरणस्पृशसेमम् ।
 ग्रन्थयंवात्म्यकायस्यसज्जानानृपतेगति ॥२४॥
 नास्यानेवामनायातनागम्याहनवश्चर ।
 नितुत्त्वत्सङ्गमविघ्नमपनाले करोतिमे ॥२५॥
 इतिश्रुत्वावचनस्यामृग्याश्चजगतापति ।
 जातकीतूहनारोहीमिदवचनमब्रवीत् ॥२६॥
 कात्वन्नू हिमृगीवाक्यकथमानुपबद्धदेत् ।
 कर्त्तव्यतालोपाविघ्नत्वत्सङ्ग कुरतेमम ॥२७॥
 प्रहृष्टोदपिताभूप्रशगाममुत्पलावती ।
 माम्यादीताग्रमहिषोदुहितादृढधन्यन ॥२८॥

२२ महाराज स्वराष्ट्र बाधरे में विचरते करते हुए मृगी के स्पर्श से
 बासागत वित्त जान हारर धत्वन्त मानन्दित हुए ॥२२॥ जब उन्होंने उस
 मृगी के पृष्ठ भाग का उस वन प्रवेश में जाकर स्थान लिया, तब उन्हें अनुरक्त
 बासागर वह मृगी बाजी ॥२३॥ है गवन् । अपन कम्पित हाथों से मेरी पीठ

का इस प्रकार स्पर्श क्यों कर रहे हो ? इस स्पर्श का अन्य भाव प्रतीत हो रहा है ॥१७॥ हे राजन् ! आपकी इच्छा अव्योग्य के प्रति नहीं, गमन योग्य के प्रति ही हुई है परन्तु यह लोल आपके संसर्ग में बाधक हैं ॥१८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—मृगी की यह बात सुनकर राजा ने विस्मय पूर्वक उससे कहा ॥१९॥ तुम कौन हो ? मृगी होकर भी मानवी के समान किस प्रकार बोल रही हो तथा तुम्हारे संसर्ग में बाधा देने वाले कौन हैं, यह सब मुझे बताओ ॥२०॥ मृगी बोली—हे राजन् ! मैं आपकी प्रियतमा राज्यद्विषी तथा सभी रानियों में श्रेष्ठ एव वृद्धन्वा की पुत्री उत्पलावती हूँ ॥२१॥

किन्तुयावत्कृतकर्मयेनेमांयोनिमागता ।

पतिव्रताधर्मपरासाचेत्थंकथमीदृशी ॥२२॥

अहंपितृगृहेवालासखीभिःसहितावनम् ।

रन्तुंगताददर्शकंमृगंमृग्यासमागतम् ॥२३॥

ततःसमीपवर्तिन्यामयासाताडितामृगी ।

मयात्रस्तागतान्यत्रक्रुद्धःप्राहततमृगः ॥२४॥

मूढेकिमेवंमत्तासिधिवत्तेदौःशील्यमीदृशम् ।

आधानकालोयेनायत्त्वयामेविफलीकृतः ॥२५॥

चार्वश्रुत्वाततस्तस्यमानुषस्येवभाषतः ।

भीतातमब्रुवंकोऽसीत्येतांयोनिमुपागतः ॥२६॥

ततःसप्राहपुत्रोऽहमृग्वेनिवृत्तिचक्षुषः ।

सुतपानाममृग्यान्तुसाभिलाषोमृगीऽभवम् ॥२७॥

इमांचानुगतःप्रेम्णावाच्छ्रितश्चानयावने ।

त्वयावियोजितादुष्टेतस्मान्छापंददामिते ॥२८॥

राजा ने कहा—तुमने ऐसा कौन-सा कर्म किया है, जिसके कारण तुम्हें इस योनि को प्राप्त होना पड़ा है ? मेरी वह भार्या तो पतिव्रता और धर्म-परायण थी फिर उसकी ऐसी दशा क्यों हुई ? ॥२२॥ मृगी ने कहा— मैं अपने पितृगृह में, वाल्यकाल में अपनी सखियों के साथ क्रीडा के लिये वन में गई थी, वहाँ एक मृग से युक्त मृगी को मैंने देखा ॥२३॥ फिर उसके पास

जाकर मैंने उस पर प्रहार किया तो वह मृगो मय के कारण वहाँ से चली गई, तब प्रीति होकर वह मृग मुझमें बोला ॥२४॥ हे मूर्ख ! तेरी इस दुःशीलता का विनश्वर है, तू ऐसी मत्त क्यों हो रही है ? तूने मेरे गर्भाधान काल को विषम कर दिया है ॥२५॥ तब मृग को मनुष्य के समान धोतते देसकर मुझे क्षयन्त मय दृष्टा घोर मैंने उसमें पूछा—आपको इस मृगयोनि को प्राप्ति क्यों हुई है ? ॥२६॥ मृग ने कहा—मैं निवृत्तिबन्धु मुनि का पुत्र सुनपा हूँ, मैंने मृगी को इच्छा से मृग रूप धारण किया है ॥२७॥ इस मृगी की अभिलाषा से, इसकी प्रीतिवश हो मैं इसका अनुयायी हुआ हूँ, परन्तु तूने उससे मेरा विषी बना दिया, इसलिय मुझे क्षाप्त होगा ॥२८॥

मयाचोक्त तवाज्ञानादपराध कृतोऽमुने ।
 प्रसादकुर्यापमेनमवान्दातुमर्हति ॥२९॥
 इत्युक्तं प्राहमानोऽपि मुनिरित्यमहीपते ।
 न प्रपच्छामि नापतेमद्यात्मानददासिते ॥३०॥
 मयाचोक्तं मृगो नाहमृगरूपधरावने ।
 न ज्यसेऽज्यामृगीतावन्मयि भावानिवर्त्यनाम् ॥३१॥
 इत्युक्तं गोपराज्ञः सग्राहस्फुरिताघर ।
 नाहमृगीत्ययेत्युक्तं मृगीमूढमविध्यमि ॥३२॥
 ततोभृशप्रव्ययिताप्रगम्यमुनिमब्रुवम् ।
 स्वल्पस्यमतिकृदप्रसीदेति पुनः ॥३३॥
 बालानभिज्ञायावधानाततः प्रोक्तमिदमया ।
 पितर्यसतिनारीभिर्विपतेहिपति स्वयम् ॥३४॥
 सपितातेन च बाहूणोमिमुनिमत्तम ।
 मापराचाचवापादोप्रसीदेपानमाम्यहम् ॥३५॥

मैंने कहा—हे मुनि धेठ ! मुझमें वह अपराध अज्ञान के कारण है, दृष्टा है, आप मुझ पर प्रसन्न होकर मुझे क्षाप्त न करें ॥२९॥ हे महाराज ! मेरी बात सुनकर वे मुझमें बोले—यदि मैं तुझमें आत्मदान कर नूँ तो तुम्हें क्षाप्त नहीं करूँगा ॥३०॥ मैं मृगी नहीं हूँ, वन में आपकी इसी मृगी प्राप्ति

हो जायगी, इसलिये मेरे प्रति अपनी इस इच्छा को शान्त कीजिये ॥३१॥
 ऐसा सुनते ही उनके नेत्र क्रोध से लाल होगये और उन्होंने कम्पित होठों से
 कहा—तूने 'मैं मृगी नहीं हूँ' यह कहा है, इसलिये तू मृगी होगी ॥३२॥ तब
 मैंने व्यथित चित्त से मृग रूप धारी उन मुनि को प्रणाम पूर्वक कहा—मैं बाजा
 हूँ, बात कहना भी नहीं जानती, इसीसे ऐसा कह बैठो, आप मेरे प्रति प्रसन्न
 हों, यदि पिता न हो तो कन्या अपने पति का वरण स्वयं करती है ॥३३-३४॥
 परन्तु, मैं अपने पिता के होते हुए आपका वरण कैसे कर सकती हूँ ? हे प्रभो !
 मेरे अपराध को क्षमा करिये, मैं आपके चरणों में वन्दन करती हूँ, आप
 प्रसन्न हों ॥३५॥

प्रसीदेतिप्रसीदेतिप्रणतायांमहामते ।

इत्थंलालप्यमानायाःसप्राहमुनिपुङ्गवः ॥३६॥

नभवत्यन्यथाप्रोक्तंममवाक्यकदाचन ।

मृगीभविष्यसिमृतावनेऽस्मिन्नेवजन्मनि ॥३७॥

मृगत्वेचमहाबाहुस्तवगर्भंमृपेक्ष्यति ।

लोलोनाममुनेःपुत्रःसिद्धवायस्यभाषिनि ॥३८॥

जातिस्मराभवित्रीत्वंतस्मिन्गर्भमुपागते ।

स्मृतिंप्राप्यतथावाचंमानृषोमीरयिष्यसि ॥३९॥

तस्मिंश्चातेमृगत्वात्स्वंविमुक्तापतिनार्थिता ।

लोकानवाप्स्यसिप्राच्यायेनदुष्कृतकर्मभिः ॥४०॥

सोऽपिलोलोमहावीर्यःपितृशत्रून्निपात्यर्व ।

जित्वावसुन्धरांकृत्स्नांभविष्यतिततोमनुः ॥४१॥

एवंशापमहंलब्ध्वात्रामृतातिर्य्यक्त्वमागता ।

त्वत्संस्पर्शस्निग्धर्भोऽसौसंभूतो जठरेमम ॥४२॥

मुझे बारम्बार 'प्रसन्न हों, प्रसन्न हों' कहते देखकर उन मुनिश्रेष्ठ ने
 कहा ॥३६॥ मेरा वचन कभी मिथ्या नहीं होता तो मरने के बाद पर जन्म
 में इसी वन में मृगी बनोगी ॥३७॥ जब तुम मृगी होजाओगी तब किसी सिद्ध
 वीर्य मुनि का पुत्र 'लोच' तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न होगा ॥३८॥ जब वह लोल

कुम्हार गर्भ में स्थित होगा, नर तुम पूर्व जन्म का स्मरण करने वाली और
 मनुष्यो जैसी वाली बाबा वाली होगी ॥३६॥ उस महाबाहु नौल के उत्पन्न
 होने पर तुम क्षाप मुक्त होकर पति व द्वारा भस्मान्त होगी और जिन लोक
 का पापी मनुष्य प्राप्त नहीं कर पाव, उसी लोक का तुम प्राप्त होगी ॥३७॥
 फिर यह घट्यन्त षण्णमी लोक ही पिता के मनुष्यों का सहार करेगा तथा
 गमाव पृथिवी का विजय मनु हावा ॥३८॥ हे राजर् ! इस प्रकार श्रापित
 होकर मैं नियर योनि को प्राप्त हूँ, कुम्हारे स्वर्ग में मेरे गठर में वह गर्भ
 उत्पन्न हुआ है ॥३९॥

प्रतोत्रवोमिनास्याननवयातमनोमयि ।
 नचाप्यगम्यागभस्यानानाविध्वनरात्यसी ॥४३॥
 त्वमुक्तमन्त माऽपिराजाम्राप्यपगमुदम् ।
 पुनोममानीजित्वतिपृथिव्याभवितामनु ॥४४॥
 तन्मन्मुपुत्रपुत्रमामृगोनक्षगान्वितम् ।
 तस्मिञ्ज्ञानचभूतानिमध्वाशिप्रयमुदम् ॥४५॥
 विशेषतश्चराजसौपुत्रजात महावन ।
 माविमुक्तामृगीसापात्प्रपनाकाननुत्तमान् ॥४६॥
 तन्मन्मयप्रय मयंममममुनिगतम् ।
 अवश्यभाविनीमृदिनामचक्रमंहात्मन ॥४७॥
 तामसीभजमानामायानिमातर्यजायत ।
 तममाचानुनलावेताममाश्रयमविध्यति ॥४८॥
 तत्तन्माममन्तपिशातवद्वितावन ।
 जानतुद्विगवाचेदपितरपुनिसत्तम ॥४९॥
 ह्योनिए मैन वता का रि क्षापनी मर प्रति क्षयिनापा गम्य के प्रति है,

किन्तु पर मन में स्थित लोक इस क्षाप में बाधा है ॥४३॥ मार्कण्डेयजी ने
 कहा—यह तुम मनुष्य पर विजय प्राप्त करके मनु होगा, यह बात सुनकर
 राजा क्षम्यन हसित हुए ॥४४॥ फिर उस मृगी व श्रेष्ठ लक्षण वाल पुत्र का
 उत्पत्ति हुई उस समय सभी जीव आनन्द में मग्न हो गये ॥४५॥ इस महा-

पराक्रमी पुत्र के उत्पन्न होने से राजा को परम हर्ष हुआ और मृगी भी शाप से मुक्त होकर अत्युत्कृष्ट लोक में गई ॥४६॥ हे मुनिवर ! फिर ऋषियों ने वहाँ आकर उसका श्विष्य देखते हुए नामकरण किया ॥४७॥ वे बोले— विश्व के अन्धकार द्वारा ढके जाने पर तामसी योनि को प्राप्त हुई माता के गर्भ से इस बालक ने जन्म लिया, इसलिये इसका नाम 'तामस' हुआ ॥४८॥ हे मुने ! वह 'तामस' पिता के द्वारा उसी वन में वृद्धि को प्राप्त हुआ और समय पाकर बुद्धि के उदित होने पर वह पिता से बोला ॥४९॥

कस्त्वंतातकथंवाहंपुत्रोमाताचकामम ।

किमर्थमागतश्चत्वमेतत्सत्यंनवीहिमे ॥५०

ततःपितायथावृत्तंस्वराज्यञ्चावनादिकम् ।

तस्याचष्टेभहाबाहुःपुत्रस्यजगतीपतिः ॥५१

श्रुत्वातत्सकलंशोऽपिसमाराध्यचभास्करम् ।

अवापदिव्यान्यस्त्राणिससहाराण्यशेषतः ॥५२

कृतास्त्रस्तानरीक्षित्वापितुरानीयचान्तिरुम् ।

अनुजातान्मुंमोचाथसचस्वंधर्ममास्थितः ॥५३

पितापितस्यस्याल्लोकांस्तपोयज्ञममार्जितान् ।

विसृष्टदेहःसंप्राप्तोदृष्ट्वापुत्रमुखंसुखम् ॥५४

जित्वासमस्तांपृथिवींतामसाख्यः सपाथिवः ।

तामसाख्योमनुरभूत्तस्यमन्वन्तरंशृणु ॥५५

हे तात ! आप कौन हैं ? मैं आपका पुत्र कैसे हुआ ? मेरी माता कौन हैं ? आप यहाँ किस लिये आये हैं, यह सब मेरे प्रति यथार्थ रूप से कहिये ॥५०॥ तब उन महाबाहु राजा ने अपने पुत्र को अपने राज्य से च्युत होने आदि का सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा ॥५१॥ उस तामस ने यह बात सुनकर भगवान् भास्कर की उपासना की और निर्वतन मन्त्र के सहित विभिन्न प्रकार के सब दिव्यास्त्र मन्त्र पूर्वक प्राप्त किये ॥५२॥ वे अस्त्र प्रयोग में निपुण होकर शत्रुजेता हुए और शत्रुओं को अपने पिता के पास लाकर उनकी आज्ञा से मुक्त कर दिया, इस प्रकार वे अपने धर्म की रक्षा में तत्पर हुए ॥५३॥ फिर उनके पिता ने

भी अपन पुत्र का मुम देखकर मुखपूर्वक देह-त्याग किया और यज्ञादि द्वारा मर्ति पुण्य के प्रभाव से उच्च लोकों को प्राप्त हुए ॥१५४॥ सम्पूर्ण पृथिवी के विजेता होकर तामस अपने नामानुसार मनु हुए, जब उनके मन्वन्तर के विषय में ध्यान करो ॥१५५॥

येदेवास्तत्पतिर्यश्चदेवेन्द्रोयेतथर्षय ।
 येपुत्राश्चमनोस्तस्यपृथिवीपरिपालका ॥१५६॥
 मत्यास्तयान्येमुषिय मुरूपाहरयस्तथा ।
 एतेदेवगणास्तत्रसप्तविंशतिकामुने ॥१५७॥
 महाबनोमहावोय्यं सतयज्ञोपलक्षित ।
 निरिन्द्रस्तथातेपादेवानामभवद्विभु ॥१५८॥
 ज्योतिर्षर्मापृथु काव्यश्चन्द्रोऽग्निर्वनकस्तथा ।
 पीवरश्चतथाब्रह्मसप्तमर्षयोऽभवन् ॥१५९॥
 नर क्षान्ति शान्तदान्तजानुजङ्घादयस्तथा ।
 पुत्रान्पुतामगम्यासनाजान मुमहावली ॥१६०॥
 इत्येतत्तामसविभ्रमन्वन्तरमुदाहृतम् ।
 य पठेच्छृणुयाद्वापितमसानवाध्यते ॥१६१॥

उस मन्वन्तर के देवता, इन्द्र ऋषि श्रीर मनु के जिन पुत्रों ने पृथिवी को रक्षा की उनका वृत्तान्त मुने ॥१५६॥ हे मुने । इस मन्वन्तर में तामस, मुषी, मुरूष और हरि यह चार प्रकार के देवता गए हुए और प्रत्येक गए से सत्ता-हैं देवता हुए ॥१५७॥ महावली और पराजमी 'मिषी नामक इन्द्र हुए, जो भी शत वरर उन देवताओं के स्वामी बन ॥१५८॥ उस मन्वन्तर में चो सप्तवि हुए उनके नाम ज्योतिर्षमा, पृथु काव्य, चंद्र, अग्नि, वनर और पीवर हुए ॥१५९॥ उन मनु के नर, क्षान्ति, शान्त, दान, जानु, जंघा इत्यादि महावली एवं पराजमी पुत्र हुए ॥१६०॥ इस प्रकार तामस मन्वन्तर का वृत्तान्त यथार्थ रूप से साफ़ प्रति बद्ध है, इनका पढ़ने या सुनने वालों का यज्ञानाशकार बाधा नहीं रहती ॥१६१॥

६७-रैवत मन्वन्तर

पंचमोपिमनुर्ब्रह्मैवतोनामविश्रुतः ।
 तस्योत्पत्तिविस्तरश्चःशृणुष्वकथयामिते ॥१॥
 रासीन्महाभागऋतवागिति विश्रुतः ।
 तस्यापुत्रस्यपुत्रोऽभूद्रैवत्यन्तेमहारमनः ॥२॥
 सतस्यविधिवच्चक्रजातकर्मादिकाःक्रियाः ।
 तथोपनयनादींश्चसचाशीलोऽभवन्मुने ॥३॥
 यतःप्रभृतिजातोऽसीततःप्रभृतिसोप्यृषिः ।
 दीर्घरोगपरामर्शमवापमुनिपुङ्गवः ॥४॥
 मातातस्यपरामर्तिकुष्ठरोगादिपीडिता ॥३॥
 जगामसपिताचास्यचिन्तयामासदुःखितः ॥५॥
 किमेतदितिसोऽप्यस्यपुत्रोऽप्यत्यन्तदुर्मतिः ।
 जग्राहभार्यामन्यस्यमुनिपुत्रस्यसंमुखीम् ॥६॥
 ततोविषण्णमनसाऋतवागिदमुक्तवान् ।
 अपुत्रतामनुष्याणांश्रेयसेनकुपुत्रता ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! अब रैवत नाम के प्रसिद्ध पाँचवें मनु का जन्म तुमसे कहता हूँ, उसे श्रवण करो ॥१॥ ऋतवाक् नामक एक प्रसिद्ध ऋषि थे, वह प्रथम तो पुत्रहीन थे, फिर रैवती नक्षत्र के शेष में उनको एक पुत्र की प्राप्ति हुई ॥२॥ उन ऋषि ने अपने उस पुत्र का विधिवत् जातकर्म, उपनयन आदि संस्कार किया, परन्तु वह पुत्र क्षीलवान् नहीं था ॥३॥ हे मुने ! उस बालक का जन्म होने के समय से ही वह ऋषि दीर्घ काल व्यापी रहने वाले रोग से ग्रसित होगये ॥४॥ उसकी माता भी कष्ट के कारण अत्यन्त कष्ट भोगने लगी, तब उसके पिता ने दुःखित चित्त से विचार किया ॥५॥ 'ऐसा किस कारण हुआ ?' इसके पश्चात् उनके उस विपरीत मत वाले पुत्र ने एक मुनि के सामने ही, उनकी पत्नी का हरण कर लिया ॥६॥ इससे ऋतवाक्

शुचि को प्रत्यन्त दुःख हुआ और वे कुपुत्र से तो गृहहीन रसना ही ठीक है,
ऐसा सोचने लगे ॥७॥

कुपुत्रो हृदयायाससर्वदा कुरुते पितु ।
मातुश्च स्वर्गसस्याश्च स्वपितृन्पातयत्यघः ॥८॥
मृहृदानोपकाराय पितृणां च नृस्ये ।
विश्रोतुं ध्यायन् धिग्जन्मतस्य दुष्कृतकर्मण ॥९॥
धन्यान्ते तनया ये पासर्वलोकभिसमता ।
परोपकारिणस्तान्ता साधुवर्मण्यनुव्रता ॥१०॥
अनिर्गुणतथा मन्दपरलाकपगडमुखम् ।
नरकाय न मद्गत्ये कुपुत्रालम्बिजन्मन ॥११॥
यरो निमुहृदादैन्यमहिना नातयामुदम् ।
प्रकाशे च जराग्रिभो वृत्तुत कृते ध्रुवम् ॥१२॥
एवमत्यन्तदुष्टम्यपुत्रस्य चरितं मेति ।
दह्यमानमनावृत्तिर्गर्गमपृच्छन् ॥१३॥
गुह्येन पुरावेदा गृहीता विधिवन्मया ।
समाप्य वेदान् विधिवत्कृतादारपरिग्रह ॥१४॥
सदारेणाक्रयाः कार्यं श्रीनाम्मात्तावपदक्रिया ।
नैमन्युता कृता वाञ्छिता वदद्यमहामुने ॥१५॥

क्योंकि कुपुत्र मदा ही माता पिता व हृदय को पीड़ित करता रहता है और स्वर्गवासी विपरीत का भी वहाँ से पतित करता है ॥८॥ उसके द्वारा गुह्य का भी कोई उपकार नहीं हा पता और न पितरों की ही तृप्ति होती है, माता पिता के विषय दुःख के कारण रूप ऐसे पुत्र को धिक्कार है ॥९॥ जिससे मर्ति मत्र व द्वारा सरस्वति, पराक्वार रत, मन्यकर्म वाली और शान्त प्रवृत्ति की है, वही कष्टकर है ॥१०॥ हमारा जन्म परलोक में विमुख, कुपुत्र का धावपी और नरक क निमित्त ही हुआ है, श्रीशक्ति के विषय नहीं हुआ ॥११॥ कुपुत्र मदा मृहृदों को दीन, धक्कार करने वालों को प्रसन्न और माता पिता की वृद्धावस्था प्राप्त करने वाला है ॥१२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—

इस प्रकार दुश्चरित्र पुत्र के विपरीत आचरण से मन में दग्ध होते हुए उन ऋषि ने गर्ग ऋषि से सम्पूर्ण वृत्तान्त कह कर उनसे पूछा ॥१३॥ ऋतवाक् बोले—मैंने श्रेष्ठ व्रतों का अनुष्ठान करते हुए विधि सहित वेदों का अध्ययन किया है और इसके पश्चात् विधि पूर्वक स्त्री का पाणिग्रहण किया है ॥१४॥ शीत, स्मात और वषट्कार रूप जो कर्म पत्नी के सहित करने का निर्देश है, यह सब मैंने किये हैं और उन व्रतों के अनुष्ठान में क्षुटि नहीं होने दी है ॥१५॥

गर्भाधानविधानेननकाममनुरुध्यता ।

पुत्रार्थजनितश्चायंपुत्राम्नोबिभ्यतामुने ॥१६॥

सोयंकिमात्मदोषेणममदोषेणवामुने ।

अस्मद्दुःखावहोजातोदौःशील्याद्बन्धुशोकदः ॥१७॥

रेवत्यन्तेमुनिश्चेष्टजातोऽयंतनयस्तव ।

तेनदुःखायतेदुष्टेकालेयस्मादजायत ॥१८॥

नतेऽपचारो नैवास्यमातुर्नयिकुलस्यते ।

तस्यदौःशील्यहेतुत्वंरेवत्यन्तमुपागतम् ॥१९॥

यस्मान्ममैकपुत्रस्यरेवत्यन्तसमुद्भवम् ।

दौःशील्यमेतत्सातस्मात्पततामाशुरेवती ॥२०॥

तेनैवंव्याहृतेशापेरेवत्यृक्षपपातह ।

पश्यतःसर्वलोकस्यविस्मयाविष्टचेतसः ॥२१॥

पुत्रां नरक से डर कर और उससे मुक्त होने के निमित्त मैंने विधिवत् गर्भाधान द्वारा इस पुत्र को जन्म दिया है, कामासक्त होकर इस पुत्र की उत्पत्ति नहीं की है ॥१६॥ हे मुने ! फिर भी यह बालक हमारे लिये दुःखदायी, बन्धुओं को शोक प्रदान करने वाला तथा घुरे स्वभाव का उत्पन्न हुआ है, ऐसा आत्मदोष से या मेरे दोष से हुआ है ? ॥१७॥ गर्गजी ने कहा—हे मुनिवर ! तुम्हारा पुत्र रेवती के अन्त में उत्पन्न हुआ है, उस दुष्ट काल में जन्म लेने के कारण ही, यह तुम्हारे लिये दुःखदायी हुआ है ॥१८॥ यह तुम्हारे, तुम्हारी पत्नी के या तुम्हारे वंश के धर्म के व्यतिक्रम से इस प्रकार का नहीं हुआ, इसके दुष्ट स्वभाव का कारण रेवती का अंतिम काल ही है ॥१९॥ ऋतवाक्

घोले—जित रेवती के अन्न में उत्पन्न होने के कारण मेरा एकमात्र पुत्र ऐसे
 घुने स्वभाव का हुआ है, उस रेवती का यौघ हो बन हो ॥२०॥ मार्कण्डेयजी
 ने कहा—श्रुतवाक् ऋषि ने जब ऐसा शपथ दिया, तब सबके सामने उस रेवती
 मन्त्र की गिरता हुआ देववर सभी आश्चर्यचकित होगये ॥२१॥

रेवत्यक्ष चपतितकुमुदाद्रीसमन्तत ।

भातप्रामासमहमावनचन्दरनिर्करान् ॥२२॥

कुयुनाद्विश्रतत्पानात्प्रातोरेवतकोऽभवत् ।

अनीकस्य सर्वम्यापृथिव्यापृथिवोघरः ॥२३॥

तस्यशंस्यतुयाकान्तिर्जातापङ्कजिनीमर ।

तनोज्ज्वलतादाकन्यास्त्वेणातीवशोभना ॥२४॥

रेवतीकान्तिमभूतातादृष्टाप्रमुचोमुनि ।

तस्यानामनकारेत्यरेवतीनाममागुरे ॥२५॥

पोषयामासचैवंताम्बाश्रमाभ्यासम्भवाम् ।

प्रमुच गमहाभागस्तस्मिन्नेवमहाबले ॥२६॥

तानुपोवनिनीदृष्ट्वाभ्यक्तान्पद्यालिनीम् ।

समुनिश्चिन्तयामासकोऽभ्याभर्ताभवेदिति ॥२७॥

एवचिन्तयतस्तस्यययीबालोपह्वाम्मुने ।

मयाममाद्रमदृशवरतस्यामहामुनिः ॥२८॥

कुमुदं पवन में गहगा गिरवर उस रेवती नक्षत्र ने उनकी सभी दिशाएँ,
 पन, पन्ना आदि की प्रकाशित कर दिया ॥२२॥ पृथिवी भर में अत्यन्त
 रमणीय वह कुमुदं पर्वत भी रेवती के गिरन से रेवतक के नाम से हुआ ॥२३॥
 उमकी कानि में कमल युक्त सरोवर हुआ और उस सरोवर में एक अत्यन्त
 रूपवती कन्या उत्पन्न हुई ॥२४॥ उस कन्या को रेवती के उत्तर में हुई देवकर
 प्रमुचमुनि ने उसका नाम 'रेवती' रखा ॥२५॥ वह महानाम ऋषि रेवतक
 पवन में घटने आश्रय के निज उष्य हुई कन्या का पालन करने लगे ॥२६॥
 उष रूपवती कन्या को युवास्या में सम्पन्न देखकर मुनि सोचने लगे कि इसका

पति कौन होगा ॥२७॥ इस प्रकार चिन्ता करते हुए उन्हें बहुत दिन व्यतीत होगये, परन्तु उसके योग्य कोई भी वर दिखाई न दिया ॥२८॥

ततस्तस्यावरं द्रष्टुमग्निसप्रमुचो मुनिः ।

विवेश वह्निशालां वै पृष्ठस्तं प्राह हव्यभुक् ॥२९॥

महाबलो महावीर्यः प्रियवाग्धर्मवत्सलः ।

दुर्गमो नाम भविता भर्ता ह्यस्यामही पतिः ॥३०॥

अनन्तर श्रमृगया प्रसङ्गे नागतो मुने ।

तस्याश्रमपदं धीमान् दुर्गमः स न राघवः ॥३१॥

प्रियव्रतान्वयभवो महाबलपराक्रमः ।

पुत्रो विक्रमशीलस्य कालिन्दीजठरोद्भवः ॥३२॥

स प्रविश्याश्रमपदं तां तन्वीजगती पतिः ।

अपश्यमानस्तमृषिं प्रियेत्यामन्त्र्य पृष्ठवान् ॥३३॥

ववगतो भगवानस्मादाश्रमान्मुनिपुङ्गवः ।

तं प्ररोतुमिहेच्छामितत्त्वं प्रब्रूहि शोभने ॥३४॥

अग्निशालांगतो विप्रस्तच्छ्रुत्वा तस्यैवापातम् ।

प्रियेत्यामन्त्रणां चैव निश्चक्राम त्वरान्वितः ॥३५॥

सददर्शमहात्मानं राजानं दुर्गमं मुनिः ।

न रेन्द्रचिह्नसहितं प्रश्रयावनतं पुरः ॥३६॥

तब अग्नि से पूछने के लिये अग्निशाला में गये, इस पर अग्नि ने उनसे कहा ॥२९॥ इस कन्या के पति महाबली, पराक्रमी, प्रियवक्ता, धर्मवत्सलं दुर्गम नामक महीपाल होंगे ॥३०॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे मुने ! इसके पश्चात् स्वायम्भुव मनु के ज्येष्ठ पुत्र प्रियव्रत के वंश में उत्पन्न हुए विक्रमशील नरेश की कालिन्दी नाम की रानी से उत्पन्न हुए अत्यन्त पराक्रमी वह राजेन्द्र दुर्गम मृगया के पीछे मुनि के उस आश्रम में पहुँचे ॥३१-३२॥ उन्होंने आश्रम में ऋषि को न देखकर उस कृशांगी कन्या से ही उनके विषय में 'प्रिये' कहकर पूछा ॥३३॥ हे सुन्दरी ! वह मुनिवर कहाँ गये हैं मुझे यह बताओ, क्योंकि उन्हें प्रणाम करने की इच्छा से उपस्थित हुआ हूँ ॥३४॥ श्री मार्कण्डेयजी ने

कहा—यह विश्वश्रीष्ठ अग्निशाला में गये हुए थे, वह राजा का वचन और 'प्रिये' सम्बोधन सुनकर अग्निशाला में बाहर निकले ॥३१॥ और उन्होंने राज-मशाला में विभूषित और विनयनत महाराज दुर्गम की देखा ॥३२॥

तस्मिन्दृष्टे ततः शिष्यमुवाच सन्तुष्टः ।

गोनमानीयताक्षीघ्रमर्घोऽस्य जगतीपते ॥३३॥

एकस्माद्वदयभूषश्चिरकालादुपागतः ।

जामाता च विधेपेण योग्योऽवस्थमहोमम ॥३४॥

ततः सचिन्तयामास राजा जामातृकाङ्क्षम् ।

विवेदजननमर्मानां जगृहेऽर्घ्यं च तन्नृप ॥३५॥

तमामनगतविप्रो गृहीता घमहामुनिः ।

भ्यागतप्राह राजेन्द्रमपिते कृशमगृहे ॥३६॥

कोटो ब्रह्मन्व्यमिषेषु भृत्या मात्यनरेभ्यः ।

तथात्मनि मन्त्रावाहोपत्रसर्वप्रतिष्ठितम् ॥३७॥

पत्नीचने कुशनिनीयतावानुनिश्रुतिः ।

पृच्छाम्यस्यास्तर्तान् ह्यकुशनिन्योऽपरास्तव ॥३८॥

उन्हें इसका श्रुति न अपन गीतम नामक शिष्य की प्रार्थना करने की आज्ञा दी ॥३३॥ उन्होंने कहा कि एक तो बहुत समय के पश्चात् यहाँ इतना आगमन हुआ है, दुसरे यह जामाता भी है, इसलिए यह प्रार्थना के श्रुति पात्र है ॥३४॥ स वंशदेवशी ने कहा—श्रुति द्वारा जामाता बने जाने पर राजा सोचन लगे कि कभी यह शब्द कहा, परन्तु वह कुछ समय न पाये और मौन रह कर प्रार्थना प्रहण किया ॥३५॥ प्रार्थना प्रहण के पश्चात् वे शीघ्र आगमन पर बैठे तब उनका महामुनि ने कहा—हे राजन् । आप यहाँ सुख पूर्वक तो क्या करें ? आपका कोनामार तो ठीक है ? आपकी सेना, मित्र, सेवक और मन्त्रिण तो कुशल पूर्वक हैं ? आप अपने आश्रम स्थान और शत्रुघ्न तो हैं ? ॥३६-३७॥ आपकी पत्नी यहाँ कुशल पूर्वक रह रही है, इसीलिये मैंने उस विषय कुशल प्रश्न नहीं किया, इसके अनिश्चित, आपसे पुत्र की प्रश्न सलना तो कुशल से हैं ? ॥३८॥

त्वत्प्रसादादकुशलं न ववचिन्मम सुव्रत ।
जातकौतूहलश्चास्मिममभार्यात्रिकामुने ॥४३॥
रेवती सुमहाभागा त्रैलोक्यस्यापि सुन्दरी ।
तव भार्या विरारोहातां त्वं राजघ्नवेत्सिकिम् ॥४४॥
सुभद्रां शान्ततनयां कावेरीतनयां विभाम् ।
सुराष्ट्रजं सुजातं च कदम्बां च बरुथजाम् ॥४५॥
विपाठां नन्दिनीं चैव वेत्सि भार्या गृहे द्विज ।
तिष्ठन्तमेव भगवन् रेवती वेत्सिकां न्वियम् ॥४६॥
प्रियेति साम्प्रतं येयं त्वयोक्ता वरवर्णिनी ।
किं विस्मृतं ते भूपाल इलाध्येयं गृहिणी तव ॥४७॥
सत्यमुक्तं मया किन्तु भावो दुष्टेन मे मुने ।
नात्र कोपं भवान्कर्तुं महंत्यस्मात्सुयाचितः ॥४८॥
यत्त्वं ब्रवीषि भूपाल न भावस्तव दूषितः ।
व्याजहार भवानेन तद्वह्निना नृपचोदितः ॥४९॥

राजा ने कहा—हे सुव्रत ! महामुने ! आपकी कृपा से मेरी सब प्रकार से कुशल है, परन्तु, यह मेरी पत्नी कौन-सी है, इसे जानने के लिये मुझे कुतूहल हुआ है ॥४३॥ ऋषि बोले—हे राजन् ! रेवती नाम की तीनों लोकों में अद्वितीय सुन्दरी आपकी पत्नी है, क्या आप उसे नहीं जानते ? ॥४४॥ राजा ने कहा—हे भगवन् ! सुभद्रा, शान्ततनया, कावेरीतनया, सुराष्ट्रजा, सुजाता, कदम्बा, बरुथजा ॥४५॥ विपाठा और नन्दिनी यह मेरी पत्नियाँ हैं, इन्हें मैं भले प्रकार जानता हूँ, क्योंकि वह मेरे ही घर में रहती हैं, परन्तु मैं अपनी रेवती नाम की पत्नी को नहीं जानता कि वह कौन-सी है ? ॥४६॥ ऋषि ने कहा—वर को वरण करने के लिये तत्पर जिस कन्या को आपने 'प्रिये' कहा, वही आपकी श्लाघनीय पत्नी है, हे राजन् ! क्या तुम उसे भूल गये हो ? ॥४७॥ राजा ने कहा—हे भुनि श्रेष्ठ ! आपका कथन सत्य है, परन्तु मेरे द्वारा किये गये 'प्रिये' सम्बोधन में मेरा कोई दुष्ट भाव नहीं था, इसलिये आप मुझ पर कोप न करें ॥४८॥ ऋषि ने कहा—हे राजन् ! आपका दुष्ट भाव नहीं था,

यह सत्य ही है, परन्तु आपके द्वारा यह सम्बोधन अग्नि की ही प्रेरणा से हुआ है ॥५६॥

मयापृष्टादृतवह कोऽस्याभर्ततेतिपार्थिव ।
 भवितातनचाप्युक्ताभवानवाद्यवंबर ॥ ५०
 तद्गृह्यतामयादत्तानुभ्यवन्यानगाधिप ।
 प्रियत्यामग्निताचयविचारकुरूपकथम् ॥५१
 ततासावभवन्मेनीतेनोक्त पृथिवीपति ।
 अपिस्तयाद्यत वतु तस्यावैवाहिकविधिम् ॥५२
 तमुद्यतसापितरविवाहायमहामुन ।
 उवाचवयार्यात्क्वचित्प्रश्रयावनतानना ॥५३
 यदिमप्रीतिमास्तातप्रसादकतु महसि ।
 ग्वर्युष्टेविवाहमेतत्स्वर्गोनुप्रमादित ॥५४
 रवर्युक्षनवभद्र चन्द्रयागिव्यवस्थितम् ।
 अन्यानिमत्तिस्त्रक्षाणिमुभ्रुवैवाहिकानित ॥५५
 तासतनविभाषानाविपन प्रतिभातिम ।
 विवाहोविफलानमद्विधाया वयमवेत् ॥५६

ह भूने ! मैंने अग्नि त जन्मके पनि से विषय में पूछा था तब अग्नि ने आपसे हा इमत्र पनि होन की बात कही थी ॥५०॥ इसलिये हे राजन् ! आपने त्रिमश्र प्रति प्रिय कहा है वह क्या मैं आपको प्रदान करता हूँ आप इमसे विचार क्या करते हैं इसे ग्रहण करिय ॥५१॥ मानन्देयजी ने कहा—अपि व वचन सुनकर राजा भीन हो गए और अपि भी गस्कार व काय सम्पादन में तत्पर हुए ॥५२॥ जब क्या ने मुनि को करने में तत्पर था तब उमन विनय पूर्वक विवन्न किया ॥५३॥ हे तात ! आपको मुझ में प्रीति है और यदि आप मुझ पर प्रमत्त हैं तो मेरा गस्कार मेरी नशत्र में सम्पन्न करें ॥५४॥ अपि ने कहा—रेवती नक्षत्र याग में अवस्थित नहीं है परन्तु, विवाह-याग में श्रेष्ठ अथवा अभी नक्षत्र विद्यमान है ॥५५॥ क्या ने कहा—हे तात ! रेवती नक्षत्र में वजित समय

विषय में विकल जान पड़ता है, मेरे जैसी कन्या का विवाह विकल समय में कैसे होगा ? ॥५६॥

ऋतवागिति विख्यातस्तपस्वीरेवतीं प्रति ।

चकारकोपं क्रुद्धे न ते तर्क्षं विनिपातितम् ॥५७॥

मया चास्मै प्रतिज्ञाता भार्येति मदिरक्षणा ।

न चेच्छसि विवाहं त्वंसंकटनः समागतम् ॥५८॥

ऋतवाक्समुनिस्तात किमेवं तप्तवांस्तपः ।

न स्वयाममता तेन ब्रह्मबन्धोः सुतास्मि किम् ॥५९॥

ब्रह्मबन्धोः सुतान् त्वं बालेनैव तपस्विनः ।

सुतात्वं मम यो देवान् कर्तुं मन्यान्समुत्सहे ॥६०॥

तपस्वी यदि मे तातस्तत्किमृक्षमिदं दिवि ।

समारोप्य विवाहो मे तदृक्षे क्रियते न तु ॥६१॥

एवं भवतु भद्रन्ते भद्रे प्रीतिमतीभव ।

आरोपयामीन्दुमार्गेरेव त्यूक्षकृते तत्र ॥६२॥

ततस्तपःप्रभावेण रेवत्यूक्षमहामुनिः ।

ऋषि बोले—पहिले ऋतवाक् नामक प्रख्यात तपस्वी ने रेवती नक्षत्र को क्रोध पूर्वक आकाश से पतित कर दिया है ॥५७॥ मैं राजा को वचन दे चुका हूँ कि इस कन्या को मैं तुम्हें पत्नी रूप में दूँगा, इसलिये इस समय विवाह के लिये तुम्हारा सहमत न होना मुझे सङ्कट में डाल रहा है ॥५८॥ कन्या ने कहा—हे तात ! उन ऋतवाक् मुनि ने ऐसा कौन-सा तप किया है, जो आप जैसे मेरे पिता द्वारा साधित नहीं हो सका, तो क्या मैं किसी ब्रह्मबन्धु की कन्या हूँ ? ॥५९॥ ऋषि बोले—तुम ब्राह्मण बन्धु की नहीं हो और न किसी साधारण तपस्वी की ही पुत्री हो जो, जो ऋषि देवताओं को जन्म देने में समर्थ हो, उसी मुझ ऋषि की तुम पुत्री हो ॥६०॥ कन्या ने कहा—यदि मेरे पिता ऐसे तपस्वी हैं तो वे उस नक्षत्र को आकाश में स्थित करके, उसी नक्षत्र में मेरा विवाह-संस्कार क्यों नहीं कर सकते ? ॥६१॥ ऋषि बोले—ऐसा ही होगा, तुम्हारा कल्याण हो, तुम प्रीतिमती होओ, तुम्हारे हित के लिये रेवती

नदान को मैं चन्द्रमार्ग में स्थित करने देना हूँ ॥६२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—
हृदितश्चेष्ट । नदनन्तरं जतं मर्त्यं न अपने नप वे चल से रेवती नक्षत्र को पहिले
के ही गमान चन्द्रमा में स्थित कर दिया ॥६३॥

यथापूर्वन्तथाचक्रमोमयोगिद्विजोत्तम ॥६३॥
विवाहचैवदुहितुविधिवन्मन्त्रयोगिनम् ।
निष्पाद्यप्रोतिमान्भूयोजामातरमभ्रात्रवोत् ॥६४॥
श्रीठाहिकतेभूपालवश्यताकिददाम्यहम् ।
दुर्लभ्यमपिदाम्यामिमभाप्रतिहृततप ॥६५॥
मतो स्वायम्भुवस्याहमुत्पन्न मन्तरीमुने ।
मन्वन्तराधिपनुष स्वरप्रसादाद्गृणोम्यहम् ॥६६॥
भविष्यत्येवमेवामामनुस्त्वत्तनयामहीम् ।
मन्वन्तानोक्ष्यतभूपधर्मविद्वन्भविष्यति ॥६७॥
तामादायतनाभूष स्वमवनगर ययौ ।
तस्मादजायतमुत्तारवत्तारवतामनु ॥६८॥
ममेन सवर्नधर्ममोतवैश्वर्यवित्त ।
विज्ञाताविनशास्त्रार्थोवदविद्यामशास्त्रवित् ॥६९॥
तस्यमन्त्रन्तरदेवान्भूतिदेवेन्द्रपापियान् ।
वक्ष्यमानान्मयाग्रहात्रिणाधमुममाहित ॥७०॥

और वैवाहिक यज्ञ में अपनी पुत्री का विवाह सम्पन्न करके
अत्यन्त प्रसन्न मन से अपने आमाता के प्रति वत्सा ॥६४॥ श्रुति बोले—हे
राजन् ! विवाह में दान स्वयं तुम्हें क्या प्रदान करूँ, यह मुझे यत्नाश्रु, तुम
मदि कोई दुर्लभ वस्तु भी पाँपिले तो मैं अपनी तपस्या के प्रभाव से उसे दूँगा
॥६५॥ राजा ने कहा—हे मुने ! मैं स्वायम्भुवन्तु के यश में उत्पन्न हुआ हूँ,
मैं अपनी कृपा में मन्वन्तराधिपति पुत्र का प्राप्त करूँ, यही चाहता हूँ ॥६६॥
श्रुति ने कहा—हे राजन् तुम्हारी अभिनाया पूर्ण होगी, तुम्हारा पुत्र धर्मज्ञ
तथा मनु होकर सम्पूर्ण पृथिवी का भोग करने वाला होगा ॥६७॥ मार्कण्डेयजी
ने कहा—नदनन्तरं वत्स राजा भक्तों की माय लेकर अपने नगर को गये

और समय पाकर उस रैवती के गर्भ से रैवत मनु उत्पन्न हुए ॥६८॥ यह धर्मज्ञाता, अजेय, शास्त्रों में पारगामी तथा वेद विद्या और अर्थ शास्त्र में भी पारंगत हुए ॥६९॥ हे ब्रह्मन् ! अब उनके मन्वन्तर के देवता, ऋषि, इन्द्र और राजाओं का वर्णन करता हूँ, उसे सुनो ॥७०॥

सुमेधसस्तत्रदेवास्तथाभूतनयाद्विज ।

वैकुण्ठश्चामिताभाश्चतुर्दशचतुर्दश ॥७१॥

तेषां देवगणानां तु चतुर्णामपि चेश्वरः ।

नाम्ना विभुरभूदिन्द्रः सतयज्ञोपलक्षकः ॥७२॥

हिरण्यलोमा वेदश्रीरूर्ध्वबाहुस्तथापरः ।

वेदबाहुः सुधामाचपर्जन्यश्च महामुनिः ॥७३॥

वसिष्ठश्च महभागो वेदवेदांगपारगः ।

एते सप्तर्षयश्चासन्नवतस्यान्तरे मनोः ॥७४॥

बलबन्धुर्महावीर्यः सुयष्ट्यव्यस्तेथापरः ।

सत्यकाद्यास्तथैवासन्नवतस्य मनोः सुताः ॥७५॥

रैवतान्तास्तु मनवः कथिता ये मया तव ।

स्वायम्भुश्चाश्रयाह्ये ते स्वारोचिषमृते मनुम् ॥७६॥

(य एषां ऋणुयान्नित्यं पठेदाख्यानमुत्तमम् ।

विमुक्तः सर्वपापेभ्यो लोकं प्राप्नोत्यभीप्सितम् ॥७७॥

हे द्विज ! देवगण, सुमेध, वैकुण्ठ और अमिताभ यह चार गण हैं तथा प्रत्येक गण में चौदह देवता हैं ॥७१॥ उन चार गणों के अधिपति सौ यज्ञ करने वाले 'विभु' नामक इन्द्र हैं ॥७२॥ हिरण्यलोमा, वेदश्री, ऊर्ध्वबाहु, वेदबाहु, सुधामा, महामुनि पर्जन्य ॥७३॥ तथा वेदवेदांग-पारंगत वसिष्ठ यह सप्तर्षि उस रैवत मन्वन्तर में हुए ॥७४॥ रैवत मनु के बल-बन्धु, महावीर्य, सुयष्ट्यव्य, सत्यक आदि पुत्र हुए थे ॥७५॥ रैवत मनु तक जिनका विषय तुम से कहा गया है, वह सभी स्वायम्भुव मनु के वंश में हुए थे, परन्तु स्वारोचिष मनु उस वंश के नहीं थे ॥७६॥ जो इस श्रेष्ठ आख्यान को नित्य सुनते या पढ़ते हैं, वह सब पापों से मुक्त होकर अपने इच्छित लोक को प्राप्त होते हैं ॥७७॥

६८—चाक्षुष मन्वन्तर

इत्येतत्तयिततुम्यपञ्चममन्वन्तरमया ।
 चाक्षुषम्यमनोपमुथूयतामिदमन्तरम् ॥१॥
 अन्यजन्मनिजातोऽसौचाक्षुष परमष्टिन् ।
 चाक्षुषत्वमतस्तस्यजन्मन्यस्मिन्नपिद्विज ॥२॥
 (धनमित्रस्परराजर्षेमन्त्राभार्यामहात्मन ।
 जज्ञे सुतमुविद्वाननुचिजातिस्मर विभुम् ॥३॥)
 जातमातानिजोत्सङ्गे स्थितमुत्ताप्यतपुन ।
 परिष्वजतिहादेनपुनरुत्तापयत्यय ॥४॥
 जातिस्मर मजानावंमानुस्मद्भ्रमास्थित ।
 जहामतनदामानासकृदावाक्यमग्नवीत् ॥५॥
 भीतास्मिन्मिमिद वत्सहासायद्वदनेतव ।
 भवतवाध सञ्ज्ञान कश्चिरपश्यसिशाभनम् ॥६॥
 (तन्मातुर्वचनश्रुत्वाप्रहस्यदमयात्रवीत्) ।
 मामत्तमिच्छतिपुरामाजारीकितपश्यसि ।
 मन्त्रदर्शनिगनाचेयद्वितीयाजानहारिणी ॥७॥
 मार्कण्डेयजी न कहा—त द्वित्र श्रेष्ठ । मैंने तुम्हारे प्रति इन पाँच मन्व-
 न्तरो का वर्णन किया, अब छठवें चाक्षुष मनु के मन्वन्तर के विषय में कहता
 हूँ, अथवा करो ॥१॥ अन्य जन्म में परमेशी ब्रह्माजी के चक्षु से उत्पन्न होने के
 कारण इनका नाम इस जन्म में भी चाक्षुष हुआ था ॥२॥ महात्मा धनमित्र
 की भद्रा नामक पत्नी के पस में विद्वान् पवित्र, जानिस्मर और विभु गुण से
 सम्पन्न एक पुत्र की उत्पत्ति हुई) ॥३॥ माता ने आनन्द में भर कर उस
 बालक को पुत्र का नाम देकर आनन्द विषा और फिर वह उसका आदर
 करने लगी ॥४॥ इस पर माता की गोदी में स्थित हुए वह जानिस्मर पुत्र
 ऐसा कहा तो माता ने उससे स्नेह पूर्वक कहा ॥५॥ हे वत्स ! तुम्हारे गुण की
 इस हँसी को देखकर मैं डर गई हूँ तुम्हें इस विनुकाल में ज्ञान की प्राप्ति होकर

क्या कुछ शुभ दिखाई देता है ? ॥६॥ (माता की बात सुन कर पुत्र हँस कर बोला) पुत्र ने कहा—यह जो मार्जारी मुझे भक्षण करने की इच्छा से सामने खड़ी है, उसे क्या तुम नहीं देख सकतीं ? गुप्त रूप से यह जात हारिणी यहाँ स्थित है, उसे क्या तुम नहीं जान सकतीं ? ॥७॥

पुत्रप्रीत्याचभवतीसहार्दमामवेक्षती ॥

उल्लाप्योल्लाप्यबहुशःपरिष्वजतिमांयतः ॥८॥

उद्भूतपुलकास्नेहसम्भवास्त्राविलेक्षणा ।

ततोममागतोहासःशृणुचाप्यत्रकारणम् ॥९॥

स्वार्थप्रसक्तामार्जारीप्रसक्तामामवेक्षते ।

तथान्तर्द्धानिगाचैवद्वितीयाजातहारिणी ॥१०॥

स्वार्थायस्निग्धहृदयेययैवैतेममोपरि ।

प्रवृत्तेस्वार्थमास्थायतथैवप्रतिभासिमे ॥११॥

किन्तुमदुपभोगयमार्जारीजातहारिणी ।

त्वन्तुक्रमेणोपभोग्यमन्तःफलमभीप्ससि ॥१२॥

नमांजानासिकोप्येषनचैवोपकृतमया ।

सङ्गतंनान्तिकालीनंपंचसप्तदिनात्मकम् ॥१३॥

तथापिस्निह्यसेसास्त्रापरिष्वजसिचाप्यति ।

तातेतिवत्सभद्रेतिनिर्व्यलीकंब्रवीषिमाम् ॥१४॥

जब तुमने पुत्र के वात्सल्य से स्नेहमयी होकर आबर पूर्वक मेरा बार-बार आर्त्तिगन किया तो मुझे हँसी आ गई, अब मैं उसका कारण बताता हूँ, भक्षण करो ॥८॥-॥९॥ वह मार्जारी और जात हारिणी अपने प्रयोजन में आसक्त हुई अपनी अर्थपूर्ण दृष्टि से मुझे देख रही हैं ॥१०॥ यह स्वार्थवश मेरे प्रति जैसी नम्र हृदया हुई है, वैसे ही स्वार्थवश तुम भी मेरे प्रति स्नेहमयी हुई हो, मैं यही समझता हूँ ॥११॥ यह मार्जारी और जातहारिणी मेरा भक्षण करने की इच्छा करती है और तुम मुझे इच्छित उपभोग प्राप्त करने की अभिलाषा रखती हो ॥१२॥ क्योंकि तुम मुझे नहीं जानती कि मैं कौन हूँ, बहुत दिनों का मिलना भी नहीं है और न मैंने कोई उपकार ही किया है, केवल

पाँच या मान दिन माना-पुत्र रूप से ही मिनन हुआ है ॥१३॥ फिर भी तुम
अधूरागुं नैनो मे मेरे प्रति स्नेह प्रकट करनी हो, आनिगन करती हो श्री
वपन-रहित हृदय से तात, वत्स, भद्र आदि कह कर पुत्रवांस्ती हो ॥१४॥

नत्वाहमुपकारार्थवत्प्रतीत्यापरिप्वजे ।

नचेदेनद्रवत्प्रोत्यैपरित्यक्तास्म्यहृत्वया ॥१५॥

स्वार्थोमयापरित्यक्तोयस्त्वत्तोमेभविष्यति ।

इत्युवत्वासातमुत्सृज्यनिष्क्रान्तामृतिकागृहात् ॥१६॥

जडाङ्गवाह्यरशाशुदान्त कग्गात्मकम् ।

जह्वातपत्यक्त मातदाजानहारिणी ॥१७॥

मास्तिवान्तदावातविक्रान्तम्यमहीभृत ।

प्रमूतपत्नीशयनेभ्यम्यस्यतस्याददेमुतम् ॥१८॥

तमप्यन्यगृहेनीत्वागृहीत्वातस्यचात्मजम् ।

तृतीयभक्षयामाममाक्रमाज्जानहारिणी ॥१९॥

हत्वाहत्वातृतीयतुभक्षयत्यनिनिर्घृणा ।

वग्रेत्यनुदिनमातुर्निर्वर्तयान्यया ॥२०॥

विक्रान्तोऽपिततस्तस्मिन्मुतस्यैवमहंपति ।

वाग्यमाममस्याराघाजान्यम्यभवन्तिथे ॥२१॥

माता ने कहा—हे वत्स ! किसी उपकार की आशा से मैं तुम्हारा
आतिथन नहीं करती यदि तुम मेरे आतिथन करने आदि मे प्रसन्नता की प्राप्त
नहीं होते तो मुझे छोड़ दो ॥१५॥ तुमम त्रिम स्वार्थ मिडि की आशा है, मैंने
उमने छोड़ा, ऐसा कहकर प्रमूति गृह मे माता उस जडवात् पुत्र का परिस्थापन कर
बाहर निकली, तब माता द्वारा परित्यक्त उस पुत्र का जानहारिणी ने हरण कर
लिया ॥१६-१७॥ इसका हरण करके उसने विक्रान्त नायक राजा की प्रमूता
पत्नी की शय्या मे रख कर उसने नवोत्पन्न शिशु का हरण किया ॥१८॥ और
उस भी किसी दूसरे के घर मे रख कर उसका पुत्र को चुगा कर घन मे उस
तृतीय शिशु का प्रक्षयण कर लिया ॥१९॥ वह अत्यन्त निर्दय जानहारिणी
नव प्रमूति शिशुओं का निर्य प्रानि इसी प्रकार हरण करनी और पहिले दो का

परिवर्तन करके तीसरे का आहार कर लेती थी ॥२०॥ इसके अनन्तर राजा विक्रान्त ने अपने उस परिवर्तित पुत्र के क्षत्रियोचित सभी संस्कार कराये ॥२१॥

आनन्देतिचनामास्यपिताचक्रे विधानतः ।

मुदापरमयायुक्तोविक्रान्तःसनराधिपः ॥२२

कृतोपनयनंतंतुगुरुराहकुमारकम् ।

जनन्याःप्रागुपस्थानंक्रियतांचाभिवादनम् ॥२३

सगुरोस्तद्वचःश्रुत्वाविहस्यैवमथाब्रवीत् ।

बंधामेकतमाभाताजननीपालनीनुकिम् ॥२४

नन्वियंतेमहाभागजनित्रीजाराजात्मजा ।

विक्रान्तस्याग्रमहिषीहैमिनीनामनामतः ॥२५

इयंजनित्रीचैत्रस्यविशालग्रामवासिनः ।

विप्राग्र्यबोधपुत्रस्ययोस्यांजातोऽन्यतोऽगमम् ॥२६

कुतस्त्वंकथयानन्दचैत्रःकोवात्वयोच्यते ।

संकटमहदाभातिक्वजातोऽथब्रवीषिकिम् ॥२७

उस पुत्र को पाकर राजा अत्यन्त आनन्दित हुए, इसलिये उनके उस पुत्र का नाम आनन्द रखा गया ॥२२॥ तदनन्तर उस यज्ञोपवीत संस्कार किये गये कुमार को गुरुजी ने माता निकट जाकर प्रणाम करने को कहा ॥२३॥ गुरुजी के वचन सुनकर आनन्द ने हँस कर कहा—मैं किस माता को प्रणाम करूँ ? जन्म देने वाली को अथवा पालने वाली को ? ॥२४॥ गुरुजी ने कहा—हे महाभाग ! महाराज विक्रान्त की राजमहिषी हैमिनी क्या तुम्हारी जन्मदात्री नहीं है ? ॥२५॥ आनन्द बोला—इनके गर्भ से उस चैत्र की उत्पत्ति हुई थी जो विशाल नाम ग्राम निवासी बोध नामक ब्राह्मण का पुत्र है, मेरा जन्म अन्यत्र हुआ था ॥२६॥ गुरुजी ने कहा—हे आनन्द ! तुम कहाँ से आये ? तुमने जिस चैत्र का नाम लिया, वह चैत्र कौन है ? तुम कहाँ उत्पन्न हुए और यहाँ किस प्रकार आये ? जो चैत्र यहाँ उत्पन्न हुआ वह कहाँ गया ? यह तुम क्या कह रहे हो ? ॥२७॥

जातोऽहमनमित्रम्यक्षत्रियस्यगृहेद्विज ।
 तत्पत्न्यागिरिभद्रायामाददेजातहारिणी ॥२८॥
 तयात्रमुक्तोहैमिन्यागृहीत्वाचसुतचसा ।
 बोधस्यद्विजमुख्यस्यगृहेनीतवतीपुन ॥२९॥
 भक्षयामासचमुततस्यवाधद्विजन्मन ।
 मत्तत्रद्विजमम्कारं सस्मृतोहैमिनीमुत ॥३०॥
 वयमत्रमहाभागसंस्कृतागुरुगारवया ।
 मयातववच कास्यंमुपैमिक्तमागुरो ॥३१॥
 अनीवगहनवत्समकटमहदागतम् ।
 नवेषिकिचिन्मोहेनभ्रमन्तीवहिवुद्धय ॥३२॥
 माहम्यावमर कोऽत्रजगत्पेवव्यवस्थिते ।
 कस्यपुनोविप्रर्षेकावाकस्यनवान्धव ॥३३॥
 आरभ्यजन्मनोनृणासस्वन्धित्वमुपैतियः ।
 अन्यमवधिनाविप्रमृत्युनासन्निवर्तिता ॥३४॥
 अत्रापिजातस्यसुतसम्बन्धायोऽभ्यवान्ववै ।
 गोप्यस्तमन्तेद्रहस्यप्रयात्यपोऽखिलक्रम ॥३५॥

धानन्द बोला—राजा अनमित्र की पत्नी गिरिभद्रा के गर्भ से मैं उत्पन्न
 हूँ और जातागिणी मेरा हरण करके यहाँ रख गई ॥२८॥ और हैमिनी के
 पुत्र का हरण करके उसे ब्राह्मण घर बाध के यहाँ ले जाकर ॥२९॥ उस
 बोध के पुत्र को दया गई, हैमिनी व उस पुत्र का विशाल घास में द्विज सत्कार ।
 किया गया है ॥३०॥ और मगर सम्भार यहाँ आपके द्वारा हुआ है, हे महा-
 भाग । घास मेरे गुरु हैं, मुझे आपकी आज्ञा पूर्ण रूपेण स्वीकार है, अतः आज्ञा
 कीजिये कि मैं किस माता को प्रणाम करूँ ॥३१॥ गुरुजी ने कहा—हे वरम ।
 यह तो अत्यन्त घोर मझूट घा गया है, मैं कुछ भी नहीं समझ पाता जैसे मेरी
 बुद्धि मोह में भ्रमिन् हो गई है ॥३२॥ धानन्द बोला—हे प्रह्वर्ये । इस प्रकार
 से व्यवस्थित दण्ड मगार में मोह का विगम क्या है ? इसविषे कौन किमना
 पुत्र है ? जन्म लेने के बदलाव जीव विभिन्न जीवों में सम्बन्ध मुक्त होता है, नव

कोई किसी का बन्धु नहीं हो सकता, जिस प्रकार सम्बन्ध वाले मनुष्य मृत्यु के द्वारा धराशायी होते हैं ॥३३-३४॥ तथा बाँधवों के सहित जन्म लेने वाले मनुष्यों का जो सर्वानुगामी सम्बन्ध है, वह भी शरीर के नष्ट होने पर टूट जाता है ॥३५॥

अतोब्रवीमिसंसारवसतःकोनबान्धवः ।
 कोवापिसततंबन्धुःकिंविभ्राम्यतेमतिः ॥३६॥
 पितृद्वयंमयाप्राप्तमस्मिन्नैवहिजन्मनि ।
 मानृद्वयंचकिंचित्रयदन्यद्देहसम्भवे ॥३७॥
 सोऽहंतपःकरिष्यामित्वयायोह्यस्यभूपतेः ।
 विशालग्रामतःपुत्रश्चैत्रग्रानीयतामिह ॥३८॥
 ततःसविस्मितोराजासभार्यःसहबन्धुभिः ।
 तस्मान्निवर्त्यममतामनुमेनेवनायतम् ॥३९॥
 चैत्रमानीयतनयंराज्ययोग्यंचकारसः ।
 समान्यब्राह्मण्येनपुत्रबुद्ध्यासपालितः ॥४०॥
 सोऽप्यानन्दस्तपस्तेपेबालएवमहावने ।
 कर्मणाक्षपणार्थायिविमुक्तेःपरिपन्थिनाम् ॥४१॥

इसीलिये कहता हूँ कि संसारी जीवों का कोई बन्धु नहीं, इसलिये आपकी बुद्धि किस कारण से भ्रान्त हो रही है ॥३६॥ इसी जन्म में मेरे दो पिता और दो माता हो चुकी हैं फिर यदि दूसरा देह धारण करके ऐसा सम्बन्ध हो जाय तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? ॥३७॥ अब मैं तप करूँगा, आप इन राजा के पुत्र चैत्र को विशाल ग्राम से यहाँ ले आइये ॥३८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तब राजा ने पत्नी और बन्धुओं से आश्चर्यान्वित होकर उस पुत्र के प्रति मोह का परित्याग कर उसे वन जाने की आज्ञा दी ॥३९॥ और जिस ब्राह्मण ने चैत्र का पालन किया था, उसे सम्मानित कर, उससे अपना पुत्र लेकर उसका राज्याभिषेक किया ॥४०॥ उधर आनन्द मुक्ति में बाधक होने वाले सब कर्मों के परित्याग पूर्वक बाल्यावस्था से ही तप करने लगा ॥४१॥

तपस्यस्ततस्तच्चप्राहदेव प्रजापति ।
 रिमर्धनप्यसेवत्सतपस्तीव्र वदस्वतत् ॥४२॥
 आत्मन शुद्धिनामाऽह्नकरोमिभगवस्तप ।
 बन्धायममकर्माणि यानितत्क्षपणोन्मस्रः ॥४३॥
 क्षीणाधिकाराभवतिमुक्त्याग्यानकर्मवान् ।
 गत्वाधिकारवान्मुक्तिमवाप्स्यतितताभवान् ॥४४॥
 भवतामनुनाभाभ्यपद्येनद्रजतत्कुरु ।
 अततेतत्सानस्मिन्कृतमुक्तिमवाप्स्यसि ॥४५॥
 इत्युक्ताऽब्रह्मासाऽपितथेत्युक्त्वाभमहामति ।
 तत्कर्माभिमुत्थायस्मुतपसोविररामह ॥४६॥
 चाक्षुषेत्याहनब्रह्मातपसोविनिवर्तयन् ।
 पूर्वनाम्नावभूवाद्यप्रख्यातश्चाक्षुषामनु ॥४७॥
 उपयेमेविदभाममुतामुयस्यभूभृत ।
 तस्याचात्पादयामासपुनान्प्रख्यातविक्रमान् ॥४८॥
 तस्यमन्वन्तरेक्षम्ययन्तरेप्रिदक्षाद्विज ।
 येचर्पयस्तथैवन्द्रायमुताश्चास्यतान्छणु ॥४९॥

जब वह इस प्रकार तप में प्रवृत्त हुआ, तब प्रजापति ब्रह्माजी ने उसमें कहा—हे वत्स ! ऐसा घोर तप किसलिये कर रहे हो ? ॥४२॥ आनन्द बाबा—हे भगवन् ! मेमार के बन्धन रूप कर्मों को नष्ट करने की अभिलाषा से ही मैं यह तप कर रहा हूँ ॥४३॥ ब्रह्माजी ने कहा—क्षीणाधिकार वाल मनुष्य ही मोक्ष के अधिकारी होते हैं क्योंकि वे कर्मवान् नहीं होते, तुम जीपा पर आविष्टत करन बाल हाकर मोक्ष को कैसे प्राप्त हो सकोगे ? ॥४४॥ जाया, तुम छटके मनु होग उसी प्रकार के कर्मों से मोक्ष को प्राप्त हो जाओगे, अब तुम्हें तप करना आवश्यक नहीं है ॥४५॥ माकण्डेयजी ने कहा—ब्रह्माजी के आज्ञा पाकर 'ऐसा ही हो' कहते हुए आनन्द ने तपस्या का परित्याग किया ॥४६॥ और ब्रह्माजी ने उन्हे तप में निवृत्त करके पूर्ववत् 'चाक्षुष' नाम दिया, फिर वही चाक्षुष मनु के नाम से प्रसिद्ध हुए ॥४७॥ फिर उन्होंने राजा उग्र

की पुत्री विदर्भा से विवाह किया और उसके गर्भ से उन्होंने विक्रम युक्त अनेक पुत्र प्राप्त किये ॥४८॥ उस मन्वन्तर पति के मन्वन्तर में जो ऋषि, इन्द्र और जो-जो सन्तान हुईं, उसका वर्णन सुनो ॥४९॥

आप्यानामसुरास्तत्रतेषामेकोऽष्टकोगणः ।
 प्रख्यातकर्मणां विवयज्ञे हव्यभुजामयम् ॥५०॥
 प्रख्यातबलवीर्याणां प्रभामण्डलदुर्दृशाम् ।
 द्वितीयश्च प्रसूताख्यो देवानामष्टकोगणः ॥५१॥
 तथैवाष्टक एवान्यो भव्याख्यो देवतागणः ।
 चतुर्थश्च गणस्तत्र यूथगाख्यस्तथाष्टकः ॥५२॥
 लेखसंज्ञास्तथैवान्येतन्मन्वन्तरे द्विज ।
 पञ्चमे च गणो देवास्तत्संगृह्य मृताशिवः ॥५३॥
 शतक्रतूनामा हृत्ययस्तेषामधिपो भवत् ।
 मनोजत्वस्तृयैवेन्द्रसंख्यातो यज्ञभागभुक् ॥५४॥
 समेधा विरजाश्चैव हविष्मानुभ्रतो मधुः ।
 अतिनामासहिष्णुश्च सप्तसन्निति चर्षयः ॥५५॥
 ऊरुपुरुशताद्यन्मन्मन् प्रमुखाः सुमहाबलाः ।
 चाक्षुषस्य मनोः पुत्राः पृथिवीहता यो भवन् ॥५६॥

हे ब्रह्मन् ! इस मन्वन्तर में देवताओं का 'आर्य' नामक प्रथम गण हुआ, उस गण में कर्म और यज्ञ में हव्यभोजी आठ प्रसिद्ध देवता थे ॥५०॥ बल वीर्य में विख्यात और प्रभामण्डल के मध्यवर्ती होने के कारण दुर्दर्श अन्य देवताओं का 'प्रसूत' नामक द्वितीय गण हुआ, इसके भी आठ देवता हुए ॥५१॥ मन्त्राख्य नामक तृतीय देवगण में आठ और यूथग नामक चतुर्थगण में भी आठ ही देवता हुए ॥५२॥ पाँचवें गण में अमृताशी नामक विख्यात देवता हैं । उस मन्वन्तर में अन्य देवता 'लेख' नाम वाले हैं, इस पाँचवें गण में पूर्ववत् अमृतभोजी देवता आठ हैं ॥५३॥ सौ यज्ञ करके 'मनोजव' नामक इन्द्र उन देवताओं के अधिपति हुए ॥५४॥ इसमें सुमेधा, विरजा, हविष्मान्, उन्नत,

मधु, अति भीरु मरिचिणु यह तप्तपि हुण तथा ऊरु, पुष्ट, सततदुग्ध इत्यादि राजा
जन चाधुप मनु के अन्यन्त बलवान् पुत्र हुए ॥५५-५६॥

एतत्तेकथितपद्म मयामन्वन्तर द्विज ।

चाधुपम्यतायाजन्मचरितचमहात्मनः ॥५७

साम्प्रतवत्तन्तेयोऽयनाम्नावं च स्वतोमनु ।

मममोयेन्तरेतस्य देवाद्यास्ताञ्छृणुष्वमे ॥५८

(यद्दद श्रीतंयेक्षोमाश्चाधुपम्यतारभुवि ।

शृणुतेचलभेत्पुनानारोग्यमुत्सपदम्) ॥५९

यह इस पद्य मन्वन्तर भीरु महात्मा चाधुप मनु का जीवन चरित्र मैंने
तुमने कह दिया ॥५७॥ अब जो वैवस्वन नामक सातवें मनु वर्तमान है, उनके
मन्वन्तर के देवतादि का चरण थपण करो ॥५८॥ जो मनुष्य इस चाधुप
मन्वन्तर को कहेंगे या थपण करेंगे उन्हें पुत्र धारोपता, सुख, सम्पत्ति की
प्राप्ति होगी ॥५९॥

६८- वैवस्वत मन्वन्तर आरम्भ

मातृण्डस्यरवेर्भायाननयाविश्वकर्मण ।

सज्जानाममहाभागतस्याभानुरजीजनत् ॥१

मनु प्रख्यातयज्ञममनेवज्ञानपाग्यम् ।

त्रियम्बत मुनोयम्मातृमातृर्वस्वतस्तुत ॥२

मज्ञाचरविद्यादृष्टानिमीनयतिवाचने ।

यतस्तम मरोपोऽर्ज मज्ञानिष्ठुरमञ्जवीत् ॥३

मपिदृष्टेमदायम्मातुरपेनेत्रमयमम् ।

तस्माज्जनिष्यसेमूढेप्रजासयमनयमम् ॥४

ततःसाचपनादृष्टिदेवीचक्रेभयाकुला ।

विनोवितदृष्टादृष्टापुनरादृचतारवि ॥५

यस्माद्विलोलितादृष्टिर्मयिदृष्टे त्वयाधुना ।
तस्माद्विलोलांतनयांनदींत्वप्रसविष्यसि ॥६॥
तःसंज्ञातुसंज्ञज्ञेभर्तृशापेनतेनवै ।
यमश्चयमुनाचेयप्रख्यातासुमहानदी ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे महाभाग ! विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा मार्कण्डेय की भार्या थी, उसके गर्भ से ॥१॥ यश में विख्यात एवं अत्यन्त ज्ञानवान् मनु उत्पन्न हुए, वह विवस्वान् के पुत्र होने से 'वैवस्वत' नाम से प्रसिद्ध हुए ॥२॥ रूप को देखते ही वह संज्ञा अपने नेत्र बन्द कर लेती थी, इसलिए एक दिन सूर्य ने उसके प्रति यह कठोर वचन कहा ॥३॥ तू मुझे देख कर सदैव नेत्रों का संयम कर लेती है, इसलिये तेरे प्रजा का संयम करने वाले यम की उत्पत्ति होगी ॥४॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तभी से संज्ञा से भय से व्याकुल होकर सूर्य को चञ्चल दृष्टि से देखने लगी, तब उसे चञ्चल नेत्र वाली देख कर सूर्य ने उससे कहा ॥५॥ तू मुझे देखकर चञ्चल दृष्टि कर लेती है, इसलिये अब तू चञ्चल नदी रूप वाली कन्या को उत्पन्न करेगी ॥६॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—पति के द्वारा इस प्रकार शापित हुई संज्ञा के गर्भ से यम उत्पन्न हुआ और फिर यमुना नाम की विख्यात नदी भी उत्पन्न हुई ॥७॥

सापिसंज्ञारवेस्तेजःसेहेदुःखेनभाविनी ।
असहन्तीचसातेजश्चिन्तयामासवैतदा ॥८॥
किं करोमिक्वगच्छामिक्वगतायाश्चनिवृत्तिः ।
भवेन्ममकथंभर्ताकोपमर्कश्चनैध्यति ॥९॥
इतिसंचिन्त्यबहुधाप्रजापतिसुतातदा ।
बहुमेनेमहाभागापितृसंश्रयमेवसा ॥१०॥
ततःपितृगृहेगन्तुकृतबुद्धिर्यशस्विनी ।
छायामयीमात्मतनुंनिर्ममेदयितारवेः ॥११॥
तांचोवाचत्वयावेदमन्यत्रभानोर्यथामया ।
तथासम्यगपत्येषुवर्तितव्यंयथारवौ ॥१२॥

पृथ्यापिनवाच्यतेतद्भर्तागमनमम ।

संवास्मिनामसजेतिवाच्यमेतत्सदावचः ॥१३

आकेशग्रहणाद्देविग्राशापाञ्चवचस्तव ।

करिष्येकययिष्यामिवृत्ततुशापवपंग्णात् ॥१४

उम मजा ने उतन समय तक अत्यन्त बड़ सूँके सूर्य के तेज को सहन किया था, परन्तु अब अधिक सहन न करने के कारण वह विचार करने लगी ॥१३॥ क्या करूँ ? विषय काज ? किस प्रकार भय से बचूँ ? किस उपाय अपने पति को क्रोध से निवृत्त करूँ ? ॥१४॥ तब उस प्रजापति मुता सजा ने पितृ गृह के आश्रय में जाने का ही विचार स्थिर किया ॥१०॥ ऐसा निश्चय करके उसने अपनी छाया स्वरूप एक देह बनाकर ॥११॥ उम छाया से कहा— जिस प्रकार मैं इन सूर्य देव के गृह में निवास करती हूँ, उसी भाव से यहाँ रहनी हुई मेरे पुत्र और पति के प्रति मेरे ही समान आचरण करना ॥१२॥ सूर्य पूजें तो भी मेरे चले जाने की बार्ता उन्हें मख बताना, 'मैं ही सगा हूँ' उन्हें ऐसे ही समझाये रहना ॥१३॥ छाया ने कहा— ठे देवि ! जब तक वे मेरे चेहरे नहीं पकड़ेंगे और शाप नहीं देंगे, तब तक मैं तुम्हारे वचनों के अनुगार कार्य करूँगी और बंध परडन या शाप देने पर सब वृत्तान्त बता दूँगी ॥१४॥

इत्युक्तासातदादेवीजगामभवनपितुः ।

ददर्शनव्रत्वष्टारतपसाधूतवल्मपम् ॥१५

बहुमानाच्चैतनापिपूजिताविश्वकर्मणा ।

तस्योपितृगृहेसातुकचित्कालमनिन्दिता ॥१६

ततस्ताप्राहृचावन्तीपितृनातिचिरोपिताम् ।

स्तुत्याचतनयाप्रेमबहुमानपुरसरम् ॥१७

त्वानुमेषदयतोवत्सेदिनानिमुबहून्यपि ।

मुहूर्ताद्दसमानिस्तु विन्मृषमोविलुप्यते ॥१८

वान्यवेपुचिरवासोनारीणानयशस्वर ।

मनोऽथोवान्यवानानात्यभिर्तृगृहेस्थितिः ॥१९

सात्वंत्रैलोक्यनाथेनभर्त्रसूय्यणसंज्ञता ।

पितृगेहेचिरकालं वस्तुनार्हसिपुत्रिके ॥२०॥

सात्वंभर्तृगृहंगच्छतुष्टोऽहंपूजितासिमे ।

पुनरागमनंकार्यदर्शनायशुभेमम ॥२१॥

यह बात सुनकर संज्ञा अपने पिता के घर चली गई और वहाँ उसने तप के द्वारा पाप रहित हुए विश्वकर्मा के दर्शन किये ॥१५॥ विश्वकर्मा ने संज्ञा का स्वागत सत्कार किया और फिर आनन्द युक्त हुई संज्ञा ने कुछ काल तक अपने पिता के गृह में निवास किया ॥१६॥ फिर कुछ कालोपरान्त उसके पिता ने अत्यन्त मान के सहित उससे कहा ॥१७॥ हे वत्से ! तुमको देखते हुए बहुत समय व्यतीत होने पर भी वह मुझे आगे मुहूर्त्त के समान ही समय व्यतीत हुआ प्रतीत होता है, परन्तु इससे धर्म का लोप हो जाता है ॥१८॥ स्त्रियों के लिये बांधवों के साथ सदा निवास करना यद्यपि देने वाला कार्य नहीं है, उनका निवास तो पतिगृह में ही उचित है ॥१९॥ वीनों लोकों के स्वामी सूर्य तुम्हारे पति हैं, तुम उनके साथ विशाह सूत्र में बँधी हो, तुम्हारा पितृगृह में रहना उचित नहीं हो सकता ॥२०॥ इसलिए अब तुम अपने पति के घर चली जाओ, तुम्हारे आगमन से मैं सन्तुष्ट हुआ और तुम भी मेरे द्वारा सत्कारित हुई, अब फिर देखने के लिये यहाँ आ जाना ॥२१॥

इत्युक्तासातदापित्रातथेत्युक्ताचसामुने ।

सपूजयित्वापितरंजगामाथोत्तरान्कुरुन् ॥२२॥

सूयतांपमनिच्छन्तीतेजसस्तस्यविभ्यती ।

तपश्चत्वारतत्रापिवडवारूपधारिणी ॥२३॥

सज्जेयमितिमन्वानोद्वितीयायामहस्पतिः ।

जनयामासतनयीकन्यांचैकामनोरमाम् ॥२४॥

छायासंज्ञात्वपत्येषुयथास्वेष्वतिवत्सला ।

तथानसंज्ञाकन्यायांपुत्रयोश्चान्ववर्त्तत ॥२५॥

लालनाद्युपभोगेषुविक्षेपमनुवासरम् ।

मनुस्तत्क्षान्तवानस्यायमस्तस्यानचक्षमे ॥२६॥

ताडनायचर्वकोपात्पापस्तेनसमुत्त त ।
 तस्या पुन क्षातिमताननुदेहेनिपातित ॥२७॥
 तत शशापतपोषाच्छायामज्ञायमद्विज ।
 किञ्चित्प्रस्फुरमाणोऽधोविचलत्पाणिपल्लवा ॥२८॥
 पितु परनीममय्यादयन्मातज्जयसेपदा ।
 भुवितस्मादियपादस्तवाश्वं वपतिष्यति ॥२९॥

माकण्डेयजी न कहा—अपन पिता विश्वकर्मा के ऐसा बहने पर राजा उनको जाना भाग कर और उनका पूजन कर उत्तरकुक्षेय के गई ॥२७॥ सूर्य के तेज से भयभीत राजा सूर्य के तज को न बाहने की इच्छा से वहाँ छोड़ी का रूप रंग कर तप करने लगी ॥२८॥ उधर सूर्य न उस छाया को ही राजा मानते हुए उनका गम से दो पुत्र और एक पुत्री को जन्म दिया ॥२९॥ परन्तु यह छाया जिनको प्रीतिवती अपनी सन्तान के प्रति थी, उनको राजा की सन्तान के प्रति स्नेहवती नहीं थी ॥३०॥ बड़ लारन पानन के समय सन्तानों के भेद भाव दिखायी दी, इसका नियमनु ने तो उससे कुछ नहीं कहा, परन्तु धम से उसे क्षमा नहीं किया ॥३१॥ उन्होंने क्रोधवश प्रहार करने की अपना चरण उठाया, परन्तु क्रोध को राक कर चरण प्रहार नहीं किया ॥३२॥ परन्तु उस छाया राजा न क्रोध के बलीभूत होकर होठ कम्पित करते हुए हाथ उठा कर शाप दिया ॥३३॥ मैं तो पिता की पत्नी हूँ फिर भी तू मरी मर्यादा न रखा कर चरण दिखाकर डराना है, इसलिये तब यह चरण क्षणात् पृथिवी के गिर जाय ॥३४॥

इत्यानर्त्यमम शापमात्रादत्त भयानुर ।
 अम्येत्यपितर प्राहप्रणिपातपुर सरम् ॥३५॥
 तातेतन्महदाश्रय्यनदृष्टमिति केनचित् ।
 मातावात्मत्यमुत्पृज्यशापपुत्रेप्रमच्छति ॥३६॥
 ययामनुर्ममाचष्टे नयमात्तानवामम ।
 विगुं शोच्यपिपुत्रेपुनमातानिगुणामवेत् ॥३७॥

यमस्यैतद्वचःश्रुत्वाभगवांस्तिमिरापहः ।

छायासंज्ञां समाहूय प्रच्छन्नवगतेतिसा ॥३३॥

सा चाहृतनया त्वष्टुरहंसंज्ञाविभावसो ।

पत्नी तव त्वयापत्यान्येतानि जनितानि मे ॥३४॥

इत्थं विवस्वतः सा तु बहुशः पृच्छतो यदा ।

ना च चक्षेत तः क्रुद्धो भास्वांस्तां शप्नुमुद्यतः ॥३५॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—माता द्वारा ऐसा शाप सुनकर भय से आतुर हुए यम ने अपने पिता सूर्य के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और बोले ॥३०॥

यम ने कहा—माता अपने ही पुत्र को शाप दे, यह अत्यन्त विस्मयजनक है, ऐसी बात तो कभी कहीं नहीं देखी गई ॥३१॥ मनु ने मुझसे जैसा कहा था, वैसी यह माता नहीं है, पुत्र के असदगुणी होने पर भी माता उसके अमंगल की बात नहीं कहती ॥३२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—यम का वचन सुनकर भगवान् सूर्य ने छाया को अपने पास आकर सहित बुला कर पूछा—संज्ञा कहाँ गई ? ॥३३॥ छाया ने कहा—हे भगवन् ! विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा मैं ही हूँ, मैं ही तुम्हारी भार्या हूँ, मेरे ही गर्भ से इस सन्तान की उत्पत्ति हुई है ॥३४॥ सूर्य के बारम्बार प्रश्न करने पर भी उसने वही उत्तर दिया तब सूर्य क्रोधित होगये और शाप देने के लिये तत्पर हुए ॥३५॥

ततः सा कथयामास यथावृत्तं विवस्वतः ।

विदितार्थं श्रुत्वा भगवान् जगाम त्वष्टुरालयम् ॥३६॥

ततः स पूजयामास तदा त्रैलोक्यपूजितम् ।

भास्वन्तं परयाभक्त्या निजगेहमुपागतम् ॥३७॥

संज्ञां पृष्ठस्तदा तस्मै कथयामास विश्वकृत् ।

आगतं वेहमेवेश्म भवतः प्रेषितेति वै ॥३८॥

दिवाकरः समाधिस्थो बडवारूपधारिणीम् ।

तपश्चरन्तीं दृष्ट्वा उत्तरेषु कुरुष्वथ ॥३९॥

सौम्यभूतिः शुभाकारो मम भर्ता भवेदिति ।

अभिसन्धिश्च तपसो बुबुधेऽस्या दिवाकरः ॥४०॥

धातनतेजसोमेऽवक्रियतामितिभास्वरः ।
 मत्वाहविश्वरुमाणमज्ञायाः पितरद्विज ॥४१॥
 मवत्सरभ्रमेस्तम्यविश्वकर्मारवेस्ततः ।
 तेजस धातनचक्रेस्तूयमानश्रदंवत् ॥४२॥

तब जो वृत्तान्त था वह सभी उसने सूर्य से कह दिया, जिसे जानकर वह विश्वकर्मा के घर पहुँचे ॥३६॥ अपने घर पर आगत भगवान् सूर्य का विश्वकर्मा ने अत्यन्त भक्तिपूर्वक पूजन किया ॥३७॥ इसके पश्चात् जब सूर्य ने सज्ञा का वृत्तान्त पूछा, तो उन्होंने बताया कि मज्ञा यहाँ आई थी घोर फिर मैंने उसे भापके ही यहाँ भेज दिया था ॥३८॥ तब सूर्य ने ध्यान में अवस्थित होकर सज्ञा को धोटी का रूप धारण किये उत्तर कुरूप में तप करते हुए देखा ॥३९॥ उन्होंने जान लिया कि उसके तप का उद्देश्य मेरी मुन्दरावृत्ति और मोक्ष मूर्ति होन की कामना ही है ॥४०॥ तब भगवान् सूर्य ने सज्ञा के पिता विश्वकर्मा से कहा कि मेरे नेत्र को क्षीण कर दीजिए ॥४१॥ देवताओं व द्वारा प्रार्थना करने पर उन विश्वकर्मा ने सूर्य के नेत्र को क्षीण कर दिया ॥४२॥

७०-सूर्य-मन्त्र एवं अश्विनी कुमारों की उत्पत्ति

तनस्तुष्टुमुदवास्तयादेवपंथोरविम् ।
 वाग्मिरीद्वयमनोपरयत्र नोनयम्यमागता ॥१॥
 नमस्तेऽस्वस्वरूपायसामन्पायतेनमः ।
 यजुस्वरूपायसाम्नामयामवतेनमः ॥२॥
 शान्तरूपायभूतानिधूततमसेनमः ।
 शुद्धज्योतिस्वरूपायविशुद्धायामलात्मने ॥३॥
 (वाग्मिगुणगिनेधाम्नेशागिणेषदिनेनमः)
 वरिष्ठायवरेण्यायपरस्मैपरमात्मने ।
 नमोऽन्निरजगच्छापिस्वरूपायात्ममूर्तये ॥४॥

सर्वकारणभूतायनिष्ठायैज्ञानचेतसाम् ॥५॥

नमःसूर्यस्वरूपायप्रकाशात्मस्वरूपिणे ।

भास्करायनमस्तुभ्यंतथादिनकृतेनमः॥६॥

शर्वरीहेतवेचैवसन्ध्याज्योत्स्नाकृतेनमः ।

त्वंसर्वमेतद्भूगवञ्जगदुद्भ्रमतात्वया ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—सब देवता और ऋषि वहाँ आकर त्रैलोक्य पूज्य भगवान् भास्कर की स्तुति करने लगे ॥ १ ॥ देवताओं ने कहा—हे देव ! आप ऋक् स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है, आप साम स्वरूप को नमस्कार हैं, आप ही यजुःस्वरूप एवं साम के छुतिमान् हैं, आपको नमस्कार है ॥ २ ॥ आप ही ज्ञान के एकमात्र आश्रय स्वरूप, अन्धकार के नाशक, ज्योति स्वरूप विशुद्ध एवं विमलात्मा हैं, आपको नमस्कार हैं, ॥ ३ ॥ आप शङ्ख, चक्र; पद्म और शार्ङ्ग धारण करने वाले को नमस्कार, आप वरिष्ठ, वरेण्य, पर, परमात्मा, आत्म स्वरूप एवं जगदम्बापी स्वरूप को नमस्कार है ॥ ४ ॥ आप ही ज्ञान चित्त वाले पुरुषों के लिये निष्ठा स्वरूप तथा सर्वभूतों के कारण रूप हैं ॥ ५ ॥ आप ही सूर्यरूपी प्रकाश और आत्मरूपी भास्कर हैं, आप दिनकर को नमस्कार है ॥६॥ रात्रि के कारण, संध्या एवं ज्योत्स्ना को प्रकट करने वाले आप भगवान् के लिये नमस्कार है, आपके ही द्वारा यह विश्व जाग्रति और सुषुप्ति में पड़ता है ॥७॥

अमत्याविद्धमखिलं ब्रह्माण्डं सचराचरम् ।

त्वदंशुभिरिदं स्पृष्टुं सर्वसंजायते शुचिः ॥८॥

क्रियते त्वत्करं स्पृष्ट्वा ज्जलादीनां पवित्रता ।

होमदानादिको घर्मो नोपकाराय जायते ॥९॥

तावद्यावन्नसंयोगि जगदेव त्वदंशुभिः ।

ऋचस्ते सकलां ह्येता यजूंष्येता निचान्यतः ॥१०॥

सकलानि च सामानि निपतन्ति त्वदङ्गतः ।

ऋद्धं मयस्त्वं जगन्नाथ त्वमेव च यजुर्मयः ॥११॥

यत् साममयश्चैतत्ततोनायत्रयीमयः ।

त्वमेवब्रह्माण्डरूपपरचापरमेवच ॥११॥

मूर्त्तामूर्त्तं स्तथासूक्ष्मं स्थूलरूपस्तथास्थितः ।

निमेषकाष्ठादिमयः कालरूप स्यात्मात्मकः ।

प्रसीदस्वेच्छयारूपस्वतेजः शमनकुरु ॥१३॥

इदं स्तोत्रवररम्यं श्रोतव्यं श्रद्धया नरैः ।

शिष्योभूत्वा न माघिस्थो देवस्वादेयगुरोरपि ॥१४॥

आपके द्वारा ही यह मन्त्रावर ब्रह्माण्ड गति करता है और सभी स्पर्शनीय द्रव्य आपकी रश्मियों का स्पर्श प्राप्त करके ही पवित्र होते हैं ॥८॥ आपकी रश्मियों से ही जमादि पवित्र होते हैं तथा जब उपकारार्थ होम, दान आदि कर्म नहीं होते ॥ ९ ॥ तब तक यह विश्व आपकी रश्मियों के सवीर्य की प्राप्ति नहीं होता, आपके भग से उद्भूत रश्मियाँ शुक, यजु, और ताम ही हैं, इसलिये आप ही शुक्लय, यजुर्मय ॥ १०-११ ॥ और साममय हैं, आप ही त्रयीमय ब्रह्मात्मरूप तथा प्रथम और अग्रधान भी हो ॥ १२ ॥ आप मूर्तिधारी हो, तथा आप ही आहुति होत हो, स्थूल एवं सूक्ष्मरूप से आप ही निमेष काष्ठा आदि एक समात्मक काल हो, आप प्रसन्न हो और स्वेच्छापूर्वक ही रूप और तेज की क्षीण करे ॥१३॥ (इस मुरम्य स्तोत्र की श्रद्धापूर्वक सुनें और श्रुत भी अपने शिष्य की समाधि में स्थित होकर प्रदान करें ॥

एतत्सम्तुष्टमानस्तु देवैर्देवयिभिस्तथा ।

मुमोक्षस्व तदा ते जस्ते जसाराशिरव्ययः ॥१५॥

यत्तस्य शृङ्गमयतेजो भविता तेन मेदिनी ।

यजुर्मयेनापि दिवस्वर्गः सामममरवे ॥१६॥

सातिनास्ते जसो भागयेत्स्वष्ट्रादसपचच ।

हरष्टुं कतेन शवं स्पष्टतमूलमहान्मना ॥१७॥

चन्द्र विष्णोर्वंमूनां वक्ष्ये वीर्यमुदात्तम् ।

पावनस्थनपाशक्तिं निविधाघनदम्पय ॥१८॥

अन्येषामसुरारीणामस्त्राण्युग्राणियानिवै ।

यक्षविद्याधराणाम्बतानिचक्रैस्विश्वकृत् ॥१९॥

ततश्चषोडशं भागं विभति भगवान्विभुः ।

तत्तेजः पंचदशधा शतितं विश्वकर्मणा ॥२०॥

ततोऽस्वरूपधृग्भानुरुत्तरानगमत्कुरुन् ।

ददृशे तत्र संज्ञां च वडवारूपधारिणीम् ॥२१॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—देवताओं और ऋषियों द्वारा इस प्रकार स्तुत होकर तेजोराशि भगवान् सूर्य ने अपने तेज को छीन लिया ॥१९॥ उनके ऋक्मय तेज से पृथिवी हुई, यजुर्मय तेज से आकाश और साममय तेज से स्वर्ग हुआ ॥१९॥ त्वष्टा ने सूर्य-तेज के जिस पंचदश भाग को छोड़ दिया था, उसी भाग से शिवजी का जूल ॥१७॥ विष्णु चक्र तथा वसुगण, शंकर और अग्नि की दारुण शक्ति का निर्माण किया तथा उसी से कुबेर की पालकी ॥१८॥ तथा अग्न्याय्य देवता, यक्ष, विद्याधर आदि के जो तीक्ष्ण अस्त्र हैं वह सब बनाये ॥१९॥ फिर भगवान् सूर्य ने अपने तेज का षोडशांश मात्र धारण किया, उसे भी विश्वकर्मा ने पन्द्रह बार छीना ॥२०॥ तदनन्तर सूर्य ने अश्व का रूप धारण किया और उत्तर कुर्वर्ष में पहुँच कर अश्वी रूप में अवस्थित संज्ञा को देखा ॥२१॥

साञ्चदृष्ट्वा तमायान्तपरपुंसो विशङ्कया ॥

जगाम संमुखं तस्य पृष्ठरक्षणतत्परा ॥२२॥

ततश्च नासिकायोगं तयोस्तत्र समेतयोः ।

नासत्यस्त्रौ तनयावश्वीवक्त्रविनिर्गतौ ॥२३॥

रेतसोऽन्ते च रेवन्तः झीखी च र्म्मा तनुवृष्टम् ।

अश्वारूढ समुद्भूतो बाणतूणसमन्वितः ॥२४॥

ततः स्वरूपमतुलदर्शयामास भानुमान् ।

तस्यैवाच समालोक्य स्वरूपं मुदमाददे ॥२५॥

स्वरूपधारिणीं च मामानिनायनिजाश्रमम् ।

संज्ञां भार्याप्रीतिमतीभास्करो वारितस्करः ॥२६॥

तन पूर्वसुतोयोऽस्या मोऽमूढं वस्वतोमनु ।

द्वितीयद्वयम-शापाद्धर्मदृष्टिरभूत्मुत ॥२७॥

इमयोमासमादायपादनोऽभ्यमहीतले ।

पतिप्यन्तीतिशापान्तनस्यचक्रो पितास्वयम् ॥२८॥

धर्मदृष्टिपतञ्जलासोममोभिन्नेतयाऽहिते ।

ततोऽनियोगतयाम्येचकारतिमिरापह ॥२९॥

उन्हें पाना देख कर पर-गुरुप की आराजा से सजा अपनी पीठ की रक्षा करती हुई उनके सामने पहुँची ॥२२॥ फिर उन दोनों की नासिका मिलने के कारण अश्वी के मुख से नासत्य और दस नामक दो पुत्र तत्काल बाहर निकले ॥२३॥ तथा वीर्य के शेष भाग से दास, कवच, खड्ग, बाण, तूण धारी अस्त्रवाण्ड के एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम रेशत हुआ ॥२४॥ फिर सूर्य ने उस घोड़ी को अपनी अनुसूति स्वरूप दिखाया, उस स्वरूप को देख कर बहवा रूपिणी सजा न प्रसन्न हो कर अपना पदार्थ रूप धारण कर लिया ॥२५॥ तब जन का क्षोषण करने वाले भगवान् सूर्य उस सजा नाम की अपनी पत्नी को घर ले गये ॥२६॥ इन्हीं का ज्येष्ठ पुत्र वैवस्वत मनु हुआ और दूसरा पुत्र यम नाप व कारण धर्मदृष्टि हुआ ॥२७॥ उनको दिये गये नाप का निवारण उनके पिता सूर्य ने स्वयं कर दिया ॥२८॥ तथा धर्म दृष्टि और पशुमित्र के मम दृष्टि दस कर सूर्य ने उनको यमत्व के कार्य में निमुक्त किया ॥२९॥

यमुनाचनदीजर्ज्वतिन्दान्तरवाहिनी ।

अभिनीदयभिपजोऽतृतीपित्रामहात्मना ॥३०॥

गुण्यनाधिपतित्वेऽरेवन्तोऽपिनियोजित ।

छाशमजामुनानां चनियाम श्रूयनामम ॥३१॥

पूर्वजन्ममनोऽभ्युदयायामजामुनोऽज- ।

तन गावर्णिवीसजामरापननयोगे ॥३२॥

नविप्यतिमनु मोपिवलिग्निद्रोयदातदा ।

ननंश्रगोप्राणांचमध्येपित्रानियोजितः ॥३३॥

तयोस्तृतीयाकन्यातुतपतीनामसाकुरुम् ।
 नृपात्संवरेणात्पुत्रमवापमनुजेश्वरम् ॥३४॥
 तस्यवैवस्वतस्याहमनोःसप्तममन्तरम् ।
 कथयामिसुतान्भूपानृषीन्देवान्सुराधिपम् ॥३५॥

उनकी कन्या यमुना नदी रूप से कलिव देश के मध्य में बहने लगी और घोड़ी के दोनों पुत्र (अश्विनीकुमार) पिता के द्वारा स्वर्ग के वैद्य नियुक्त हुये ॥३०॥ तथा रेवंत गुह्यकाधिपति हुए, अब छाया के पुत्रों की नियुक्ति कहता हूँ ॥३१॥ वैवस्वत मनु के समान छाया के गर्भ से उत्पन्न हुए ज्येष्ठ पुत्र का नाम सावर्णिक हुआ ॥३२॥ जब बलि इन्द्र हो जायेंगे तब यह मनु होंगे तथा पिता के द्वारा शनैश्वर को ग्रह में अवस्थित किया गया । सब से छोटी कन्या का नाम तपती हुआ, उसे संवरण नामक वरेण से एक पुत्र की प्राप्ति हुई ॥३४॥ अब उन सप्तम मनु वैवस्वत के अनन्तर सब ऋषि, देवता, इन्द्र और उनके जो पुत्र राजा हुए उनके विषय में वर्णन करता हूँ ॥३५॥

७१ वैवस्वत मन्वन्तर कथन

आदित्यावसवोरुद्राःसाध्याविश्वेमरुद्गणाः ।
 भृगवोऽङ्गिरसश्चाष्टौयत्रदेवगणाःस्मृताः ॥१॥
 आदित्यावसवोरुद्राविज्ञेयाःकश्यपात्मजाः ।
 साध्याश्चवसवोविश्वेधर्मपुत्रगणास्त्रयः ॥२॥
 भृगोस्तुभृगवोदेवा पुत्राह्यङ्गिरसःसुताः ।
 एषसर्गश्चमारीचोविज्ञेयःसाम्प्रताधिपः ॥३॥
 ऊर्जस्वीनामचैवेन्द्रोमहात्मायज्ञभागभुक् ।
 अतीतानागतायेचवर्तन्तेसाम्प्रतंचये ॥४॥
 सर्वेतेत्रिदशेन्द्रास्तुविज्ञेयास्तुल्यलक्षणाः ।
 सहस्राक्षाःकुलिशिनःसर्वएवपुरन्दराः ॥५॥

मघवन्तोवृषा सर्वेश्रु मिथोगजगामिनः ।

तेनतत्रतव सर्वभूताभिभवतेजस ॥६॥

घमाद्यं कारणांशुर्द्धराधिपत्यगुणान्विताः ।

भूतभव्यभवसाया शृणुर्चतन्त्रयद्विज ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—इस मन्वन्तर मे आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विरव, परदगण, भृगु और घगिरा यह आठ देवता है ॥१॥ उनमे आदित्य, वसु और रुद्र दस्यपजी से उत्पन्न हुए हैं तथा साध्य, वसु और विश्वेदेवा धर्म की मन्तान हैं ॥२॥ भृगुगण भृगु के पुत्र तथा अङ्गिरागण अङ्गिरा के पुत्र हैं, इस सर्ग को घाटीच सर्ग कहा गया है ॥३॥ इस मन्वन्तर मे महारमा ऊर्जस्वी यज्ञ भाग के भोगने वाले इन्द्र हुए हैं, पहिले जो इन्द्र हुए, अब जो इन्द्र हैं या जो भविष्य मे इन्द्र होंगे ॥४॥ वह सब देवेन्द्र कह कर ही प्रसिद्ध हैं, सभी सहस्राक्ष, दस्यघर और पुरन्दर हैं ॥५॥ सभी मघवा, वृष, शृङ्गधारी और गज पर पगल करने वाले हैं, सभी भी यज्ञ करने वाले, भूतों को जीतने वाले तथा तेजोमय हैं ॥६॥ वह सब इन्द्र पवित्र, घमादि के कारण, आधिपत्य गुण वाले और भूत, भविष्य, वर्तमान के अधीश्वर हैं, सब तीनों लोक का विभाग श्रवण करो ॥७॥

भूर्लोकोज्यस्मृताभूमिगन्तारिक्षदिविस्मृतम् ।

दिव्यास्थश्चतयास्वर्गस्त्रैलाक्यमितिश्रुते ॥८॥

प्रमिश्रं ववमिष्टश्चक्षुषश्चमहानृषिः ।

गीतमश्चभरद्वाजोविश्वामित्रोऽप्यकीदिक ॥९॥

तद्यद्वपुत्राभगवानृचीनस्यमहारत्नम् ।

जमदग्निस्तुमर्षं तेमुनयोऽतथास्तरे ॥१०॥

इक्ष्वाकुर्नाभश्चर्षवघृष्टशर्यातिरेवच ।

नरिष्यन्तश्चविष्यातानामागोदिष्टएवच ॥११॥

वन्मपश्चपृषप्रश्चवमुमांस्त्रोक्विश्रुतम् ।

मनोवैवस्वनस्यंतेनवपुत्रा प्रवीतिता ॥१२॥

यंयस्वनमिदमज्ञानंयिततेमयान्तरम् ।

अस्मिञ्छु तेनरःसद्यःपठितेचैवसत्तम ।

मुच्यतेपातकैःसर्वैःपुण्यंचमहदरनुते ॥१३॥

इस पृथिवी को भूलोक, अन्तरिक्ष को दिव और स्वर्ग को दिव्य कहते हैं, यही त्रैलोक्य कहे जाते हैं ॥८॥ अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, शीतम, भरद्वाज, विश्वामित्र ॥९॥ और भगवान् ऋचीक के पुत्र जमदग्नि यह इस मन्वन्तर में सप्तर्षि हैं ॥१०॥ इक्ष्वाकु, नामग, वृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, दिष्ट ॥११॥ कश्यप और पृषध यह नौ जन वैवस्वत मनु के प्रसिद्ध पुत्र हुए ॥१२॥ हे विप्र ! वैवस्वत मन्वन्तर का वर्णन तुम्हारे प्रति किया गया, इसके सुनने और पाठ करने से शीघ्र ही सब पापों से मुक्त होकर अनुष्य पुण्य फल को प्राप्त होते हैं ॥१३॥

७२-सावर्णिक मन्वन्तर

स्वायम्भुवाद्याःकथिताःसप्ततेमनवोमम ।

तदन्तरेषुयेदेवाराजानोमुनयस्तथा ॥१॥

अस्मिन्कल्पेसप्तयेऽन्येभविष्यन्तिमहामुने ।

मनवस्तान्समाचक्ष्वतथादेवादयश्चये ॥२॥

कथितस्तवसावर्णिश्रद्धायासंज्ञासुतश्चयः ।

पूर्वजस्यमनोस्तुल्यःसमनुभविताष्टमः ॥३॥

रामोव्यासोगालवश्चदीप्तिमान्कृपएवच ।

ऋष्यशृङ्गस्वथाद्रोणस्तत्रसप्तर्षयोऽभवन् ॥४॥

सुतापाश्रामिताभाश्चमुख्याश्चैवत्रिधासुराः ।

विशकःववथिताश्चैषान्रयाणांत्रिगुणोगणः ॥५॥

तपस्तपश्चक्रश्चक्षुतिर्ज्योतिःप्रभाकरः ।

प्रभासोदयितोधर्मस्तेजोरश्मिश्चवक्रतुः ॥६॥

इत्यादिकस्तुसुतपादेवानांविशकोगणः ।

प्रभुर्विभुर्विभासाद्यस्तथान्योविशकोगणः ॥७॥

श्रोष्टुवि बोले—आपने स्वायम्भुवादि सात मनु, उनके मन्वन्तर, देवता, ऋषि और राजाओं का वर्णन मेरे प्रति किया ॥१॥ अब, इस कल्प में जो सात मनु होंगे उनका और उस समय में होने वाले देवादि का वर्णन मेरे प्रति कीजिये ॥२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—मत्ता की छाया के गर्भ से उत्पन्न जिन ज्येष्ठ पुत्र सावर्णि के विषय में तुम से कहा गया, वही सावर्णि आठवें मनु होंगे ॥३॥ इस मन्वन्तर में राम, व्यास, गान्धर्व, दीप्तिमान्, कृप, ऋष्य शृङ्ग और द्रोणि यह सात मत्तर्षि होंगे ॥४॥ मुनपा, अभिताम और भुह्य यह तीन गण और प्रत्येक गण में बीस देवता हैं, इस प्रकार यह साठ हैं ॥५॥ उनमें उपरूप, शक्र, सृति, ज्योति, प्रभाकर, प्रभाम, दयित, धर्म, तेज, रश्मि और वज्रगु ॥६॥ आदि सभी देवता उन बीस गणों के अन्तर्गत हैं, प्रभु, विभु और विभामादि देवता अभिताम देवताओं के बीस गण हैं ॥७॥

सुराणामभितानांतृतृतीयमपिमेशृणु ।

दमोदात्रमृत मोमोविन्ताचार्यविविशति ॥८॥

मुन्याह्ये तेममाख्यातादेवामन्वन्तराधिपा ।

मारीचस्यैवतेपुत्रा काश्यपस्यप्रजापते ॥९॥

भविष्याश्चभविष्यन्तिमाश्रणस्तान्तरमनो ।

तेषामिन्द्रोभविष्यस्तुवभिर्वैरोचनिमुने ॥१०॥

पावान्प्रास्तेयोऽद्यापिदैत्य समयवन्धन ।

विरजाश्चार्चवीर्यनिर्मोह मत्स्यवाकृत ।

विष्णवाद्याश्च वतनया नायकांश्चमनोर्तृपाः ॥११॥

अब तृतीय गण का विवरण कहना है—दम, दात्र, ऋतु, मोम और विन्त आदि देवतागण मुख्य नाम के तृतीय विश्व के अन्तर्गत हैं ॥८॥ यह सभी मन्वन्तराधिपति और सभी मरीचि पुत्र प्रजापति काश्यपजी के ही पुत्र हैं ॥९॥ मारुणि मन्वन्तर में यह देवता और विरोचन पुत्र वलि इन्द्र होंगे ॥१०॥ ओ दैत्य राज प्रनिजा पाण में बंधे होने में अब भी पाताल में रहते हैं, यह विरजा, चर्चवीर, निर्मोह, मत्स्यवाक, कृति, विष्णु नामक यह सावर्णि पुत्र उग नाम के राजा होंगे ॥११॥

७३-देवी माहात्म्य-मधुकैटभ बध

सार्वणिःसूर्यतनयोयोमनुःकथ्यतेष्टमः ।
 निशामयतदुत्पत्तिविस्तराद्यदतोमम ॥१
 महामायानुभावेनयथामन्वन्तराधिपः ।
 सबभूवमहाभागःसार्वणिस्तनयोरवेः ॥२
 स्वारोचिषेत्तरेपूर्वचैत्रवंशसमुद्भवः ।
 सुरथोनामराजाभूत्समस्तेक्षितिमंडले ॥३
 तस्यपालयतःसम्यक्प्रजाःपुत्रानिवौरसान् ।
 बभूवुःशत्रवोभूपाःकोलाविध्वंसिनस्तदा ॥४
 तस्यतैरभवद्युद्धमतिप्रबलदंढिनः ।
 न्यूनैरपिसतैर्युद्धेकोलाविध्वंसिभिर्जितः ॥५
 ततःस्वपुरमायाप्तोनिजदेशाधिपोभवत् ।
 आक्रान्तःसमहाभागस्तैस्तदाप्रवलारिभिः ॥६
 अमात्यैर्बलिभिर्दुष्टैर्दुर्वलस्यदुरात्मभिः ।
 कोशोवलंचापहृतंतत्रापिस्वपुरेततः ॥७

मार्कण्डेयजी बोले—जिस सूर्य पुत्र सार्वणि को आठवाँ मनु कहा गया है, उसका विस्तार पूर्वक जन्म कहता हूँ, तुम श्रवण करो ॥१॥ जिस प्रकार वह महामाया भगवती की कृपा से सभी ऐश्वर्यों से सम्पन्न होकर मन्वन्तराधिपति हुआ, उसे सुनो ॥२॥ स्वारोचिष मनु के राज्याधिकार से पूर्व चैत्र-वंशोत्पन्न सुरथ नामक समस्त पृथिवी का राजा हुआ ॥३॥ जब वह सुरथ अपनी प्रजा का पालन पुत्रवत् करने लगा, उसी अवसर पर कोला विध्वंस नामक राजा उससे शत्रुता करने लगे ॥४॥ और प्रवल दण्ड देने में समर्थ राजा सुरथ के साथ उनका युद्ध हुआ, यद्यपि शत्रु अल्प थे, फिर भी उन्होंने सुरथ को परास्त कर दिया ॥५॥ तब अपने प्रवल शत्रुओं से वशीभूत हुआ राजा सुरथ अपने नगर में आकर राज्य करने लगा ॥६॥ उस नगर में भी

प्रबल शीघ्र दुष्ट अमात्यो ने उस राजा का शोषागार तथा सेना तट कर
टांकी ॥३॥

तनोभृगपाब्ध्याजेनहृतस्वाम्य सभूपति ।
एवाकीह्यमारुह्यजगामगहनघनम् ॥८॥
सतप्राश्रममद्राक्षीद्विद्वजवर्यःसुमेधस ।
प्रशात्तश्चापदाकीर्णमुनिशिष्योपशोभितम् ॥९॥
तत्स्यौकनिरसकालवमुनिनातेनसत्कृत ।
इतश्चेतश्चविधरस्तस्मिन्मुनिवराश्रमे ॥१०॥
सोचितयत्तदातत्रममत्वाद्दृष्टमानस ।
मत्पूर्वं पालितपूर्वमयाहौनपुरहितत ।
मद्वृत्त्यैस्ते रसद्वृत्तेर्धमेत पाल्यतेनच ॥११॥
नजानेमुप्रधानोमेतूरोहृत्तीसदामद ।
ममवद्विदयायात काभोगानुपसप्स्यते ॥१२॥
येनमानुगतानित्यप्रमादघनभोजन ।
अनुवृत्तिं चनेच्छुर्वन्त्यन्यमहीभृताम् ॥१३॥
असम्यग्यथशीलेस्ते कृवंद्भिः सततव्ययम् ।
मन्त्रित सोत्तिदु मेनस्यकोशोगमिष्यति ॥१४॥

इस प्रकार राज्य के छिन जाने पर राजा सुरेश मन्त्रादिक होकर भृगुमा
के भित में एवाकी ही निर्जन वन में चले गये ॥८॥ यही उनकी परहिंसा से
निकल हुए पशुओं में परिपूर्ण एक आश्रम देखा जो कि मेधा शामक महर्षि का
था, वह अपने मित्रों के सहित वही निवास करते थे ॥९॥ उन महर्षि ने राजा
का प्रत्यक्ष महार किमा योग तब वह राजा कुछ काल तक महर्षि के आश्रम
में टहर कर इधर-उधर विचरण करते रहे ॥१०॥ फिर उनका मन समती
पूर्वक उन्हें निलग्न कराने लगा कि मेरे पूर्व पुरुषों द्वारा पालित राज्य अब
मुझसे बिहीन हाथ में है, मेरे दुराचारी मृत्यु, उसका धर्म पूर्वक पालन करते
होगे या नहीं ? ॥११॥ तथा मम रहने वाला वह मेरा प्रधान हाथी सब
पशुओं के बन्धुगुह होकर कम रहे रहा होगा ॥१२॥ जो निरन्तर-प्रति प्रमाद,

धन; भोजनादि देने के कारण मेरे अनुगामी रहते थे, अब वह अवश्य ही अन्य राजाओं की सेवा में लगे होंगे ॥१३॥ तथा अन्यान्य प्रकार से धन व्यय करते हुए भी अत्यन्त कष्ट पूर्वक संचित कोष उन सेवकों के द्वारा नष्ट कर दिया जायगा ॥१४॥

एतच्चान्यच्चसतर्त्तचितयामासपार्थिवः ।

तत्रविप्राश्रमाभ्याशेवैश्यमेकंददर्शसः ॥१५॥

सपृष्ठस्तेनकस्त्वंभोहेतुश्चागमनेत्रकः ।

सशोकइवकस्मात्त्वंदुर्मनाइवलक्ष्यसे ॥१६॥

इत्याकर्ण्यवचस्तस्यभूपतेःप्रणयोदितम् ।

प्रत्युवाचसतंवैश्यःप्रश्रयावनतोत्पम् ॥१७॥

समाधिनमिवैश्योहमुत्पन्नोधनिनांकुले ।

पुत्रदारैर्निरस्तश्चधनलोभादसाधुभिः ॥१८॥

विहीनःस्वजनैर्दारैर्पुत्रैरादायमेधनम् ।

वनमभ्यागतोदुःखीनिरस्तश्चाप्तबंधुभिः ॥१९॥

सोहंनवेन्निपुत्राणांकुशलाकुशलात्मिकाम् ।

प्रवृत्तिस्वजनानांचदाराणांचात्रसंस्थितः ॥२०॥

किनुतेषांगृहेक्षेममक्षेमंकिनुसांप्रतम् ।

कथंतेकिनुसद्वृत्तादुर्वृत्ताःकिनुमेसुताः ॥२१॥

राजा सुरथ इस प्रकार की अनेक चिन्ताएँ करने लगे, तभी उन्होंने आश्रम के समीप एक वैश्य को देखा ॥१५॥ तो उन्होंने उससे पूछा कि तुम कौन हो ? यहाँ किसलिये आये हो ? तुम शोक सन्तप्त से क्यों दिखाई दे रहे हो ? ॥१६॥ राजा के ऐसे विनम्र वचन सुनकर वैश्य ने भी उन्हें अत्यन्त नम्रता पूर्वक उत्तर दिया ॥१७॥ वैश्य ने कहा—मैं धनिक कुल में उत्पन्न हुआ समाधि नामक एक वैश्य हूँ, धन के चालच में मेरी स्त्री और पुत्रों ने ॥१८॥ मेरा सम्पूर्ण धन छीन कर मुझे घर से बाहर कर दिया है और इस अवस्था में मुझे मेरे बाँधवों और मित्रों ने भी त्याग दिया है, इसीलिये दुःखित हृदय मैं इस वन में आया हूँ ॥१९॥ तथा इस वन में आकर मैं अपने स्त्री-

पुत्रादि न कुशल या भयङ्कृत की बात से घनभिन्न हैं ॥२०॥ घर में कुशल है या नहीं तथा उन पुत्रादि का आचरण सुधरा है धयवा नहीं, यही चिन्ता है ॥२१॥

यनिरस्तोभवान्नु^० च पुत्रदारादिभिर्धनं ।

तपुकिंभवत स्नेहमनुबध्नातिमानसम् ॥२२॥

गवमेतद्यथाप्राह्मभवानस्मद्गतयच ।

किं करोमिनबध्नातिममनिष्ठुरतामन ॥२३॥

यै सत्यज्यपितृस्नेहघनलुब्धैर्निराकृत ।

पतिस्वजनहार्दचहार्दितेष्वेवमेमन ॥२४॥

किमेतन्नाभिजानामिजानन्नापिमहामते ।

यत्प्रेमप्रवणचित्त विमुक्तोऽपिबध्नु^० ॥२५॥

तपाहु तमेति श्वासोदोर्मनस्वचजायते ।

धरोमिक्वियसमनस्तेष्वप्रोतिपुनिष्ठुरम् ॥२६॥

ततस्तीसहितीविप्रतमुनिसमुपस्थितौ ।

समाधिर्नामर्बदयोसोसचपाथिवसत्तम ॥२७॥

दृत्वातुतोयथान्यापयथाहंतेनसविदम् ।

उपविष्टोवथा वरश्चित्तकतुडोऽप्यपायिवो ॥२८॥

राजा बाल—जिन घन के सासवी स्त्री पुत्रादि ने तुम्हें घर से निकाल बाहर किया, उनके प्रति भी तुम्हारा चित्त स्नेहवान् क्यों है ? ॥२२॥ वैद्य बाल—घापका कचन यथार्थ है, परन्तु मैं क्या करूँ, मेरा मन किसी प्रकार भी उतना बढोरे नहीं हो पा रहा है ॥२३॥ जिन पुत्रों ने पितृ स्नेह की रक्षा कर, जिन पत्नियों ने पति प्रेम की छोड़कर और जिन बन्धुओं ने बापबाल का परिपोषण कर घन के लानच से मुझे घर से बाहर कर दिया, उसी दुष्ट जी, पुत्र और बन्धुओं से मेरा मन फँसा हुआ है, हे महायते ! उनमें मेरा चित्त दलरा घातपित्त क्यों है, यह मेरी समझ में नहीं आता ॥२४-२५॥ उन्हीं के प्रति निष्ठ हुआ मेरा चित्त दीप निश्चय छोड़ता हुआ दलरा प्रीतिमान् है और बढोरेता की प्राप्त नहीं हो पाता ॥२६॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे मुनिवर ! इसके पदवाद् राजा मुरख और बंद्य दोनों ही मिलकर महर्षि मेधा के पाठ

पहुँचे ॥२७॥ और दोनों ने मुनि का यथोचित सम्मान करके उनके साथ वार्तालाप प्रारम्भ किया ॥२८॥

भगवंस्त्वामहंप्रष्टुमिच्छाम्येकंवदस्वतत् ।
 दुःखाययन्मेमनसः स्वचित्तायत्ततांविना ॥२६॥
 ममत्वंगतराज्यस्यराज्यांगेष्वखिलेष्वपि ।
 जानतोपियथाज्ञस्यकिमेतन्मुनिसत्तम ॥३॥
 अयंचनिकृतःपुत्रं दारंभृत्यंस्तथोज्ज्वलतः ।
 स्वजनेनषसंत्यक्तस्तेषुहार्दीतथाप्यति ॥३१॥
 एवमेषतथाहंचद्वावप्यत्यंतदुःखितौ ।
 दृष्टदोषेपिविषयेममत्वाक्कुष्ठमानसौ ॥३२॥
 तकिमेतन्महाभागयन्मोहोज्ञानिनोरपि ।
 ममास्यचभवत्येषाविवेकांघस्यमूढ़ता ॥३३॥
 ज्ञानमस्तिममस्तस्यजंतोविषयगोचरे ।
 विषयाश्चमहाभागयांतिचंचंपृथक्पृथक् ॥३४॥
 दिवांघाःप्रणिनःकेचिद्रात्राबंधास्तथापरे ।
 केचिद्दिवातथारात्रौप्राणिनस्तुत्यदृष्टयः ॥३५॥

राजा बोले—हे भगवन् ! जिस विषय को न समझने के कारण मेरा मन दुःखित है, उस विषय को आप से पूछा चाहता हूँ, उसे मुझे समझाने की कृपा करें ॥२६॥ हे प्रभो ! यद्यपि यह भ्रम है, फिर भी राज्यादि के प्रति मेरी इतनी ममता है, ऐसा क्यों है ? ॥३०॥ इस वैश्य को भी इसके पुत्र, स्त्री भृत्य, बांधवादि ने अपमानित करके त्याग दिया है, फिर भी यह उन्हीं के प्रति अनुराग युक्त है ॥३१॥ इस प्रकार मैं और यह वैश्य दोनों ही इस दिखाई पड़ते हुए दूषित विषय में ममतावान् होकर अत्यन्त दुःखित हो रहे हैं ॥३२॥ हम जानती होकर भी विवेकांध के समान विमूढ़ हो रहे हैं ऐसा क्यों है ? ॥३३॥ ऋषि ने कहा—सभी जीवों को विषय के दिखाई पड़ने पर ज्ञान है, परन्तु विषयों के प्रति पृथक्-पृथक् ज्ञान की प्राप्ति होती है ॥३४॥ देखो कोई

जोव दिन में नही देय सरता, कोई रात्रि में नही देत पाता और किसी को दिन और रात्रि में समान रूप से दिखाई देता है ॥३५॥

ज्ञानिनोमनुजा मर्त्यविनुनेनहिकेवलम् ।

यनोहिज्ञानिन मर्वपशुपक्षिमृगादय ॥३६॥

ज्ञानतन्मनुष्याण्यतोपामृगपक्षिणाम् ।

मनुष्यणाचयत्तेषामुल्लमन्यत्तयोभयो ॥३७॥

ज्ञानपिसतिपश्येतान्पतमाञ्छावचक्षुषु ।

एवमोक्षादृतान्माहात्पोढ्यमानानपिधुधा ॥३८॥

मानुषामनुजव्याघ्रमाभिलाषा मुतान्प्रति ।

ताभाहप्रत्युपकारायनन्वेतन्किनपश्यमि ॥३९॥

तथापिममतावत्तमाहगर्त्तेनिपातिताः ।

महामायाप्रभायेणमसारस्थितिवारिणा ॥४०॥

तन्नामविस्मय कार्योयोगनिद्राजगत्पते ।

महामायाहरेअपातयासमोस्ततेजगत् ॥४१॥

ज्ञानिनामपिचेतासिदेवीमगवतीहिता ।

वलादावृष्यमाहायमहामायाप्रयच्छति ॥४२॥

आप जिस प्रकार ज्ञानवार्ता करत है, ऐसा ज्ञान मनुष्यों को है, इसमें शन्दे नही, परन्तु केवल मनुष्य ही ऐसे ज्ञान के अधिकारी नहीं हैं पशु, पक्षी तथा मृगादि को भी ऐसा ज्ञान प्राप्त है ॥३६॥ दिखाई पड़ने वाले विषय का ज्ञान पशु, पक्षी और मनुष्यों का समान ही है, उनमें कुछ भेद नहीं है ॥३७॥ परन्तु ऐसा ज्ञान होन पर भी पारस्परिक विषय में कितनी विभिन्नता है, देखो यह पक्षी स्वयं धुधानुर होकर भी अपने बालको की चौंख में मोह के बन्दीभूत होकर ही घाग्यादि क दासते हैं ॥३८॥ और मनुष्य भी अपनी सन्तान के प्रति प्रीतिमान् होकर उनका भरण-पोषण करत हैं, परन्तु मनुष्य का यह कार्य प्रणुसार के मोत्र ने ही है, क्या तुम्हें यह दिखाई नहीं देता ? ॥३९॥ इस प्रकार उपकार आदि की आशा से रहित होकर भी सभी जीव महामाया के प्रभाव से बाधना रूप भ्रमर से मुक्त मोह रूप गर्ज म पतित होते हैं ॥४०॥ इस

विषय में विस्मय की कोई बात नहीं है, जगदीश्वर श्री विष्णु की योग निद्रा स्वरूपिणी महामाया ही इस विश्व को विमोहित करती है ॥४१॥ वही महामाया ज्ञानियों के चित्त का बलपूर्वक आकर्षण करके उन्हें मोह में गिराती है ॥४२॥

तयाविसृज्यतेविश्वंजगदेतच्चराचरम् ।
 सैषाप्रसन्नावरदानृणांभक्तिमुक्तये ॥४३॥
 साविद्यापरमांमुक्तेहेतुभूतासनातनी ।
 संसारव गहेनुश्चप्रेतसर्वेश्वरेश्वरी ॥४४॥
 भगवन्काहिसादेवीमहामायेतियांभवान् ।
 ब्रवीतिकथमुत्पन्नाकर्मचास्याश्चकिद्विज ॥४५॥
 यत्प्रभवाच्चसादेवीयत्स्वरूपायदुद्भवा ।
 तत्सर्वश्रोतुच्छामित्वतोब्रह्मविदांवर ॥४६॥
 नित्येवसाजगन्मूर्तिस्तयासर्वमिदंततम् ।
 तथापितत्समुत्पत्तिर्बहुधाश्रयतामम ॥४७॥
 देवनांकार्यसिद्धयर्थमाविर्भवतिसायदा ।
 उत्पन्नेतितदालोकेसानित्याप्यभिधीयते ॥४८॥

देवी ने इस विश्व को उत्पन्न किया है और वही जब प्रसन्न होती है सब मनुष्यों को मोक्षदायक वर देती है ॥४३॥ मोक्ष की सर्वोत्तम हेतु स्वरूपा, ब्रह्मज्ञान स्वरूपा विद्या एवं संसार-बंधन की कारण रूपा वही है, वही ईश्वर की भी अघीश्वरी है ॥४४॥ राजा ने कहा—हे भगवन् ! जिसे आपने महामाया बताया है, वह कौन है ? उनकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई और उनके कर्म किस प्रकार के हैं ? ॥४५॥ उनका स्वभाव और स्वरूप कैसा है ? हे ब्रह्मविद् श्रेष्ठ ! यह सब मैं आप से सुनना चाहता हूँ ॥४६॥ ऋषि ने कहा—वह जगन्मूर्ति नित्य हैं तथा सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त हैं, फिर भी उनके अनेक प्रकार से उत्पन्न होने का वृत्तान्त तुमसे कहता हूँ, अवगुण करो ॥४७॥ जब देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिये उनका आविर्भाव होता है, तब नित्य होती हुई भी लोक में उत्पन्न हुई कहलाती है ॥४८॥

योगनिद्रां यदा विष्णुर्जंगत्येकार्णवीकृते ।
 आस्तोषं शेषमभजत्कल्पातिभगवान्प्रभु ॥४६॥
 तदा द्वावसुरोघोरो विख्यातो गधुर्वटभौ ।
 विष्णुकर्णमलोद्भूतो हनु ब्रह्माणमुद्यती ॥४७॥
 सनाभिवर्मले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापति ।
 दृष्ट्वा तावसुरोचोऽग्री प्रसुप्तचजनादनम् ॥४८॥
 सुष्टावप्रोगनिद्रांतामेवाग्रहृदयस्थित ।
 प्रबोधनार्थाय हरेर्हं रग्निप्रकृतालयाम् ॥४९॥
 विश्वेश्वरी जगदाग्री स्थितिसहारकारिणीम् ।
 स्तीमिनिद्रां भगवती विष्णोरनुलतेजस ॥५०॥
 त्वस्वाहा त्वस्वधा त्वहिवपट्कार स्वरात्मिका ।
 मुघात्वमक्षरे नित्ये त्रिधामात्मात्मिका स्थिता ॥५१॥
 मधमात्रा स्थितानित्यायानुच्चार्या विधेयतः ।
 त्वमेव सध्यासा विप्रित्वदेवि जननी परा ॥५२॥
 त्वर्यतद्वार्यते विश्व त्वर्यतत्सृज्यते जगत् ।
 त्वमेव सत्पात्यते देवि त्वमस्य तेव सत्तर्कदा ॥५३॥

तथा जब कल्याण मे यह विश्व जल मग्न हो गया था, तब भगवान्
 विष्णु सध्या पर ध्यान करके योग निद्रा में निपन्न हो गये ॥४६॥ तभी मधु
 बँटम नामक दो अश्विन भयंकर एवं प्रमिद धमुर भगवान् विष्णु के कान के
 मैल से उत्पन्न हुए घोर ब्रह्मा जी का वध करने में तत्पर हुए ॥विष्णु के नाम
 कमल में अवस्थित धारण तेजवान् प्रजापति ब्रह्माजी ने उन दोनों ५
 धमुरों को देगा घोर भयान् विष्णु की निद्रा में निपन्न देख कर ॥४८॥
 उन्हें जगने के निष्ठ एवाच चित्त से विष्णु के नेत्रों में स्थित निद्रा , -
 विश्वेश्वरी, विश्व की स्थिति घोर सप करने वाली एवं भगवान् की ॥
 उन भगवती निद्रा की स्तुति करने लगे ॥४९-५३॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे
 स्वप्नी ! हे निद्रा ! त्वम हवि दान के मय स्वाहा स्वस्व वाली हो, पितरों
 प्याद में तुम ही स्वाध्यायिणी हो, वपट्कार इन्द्र के हविर्दान मात्र की ,

स्वरूपा भी तुम ही हो तुम ही सुधा तथा तुम ही अक्षरों में, ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत स्वरूपा त्रिमात्रा हो ॥५४॥ जिस गायत्री में अर्द्ध मात्रा का उच्चारण विशेष रूप में स्थित हो, वह तुम ही हो और तुम ही सर्वश्रेष्ठ जगज्जननी एवं प्रकृति स्वरूपा हो ॥५५॥ हे देवि ! इस विश्व को उत्पन्न करने वाली तुम ही हो, तुम ही इसका धारण, पालन एवं प्रलयकाल में घास करने वाली हो ॥५६॥

विसृष्टीसृष्टिरूपात्वंस्थितिरूपाचपालने ।
 तथासंहतिरूपातेजमतोस्यजगन्मये ॥५७॥
 महाविद्यामहामायामहामेधामहास्मृतिः ।
 महामोहामहामतीमहादेवी महेश्वरी ॥५८॥
 प्रकृतिस्त्वंचसर्वस्यगुणत्रयविभाविनी ।
 कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्चदारुणा ॥५९॥
 त्वंश्रीस्त्वमेश्वरीत्वंह्रीस्त्वंबुद्धिर्बोधलक्षणा ।
 लज्जापुष्टिस्तथातुष्टिस्त्वंशान्तिःक्षान्तिरेवच ॥६०॥
 खड्गिनीशूलिनीघोरागदिनीचक्रिणीतथा ।
 शंखिनीचापिनीबाणाभुशुंभीपरिघायुधा ॥६१॥
 सौम्यासौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वत्तिगुन्दरी ।
 परापरार्णापरमा त्वमेवपरमेश्वरी ॥६२॥
 यच्चकिञ्चित्त्वंचिद्वस्तुसदसद्वाऽखिलात्मके ।
 तस्यसर्वस्ययाशक्तिःसात्त्विकिस्तूयसेमया ॥६३॥

सभी काल में सृष्टि और स्थितिरूप हो और विश्व के विनष्ट होते समय तुम ही संहार स्वरूपा हो ॥५७॥ तुम ही महाविद्या, महामेधा, महामाया, महास्मृति, महामोहा, महादेवी और महेश्वरी हों ॥५८॥ तुम ही सत्, रज, तम स्वरूप में सब जीवों की प्रकृति हो, तुम ही कालरात्रि, महारात्रि एवं प्रलय स्वरूपा हो, तुम ही भयंकर मोहगत्रि हो ॥५९॥ तुम ही श्री, तुम ही ईश्वरी, बुद्धि तथा दिव्यज्ञान की एकमात्र लक्षणा हो, तुम ही लज्जा, पुष्टि,

तुष्टि, शान्ति तथा शान्ति हो ॥६०॥ तुम ही ध्वजिनी, जूनिनी, भयकर
स्वरूपा, गदिनी, चक्रिणी, शंखिनी और चापिनी हो, बाण, भुशुण्डो और
परिष इन अस्त्रों के भी धारण करने वाली हो ॥६१॥ तुम ही सोम्या,
सोम्यनरा तथा विश्व के सब सुन्दर पदार्थों में सर्वश्रेष्ठ सोम्यं वाली हो, श्रेष्ठ,
श्रेष्ठतर तथा श्रेष्ठतरो की भी ईश्वरी हो ॥६२॥ सत्, असत् वस्तु और उन ती
नों की शक्ति है यह तुम ही हो, इसलिये तुम्हारी स्तुति में किन प्रकार
करें ? ॥६३॥

ययात्त्वयाजगत्स्रष्टाजगत्पात्यक्तियोजगत् ।
सोपिनिद्रावशनीत कस्त्वांस्तोतुमिहेश्वर ॥६४॥
विष्णु शरीरग्रहणमहमोशानएवच ।
कारितास्तेयतोऽन्तस्त्वांस्तोतु शक्तिमाश्रवेत् ॥६५॥
सात्वमित्यप्रभावं स्वेरुदारदेविसस्तुता ।
मोहमयेतौदुराधर्माविमुरोमधुकंटभौ ॥६६॥
प्रबोधवज्रगत्स्वामीनीयतामच्युतोऽपिधु ।
बोधश्चक्रियतामस्यहृत्तुमेतांमहामुरौ ॥६७॥
एवस्तुतातदादेवीतामसीतत्रवेधसा ।
विधायो प्रबोधनार्थायनिहतु मधुकंटभौ ॥६८॥
नेत्रास्यनासिकाबाहुदृढयेम्यस्यथोरसः ।
निर्गम्यदर्शनेतस्थोऽग्रहाणोऽप्यक्तजन्मनः ॥६९॥
उत्तस्थौचजगत्तायस्तयामुक्तोजनार्दनः ।
एकार्णवेहिदामनात्ततःसदहोचती ॥७०॥

हे देवि ! जब तुमने विश्व के गृष्टा, शालक और प्रलयकर्त्ता भगवान्
को ही निद्राभिभूत किया हुआ है तब तुम्हारे स्तुति करने की सामर्थ्य और
शक्ति में होगी ? ॥६४॥ हे देवि ! जब तुमने विष्णु ईशान और भुके देह प्राप्त
कराये है तब अन्य कौन पुरुष तुम्हारे स्तोत्र में समर्थ है ? ॥६५॥ हे देवि !
तुम भगने उग्रर स्वरूप के इन चण्डों से प्रसन्न होकर इन मधु घंटम नामक
दोनों दुष्टों धमुरों को मोहित कर दो ॥६६॥ क्या विश्वेश्वर विष्णु को

शीघ्र जगकर इन असुरों के संहार के लिये प्रेरित करो ॥६७॥ ऋषि ने कहा—
ब्रह्माजी ने उन दोनों का संहार करने के लिये जब इस प्रकार उन तमोगुणी
निद्रादेवी की स्तुति की ॥६८॥ तब उनके देखते-देखते भगवान् विष्णु के
नेत्र, नासिका, बाहु और हृदय से निकल कर भगवती अवस्थित हुई ॥६९॥
फिर निद्रा स्वरूपिणी देवी से मुक्त होकर भगवान् विष्णु ने एकाएक में स्थित
हुई बायें से उठ कर देखा ॥७०॥

मधुकैटभोदुरात्मानावतिवीर्यपराक्रमौ ।

क्रोधरक्तेक्षणीहंतुब्रह्माणंजनितोद्यमौ ॥७१॥

समुत्थायततस्ताभ्यांयुयुधेभगवान्हरिः ।

पंचवर्षसहस्राणिबाहुप्रहरणोविभुः ॥७२॥

तावप्यतिबलोन्मत्तौमहामायाविमोहिता ।

उक्तवन्तीवरोस्मत्तोन्नियतामितिकेशवम् ॥७३॥

भवेतामद्यमेतुष्टीममवध्याबुभावपि ।

किमन्येनवरेणात्रएतावद्विवृतंमया ॥७४॥

वंचिताभ्यामितितदासर्वमापोमयश्चगत् ।

विलोक्यताभ्यांगदितोभगवान्कमलेक्षणः ॥७५॥

प्रीतीस्वस्तवयुद्धेनरलाध्यस्त्वंमृत्युरावयोः ।

आवांजहिनयत्रोर्वीसलिलेनपरिप्लुता ॥७६॥

तथेत्युक्त्वाभगताशंखचक्रगदाभृता ।

कृत्वाचक्रेणवैच्छिन्नेजघनेशिरसीतयोः ॥७७॥

एवमेषासमुत्पन्नाब्रह्मणासंस्तुतास्वयम् ।

प्रभावमस्यादेव्यास्तुभूयःशृणुवदामिते ॥७८॥

क्रोध से लाल नेत्र किये हुए वे मधु कैटभ नामक दोनों दुरात्मा असुर
ब्रह्माजी का बच करना चाहते हैं ॥७१॥ भगवान् विष्णु ने उठ कर उन दोनों
असुरों के साथ पाँच सहस्र वर्ष तक बाहुओं से ही युद्ध किया ॥७२॥ फिर बल
से उन्मत्त हुए उन दोनों असुरों ने महामाया के द्वारा मोहित होकर भगवान्
से कहा—हम से वर माँगो ॥७३॥ भगवान् ने कहा—यदि तुम मुझ पर

प्रसन्न हुए हो तो मेरे द्वारा मारे जाओ, यही वर चाहता हूँ, अन्य वर से क्या प्रयोजन है ॥७४॥ ऋषि ने कहा—भगवान् द्वारा ऐसा छल करने पर उन असुरों ने सम्पूर्णा विश्व को अक्षय देख कर उनसे कहा ॥७५॥ हम तुम्हारे साथ युद्ध करके प्रसन्न हुए हैं इसलिये तुम्हारे हाथ से मग्ना हमे स्थापनीय है, परन्तु जो स्थान अक्षय्य न हो, हमारा वध वही करना ॥७६॥ ऋषि ने कहा—ऐसा ही हो बहुर भगवान् त्रिपुत्र ने शल चक्र और गदा को धारण करके उन असुरों के मन्त्रों का शपथी जवा पर रख कर चक्र से काट डाला ॥७७॥ स्वयं ब्रह्माजी द्वारा स्तुति करने पर यक्ष मायादेवी इस प्रकार से अवतारी हुई अब इन देवी का प्रभाव तुम्हारे प्रति कहता हूँ, उसे श्रवण करो ॥७८॥

७४- महिषासुर सैन्य वध

देवासुरमभूद्युद्ध पूर्णमन्दततपुरा ।
महिषसुराणामधिपेदेवानाचपुरदरे ॥१॥
तन्नामुरमंहावीर्यैर्देवसैन्यपराजितम् ।
जित्वाचमकलान्देवानिद्रोभून्महिषामुरः ॥२॥
ततः पराजितादेवा पद्मयोनिप्रजापतिम् ।
पुरस्कृत्यगतास्तत्रयत्रैश्वर्यदध्वजी ॥३॥
मया नृत्तं तयोस्तद्वन्महिषासुरचेष्टितम् ।
निदशा वयमाभातुर्वेवाभिभवविस्तरम् ॥४॥
सूर्येन्द्राग्न्यनितेन्द्रनाथमस्यवर्णम्यच ।
अन्येषां चाधिबाराण्यस्वयमेवाधितिष्ठति ॥५॥
स्वर्गाग्निरावृता सर्वतेन देवगणामुवि ।
विचरति यामार्ग्यामहिषेणदुरात्मना ॥६॥
एतद् वयितमर्वममरारिविचेष्टितम् ।
धारण्य प्रपन्ना स्मोवयस्तस्यविचित्यताम् ॥७॥

मुनि ने कहा—आदिकाल में जब देवाधिपति इन्द्र थे और महिष दानवों का अधिपति था, उस काल में एक सौ वर्ष तक निरन्तर देवता और दानवों का युद्ध हुआ ॥१॥ उस युद्ध में महापराक्रमी दानवों ने देव-सेनाओं पर विजय प्राप्त की एवं सभी देवगण को जीतकर असुराधिपति महिष स्वयं इन्द्र बन गया ॥२॥ तदुपरान्त पराजित देवगण प्रजापति ब्रह्माजी के पास आये और शिवजी व विष्णु के निकट भी पहुँचे ॥३॥ देवगण ने शिवजी व भगवान् विष्णु को सम्पूर्ण युद्ध वृत्तान्त कह सुनाया और महिषासुर की विजय व उसके इन्द्रासन पर अधिकार की बात विस्तार से कही ॥४॥ देवताओं ने कहा कि, महिषासुर ने सूर्य, इन्द्र, अग्नि, वायु, चन्द्र, यम, वरुण व अन्य दूसरे देवताओं के कार्यों पर अधिकार कर लिया है ॥५॥ महिष द्वारा स्वर्ग से निष्कासित देवता मर्त्यलोक के मनुष्यों के तुल्य पृथ्वी पर विचरण कर रहे हैं ॥६॥ हमने आपसे उन दानवों के अत्याचार का वर्णन किया। हम आपकी शरणागत हैं आप महिषासुर के विनाश के लिए विचार करिये ॥७॥

इत्थं निशम्य देवानां वचांसि मधुसूदनः ।

चकार कोपं शंभुश्च भ्रुकुटीकुटिलाननी ॥८॥

ततो तिकोपपूर्णस्य च क्रिणो वदनात्ततः ।

निश्चक्राम महत्तेजो ब्रह्मणः शंकरस्य च ॥९॥

अन्येषां चैव देवानां शक्रादीनां शरीरतः ।

निर्गतं सुमहत्तेजस्तच्चैक्यं समगच्छत ॥१०॥

अतीव तेजसकूटं ज्वलंतमिव पर्वतम् ।

ददृशुस्तेसुरास्तत्र ज्वाला व्याप्तदिगंतरम् ॥११॥

अतुलंतत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम् ।

एकस्थंतदभूत्तारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा ॥१२॥

यदभूच्छांभवं तेजस्तेना जायत तन्मुखम् ।

याम्येन चाभवन् केशा बाहवो विष्णुतेजसा ॥१३॥

सौम्येन स्तनयो युग्मं मध्यमैर्द्रेणा चाभवत् ।

वारुणेन च जघोरु नितंबस्तेजसा भुवः ॥१४॥

मुनि ने कहा—देवगण के ऐसे चषन सुनते ही निवजी और विष्णु भगवान् शरयन्त क्षुपित हुए, शीर क्रोध से उन दोनों के मुख तथा भ्रुवुटी कुटिल होगई ॥८॥ तदुपगन्त क्रोध से युक्त विष्णु भगवान्, शिवजी एवं ब्रह्माजी के मुखों से एक विस्तृत तेज प्रकट हुआ ॥९॥ इसी प्रकार इन्द्र एवं अन्य दूतरे दक्षनाओं के मुखों से भी तेज निकला । अन्ततः निकला हुआ समस्त तेज मिलकर एक होगया ॥१०॥ इसके पश्चात् मिलकर एक हुए उस शरयन्त तेज पुञ्ज को, जिसकी ज्वालाएँ मरूखें दिवाओं में फैल गईं, पर्यंत के तुल्य जलते देवा ॥११॥ फिर वह एकत्रित विभुनन को अपनी आत्मा से प्रवासित करने वाला तेज पुञ्ज छोड़ स्व में परिवर्तित होने लगा ॥१२॥ शिवजी के मुख से प्रकट हुए तेज से उसका मुख, दम के तेज से बेश तथा विष्णु के तेज से उसकी दो भ्रुवाएँ बन गई ॥१३॥ चन्द्र के तेज से दोनों स्तन, इन्द्र के तेज में मध्य प्रदेश, वरुण के तेज से जपा और ऊर, पृथ्वी के तेज से निम्ब ॥१४॥

ब्रह्मणस्तेजसापादोतदगुल्योर्बतेजसा ।
 नमूनाचकरागुन्यःकोत्रैरेणचनासिका ॥१५॥
 तस्यास्तुत ता सभूताःप्राजापत्येनतेजसा ।
 नयनत्रितयजज्ञे तथापावकतेजसा ॥१६॥
 भ्रुवोचसध्ययोस्तेज श्रवणावनिलस्यच ।
 भन्येपाचैवदेवानासभवस्तेजसांशिवा ॥१७॥
 तत ममस्तदेवानातेजोराशिसमुद्भूवाम् ।
 ताबिलोकप्रमुद प्रापुरमरामहिपादिता ॥१८॥
 ततोदेवाददुस्तस्यैस्वानिस्वान्यायुयानिच ।
 ऊवुर्जयजयेत्युर्बं जयतीतिजयपिण ॥१९॥
 धूलमूलाद्रिनिष्कृध्यददीतस्यैपिनावमृत ।
 मकनदस्तवानृष्ण समुत्पाट्यस्वचक्रत ॥२०॥
 गतचक्रण शक्तिददीतस्यैहुताशन ।
 मास्तोदत्तवात्रापवाणपूरणेतयेपुष्पी ॥२१॥

ब्रह्मा के तेज से चरण, सूर्य के तेज से चरणों की अंगुलियाँ, वसुगणों के तेज से हाथों की अंगुलियाँ कुबेर के तेज से नासिका ॥१५॥ प्रजापति के तेज से दाँतावलि, अग्नि के तेज से विनेत्र ॥१६॥ दोनों संध्याओं के तेज से भ्रुकुटि, पवन के तेज से दो कान बन गये एवं अन्य दूसरे देवताओं विश्वकर्मा आदि के तेज से भी उसके अङ्ग सम्पूर्ण होकर उस मञ्जुजकारी देवी ने जन्म लिया ॥१७॥ उसके पश्चात् सम्पूर्ण देवताओं के तेज-पुञ्ज से उत्पन्न उन देवी को देखकर महिषासुर से वसित वह देवगण अत्यन्त हर्षित हुए ॥१७॥ फिर सभी देवताओं ने उन्हें अपने-अपने युद्धास्त्र प्रदान किये और विजय के आकांक्षी वह देवता जयन्ती देवी की जय-जयकार करने लगे ॥१८॥ इसके पश्चात् शिवजी ने अपने छूल से छूल उत्पन्न करके उन्हें प्रदान किया । विष्णु भगवान् ने अपने चक्र से चक्र उत्पन्न करके दिया ॥२०॥ वरुण ने उन्हें शूल, हुताशन ने शक्ति एवं पद्म ने उन्हें धनुष व बाण प्रदान किये ॥२१॥

वज्रमिन्द्रःसमुत्पाद्यकुलिशादमराधिपः ।

ददौतस्यैसहस्राक्षोघंटामैरावतादगजात् ॥२२॥

कालादंडाद्यमोदंडपाशंचांबुपतिर्ददौ ।

प्रजापतिश्चाक्षभालाददौब्रह्माकमंडलुम् ॥२३॥

समस्तरोमकूपेषुनिजरश्मोन्दिवाकरः ।

कालश्चदत्तवान्खड्गं तस्यै चर्मचनिर्मलम् ॥२४॥

क्षीरोदश्चामलहारमजरेचतथांबरे ।

चूडामणितथादिभ्यंकुंडलेकटकानिच ॥२५॥

अर्द्धचंद्रं तथाशुभ्रं केयूरान्सर्वबाहुषु ।

नूपुरौविमलोत्तद्वद्भ्रं वेयकमनुत्तमम् ।

अंगुलीयकरत्नानिसमस्तास्वगुलीषुच ॥२६॥

विश्वकर्मादिदौतस्यैपरशुंचातिनिर्मलम् ।

अस्त्राण्यनेकरूपाणितथाभेद्यंचदशनम् ॥२७॥

अम्लानपंकजांमालांशिरस्थुरसिंचापाराम् ।

अददाज्जलविस्तस्यैपंकजंचातिशोभनम् ॥२८॥

सहस्राक्ष भ्रमरेश्वर इन्द्र ने धपने वज्र से वज्र उत्पन्न करके दिया घोर
 एरावत हाथी का घंटा खोलकर दिया ॥२२॥ भ्रमराक्ष ने कालदण्ड से एक
 दण्ड उत्पन्न कर उन्हें प्रदान किया । वरुण ने पाश, दक्ष प्रजापति ने भक्षमाता
 एवं ब्रह्माजी ने उन्हें वमण्डनु प्रदान किया ॥२३॥ दिनकर ने उन कन्याओं
 देवी के समस्त रोम-रोम को अपनी किरणें प्रदान की, काल ने उन्हें स्वच्छ
 तलवार और दास दी ॥२४॥ क्षीरोद समुद्र ने भी पूर्ण उज्ज्वल मोतियों का
 हार, दो स्वल्प वस्त्र, सुन्दर शूषावलि, दिव्य कुरङ्गल और कगन प्रदान किये
 ॥२५॥ धर्म्म चन्द्र ने भी सुन्दर पायल, दोनों बाहुओं में बाजूबन्द, कठ के लिए
 सुन्दर साभूषण एवं समस्त अनुबिधों में अनुपम भूषणियाँ दी ॥२६॥ विश्व-
 कर्माजी ने अनुपम परशु और शक्रास्त्र कवच उन्हें प्रदान किया ॥२७॥ समुद्र
 ने मिले हुए कमल गुणों की बोधायमान मालाएँ कठ एवं सिर पर धारण
 करने के लिये दी ॥२८॥

हिमवान्वाहनसिहरत्नानिविविधानिच ।

ददावधूयसुरमापानपानघनाधिप ॥२९॥

शेषश्चसर्वनामेशोमहामणिविभूषितम् ।

नागहारददोतस्यंघत्तं य पृथिवीमिमाम् ॥३०॥

अन्यैरपिसुरैर्देवीभूषणैरायुधैस्तथा ।

समानिताननादीन्च मादृहासमुहुर्मुहु ॥३१॥

तस्यानादेनघोरेणकृत्स्नमापूरिततम ।

भ्रमायतातिमहताप्रतिशब्दोमहानभत् ॥३२॥

चुम्बु सकलालोका समुद्राश्चकपिरै ।

चचासवमुधाचेतु सकलाश्चमहीधरा ॥३३॥

जयेतिदेवाश्चमुदातामूचु सिंहवाहिनीम् ।

तुष्टुमु नयस्त्वनामक्तिनम्रात्ममूर्त्तयः ॥३४॥

दृष्ट्वासमस्तगधुव्यर्थलोक्यममरायः ।

सम्रद्धाखिलसंन्यास्तेममुत्तस्थुरुदायुधा ॥३५॥

हिमालय ने देवी की सवारी के लिए सिंह और विभिन्न रत्न प्रदान

किये । वनपति कुबेर ने उन्हें सुरा युक्त सुरा-पान पात्र दिया ॥२६॥ पृथ्वी के आधार अनन्त नाभेश ने देवीजी को महामणि युक्त नागहार प्रदान किया ॥२७॥ अन्य दूसरे देवताओं ने भी उन्हें विभिन्न प्रकार के अस्त्र एवं आभूषण प्रदान किये । इस प्रकार देवताओं द्वारा सम्मानित वह देवी अट्टहास के साथ भीषण गर्जना करने लगी ॥२८॥ उस भयङ्कर गर्जना से समस्त आकाश पूर्ण होगया फिर आकाश से एक अचानक धोर प्रति शब्द भी हुआ ॥२९॥ जिससे तीनों लोक हिल गये समुद्र कांप गये, पृथ्वी डगमगाने लगी और सभी पर्वत कम्पायमान होने लगे ॥३०॥ तब सुरगण सिंह पर सवार उन भगवती की प्रसन्नता से जय-जय करने लगे । ऋषिगण भी नम्रता पूर्वक उनका गुण-गान करने लगे ॥३१॥ तीनों लोकों को इस प्रकार क्रियाशील देखकर दानवगण सम्पूर्ण सेना को सज्जित कर शस्त्रास्त्र धारण कर तैयार होगए ॥३२॥

आः किमेतदिति क्रोधादाभाध्यमहिषासुरः ।

अभ्यधावततशब्दमशेषैरसुरैर्वृतः ॥३३॥

सददर्शततोदेवीं व्याप्तलोकत्रयां त्विषा ।

पादाक्रांत्यानतभुवं किरीटोल्लिखितांबरां ॥३४॥

ओभिताशेषपातालां धनुर्ज्यानिःस्वेनेनताम् ।

दिशोभुजसहस्रेण समतान् व्याप्य संस्थिताम् ॥३५॥

ततः प्रववृत्ते युद्धं तया देव्या सुरद्विषाम् ।

शस्त्रास्त्रैर्बहुधामुक्तैरादीपितदिगंतरम् ॥३६॥

महिषासुरसेनानीश्चक्षुराख्यो महासुरः ।

युयुधेचामरश्चान्यश्चतुरंगबलान्वितः ॥३७॥

रथानामयुतैः षड्भिर्द्विग्राख्यो महासुरः ।

अयुध्यतायुतानां च सहस्रेण महाहनुः ॥३८॥

पंचाङ्घ्रिश्चनियुतैरसिलोमामहासुरः ।

अयुतानां शतैः षड्भिर्बाष्कलयुयुधेरणो ॥३९॥

“महा ! यह क्या होता है” कुपित महिषासुर ऐसा कहकर समस्त असुर सेना सहित उस ओर दौड़ पड़ा ॥४०॥ तो महिषासुर ने देखा कि वह

देवी अपनी छाया बिखेरती हुई जैलोस्य में व्याप्त विद्यमान हैं । एवं जिनके चरण पृथ्वी पर हैं और उनका मुकुट आकाश को चूम रहा है ॥३७॥ जिनके धनुष की प्रत्यक्षा के शब्द से समस्त भू-वर्ग भी कम्पित हो रहा था और वह कल्याणी देवी अपनी सहस्र भुजाओं से सम्पूर्ण दिशाओं के आच्छादित करते हुए शोभायमान थी ॥३८॥ सत्ययात्र देवी के साथ दानवी का युद्ध प्रारम्भ होगया, जिसने प्रयोग हुए विभिन्न प्रकार के युद्धास्त्रों से आकाश भी प्रकाशित होगया ॥३९॥ महिषासुर का सेनापत्य जिमुर और दानवी युद्ध करने लगा । चतुरङ्गिणी सेना से सज्जित चामर नाम का असुर अन्य सेना के साथ मिलकर युद्ध करने लगा ॥४०॥ विक्राम असुर उदय साठ हजार रथों सहित युद्ध करने लगा एवं महाहनु नाम का असुर भी एक करोड़ रथों को लेकर दक्षिण में उतर आया ॥४१॥ समुत्तोष नाम का महाअसुर पाँच करोड़ रथ लेकर और महादानव बाणल साठ हजार रथों को लेकर युद्ध करने लगा ॥४२॥

गजवाजिसहस्रोघोरेनेकैरश्वद्वानः ।

वृत्तोरथानाकोट्याचयुद्धे तस्मिन्नुद्यत ॥४३॥

विडालाक्ष्योमहादैत्य पचाशन्निरथायुतं ।

मुमुक्षेत्समुनेतत्ररथानापरिवारित ॥४४॥

युत कालोरथानाचरणेषचाशतायुतं ।

मुमुक्षेत्समुनेतत्रतावन्निरथपरिवारित ॥४५॥

अन्येचतत्रायुतशोरथानागह्यैर्वृताः ।

मुमुक्षुःसमुनेदेव्यासहतत्रमहासुरा ॥४६॥

कोटिकोटिसहस्रंस्तुरथानादतिनातया ।

हयानाचवृत्तयुद्धे तत्रामूर्त्ताहिपाशुर ॥४७॥

तोमरैर्मदिपालैश्चशक्तिभिर्मुसैस्तथा ।

दधामन्त्रप्रहारैस्तुतेनाहतुश्चक्रमुः ॥४८॥

महादैव परिवारित अन्ये सहस्र हाथी व घोड़े युक्त एक करोड़ रथों

सहित उनमें मिलकर युद्ध करने लगा ॥४३॥ महाअसुर विडाल पाँच लाख रथों को लेकर युद्ध क्षेत्र में युद्ध-रत होगया ॥४४॥ एवं इतने ही रथों सहित काल नाम का महादैत्य विशाल सेना सहित युद्ध में रत होगया ॥४५॥ साथ ही अन्य दूसरे अनेक घोर असुर करोड़ों रथ हाथी और घोड़ों से युक्त उस देवी के साथ युद्ध करने लगे ॥४६॥ करोड़ों हजारों रथ हाथी और घोड़ों से सज्जित होकर वह महिषासुर उस युद्ध में आया ॥४७॥ इस प्रकार असुरगण तोमर, भिन्दिपाल, शक्ति, भूसल, तलवार, फरसा व पट्टिश द्वारा देवी के साथ युद्ध करने लगे ॥४८॥ किसी ने शक्ति किसी ने पाश और किसी ने खड्ग चलाकर देवी पर वार करने के प्रयास किये ॥४९॥

सापिदेवीततस्तानिशस्त्राण्यस्त्राणिचण्डिका ।

लीलयैवप्रचिच्छेदनिजशस्त्रास्त्रवर्षिणी ॥५०॥

अनायस्ताननादेवीस्तूयमानासुरर्षिभिः ।

मुमोचासुरदेहेषुंशस्त्राण्यस्त्राणिचेश्वरी ॥५१॥

सोपि क्रुद्धो धृतसटो देव्यावाहनकेसरी ।

चचारासुरसैन्येषु वनेष्विव हुताशनः ॥५२॥

निश्वासान्मुमुचेयांश्चयुध्यमानारणेम्बिका ।

तएव सद्यः सभूतागणाः शतसहस्रशः ॥५३॥

युयुधुस्ते परशुभिर्भिदिपालासिपट्टिशैः ।

नाशयंतोसुरगणान् देवीशक्त्युपबृंहिताः ॥५४॥

अवादयंतपटहान्गणाः शंखांस्तथापरे ।

मृदंगांश्चतयैवान्येतस्मिन् युद्धमहोत्सवे ॥५५॥

ततो देवी त्रिशूलेन गदयाश्चरवृष्टिभिः ।

खड्गदिभिश्च शतशो निजघ्नानमहासुरान् ॥५६॥

फिर उन देवी ने भी अपने शस्त्रास्त्रों की वर्षा करके लीलापूर्वक उन दानवों के सभी अस्त्र-खस्त्र नष्ट कर डाले ॥५०॥ उस समय प्रसन्नतापूर्वक उन देवी का समस्त देवता और मुनिगण गुण-गान करने लगे । इसके पश्चात् देवी असुरों पर शस्त्रास्त्रों की वर्षा करने लगी ॥५१॥ देवी-वाहन सिंह भी केसर

वन्धित वर यमि के समान दंडव मेनाश्री मे विचरस करने लगा ॥१२॥ मुद्र
मे रत देवी न निश्वासो से ही शत सहस्र गण तुरन्त उत्पन्न होयसे और अशुर
मेनाश्री मे मुद्र करने लगे ॥१३॥ देवी क प्रभाव से बलशाली वह गण फरसा,
भिद्रिषाव, यमि घोर पट्टित स दानवो को नष्ट करने लगे ॥१४॥ गण मुद्र
शेष मे दानवाद भी बरते थे और मुद्रङ्ग भी बजाते थे ॥१५॥ इसके पश्चात्
देवी ने श्री विष्णु, गदा, धन्वि, वृष्टि, खड्ग जंगरह से शत शत घोर दानवो का
नाश किया ॥१६॥

पातयामासधैवान्यान्यटास्वनविमोहितान् ।
अमुरान्मुविपाशेनवद्धाधान्यानवर्षयत् ॥१७॥
केनिद्विधावृतास्तीक्ष्णं खड्गपातंस्तथापरे ।
विपातितानिपातेनगदयामुविशेरते ॥१८॥
वैमृशकेत्तिद्रुधिरमुससेनभृशहता ।
वैचित्रिपतिताभूमीभिध्राशूलेनवद्धसि ॥१९॥
निरतरदारीपेणकृता केचिद्रसाजिरे ।
शैलानुकारिण प्राणान्मुमुबुक्षिद्रदशार्दं ना ॥२०॥
केवाचिद्वाहवद्विघ्नार्थिजग्रीवास्तथापरे ।
मिरासिपेतुरग्येमपामग्येमध्येविदारिता ॥२१॥
विच्छिन्नजघास्तवपरेपेतुरुष्णीमहासुरा ।
एववाङ्गक्षिरणा केचिद्देव्याद्विघाकृता ॥२२॥
छिन्नेपिक्वामेचिरसिपतिता पुनरुत्थिता ।
वययामुमुद्रुद्व्यागृहीतपरमायुषाः ॥२३॥

वई को घटे शस्त्र से मोहित कर बारा और दूसरे बहुत से राक्षसों की
पात में अपहर जातम पर थीं ॥१७॥ वई को अपनी शतवार की तीव्र
वार से दो टुकड़े कर डाला और वई को गदा से प्रहारों से चूरों कर डाला
॥१८॥ कोई-कोई मृग के प्रहार से निरन्तर रक्त-वर्षन करने लगा और वई
अशुर दूत में विष्णु भेटन से पीड़ित होकर पृथ्वी पर लुटव गये ॥१९॥ मुद्र
द्रुमि से देवी के बाणों से प्रहारों से निरन्तर अशुरों की मेनाश्री की सहायता

करने वाले देवताओं के शत्रु इस प्रकार मरते जाते थे ॥६०॥ किसी असुर की भुजाएं कटीं, किसी की गदन, अन्य दूसरों के मस्तक घड़ से अलग होगये और किसी के मध्य से दो टुकड़े होगये ॥६१॥ किसी मयंग्रर असुर की जांघ कटकर घरती पर गिरी और देवी ने किसी-किसी के एक बाहु, एक आंख और एक चरण नष्ट कर दिया व किसी के बीच से दो खंड कर दिये ॥६२॥ कोई-कोई असुर मस्तक कट जाने से भी पृथ्वी से गिरकर पुनः उठकर कई कबन्ध या घड़ पुनः अस्त्र लेकर देवी से युद्ध करने लगे ॥६३॥

नृत्तुश्चापरेतत्रयुद्धे तूर्यलयाश्रिताः ।

कबन्धादिछवशिरसःखङ्गशक्त्यृष्टिपाणयः ॥६४॥

तिष्ठतिष्ठेतिभाषन्तोदेवीमन्येमहासुराः ।

रुधिरौघविलुप्तांगाःसंग्रामोलोमहर्षणो ॥६५॥

पातितैरथनागाश्वैरसुरैश्चवसुंधरा ।

अगन्यासाऽभवत्तत्रयत्राभूत्समहारणः ॥६६॥

शोणितौघामहानद्यःसद्यस्तत्रविमुखुदुः ।

मध्येचासुरसैन्यस्यवारणासुरवाजिनाम् ॥६७॥

क्षणेनतन्महासैन्यमसुराणांतथांबिका ।

निन्येक्षयंयथावह्निस्तृणदारुमहाचयम् ॥६८॥

सर्चसिहोमहानादमुत्सृजन्धुतकेसरः ।

शरीरेभ्योमरारीणामसूनिवविचिन्वति ॥६९॥

देव्यागणैश्चतैस्तत्रकृतंयुद्धंमहासुरैः ।

यथैनांतुष्टुबुर्देवाःपुष्पवृष्टिमुचोदिवि ॥७०॥

अनेक कबन्ध या घड़ नृत्य करने लगे और उस महायुद्ध में अनेक भयङ्कर महादैत्य मस्तक कट जाने पर केवल कबन्ध ही रह गये थे । जो कि हाथों में तलवार, शक्ति और दोनों ओर घार वाली तलवार पुनः लेकर ॥६४॥ 'ठहरो, ठहरो !' देवी से कहते थे । जिस क्षेत्र में यह विदारक महा युद्ध हुआ गिरे हुए हाथी, घोड़ों, दानवों और उनके रथों से वह पट सा गया था और ऐसा होगया कि पैर रखने को भी स्थान नहीं था ॥६५-६६॥ तत्काल ही उस

स्थान पर युद्ध में असुर सेनाओं के हाथियों, घोड़ों व सैनिकों के रक्त समूह से रक्त की नदियाँ बहने लगी ॥६७॥ सूखे हुए वण्ट की अग्नि जिस प्रकार पल-भर में गल कर देती है, उसी प्रकार उन अश्विनी देवी ने राक्षसों की महा सेनाओं का पल मात्र में नष्ट किया ॥६८॥ देवी-वाहन सिंह ने भी महानाद धरते हुए, अपने बालों को कम्पित करता हुआ अत्यन्त क्रोध पूर्वक सभी दानवों के प्राणों को हरने लगा ॥६९॥ एव धूम धूमकर असुरों के शरीरों से ही जैसे वह प्राणों को ही खोजने लगा । देवी के सम्पूर्ण गणों ने उन भयङ्कर असुरों से पराक्रम पूर्वक युद्ध किया, जिससे देवता प्रसन्न होकर स्वर्ग से उन पर पुष्पा-धर्पा करन लगे ॥७०॥

७५—महिषासुर वध

निहन्त्यमानतर्त्मन्यमवलोकयामहासुर ।
 सेनानीश्चिक्षुर कोषाद्ययीयोद्धुमथाविकाम् ॥१॥
 मन्वेवीक्षारवर्षणववर्षममरेऽसुर ।
 ययामेहगिरे शृ गतोयवर्षणतोमद ॥२॥
 तस्यच्छिद्यत्थातदेवीलीलयैवशरोत्तरान् ।
 जघानतुरगान्वाणीर्यतारधैववाजिनान् ॥३॥
 चिच्छेद्वचधनु सद्याध्यजजातिममुच्छिद्यतम् ।
 विवधाघचैनगात्रेषुच्छिद्यधन्वानमाश्रुम् ॥४॥
 सच्छिद्यधन्वाविरयोहताश्रोहतसारथि ।
 मम्यधावततां देवीतङ्गचर्मधरोसुर ॥५॥
 मिहमाहत्यश्नो नतोक्षणाधारेणमूर्धनि ।
 भ्राजधानभुजेसव्येदेवीमप्यतिवेगवान् ॥६॥

उम गय धमुर सेनाओं की नष्ट हुआ देखकर महिषासुर का सेनाध्यक्ष निन्दुर युद्ध निमित्त अश्विनी देवी के समीप आया ॥१॥ गुमरु ध्वंश के सिसर

पर बादलों की वर्षा के समान वह महा असुर देवी पर शर-वर्षा करने लगा ॥२॥ देवी ने उसके सभी वाणों को काटकर लीला पूर्वक उसके रथ के घोड़ों और सारथी को अपने वाणों से नष्ट कर डाला ॥३॥ देवी ने तत्काल उस चिक्षुर का धनुष और अत्यन्त उच्च ध्वजा को काट कर उसका शरीर वाण वर्षा से वेध डाला ॥४॥ उसका जब धनुष नष्ट होगया, रथ नष्ट होगया तथा घोड़े व सारथी सभी समाप्त होगये, तो वह दैत्य सेनापति तीव्र तलवार व डाल लेकर देवी की ओर दौड़ा ॥५॥ और घोर गति से अपनी तीक्ष्ण धार की तलवार से सिंह के माथे पर प्रहार करके देवी के भी बयि हाथ पर प्रहार किया ॥६॥

तस्याः खड्गोभुजंप्राप्यपफालनृपनंदन ।

ततो जग्राह शूलं सकोपादारुणलोचनः ॥७॥

चिक्षेप च ततस्तत्तुभद्रकाल्यामहासुरः ।

जाज्वल्यमानं तेजोभीरुर्विबिम्बमिव विरात् ॥८॥

दृष्ट्वा तदापतच्छूलं देवीशूलममुंचत ।

तेन तच्छतधानी तं शूलं स च महासुरः ॥९॥

हृते तस्मिन् महावीर्ये महिषस्य च मूपती ।

आजगाम गजारूढश्चामरस्त्रिदशार्दनः ॥१०॥

सोपि शक्तिमुमोचाथ देव्यास्तामम्बिकाद्रुतम् ।

हुंकराभिहृता भूमौ पातयामास निष्प्रभाम् ॥११॥

भर्ग्यां शक्तिं निपतितं दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः ।

चिक्षेप चामरशूलं बाणैस्तदपि साञ्छिनत् ॥१२॥

ततः सिंहसमुत्पत्य गजकुंभांतरे स्थितः ।

बाहुयुद्धे नययुधे तेनोन्वेष्ट्रिदशारिणा ॥१३॥

युध्यमानौ ततस्तौ तु तस्मान्नागान्महीं गतौ ।

युयुधातेति संरब्धौ प्रहारं रतिदारुणैः ॥१४॥

हे नृप ! उस दैत्यराज का खड्ग देवी के हाथ के स्पर्श मात्र से ही टूट

गया । फिर क्रोधपूर्ण रक्तिम नेत्रों वाले उस महादानव ने त्रिशूल लेकर ॥७॥

भद्रकाली पर बार किया तो देवी ने तेज से प्रकाशमान एवं आकाश से गिरते हुए मयं मण्डल के तुल्य ॥८॥ उस त्रिशूल को देखकर अपना शूल ग्रहण किया देवी द्वारा बार किये गये त्रिशूल से उस असुर के त्रिशूल के सौ टुकड़े होगये एवं दैत्य सेनाधिपति चिधुर ने भी सौ टुकड़े होगये ॥९॥ गहिषामुर का सना-
पाः महापराक्रमी चिधुर के समाप्त होने पर सुरगणों का क्षत्रु महादानव चामर हाथी पर सवार होकर युद्ध करने व लिये देवी के सामने आया ॥१०॥ उस महादानव ने देवी पर लक्ष्य करने शक्ति छोड़ दी, परन्तु वह शक्ति देवी की हुकार के घोर शब्द से अभिभूत व प्रभाहीन होकर घरातल पर गिर पड़ी । शक्ति को इस प्रकार नष्ट हुआ देख असुर चामर ने क्रोधित होकर त्रिशूल चलाया परन्तु देवी ने अपने शरीर से उस त्रिशूल को भी भेद दिया ॥११॥ इसने पश्वान् देवी बाह्वन् सिंह खनाम लगाकर हाथी ने मस्तक पर चढ़ गया एवं हाथी की पीठ पर बैठे उस महा असुर से बाहु युद्ध करने लगा ॥१२॥ सिंह एवं असुर चामर दोनों ही युद्ध करते हुए उस गज से नीचे गिरे व अत्यन्त क्रोधपूर्वक घोरत में भीषण प्रहार करने लगे ॥१३॥

ततोवेगात्खमुत्पत्यनिपत्यचमृगारिणा ।

नरप्रहारेणक्षिरधामरस्यपृथक्कृतम् ॥१४॥

उग्रश्चरणेदेव्याशिलावृक्षादिभिर्हन्त ।

दत्तमुष्टितलोर्ध्ववकरास्तश्चनिपातित ॥१५॥

देवीक्रुद्धागदापातैश्चूणयामासचोद्धतम् ।

बाध्वलभिन्दिपालेनवार्णस्ताभ्रतर्भाषकम् ॥१६॥

उग्रस्यगुग्गुलीयैश्चतर्धवचमहाहनुम् ।

त्रिनेत्राचत्रिशूलेनजघानपरमेश्वरी ॥१७॥

विडालस्यासिनावायात्पातयामासवैशिर ।

दुर्धरदुर्मुखाचोभौशरंनिग्येयमक्षयम् ।

मालचबालदंष्ट्रेनकालरात्रिस्पातयन् ॥१८॥

“उग्रदर्शनमत्पुत्रं श्वङ्गपातैस्ताहयत् ।

असिनैवासिलोमानमच्छिदत्सारणोत्सवे ।

गणोसिहेनदेव्याचजयद्वेडाकृतोत्सवैः ॥२०॥

एवंसंक्षीयमाणेतुस्वसैन्येमहिषासुरः ।

माहिषेणस्वरूपेणत्रासयामासतान्गणान् ॥२१॥

इसके बाद कुछ समय में ही सिंह ने एकदम आकाश में छलांग लगाई और फिर पृथ्वी पर गिर कर अचानक पंजों से आघात करते हुए असुर चामर का मस्तक उसकी देह से अलग कर दिया ॥१५॥ उदग्र नाम असुर को देवी ने पत्थर और धुक्षों की वर्षा करके और असुर कराल को दाँत व मुष्टिका प्रहारों से समाप्त कर डाला ॥१६॥ अत्यन्त क्रुपित उस देवी ने गदा के आघात से उद्धत नाम के दानव को पीस डाला । फिर भिदिपाल से असुर बाणकल एवं ताम्र व अन्धक नामक दो असुरों को शरों से समाप्त कर दिया ॥१७॥ त्रिनेत्रा परमेश्वरी देवी ने त्रिशूल द्वारा उग्रस्य, उग्रवीर्य व महाहनु नामक दानवों को नष्ट कर दिया ॥१८॥ तलवार द्वारा असुर बिडाल के मस्तक काटकर गिरा दिया । बाणों के प्रहार से दुर्द्धर व दुर्मुख नाम के दो दानवों को यमलोक भेज दिया । कालरात्रि ने काल असुर को काल दमड से मार दिया ॥१९॥ उग्र खड्ग के आघात से उग्रदर्शन, असि से असिलोभा को समाप्त कर दिया तो सिंह व देवी के गणों ने जय-नाद किया ॥२०॥ इस प्रकार अपनी समस्त सेना को नष्ट होता हुआ विलोक राक्षसराज महिषासुर अपना महिगरूप धारण करके देवी के गणों की भयभीत करने लगा ॥२१॥

कांश्चितुडप्रहारेणक्षुरक्षेपैस्तथापरान् ।

लांगूलताडितांश्चान्याञ्छङ्गाम्यांचविदारितान् ॥२२॥

वेगेनकांश्चिदपरान्नादेनभ्रमणेनच ।

निश्वासपवनेनान्यान्पातयामासभूतले ॥२३॥

निपात्यप्रमथानीकमभ्यधावतसोसुरः ।

सिंहहंतुमहादेव्याःकोपंचक्रेततोम्बिका ॥२४॥

सोपिकोपान्महावीर्यःक्षुरक्षुण्णमहीतलः ।

शृङ्गाभ्यापर्वतानुच्चैश्चिक्षेपचननादच ॥२५॥

वेगभ्रमणविक्षुण्णमहीतस्यव्यशीर्यन्त ।

लापूलेनाहन्श्चाधिप्लावयामाससर्वन्त ॥२६॥

धुतशृण्विभिन्नाश्रसहस्रं ययुर्धना ।

आसानिलास्ताशतशोनिपेतुर्नभसोऽचला ॥२७॥

इतिक्रोधसमाध्मातमापततमहासुरम् ।

दृष्ट्वासाचडिकाकोपतद्वधायतदाकरोत् ॥२८॥

दिसी गण को मुख प्रहार से, किसी पर खुर स घाघात करके, किसी को पूँछ से घाघात से त्रस्त करने लगा ॥२२॥ किसी को तीव्र गति द्वारा, किसी को घोर गजन द्वारा, किसी को भ्रमण द्वारा और किसी को आस की वायु से विदारण कर डाला ॥२३॥ इस प्रकार दैत्य-गणों को गिराकर वह दैत्यराज महा देवी क वाहन सिंह को समाप्त करने की आज्ञा से दौड़ा, तो देवी एकदम क्रोधित हुई ॥२४॥ महापराक्रमी महिषासुर भी क्रोधपूर्ण होकर खुरी से धरती को बुरेदता दृष्ट्वा और दोनों तीक्ष्ण सींगों द्वारा उच्चतर पर्वत मानासो को उग्राटना हुन गजने लगा ॥२५॥ उसके वेग से इस प्रकार धूमने पर पृथ्वी कोमल हो गई और गड्डे हो गये तथा पूँछने ताड़ित समुद्र भी सभी घोर फैलने लगा ॥२६॥ जँपा देने वाले सींगों से घिरे हुए बादल सख्त सख्त हो गये और उसके आस की तीव्र वायु से घनेकी पर्वत गिर पड़े ॥२७॥ ऐसे क्रोध-पूर्ण उस दैत्यराज को समीप आया देव चण्डिका देवी भी क्रोधित हो उसे मारने की इच्छा हो गई ॥२८॥

साक्षिप्रातस्पर्षपातवयधमहासुरम् ।

तत्याजमाहिरूपमोपिबद्धोमहामृधे ॥२९॥

तत सिहोभवत्सद्योमावत्तस्यारिकशिरे ।

द्विनतितोपत्पुरुष सङ्गपाणिरदृशत ॥३०॥

ततएवायुपुरुषदवीचिच्छेदमायव ।

तत्तद्गन्धर्मणासाधतत सोभूग्महागज ॥३१॥

परेण समहामिहूतचर्चपङ्गवर्चन ।

भयंत्सुखरदेवीपद्मेननिरहूतत ॥३२॥

ततोमहासुरोभूयोमाहिषंवपुराश्रितः ।

तथैवक्षोभयामासत्रैलोक्यंसचराचरम् ॥३३॥

ततःक्रुद्धाजगन्माताचण्डिकापानमुत्तमम् ।

पपीपुनःपुनश्चैवजहासारुणलोचना ॥३४॥

ननर्द्चासुरःसोपिबलवीर्यमदोद्धतः ।

विषाणाम्यांचचिक्षेपचण्डिकांप्रतिभूधरान् ॥३५॥

देवी ने पाश फेंका, जिससे महिषासुर को बांध लिया तथा उस महिषा-सुर ने भी अपना महिष रूप छोड़ दिया ॥३३॥ और तुरन्त ही उसने सिंह रूप ग्रहण किया, इसके पश्चात् जैसे ही अम्बिका देवी उस दैत्यराज का सिर काटने को आगे बढ़ी, त्योंही वह तलवार हाथ में लेकर पुरुष रूप में दीखने लगा ॥३०॥ तदुपरान्त अपनी तीक्ष्ण बाण वर्षा द्वारा ढाल व तलवार सहित उस पुरुष रूप महिषासुर को बांध डाला, तभी वह अत्यन्त विस्माल हाथी बनकर अपनी सूँड़ से सिंह को खींचता हुआ गर्जना करने लगा । देवी ने सिंह को खींचकर तलवार से हाथी की सूँड़ काट डाली ॥३१-३२॥ इसके पश्चात् महिष-दैत्य पुनर्বার महिष रूप में पहिले के ही प्रकार से वह तीनों लोकों को पुनः वसित करने लगा ॥३३॥ तत्पश्चात् विश्व-माता चण्डिका क्रोध पूर्वक उत्तम मधु-पान करने लगी तथा रक्तम नेत्रों सहित बार-बार हँसने लगी ॥३४॥ तब वह मदमस्त, वीर्यवान् दानव भी गर्जना के साथ दोनों सींगों से चण्डिका देवी पर पर्वत उखाड़ कर फेंकने लगा ॥३५॥

साचतान्प्रहितास्तेनचूर्णयंतीशरोत्करैः ।

उवाचतमदोद्धूतमुखरागाकुलाक्षरम् ॥३६॥

गर्जगर्जक्षणमूढमधुयावत्पिवाम्यहम् ।

मयात्वयिहतेवैवर्गजिष्यंत्याशुदेवताः ॥३७॥

एवमुक्त्वासमुत्पत्यसारूढातमहासुरम् ।

पादेनाक्रम्यकठेशूलेनैनमताडयत् ॥३८॥

ततःसोपिपदाक्रांतस्तयानिजमुखात्ततः ।

अर्द्धनिष्क्रांतएवासीद्देव्यावीर्येणसंवृतः ॥३९॥

प्रदं निष्क्रातएवामोपुध्यमानोमहामुरः ।
 तयामहामिनादेव्यानिरश्चित्वानिपातित ॥४०॥
 एवममहिषोनाममसैन्य ससृहृद्गण ।
 त्रंलोक्यमोहयित्वातुतयादेव्याविनाशित ॥४१॥
 त्रंलोक्यस्थेस्निद्राभूतंमंहिषेविनिपातिते ।
 जयेत्युक्त तत सर्वे सदेवामुरमानवै ॥४२॥
 ततोहाहाकृतसर्वंदेत्यसेन्यनगाश्चयत् ।
 प्रहर्षचपरजम्मु सकलादेवतागणा ॥४३॥
 तुष्टदुस्सासुरादेवीमहर्दिभ्यमंर्हापिभि ।
 जगुर्गधवंपतयोननृसुभ्राप्मरोगणा ॥४४॥

देवी भी घपनी वाला-बर्षा द्वारा उन ममस्त पर्वतो को पूर्ण करके मुँह
 करने लगी । उस ममस्त चूनि मद्य-पान से देवी का धरीर रक्त वर्ण होगया
 या एव सभी दावों का स्पष्ट उच्चारण नहीं हुआ ॥३६॥ देवी ने कहा—भरे
 गुर्ग । जब तक मैं मद्य-पीता हूँ, तभी तक तू गर्जना करके फिर मेरे द्वारा तुझे
 निहत हुआ देख देवतागण यहाँ मेरे स्वान पर गर्जना करेगे ॥३७॥ ऋषि ने
 कहा—वैत्री ऐसा बहुर धनाग लगाकर उन महादानव पर सवार होगई तथा
 उदें घपने चरगों से दबाकर उन असुर के कंठ में त्रिशूल से प्रहार करने लगीं
 ॥३८॥ इनके पक्षान् उन महादानव की प्राप्ता प्राय समाप्त होगई और देवी
 के पैरों से दबा होने से अस्त-सा होगया ॥३९॥ उसके बाद सपर्यं करते हुए
 उन महादानव का महाघनि से निर कलम कर उसे समाप्त कर दिया ॥४०॥
 इस प्रकार से वह महिषामुर घपनी सेना पीर असुरवर्णों के समेत त्रैलोक्य को
 प्रमित कर अन्त में देवी द्वारा विनाश कर दिया गया ॥४१॥ उस समय महि-
 षामुर के निहत होने पर तीनों लोकों के देवता, मनुष्य और भू-गाताज निदाती
 बलि आदि सभी ने देवी का जयघोष किया ॥४२॥ उसके पदवात् देवी ने
 हाहाकार करती रोष दैत्य सेना को भी नष्ट कर दिया, जिससे कि सुरगण
 पश्यन् ज्ञानन्ति हृष्ट ॥४३॥ देवता व ऋषि-मुनियण देवी का गुण-गान करने
 लगे । पश्यन् प्रति गायन करने लगे एवं अप्सराये नृत्य करने लगी ॥४४॥

७६—शक्रादिकृत देवीस्तव

ततःसुरगणाःसर्वेदेव्याइन्द्रपुरोगमाः ।

स्तुतिमारेभिरेकतुं निहतेमहिषासुरे ॥१॥

शक्रादयःसुरगणानिहतेतिवीर्यतस्मिन्दुरात्मनिसुरारिबलेचदेव्या ।

तांतुष्टुबुःप्रणतिनम्रशिरोधरांसावाग्भिःप्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः ॥२॥

देव्याययाततमिदंजगदात्मशक्त्यानिशेषदेवगणशक्तिसमूहगूर्या ।

तामंबिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यांभक्त्यानताःस्मविदधातुशुभानिसानः ॥३॥

यस्याःप्रभावमतुलंभगवाननंतोब्रह्माहरश्चनहिवक्तुमलंबलंच ।

साचंडिकाखिलजगत्परिपालनायनाशायचाशुभभयस्यमतिकरोतु ॥४॥

याश्रीःस्वयंसुकृतिनांभवनेष्वलक्ष्मीःपापात्मनांकृतधियांहृदयेषुबुद्धिः ।

धृद्धासतांकुलजनप्रभवस्यलज्जातांत्वांनताःस्मपरिपालयदेविविश्वम् ॥५॥

किंवर्याममतवरूपमर्चित्यमेतत्किंचातिवीर्यमसुरक्षयकारिभूरि ।

किंचाह्वेषुचरितानितवाद्भुता नसर्वेषुदेव्यसुरदेवगणादिकेषु ॥६॥

हेतुःसमस्तजगतांत्रिगुणापिदेवैर्नज्ञायसेहरिहरादिभिरप्यपारा ।

सर्वाश्रयाखिलमिदंजगदंशभूतमव्याकृताह्निपरमाप्रकृतिस्त्वमाद्या ॥७॥

ऋषि ने कहा—उस काल इन्द्र सहित समस्त सुरगण देवी द्वारा महिषासुर का वध किया जाने से आनन्दित होकर देवी का गुण-गान करने लगे ॥१॥ भगवती देवी ने सुरगणों के घोर शत्रु महापराक्रमी दैत्यराज महिषासुर का वध कर दिया तो इन्द्र सहित सम्पूर्ण सुरगणों के सुशोभित वन इस आनन्द से और अधिक पुलकित हो उठे, वे अपने सिर व कन्धों को नवाकर विभिन्न प्रकार से गुण-गान करते हुए दुर्गा की स्तुति करने लगे ॥२॥ देवताओं ने कहा—इस प्राणि जगत् को अपने प्रभाव से विस्तार करने वाली, समस्त देवगणों की एकत्रित शक्ति से उत्पन्न होकर साकार रूप में परिणत हुई हैं एवं जो समस्त सुरगणों एवं महामुनियों की पूज्या हैं, हम भक्तिपूर्वक उन अम्बिका देवी को प्रणाम करते हैं, वह हम सबका कल्याण करें ॥३॥ अनन्त भगवान्, ब्रह्मा एवं महेश भी जिनकी शक्ति और प्रभाव का वर्णन करने में असमर्थ हैं,

यह देवी चरिण्डका समस्त विश्व का पोषण करने के लिए और उसके महित व भय के नाश के लिए आकाशित हो ॥५॥ पुनोत्त वाम करने वाले प्राणियों के गृह में सधमी स्वरूप, पाप-वर्म करने वालों के गृह में दरिद्र स्वरूप, स्वच्छ हृदय से अध्ययन करने वाले के भस्तिष्क में बुद्धि स्वरूप, सद्भाचरण वालों के निषेधदा स्वप्न और पश्चिम कुल में उत्पन्न प्राणियों की सज्जास्वरूप है, उन देवी को नमस्कार करते हैं । हे देवि ! आप जगत् का पोषण करें ॥६॥ आपका अचिन्त्य स्वरूप वर्णन करने में हम असमर्थ हैं । हे देवि ! आपका दानवी का विनाश करने वाला अपरिमित वीर्य एवं दानवी व देवगणों के प्रति रण-श्रेष्ठ में आपका अनुपम आचरण हम किस प्रकार बखान करे ॥७॥ हे देवि ! आप विचारहीन आद्याप्रकृति हैं अथ च सत्व, रज एवं तमोगुण वाली होने पर भी आप विश्व के लिए कल्याणकारी हो । राम त्रैप आदि से युक्त विष्णु व मरुत आदि भी आपका प्रकृत तत्त्व नहीं जानते, हे देवि ! आप प्रणव हैं और सभी जगत् पदार्थों की आप मायव-स्वरूप हैं, यह विश्व आपका ही अंश स्वरूप है ॥८॥

यस्या ममस्तसुरता समुद्वारणेनतृमिप्रयातिसकनेपुमलेपुदेवी ।
 रवाहानिर्वपितृगणस्यचतृमिहेतुहृत्तार्यसेत्वमतएवजने स्वधाश्च ॥८॥
 मामुत्तिहेतुरविचित्यमहाव्रतात्वमम्यस्यसेमुनियतैर्द्रियतत्त्वसारै ।
 मोक्षार्थिभिर्मुनिभिर्मस्तसमस्तदोषैर्विद्यासिसामगवतोपरमाहिदेवि ॥९॥
 शब्दारिमकामुयिमलम्यंजुपानिघानमूदशीथरम्यपदपाठवताचसाम्नाम् ।
 देवीप्रयीमगवतीभवभावनाययास्तिसिखंजगतापरमासिहृषी ॥१०॥
 मेधामिदेरिविदिताखिलशास्त्रतारादुर्गासिदुर्गभवसागरनोरसगा ।
 श्रीरुद्रभाविहृदयैककृताधिवामागोरीत्वमेवगशिमोत्तिष्ठतप्रतिष्ठा ॥११॥
 ईषस्तहासमपनपरिपूणचन्द्रविवातुकारिकनबोत्तमकरन्तिचातम् ।
 प्रत्यद्भुतप्रहृतमातरगातयाविवक्त्रविनोकयसहसामहिषामुरेण ॥१२॥
 रूपातुदेविनुपितभृमुटीकगलमुद्यच्छमाकमह्यच्छविद्यस्तद्य ।
 प्रागान्मुमाचमहिपस्तदतीवचित्रवर्जोव्यतेहिबुद्धिनातिवदशनेन ॥१३॥

देविप्रसीदपरमाभवतीभवायसद्योविनाशयसिकोपवतीकुलानि ।

विज्ञातमेतदधुनैवयदस्तमेतन्नीतंबलंसुविपुलमहिषासुरस्य ॥१४॥

हे देवि ! आपके नाम उच्चारण से ही सम्पूर्ण जगत् में देवतागण तृप्ति प्राप्त करते हैं, चूंकि आप ही ऋषिगण एवं सुरगण को तृप्त करने वाले स्वाहा एवं स्वधा स्वरूप उच्चारण की जाती हो ॥८॥ हे देवि ! आपकी महान् प्राराधना का विषय अचिन्त्य है और जितेन्द्रिय तत्त्वसार तथा दोष-विहीन, मोक्ष के आकांक्षी ऋषिगण आपको मुक्ति का कारण मानते हैं । हे देवि ! इसलिये आप ही भगवती सर्वश्रेष्ठ मोक्ष विद्या हैं ॥९॥ हे देवि ! आप शब्द युक्त तीन वेद स्वरूप हैं और प्रणव युक्त, अनुपम पद वाले ऋक्, यजु व साम वेदों का आश्रय स्वरूप हैं, आप ही सम्पूर्ण ऐश्वर्य पूर्ण हैं, आप ही विश्व का जीवन-रक्षक कृपि-स्वरूप हैं, हे देवि ! समस्त विश्व की घोर विपत्ति को शमन करने वाली आप ही हैं ॥१०॥ हे देवि ! आप ही बुद्धि स्वरूप हैं, कठिन भव-सागर से निस्तार करने वाली अनुपम नौका स्वरूप हैं, कंटक शत्रु के बध-कर्ता भगवाद् विष्णु के हृदय में निवास करने वाली लक्ष्मी आप ही हैं और महादेवजी के बधि अङ्ग पर प्रतिष्ठित गोरी आप ही हैं ॥११॥ इस पर भी आपका मन्द हास्य पूर्ण, स्वच्छ, पूर्ण-चन्द्र तुल्य, सुन्दर वर्ण, कांति युक्त, अनुपम मुख देखकर भी महिषासुर ने क्रुपित होकर आप पर शस्त्राघात किया, यह आश्चर्यपूर्ण है अर्थात् समस्त त्रिभुवन को मोहित करने वाली आपकी मुख-कांति से भी वह दुष्ट मोहित नहीं हुआ ॥१२॥ हे देवि ! अत्यन्त क्रोधपूर्ण, तनी हुई अक्रुटि सहित उदित पूर्ण चन्द्र के समान आपके मुख को देखकर भी तुरन्त ही महिषासुर ने प्राण त्याग नहीं किया, यह आश्चर्यपूर्ण है, क्योंकि क्रोध युक्त यमराज को देखकर भी कोई जीवित रह सकता है ? ॥१३॥ हे भगवती ! आप प्रसन्न हों, विश्व का कल्याण करने वाली लक्ष्मी आप ही हैं, हे देवि ! क्रोधित होने पर आप समस्त कुल नाश कर देती हैं, यह हम जान गये हैं क्योंकि आपने महिषासुर और उसकी विशाल असुर सेना को नष्ट किया है ॥१४॥

तेसंमताजनपदेषुघनानितेषांयशांसिनचसीदतिवंधुवगः ।

धन्यास्तएवनिभृतात्मजभृत्यदारायेषांसदाभ्युदयदाभवतीप्रसन्ना ॥१५॥

धर्म्यादिदेविसवत्तानिमर्दवकर्माप्पत्याहत प्रतिदिनमुकृतीकरोति ।
 स्वर्गप्रयातिचततोभवतीप्रसादाल्लोकत्रयेपिफलदाननुदेवितेन ॥ १६
 दुर्गेष्मृताहरविभीतिमशेषजता स्वस्थं स्मृताभक्तिमतीवशुभाददासि ।
 दारिद्र्यदुःसमयहारिणिकात्वदन्यासवोपकारकरणासदाद्रं चित्ता ॥ १७
 एभिर्हंतंजंगदुपैतिमुत्ततथैतेकुर्वंतुनाभनरकायचिरायपापम् ।
 सग्राममृत्युमधिगम्यदिवप्रयानुमत्वेतिनूनमहितान्विनिहसिदेवि ॥ १८
 दृष्ट्यं वक्त्रिभभवतीप्रकरोतिभस्मसर्वासुरानरिपुयत्प्रहिणोपिदशम् ।
 लोबान्प्रयातुरिषवोपिहिंसाप्रभूताइत्यमतिर्भवतितेज्रहितेयुसाध्वी ॥ १९
 खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रे शूलाग्रकांतिनिवहेनदशसुराणाम् ।
 यन्नागताविलयमशुभदिदुखदग्नेग्याननतनविसोकयतांतदेतत् ॥ २०
 दुर्वत्तवृत्तमनतवदेविशोलरूपतथैतर्दाविचित्पमस्तुत्यमभ्यै ।
 वीर्यवहृत्तुहत्तदेवपराक्रमाणावेरिष्वपिप्रकटितं हृदयात्त्वयेत्यम् ॥ २१

हे दुर्गे ! आप मनुष्य होकर जिनको कल्याण देती हैं, वही राष्ट्र में पूज्य होने हैं, उन्हीं को धन और प्रमिद्धि प्राप्त होती है, उनका धर्म अक्षय रहता है और उनके पुत्र, स्त्री व भेड़क मयमी व गम्भीर होते हैं ॥ १५ ॥ हे देवि ! आपके ही प्रसाद से पुण्य कर्म करने वाले व्यक्ति नित्यप्रति पूर्ण आदर सहित प्रार्थना-रक्त कार्य करते हैं तथा मृत्युपरात आपकी ही कृपा से स्वर्ग प्राप्त करते हैं, इसलिए हे धन्विनी ! आप ही त्रैलोक्य की कनदायक हो ॥ १६ ॥ हे देवि ! अमित मनुष्य जब आपका नाम स्मरण करते हैं तो आप उन्हें भयहीन बनाती हैं और स्वस्थ हृदय प्राप्ति जब आपका स्मरण करते हैं तो आप उन्हें कल्याण-दाना बुद्धि प्रदान करती हैं, हे शक्ति का दुर्ग व भय हरण करने वाली ! आपके अनिरक्त अग्न्य जिस का हृदय सभी के हितार्थ कृपालु अथवा दयापूर्ण रहता है ? ॥ १७ ॥ "समस्त धर्मों के निहत होने से विश्व मुग्धी होवे और नरक प्राप्ति के निये बहुत अवधि तक पाप नर्म करने हम रण-क्षेत्र में निहत होकर स्वर्ग की प्राप्ति करे" ऐसा शोककर आप देव दानुषों का शमन करती हैं ॥ १८ ॥ आपकी तो दृष्टि मात्र से ही दानुगण नरम हो सकते हैं, किन्तु दानुषों की अपने दास्य से पवित्र कर स्वर्ग में पहुँचाने के लिये आपने दानुओं

पर शस्त्र चलाया निस्संदेह आपकी शत्रुओं का हित करने वाली मति सर्व श्रेष्ठ है ॥१६॥ हे देवि ! आपके खड्ग की तीव्र आभा और त्रिशूल के अग्रभाग की कांति से भी उन सभी दैत्यों की दृष्टि समाप्त नहीं हुई, इसका केवल कारण यही है कि आपके शोभायुक्त मुख चन्द्र की आभापूर्ण किरणों से उनके नेत्र अत्यन्त शीतल होगये थे ॥२०॥ हे दुर्गे ! आपका स्वभाव दुराचारी मनुष्यों के दुराचार का विनाश करने वाला एवं आपका रूप अतुलनीय व अचिन्त्य है । हे देवि ! आपका वीर्य देवगण के बल को हरने वाले दैत्यों का विनाश करता है, अतएव शत्रुओं पर भी आपकी कृपा पूर्ण स्पष्ट है ॥२१॥

केनोपमाभवतुतेस्यपराक्रममस्यरूपंचशत्रुभयकार्यतिहारिकुत्र ।
चित्तोक्नुपासमरनिष्ठुरताचदृष्टात्वय्येवदेविवरदेभुवनत्रयेपि ॥२२॥
अलोक्यमेतदखिलंरिपुनाशनेनत्रातंत्वयासमरमूर्ध्नितेपिहत्वा ।
नीतादिवरिपुगणाभयमप्यपास्तमस्माकमुन्मदसुरारिभवंनमस्ते २३
शूलेनपाहिनोदेविपाहिखड्गेनचांबिके ।
घंटास्वनेननःपाहिचापज्यानिःस्वनेनच ॥२४॥
प्राच्यांरक्षप्रतीच्यांचचंडिकेरक्षदक्षिणे ।
भ्रामणेनात्मशूलस्यउत्तरस्यांतथेश्वरि ॥२५॥
सौम्यानियानिरूपाणित्रैलोक्येविचरंतिते ।
यानिचात्यंतघोराणित्रैरक्षास्मांस्तथाभुवम् ॥२६॥
खड्गशूलगदादीनियानिचास्त्राणितेम्बिके ।
करपल्लवसंगीनितैरस्माश्रक्षसर्वतः ॥२७॥
एवंस्तुतासुरैर्दिव्यैःकुसुमैर्नदनोद्भवैः ।
अचिताजगतांधात्रीतथागंधानुलेपनैः ॥२८॥

हे देवि ! आपका पराक्रम किसी अन्य के साथ तुलना नहीं किया जा सकता । आपका रूप शत्रुओं को भयदाता एवं अत्यन्त अनुपम है । ऐसा अनुपम स्वरूप स्वर्ग, पृथ्वी व पाताल में अन्य किसी का नहीं है । हे अम्बिके ! आपका हृदय दयापूर्ण तो है ही, साथ ही रणक्षेत्र में निष्ठुरता पूर्ण भी है, ऐसी समस्त तीनों लोकों में आप ही हैं ॥२२॥ हे देवि ! आपने शत्रुओं का विनाश

करके तीनों लोकों की रक्षा की है, युद्ध क्षेत्र में उन्हीं शत्रुओं को निहत करके स्वर्ग प्रदान किया। एवं उन्हीं मद-भक्त दैत्यों के कारण हमारा भय भी समाप्त होगया, हे देवि । आपकी नमस्कार है ॥२३॥ हे दुर्गे । शूल द्वारा हमारी रक्षा करे । हे भ्रमिन्के । खड्ग द्वारा हमारी रक्षा करे । हे देवि । घण्टा एवं घणुप प्रत्यक्षा के शब्द द्वारा हमारी रक्षा करे ॥२४॥ हे चण्डिके । शूल घुमाकर घाय हवारी पूर्व, पश्चिम, उत्तर व दक्षिण में रक्षा करे ॥२५॥ तीनों लोकों में विचरने वाला घायक जितने सौम्य रूप एवं भयङ्कर रूप हैं, उनके द्वारा हमारी व मर्त्यलोक की रक्षा कीजिये ॥२६॥ हे भ्रमिन्का देवि । अपने कर-कमलों में गुणोन्मत्त खड्ग, शूल, गदा आदि अस्त्रों द्वारा चारों ओर हमारी रक्षा करे ॥२७॥ ऋषि ने कहा—सुरगणों ने इस प्रकार उन देवी का गुण-गान किया और नन्दन कान्त में उत्पन्न हुए पुष्प, दिव्य गन्ध और धूपों के द्वारा भक्ति पूर्वक उन जगज्जननी की पूजा की ॥२८॥

भक्त्यासमस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यधूर्प-सुधूपिता ।

प्राहप्रसादसुमुष्णसमस्तान्प्राणतान्सुरान् ॥२९॥

प्रियतान्निदशा सर्वैर्यदस्मत्तोभिवाञ्छितम् ।

ददाम्यहमतिप्रोत्थास्तवैरेभि सुपूजिता ॥३०॥

कृतं ध्यमपर यच्च दुष्करतन्मविग्रहे ।

इत्याकर्ण्य चोदेव्या प्रयूचुस्तेऽर्चिर्बौकस ॥३१॥

भगवत्याकृतसर्वैर्न किञ्चिदवशिष्यते ।

यदयनिहत शत्रुरस्माकमहिषामुर ॥३२॥

यदिचापिवरोदेयस्त्वयास्माकमहेश्वरि ।

सस्मृत्तास्मृतास्त्वर्नोहि सीयाः परमापद ॥३३॥

यश्च मर्त्यस्तवैरेभिस्त्वास्तोप्यत्यमलानने ।

तस्य त्रिर्त्तद्विभवं धनदारादिसपदाम् ।

वृद्धयेस्मत्प्रपन्नास्त्रमवेथा सर्वदां बिके ॥३४॥

इति प्रमादिता देवैर्जगतो र्येतयात्मन ।

तपेत्युक्ता मन्त्रनालोऽमूर्ता तद्हितानृप ॥३५॥

इत्येतत्कथितं भूपसंभूतासायथापुरा ।

देवीदेवशरीरेभ्योजगत्रयहितैषिणी ॥३६॥

पुनश्चगौरीदेहात्सासमुद्भूतायथाभवत् ।

वधायदुष्टदैत्यानां तथाशुभनिशुभयोः ॥३७॥

रक्षणायचलोकानां देवानामुपकारिणी ।

तच्छृणुष्वमयाख्यातं यथावत्कथयामि ते ॥३८॥

उस समय वर प्रदान करने की इच्छा से उनका मुख मण्डल अत्यन्त शोभायमान होगया और उन्होंने सभी विनीत देवताओं के प्रति कहा ॥३९॥ देवी ने कहा—हे त्रिदशगण ! अपना इच्छित वर मुझसे मांगो, तुम्हारे स्तवन से मैं परम सन्तुष्ट हुई हूँ, इसलिये प्रीति सहित वर प्रदान करूँगी ॥३०॥ इस महिषासुर का वध करने के पश्चात् क्या करना है, यह मैं नहीं जानती, अब तुम्हें जो कुछ दुःसाध्य हो, वही मुझे बताओ, देवी के ऐसे वचन सुनकर देवगण बोले ॥३१॥ देवताओं ने कहा—हे भगवती ! आपने हमारे हितार्थ इस प्रवल शत्रु महिषासुर को मार डाला, इससे हमारा सम्पूर्ण कार्य सिद्ध होगया है, अब कुछ कार्य शेष नहीं रहा ॥३२॥ फिर भी यदि आप वर देने की इच्छा ही करती हो तो हमें यही वर दीजिये कि जब कभी हम आपका स्मरण करें, तभी आप हमारे सङ्कट को दूर करें ॥३३॥ जो मनुष्य हमारे इस स्तोत्र द्वारा आपकी स्तुति करें, उनकी आप प्रसन्न होकर ज्ञानाधिक्य, ऐश्वर्य युक्त धन, पत्नी आदि की वृद्धि करना, क्योंकि आप सब कुछ देने में समर्थ हैं ॥३४॥ ऋषि ने कहा—हे राजन् ! देवताओं द्वारा विश्व के हितार्थ प्रसन्न की हुई भद्रकाली 'ऐसा ही होगा' कहकर अन्तर्धान होगई ॥३५॥ देवताओं के देह से जिस प्रकार विश्व का हित करने वाली वह देवी पूर्वकाल में आविर्भूत हुई, वह तुमसे वर्णन किया ॥३६॥ अब जिस प्रकार भगवती गौरी के शरीर से उत्पन्न होकर शुम्भ निशुम्भ और अन्य असुरों का नाश ॥३७॥ लोकरक्षार्थ और देवोपकारार्थ किया, उसे यथावत् तुम्हारे प्रति कहता हूँ, श्रवण करो ॥३८॥

७७—देवी से शंभु के दूत का कथन

पुराणु भनिशु भाम्यामसुराम्याज्ञचोपते ।
 त्रैलोक्ययज्ञभागाश्रुततामिदवलाश्रयात् ॥१॥
 तावेप्रसूयंतातद्वदधिकारतथेन्दवम् ।
 कौबेरमथयाम्यचक्रातेवरुणस्यच ॥२॥
 तावेवपवनद्विचक्रतुर्वह्निकर्मच ।
 ग्रन्थेपाचाधिकारान्स स्वयमेवाधितिष्ठति ।
 ततादेवाविनिर्धूताभ्रष्टराज्या पराजिता ॥३॥
 त्वताधिकारास्त्रिदशास्ताम्यामर्वेनिराकृता ।
 महामुरम्यातादेवीसस्मरत्यपराजिताम् ॥४॥
 तयास्माकवरादतोययापत्सुस्मृताखिला ।
 भवतानाशयिष्यामितत्क्षणात्परमापद ॥५॥
 इतिष्टृत्यार्तिदेवाहिमचतनगेश्वरम् ।
 जग्मुस्तत्रततोदेवीविष्णुमायाप्रतुष्टु ॥६॥

श्रुति ने कहा—पुराकाल की बात है, शुभनिशुभ नामक दो असुरों ने अपने अह्वान में क्षत्रिपति देवेन्द्र व त्रैलोक्य का राज्य और सम्पूर्ण यज्ञ भाग को छीन लिया ॥१॥ उन शुभ, निशुभ ने चन्द्र, सूर्य, कुबेर, वरुण के अधिकार को अपने हाथ में लिया और पवन तथा अग्नि वर कार्य भी स्वयं करने लगे तथा सभी देवताओं के पदों पर उन्होंने अधिकार कर लिया ॥२॥ फिर उन दोनों धीरे असुरों ने द्वारा अधिकार में भ्रष्ट और निरस्कार को प्राप्त हुए, राज्य से छीन एवं पराजित ॥३॥ देवगण उन अपराजिता भगवती का स्मरण करने लगे ॥४॥ देवी ने उन्हें विपद्काल में स्मरण करते ही विपत्ति नष्ट करने का वर दिया था, अब धीरे विपत्ति आ गई इसलिए उन्हीं की शरण में जाना उचित है ॥५॥ इस प्रकार विचार करके देवतागण पर्वत पर्वत हिमालय में जाकर विष्णु की उन माया का स्तव करने लगे ॥६॥

नमोदेव्यैमहादेव्यैशिवायैसततंनमः ।

नमःप्रकृत्यैभद्रायैनियताःप्रणताःस्मताम् ॥७

रीद्रायैनमोनित्यायैगौर्यैघात्र्यैनमोनमः ।

नमोजगत्प्रतिष्ठायैदेव्यैकृत्यैनमोनमः ॥८

ज्योत्स्नायैचंद्ररूपिण्यैसुखायैसततंनमः ।

कल्याण्यैप्रणतामृध्यैसिद्धयैक्लृप्त्यैनमोनमः ॥९

नैर्ऋत्यैभूभृतांलक्ष्म्यैशर्वाण्यैतेनमोनमः ।

दुर्गायैदुर्गंपारायैसारायैसर्वकारिणि ।

ख्यात्यैतथैवकृष्णायैधूम्रायैसततंनमः ॥१०

अतिसौम्यातिरीद्रायैनमस्तस्यैनमोनमः ।

नमोजत्प्रतिष्ठायैदेव्यैकृत्यैनमोनमः ॥११

यादेवीसर्वभूतेषुविष्णुमायेतिशब्दिता ।

नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥१२

यादेवीसर्वभूतेषुबुद्धिरूपेणसंस्थिता ।

नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥१४

देवताओं ने कहा—देवी को नमस्कार है, महादेवी, शिवा, प्रकृति और

भद्रा को बारम्बार नमस्कार है, हम विनीत होकर उन भगवती को बारम्बार

नमस्कार करते हैं ॥७॥ रीद्रा नित्या, गौरी, घात्री, जगत्-प्रतिष्ठा और कृत्या

को हमारा बारम्बार नमस्कार है ॥८॥ हम उन प्रकाश स्वरूपा, चन्द्ररूपा

तथा परमानन्द स्वरूपिणी देवी को नमस्कार करते हैं, उन कल्याणि, बुद्धि

रूपिणी एवं साक्षात् सिद्धि को नमस्कार करते हैं ॥९॥ नैर्ऋति स्वरूपा और

राजाओं की गृह लक्ष्मी स्वरूपा देवी को नमस्कार है, शर्वाणि, दुर्गा, दुर्गंपारा,

सारा, सर्वकारिणी, ख्याति, कृष्णा और धूम्रा स्वरूपिणी भगवती को हम

नमस्कार करते हैं ॥१०॥ जो अति सौम्य तथा अत्यन्त रोद्र हैं, उनको हम

विनय पूर्वक नमस्कार करते हैं, जग-प्रतिष्ठा रूपिणी एवं कृति स्वरूपा देवी

को नमस्कार करते हैं ॥११॥ जो सब प्राणियों में विष्णुमाया नाम से प्रसिद्ध

है उनको बारम्बार नमस्कार है ॥१२॥ सब प्राणियों में चेतना रूप वाली

देवी को हम नमस्कार करते हैं ॥१३॥ सब प्राणियों में बुद्धि रूप से स्थित रहने वाली भगवती को बारम्बार नमस्कार है ॥१४॥

यादेवीमर्वभूतेषुनिद्रारूपेणसस्थिता ।

नमस्तस्यनमस्तस्यनमस्तस्यनमोनम ॥१५॥

यादेवीसर्वभूतेषुक्षुधारूपेणसस्थिता ।

नमस्तस्यनमस्तस्यनमस्तस्यनमोनम ॥१६॥

यादेवीसर्वभूतेषुच्छायाारूपेणसस्थिता ।

नमस्तस्यनमस्तस्यनमस्तस्यनमोनम ॥१७॥

यादेवीसर्वभूतेषुवृक्षारूपेणसस्थिता ।

नमस्तस्यनमस्तस्यनमस्तस्यनमोनम ॥१८॥

यादेवीमर्वभूतेषुतृणारूपेणसस्थिता ।

नमस्तस्यनमस्तस्यनमस्तस्यनमोनम ॥१९॥

यादेवीमर्वभूतेषुक्षीरारूपेणसस्थिता ।

नमस्तस्यनमस्तस्यनमस्तस्यनमोनम ॥२०॥

यादेवीसर्वभूतेषुजातिरूपेणसस्थिता ।

नमस्तस्यनमस्तस्यनमस्तस्यनमोनम ॥२१॥

सब प्राणियों में निद्रारूप में स्थित देवी को बारम्बार नमस्कार है ॥१५॥ सब जीवों में क्षुधा रूप में स्थित रहने वाली देवी को बारम्बार नमस्कार है ॥१६॥ जो देवी सब भूतों में छाया रूप से अवस्थित रहती हैं, उनको नमस्कार, नमस्कार है ॥१७॥ सब प्राणियों में वृक्ष रूप से विराजमान देवी को अनेक बार नमस्कार ॥१८॥ सब प्राणियों में तृण रूप में प्रतिष्ठित भगवती को बारम्बार नमस्कार ॥१९॥ सब प्राणियों में क्षीर रूप से अवस्थित देवी को नमस्कार ॥२०॥ सब जीवों में जाति रूप से निवास करने वाली देवी को नमस्कार ॥२१॥

यादेवीमर्वभूतेषुलज्जारूपेणसस्थिता ।

नमस्तस्यनमस्तस्यनमस्तस्यनमोनम ॥२२॥

यादेवीसर्वभूतेषुशान्तिरूपेणसंस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥२३॥
 यादेवीसर्वभूतेषुश्रद्धारूपेणसंस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥२४॥
 यादेवीसर्वभूतेषुकान्तिरूपेणसंस्थिता ।
 नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥२५॥
 यादेवीसर्वभूतेषुलक्ष्मीरूपेणसंस्थिता ।
 नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥२६॥
 यादेवीसर्वभूतेषुधृतिरूपेणसंस्थिता ।
 नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥२७॥
 यादेवीसर्वभूतेषुवृत्तिरूपेणसंस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥२८॥

जो सब प्राणियों में लज्जा रूप से रहती हैं, उन देवी को बारम्बार नमस्कार ॥२९॥ सब प्राणियों में शान्तिरूप से अवस्थान करने वाली देवी को नमस्कार ॥२३॥ सब जीवों में श्रद्धारूप से स्थित भगवती को नमस्कार ॥२४॥ सब प्राणियों में कान्तिरूप से विराजमान देवी को नमस्कार ॥२५॥ सब जीवों में लक्ष्मीरूप से प्रतिष्ठित देवी को नमस्कार ॥२६॥ सब जीवों में धृति रूप से अवस्थान करने वाली महामाया को नमस्कार ॥२७॥ सब प्राणियों में वृत्ति रूप से अवस्थित देवी को नमस्कार ॥२८॥

यादेवीसर्वभूतेषुस्मृतिरूपेणसंस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥२९॥
 यादेवीसर्वभूतेषुदयारूपेणसंस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥३०॥
 यादेवीसर्वभूतेषुतुष्टिरूपेणसंस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥३१॥
 यादेवीसर्वभूतेषुपुष्टिरूपेणसंस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥३२॥

यादेवीमयंभूतेषुमातृरूपेणसस्थिता ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनम ॥३३

यादेवीमयंभूतेषुभ्रातिरूपेणसस्थिता ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनम ॥३४

सब प्राणियो मे स्मृति रूप से धवस्थित देवी की नमस्कार ॥३६॥
सब प्राणियो मे दया रूप से अधिष्ठित देवी की नमस्कार ॥३७॥ सब प्राणियो
मे नीति रूप से स्थित देवी की नमस्कार ॥३८॥ सब जीवों मे तुष्टि रूप से
स्थित भगवती की नमस्कार ॥३९॥ सब जीवों मे पुष्टि रूप से निवास करने
वाली देवी का नमस्कार ॥४०॥ सब प्राणियो मे मातृ रूप से स्थित देवी की
नमस्कार ॥४१॥ सब प्राणियो मे भ्राति रूप से धवस्थित देवी की
नमस्कार ॥४२॥

इन्द्रियाणामधिष्ठानीभूतानखिलेषुया ।

भूतेषुसप्ततव्याप्यैतस्यैदेव्यै नमोनम ॥३६

चित्तरूपेणवाकृत्स्नमेताव्याप्यैस्थिताजगत् ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनम ॥३७

स्मृतिसुरैर्षूबंभभीष्टसश्रयात्तथासुरैर्द्वंरुदिनेशसेविता ।

करोतुसान्धुमहेतुरीश्वरीशुभानिभद्राण्यभिहृतुं चापदः ॥३८

यासांप्रतचोद्धतदत्यतापितैरस्माभिरौशाच्चसुरैर्नमस्यते ॥

पाचस्मृतातत्क्षणमेवहंतिन सर्वापदोभक्तिविनम्रभूतिभिः ॥३९

एवस्तवाभियुक्तानादेवानातत्रपावन्ती ।

स्नातुमायाययीतोयेजाह्नव्यानृषनदत ॥४०

साऽऽरवीरान्पुरान्पुत्रभवंद्विस्तूयतेषका ।

शरीरयोशतश्रास्या समुद्रूताग्रवीच्छिवा ॥४१

स्तोत्रमभंतत्क्रियतेषु भदत्यनिराकृतैः ।

देवं समस्ती समरेनिनु भेनपराजितौ ॥४२

सब इन्द्रियो और जीवों की अधिष्ठानी और सब प्राणियो मे व्यक्ति रूप
से निवसमान देवी की नमस्कार ॥३६॥ चेतन्य रूप से सम्पूर्ण विश्व मे व्याप्त

रह कर अधिष्ठान करने वाली भगवती को वारम्बार नमस्कार है ॥३७॥
पुराकाल में अपने इच्छित को प्राप्त करके हमने जिन देवी की स्तुति की और
जो मंगलों के करने वाली हैं, उन्हें भगवती को, प्रचण्ड असुरों से पीड़ित
हुए हम नमस्कार करते हैं, भक्ति से झुकते हुए देह वाले हम जब आपका
स्मरण करते हैं तब जो घुरन्त ही हमारी विपत्ति को दूर करती हैं, वह देवी
हमारी विपत्ति को नष्ट करके सब प्रकार से हमारा मंगल करें ॥३८-३९॥ ऋषि
ने कहा—हे सुपुत्र ! देवगण इस प्रकार से स्तुति कर ही रहे थे, तभी भग-
वती पार्वती गंगा स्नान को जाने के लिये उनके सम्मुख हुई ॥४०॥ शोभित
अकृष्टि वाली वह पार्वतीजी देवताओं से पूछने लगीं—हे देवगण ! तुम किस-
की स्तुति कर रहे हो, इतनी बार्ण के साथ ही पार्वतीजी के देह कोश से
भगवती शिवा उत्पन्न होकर बोलीं ॥४१॥ युद्ध में निशुंभ द्वारा पराजित
और शुंभ द्वारा निष्कासित यह देवगण मेरी स्तुति कर रहे हैं ॥४२॥

शरीरकोशाद्यत्तस्याःपार्वत्यानिःसृतांबिका ।
कौशिकीतिसमस्तेषुततोलोकेषुगोयते ॥४३॥
तस्यांविनिर्गतायांतुकृष्णाभूत्सापिपार्वती ।
कालिकेतिसमाख्याताहिमाचलकृताश्रया ॥४४॥
ततोंबिकांपरंरूपंविभ्राणांसुमनोहरम् ।
ददर्शचंडोमुडश्चभृत्यौशुभनिशुभयोः ॥४५॥
ताभ्यांशुभायचारुधाताअतीवसुमनोहरा ।
काप्यास्तेस्त्रीमहाराभासयंतीहिमाचलम् ॥४६॥
नैवतादृक्कचिद्रूपंदृष्टंकैनचिदुत्तमम् ।
ज्ञायतांकाप्यसौदेवीगृहातांचामुरेश्वर ॥४७॥
स्त्रीरत्नमतिचार्वगीद्योतयंतीदिशस्त्विषा ।
सास्तुतिष्ठतिदैत्येन्द्रताम्रान्द्रष्टुमर्हति ॥४८॥
यानिरत्नानिमरणयोगजास्वादीनिवैप्रभो ।
त्रैलोक्येतुसमस्तानिसांप्रतंतानितेगृहे ॥४९॥

पार्वती जी के देहकोश से उत्पन्न होने के कारण वह शिवा 'कौशिकी'

नाम से प्रसिद्ध हुई ॥४३॥ जब पार्वती जी के देह से वह कौशिकी देवी
निबल गई तब उन्होंने वृष्ण वर्ण धारण करके कालिका नाम से प्रसिद्ध
होकर हिमाचल में निवास किया ॥४४॥ सद्गुरान्त भग्विवा ने अत्यन्त
मनाहर रूप धारण किया और शुभ निम्बुम असुरों के भूत चण्ड मुण्ड ने
उस स्वरूप को देखा ॥४५॥ तब चण्ड मुण्ड दुम्भासुर के वाम गण और
उनमे दोले—हे महाराज ! एक अत्यन्त रूपवती स्त्री हिमाचल को सुतोभित
करती हुई वहाँ रह रही है ॥४६॥ ऐसा श्रेष्ठ स्वरूप किसी ने भी न देखा
होगा, इसलिये यह स्त्री कौन है, इसका पता करके, उसे ग्रहण कर लीजिये
॥४७॥ वह सुन्दरावो स्त्रियो मे रत्नरूप है हे घगुरेन्द्र ! वह स्त्री अपने शरीर
की शान्ति से सब दिशाओं को प्रकाशित कर रही है, आपको जमे अवश्य
देखना चाहिये ॥४८॥ हे प्रभो ! तीनों लोकों मे हाथी, घोड़े, रत्नादिक जो
सर्वश्रेष्ठ धन हैं, वह सभी आपने घर मे सुशोभित हैं ॥४९॥

ऐरावत समानीतो गजरत्नपुरदरात् ।

पारिजातरुश्चायतयैवोद्धै श्रवाहय ॥५०॥

विमानहंससमुत्तमेतत्तिष्ठति तैंगणे ।

रत्नभूतमिहानीतमदासीद्वैधसोदभुतम् ॥५१॥

निधिरेषमहापद्म समानीतो धनेश्वरात् ।

निजस्त्रिनीददौ चाव्यभिर्मालामस्तानपक्वजाम् ॥५२॥

एष ते वारुणगेहे वाचनस्त्रावितिष्ठति ।

तथापत्यदनवरोय पुरासीत्प्रजापते ॥५३॥

मृष्याश्रितान्तिदानामशक्तिरीशत्वया दत्तम् ।

पाश सनिराजस्य भ्रातुस्तव परिग्रहे ॥५४॥

निम्बु मस्याव्यजाताश्च समस्तारत्नजातयः ।

वह्निश्चापि ददौ नुशममि शोचे च वाससो ॥५५॥

एवमर्त्यै रत्नानि समस्तान्यादृतानि मे ।

स्त्रीरत्नमेपावत्याणीत्ययावस्मान्न गृह्यते ॥५६॥

गजरत्न ऐरावत, सुरम्य पारिजातवृक्ष, और उज्ज्वलश्रवाग्रश्व, इन्द्र के यहाँ से लिया गया ॥५०॥ विधाता का हंसयुक्त रत्न रूप विमान भी यहाँ लाकर प्राणके आँगन में स्थित किया गया ॥५१॥ महापद्म नाम की यह निधि कुवेर से और किञ्चलिकनि नामक कर्मी भी न मुरझाने वाली पद्ममाला भी समुद्र से प्राप्त की गई ॥५२॥ वरुण का काँचनस्त्रावि छत्र और प्रजापति का यह श्रेष्ठ रथ भी यहाँ विद्यमान है ॥५३॥ यम की मरणादायिनी शक्ति भी आपने छीन ली और आपके भाई निशुंभ के यहाँ वरुण का पास ॥५४॥ और समुद्र से प्राप्त हुए सब रत्न विद्यमान हैं, अग्नि ने उनको पवित्र करके वस्त्र एवं उत्तरीय दिया है ॥५५॥ हे असुरेन्द्र ! इस प्रकार यह सभी रत्न आपने ग्रहण किये हैं तो इस स्त्री रत्न को ही ग्रहण क्यों नहीं करते ? ॥५६॥

निशम्येतिवचःशुंभःसतदाचण्डमुण्डयोः ।

प्रेषयामाससुग्रीवदूतं देव्यामहासुरः ॥५७

इतिचेतिचवक्तव्यासागत्वावचनान्मम ।

यथाचाभ्येतिसंप्रीत्यातथाकार्यत्वयालघु ॥५८

सतत्रगत्वायत्रास्तेरौलोद्देशेतिशोभते ।

तांचदेवीततःप्राहृलङ्घ्यंमधुरयागिरा ॥५९

देविदैत्येभ्यःशुंभस्त्रैलोक्येपरमेश्वरः ।

दूतोहंप्रेषितस्तेनत्वत्सकाशमिहागतः ॥६०

अव्याहताज्ञःसर्वासुयःसदादेवयोनिषु ।

निजिताखिलदैत्यारिःसयदाहृष्टगुणवतत् ॥६१

ममशैलोक्यमखिलंममदेवावशानुगाः ।

यज्ञभागानहंसर्वानुपाशनामिपृथक्पृथक् ॥६२

अलोक्येवररत्नानिममवश्यान्यक्षेपतः ।

तथैवगजरत्नंचहृतं देवेन्द्रवाहनम् ॥६३

अपि ने कहा—चण्डमुख के यह वचन सुनकर महादैत्य शुंभ ने अपने सुग्रीव नामक दूत को देवी के पास भेजा ॥५७॥ शुंभ बोला—तुम वहाँ जाकर

ऐसी बात करना जिनसे वह श्राव्यन्त प्रमत्त होकर खीघ्र ही यहाँ आकर उरस्थित हो जाय ॥१८॥ जिन अत्यन्त गुणोन्नित पवन-प्रान्त में पार्वती जी निवास कर रही थी, उस स्थान में पहुँच कर वह दूत उनसे बोला ॥१९॥ दूत ने कहा— हे देवि ! दैत्यन्द मुष्म तीनों लोकों में ईश्वर हैं, उन्होंने मुझे भवने दूत रूप से तुम्हारे पास भेजा है इसीलिये मैं यहाँ आया हूँ ॥२०॥ उनकी आज्ञा सब देवताओं को घटल रूप से मान्य है, क्योंकि उन्होंने देवताओं को परास्त कर दिया है, अब उन्होंने जो कहा है उसे मुझमें प्रवण करो ॥२१॥ उन्होंने कहा है—तीनों लोक भेर है, सभी देवता मेरे वश में घौर मेरे अनुगत हैं, समस्त के राज भाग को भी मैं ही भोगता हूँ ॥२२॥ तीनों लोकों के सम्पूर्ण रत्न मेरे वसीभूत हैं, सभी श्रेष्ठ हाथी तथा गजराज ऐरावत भी मैंने ले लिया है ॥२३॥

शोरोदमथनोद्भूतमश्वरत्नममामरं ।
 उच्चैः श्रवसमज्ञ तुप्रसिपत्यसमपितम् ॥२४॥
 यानिचान्यानिदेवेषुगन्धर्वैपूरोपुच ।
 रत्नभूतानिभूतानितानिमय्येवशोभने ॥२५॥
 स्त्रीरत्नभूतात्वादिविलोकेमन्यामहेवयम् ।
 सात्वतस्मानुषागच्छयतीरत्नभुजोवयम् ॥२६॥
 भावाममानुजवापिनिशु भमुरुविक्रमम् ।
 भजत्वचचन्वापामिरत्नभूतासिधेयत ॥२७॥
 परमैश्वर्यमतुलप्राप्त्यसेमत्परिग्रहात् ।
 एतद्वुद्ध्याप्तमालोच्यमत्परिग्रहताम्रज ॥२८॥

ममूद्र मयन से निराला हुआ उच्चैश्रवा घोड़ा भी देवताओं ने विनय पूर्वक मुझे भेंट दिया है ॥२४॥ देवताओं, गन्धर्वों और नागों के सभी रत्न इतत समग्र मेरे ही हैं ॥२५॥ हे देवी ! लोक में तुम्हें हम स्त्री रत्न मानते हैं, हम सभी रत्नों में भोगने वाले होने से, तुम रत्न स्वस्या की हमारे घर आना चाहिये ॥२६॥ हे वज्रवज्राय वाली ! तुम मुझे या मेरे अत्यन्त पराक्रमी दाता नियुक्त की शीघ्रतर करो, क्योंकि तुम रत्न स्वरूप हो ॥२७॥ मेरी

कामना करने से तुम्हें अतुलनीय परमैश्वर्यो की प्राप्ति होगी, इस बात को बुद्धि से विचार कर मेरा ही चिन्तन करो ॥६८॥

इत्युक्तासातदादेवीगंभीरांतःस्मिताजगौ ।

दुर्गाभगवतीभद्राययेदं धार्यतेजगत् ॥६९॥

सत्यमुक्तं त्वयानात्रमिथ्याकिंचित्त्वयोदितम् ।

त्रैलोक्याधिपतिः शुभो निशुभश्चापितादृशः ॥७०॥

किं त्वत्रयत्प्रतिज्ञातं मिथ्या तत्क्रियते कथम् ।

श्रूयतामल्पबुद्धित्वात्प्रतिज्ञाया कृतापुरा ॥७१॥

यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पव्यपोहति ।

यो मे प्रतिबलोलोके समे भर्ता भविष्यति ॥७२॥

तदा गच्छतु शुभो न निशुभो वामहासुरः ।

मां जित्वा किंचिरेणात्र पाणिगृह्णातु मेलधु ॥७३॥

अवलिप्तासि मैवं त्वं देवि ब्रूहि ममाग्रतः ।

त्रैलोक्येकपुमांस्तिष्ठेदग्रे शुभो निशुभयोः ॥७४॥

ऋषि ने कहा—दूत की बात सुनकर विश्व को धारण करने वाली भगवती दुर्गा ने गम्भीर भाव पूर्वक कुछ हँस कर कहा ॥६९॥ देवी बोली—हे दूत ! तुम्हारा कथन यथार्थ है, शुम्भ तीनों लोकों के स्वामी हैं और निशुम्भ भी उन्हीं के तुल्य हैं ॥७०॥ किन्तु मैंने एक प्रतिज्ञा की हुई है, उसे किस प्रकार तोड़ दूँ ? अल्प बुद्धि के वश मैं होकर जो प्रतिज्ञा मैंने की है, उसे श्रवण करो ॥७१॥ जो पुरुष युद्ध में मुझे परास्त करेगा, जो मेरा दर्प खरिडत करेगा और जो मेरे समान बलवान् होगा, वही पुरुष मेरा पति होगा ॥७२॥ अब वह शुम्भ या निशुम्भ यहाँ आकर उनमें जो समर्थ हो, वह मुझे परास्त करके ग्रहण करलें, विलम्ब न करें ॥७३॥ दूत ने कहा—हे देवि ! तुम्हें अत्यन्त गर्व है, मुझसे ऐसा न कहो, शुम्भ निशुम्भ का सामना तीनों लोकों में कौन कर सकता है ? ॥७४॥

अन्येषामपि दैत्यानां सर्वे देवानवैयुधि ।

जिष्ठन्ति संमुखा देवि किंपुनः स्त्रीत्वमेकिका ॥७५॥

इन्द्राद्या सकलादेवास्तस्थुर्येषानस्यूगे ।
 शुभादीनावृत्तेषांस्त्रीप्रयास्यसिसमुत्तम् ॥७६॥
 सात्वगन्धर्मयोक्तोपाश्वंसुम्भनिशुम्भयोः ।
 केशाकर्पणनिद्रधूतगौरवामागमिष्यसि ॥७७॥
 एवमेतद्वलीशुम्भोनिशुम्भश्चातिवीर्यवान् ।
 किकरोमिप्रतिजामेयदनालोचितापुरा ॥७८॥
 सत्वगन्धर्मयोक्त यदेतत्सर्वमाहृत ।
 सदाचक्ष्वानुरेन्द्रायसचयुक्त करोतुतत् ॥७९॥

शुभ निशुभ का तो कहना ही क्या है, उनके अनुचर वेश्यों के सामने ही गव श्वेता मिलकर भी नहीं ठहर सकते तो तुम स्त्री होकर उनसे किस प्रकार सप्राप्त करोगी ? ॥७६॥ इतलिये तुम मेरी बात मानकर शुभ-निशुभ के पास चलो, मन्त्रमा भी ही तुम्हारे केश पकड़ कर पसीट से धूलेंगा, जिससे तुम्हारा सब गव चूर्ण हो जायगा ॥७७॥ देवी ने कहा—हे दूत ! शुभ-निशुभ दोनों ही नि सदेह ऐसे महा बलवान् हैं, परन्तु क्या कर्ल, पहिले इस बात को न जानकर धन्य बुद्धि से ऐसी प्रतिज्ञा कर बैठी ॥७८॥ इतलिये तुम यहाँ जाकर मैंने जो कहा है, वह भावर पूर्वक उनसे कहो, इसके पदवाक्य वह जो कुछ उचित समझे, वह करेंगे ॥७९॥

७८—धूम्रलोचन वध

इत्यावर्ण्यचोदेव्या सद्रुतीमर्षपूरित ।
 गामचष्टे समागम्यर्दत्यराजायविस्तरात् ॥१॥
 तस्यद्रुतस्यतद्धानयमावण्णामुरराटतत ।
 सक्त्रोप प्राहर्दत्यानामधिपधूम्रलोचनम् ॥२॥
 हेधूम्रलोचनाशुभ्यस्वनेन्यपरिवारितः ।
 सामानयवत्पाददुष्टावेशाकर्पणविह्वलाम् ॥३॥

तत्परित्राणदःकश्चिद्यदिवोत्तिष्ठतेपरः ।
 संहतव्योभरोवापियक्षोगन्धर्वएववा ॥४॥
 तेनाज्ञप्तस्ततःशीघ्रं सदैत्योधूम्रलोचनः ।
 वृतःषष्ठ्यासहस्राणामसुराणांद्रुतययौ ॥५॥
 सदृष्ट्वातांततोदेवीतुहिनाचलसंस्थिताम् ।
 जगादोच्चैःप्रयाहीतिमूलंशुम्भनिशुम्भयोः ॥६॥
 नत्रैत्प्रोत्थाद्यभवतीमद्भुतारिमुपैष्यसि ।
 ततोबलान्नयाम्येषकेशाकर्षणविह्वलाम् ॥७॥

ऋषि ने कहा—देवी के यह वचन सुनकर दूत को अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने दैत्येश्वर के पास जाकर सब वृत्तान्त उन्हें सुनाया ॥१॥ दूत की बात सुनकर दैत्यराज शुंभ ने क्रोध पूर्वक दैत्यों के अधिपति धूम्रलोचन से कहा ॥२॥ हे धूम्र लोचन ! तुम सेना सहित वहाँ जाकर उस दुष्टा के केश पकड़ कह यहाँ घसीट लाओ ॥३॥ यदि कोई उसकी रक्षा में तत्पर हो, तो वह देवता, यक्ष, गन्धर्व कोई भी हो, उसे मार डालो ॥४॥ ऋषि ने कहा—शुंभ की आज्ञा सुनकर धूम्रलोचन साठ हजार दैत्यों को साथ लेकर शीघ्र ही वहाँ पहुँचा ॥५॥ और हिमाचल में बैठी हुई देवी से उस धूम्रलोचन ने उच्च स्वर से कहा—शुंभ निशुंभ के पास चलो ॥६॥ यदि तुम स्वेच्छा से उनके पास न चलीगी तो मैं तुम्हारे केश पकड़ कर बलपूर्वक वहाँ ले चलूँगा ॥७॥

दैत्यश्वरेणप्रहितोबलवान्बलसंवृतः ।
 बलान्नयसिमामेवंततःकितेकरोम्यहम् ॥८॥
 इत्युक्तःसोम्यधावत्तामसुरोधूम्रलोचनः ।
 हुंकारेणैवतंभस्मसाचकारांबिकांततः ॥९॥
 अथक्रुद्धंमहासैन्यमसुराणांतथांबिका ।
 वर्षवर्षसायकंस्तीक्ष्णैस्तथाशक्तिपरश्वधैः ॥१०॥
 ततोधुतसटःकोपात्कृत्वानादंभुभैरवम् ।
 पपातासुरसेनार्योसिंहोदेव्यास्तुवाहनः ॥११॥

कांश्चित्करप्रहारेणदैत्यानास्येनचापरान् ।
 आक्रम्यचरणेनान्यान्निजघानमहासुरान् ॥१२॥
 केपाचित्पाटयामासनखं कोष्ठानिकेसरी ।
 तथातलप्रहारेणशिरांसिकृत्वान्पृथक् ॥१३॥
 विच्छिन्नबाहुशिरस कृतास्तेनतथापरे ।
 पपोचरुधिरकोष्ठादन्येपाधुतकेसरः ॥१४॥

देवी ने कहा—तुम्हें दैत्या के अधिपति शुभ ने यहाँ भेजा है, तुम स्वयं बलशाली और सेना के सहित यहाँ आये हो, यदि तुम बलपूर्वक ले जाना चाहो तो भी मैं तुम्हारा क्या कर सकूँगी ? श्रुति ने कहा—देवी की बात सुनते ही धूम्रलाचन उनकी ओर दौड़ा, परन्तु देवी के हुकार से ही भस्म होगया ॥१५॥ तब उसकी सना ने क्रोध करके देवी के ऊपर तीक्ष्ण बाण, परधु और शक्ति की वर्षा की ॥१६॥ यह देखकर देवी के बाहुन सिंह ने क्रोध से कपायमान होकर भयङ्कर गर्जन किया और असुर-सेना पर दूट पड़ा ॥१७॥ उसने किसी को पजे से, किसी को मुम से, किसी को होठ से आक्रमण पूर्वक मारा ॥१८॥ किसी का हृदय नख से चीर दिया, किसी का मस्तक हथेली के प्रहार से, शरीर से भसग किया ॥१९॥ अनेक असुरों के बाहु और मस्तक छिन्न-भिन्न कर डाले और बहूतो का रथन-पान कर लिया ॥२०॥

क्षणेनतद्बलसर्वक्षयनीतमहात्मना ।
 तेनकेसरिणादेव्यावाहनेनातिकोपिना ॥२१॥
 श्रुत्वातमसुरदेव्यानिहतधूम्रलोचनम् ।
 बलक्षयितवृत्सुनदेवीवैसरिणातत ॥२२॥
 सुपोषर्दत्त्याधिपति शुम्भप्रस्तुरिताधर ।
 प्राज्ञापेमामासचतोचण्डमुण्डोमहासुरो ॥२३॥
 हेचण्डहेमुण्डबलीर्बहुभि परिनारितो ।
 गच्छन्ततगत्वाचसाममानोयतालघु ॥२४॥
 वेनेश्वाटप्यवद्धावायदिव सशयोर्युधि ।
 तदानोपायुधो सर्वैरसुरैर्विनिहृत्यताम् ॥२५॥

तस्यःहतायांदुष्टार्यासिंहेचविनिपातिते ।

शीघ्रमागम्यताबद्धागृहीत्वातामथाम्बिकाम् ॥२०॥

क्षण भर में ही उस सिंह ने असुरों की उस विशाल सेना को नष्ट कर डाला ॥१५॥ धूम्रलोचन का देवी के द्वारा और सम्पूर्ण सेना का उनके वाहन सिंह द्वारा मारा जाना सुनकर ॥१६॥ दैत्येश्वर शुंभ अत्यन्त क्रोध में भर गया, उसके होठ फड़कने लगे और उसने चण्ड-मुख्य को इस प्रकार आज्ञा दी ॥१७॥ हे चण्ड ! हे मुख ! तुम बहुत-सी सेना लेकर वहाँ जाओ और स्त्री को तुरन्त पकड़ लाओ ॥१८॥ उसके केश पकड़ कर खींच लाओ या उसे बांध कर ले आओ, यदि ऐसा न कर सको तो पूर्ण बल लगाकर उसका वध कर देना ॥१९॥ उसको और उसके सिंह को मार कर उसी दशा में यहाँ ले आओ ॥२०॥

७६-चण्डमुख्य वध

आज्ञप्तास्तेततोर्दत्याश्चण्डमुख्यपुरोगमाः ।

चतुरंगबलोपेताययुरभ्युद्यतायुधाः ॥१॥

ददृशुस्तेततोदेवीमीषद्धासांव्यवस्थिताम् ।

सिंहस्योपरिहैलेन्द्रश्वमेहतिकान्चने ॥२॥

तेदृष्ट्वातांसमादातुमुद्यमंचक्रुद्यताः ।

आकृष्टचापासिधरास्तथान्येतत्समीपगाः ॥३॥

ततःकोपंचकारोच्चैरंबिकातानरीन्द्रति ।

कोपेनचास्यावदनमपीवर्णमभूत्तदा ॥४॥

भृकुटीकुटिलात्तस्याललाटफलकाद्द्रुतम् ।

कालीकरालवदनाविनिष्क्रान्तासिपाशिनी ॥५॥

विचित्रखट्वांगघरानरमालाविभूषणा ।

द्वीपिचर्मपरीधानाशुष्कमांसातिभैरवा ॥६॥

अतिदिस्तारवदनाजिह्वाललनभीषणा ।

निमग्नारक्तनयनानादापूरितदिङ्मुखा ॥७॥

अपि न बह्ना—धुम की ऐसी आज्ञा प्राप्त होते ही चण्डमुण्ड अपने साथ चतुरगिणी सशस्त्र सेना लेकर वहां गये और उन्होंने देखा कि हिमालय के स्थितिम गिखर पर मिहारूढ़ देवी मन्द-मन्द मुसकरा रही हैं ॥१-२॥ वह धमुर और उनके साथी दवी को इस प्रकार स्थित देख, धनुष खींच कर और तलवार उठाकर उनको पकड़ने का प्रयत्न करने लगे ॥३॥ वह देवी ने उन सबके प्रति अत्यन्त क्रोध किया, इन कारण देवी का मुख कृष्ण वर्ण का हो गया ॥४॥ फिर दवी न जंमे ही मृदुली चढ़ाई, बंसे ही उनके भलाट से खड्ग-पाश धारिणी करान वदना भयङ्कर कानी उत्पन्न हुई ॥५॥ वह विविध खट्वाण युक्त, मुण्डमान से मुक्ताभिन, बाणधर धारण किये अत्यन्त शुष्क मांस वाली जिह्वा को लपलपाती हुई, भीतर की ओर घुमे हुए लाल नेत्र वाली उत्पन्न होती ध्वन पार शब्द से दिनाद्या को परिपूर्ण करने लगी ॥६-७॥

सायेगेनाभिपतिताघातयतोमहासुरान् ।

संग्येतप्रसुरारीणामभयततदबलम् ॥८॥

पाणिग्राहाकुशग्राहयोधघटासमन्विताम् ।

ममादायीव हस्तेनमुमेचिधेपवारणान् ॥९॥

तयैवयोधतुरगैरयसारयिनासह ।

नि क्षिप्यवक्त्रेदशगैश्रवंसत्यतिभीरवम् ॥१०॥

एवजग्राह्वेक्षेपुग्रीवायामयकापरम् ।

पादेनामम्यैवान्यमुरसान्यमपोययत् ॥११॥

तैमुत्तानिच्छसस्त्राणिमहाम्ब्राणितयामुरं ।

मुनेनजग्राहक्यादशनीर्मयितान्यपि ॥१२॥

यनिनातदबलमयैममुराणादुरात्मनाम् ।

ममदभिषयन्नान्यातन्याश्राताडयत्तया ॥१३॥

अग्निनानिह्ना केचित्केचित्पट्वागताहिताः ।

जग्मुर्विनाशममुरास्ताग्राभिहतारणे ॥१४॥

तदुपरान्त वह देवी दैत्य-सेना के ऊपर वेग सहित दूट पड़ी और सब असुरों को नष्ट करती हुई उनके भक्षण में उत्तर हुई ॥८॥ तथा पार्श्व रक्षक, अंकुश हाथ में लिये हुए योद्धा और घंटाओं के सहित ही हाथियों को पकड़-पकड़ कर मुख में डालने लगी ॥९॥ तथा अश्व, रथ और सारथी सहित सबको मुख में डाल कर भयङ्कर रूप से चबाने लगी ॥१०॥ उस काली ने किसी के केश पकड़े, किसी का कण्ठ दबाया और किसी की छाती पर चढ़ कर पैर की ठोकर से उसे मार डाला ॥११॥ उन असुरों के शस्त्रास्त्रों को भी क्रोधपूर्वक मुख में लेकर दाँतों से चबाने लगी ॥१२॥ वह काली उन महाबली एवं विशाल शरीर वाले असुरों के दल को मसलते-मसलते किसी को भक्षण कर रही थी और किसी को मार कर भगाती थी ॥१३॥ कोई असुर खज्ज के प्रहार से, कोई खट्वांग के द्वारा ताड़ित होने से और कोई दाँतों के अप्रभाग द्वारा चबाये जाने से नष्ट हो गये ॥१४॥

अशेनतन्महासैन्यमसुराणानिपातितम् ।

दृष्ट्वाचंडोभिदुद्रावतांकालीमतिभीषणाम् ॥१५॥

शरवर्षेर्महाभीमैर्भीमाक्षीतामहासुरः ।

छादयामासचक्रंश्चमुंडक्षिप्तीःसहस्रशः ॥१६॥

तानिचक्राण्यनेकानिविशमानानितन्मुखम् ।

बभ्रुर्यथाकंबिबानिसुबहूनिघनोदरम् ॥१७॥

ततोऽज्जहासातिरुषाभीमंभैरवचादिनी ।

कालीकरालवक्त्रांतदुर्दर्शदशनोज्ज्वला ॥१८॥

उत्थायचमहासिंहदेवीचंडमधावत ।

गृहीत्वाचास्यकेशेषुशिरस्तेनासिनाच्छिनत् ॥१९॥

छिन्नेशिरसिदैत्यैर्द्रश्चक्रेनादंसुभैरवम् ॥२०॥

उस असुर-सैन्य के इस प्रकार क्षमणर में नष्ट हो जाने से क्रोधित हुआ चरड अत्यन्त वेग पूर्वक काली की ओर दौड़ा ॥१५॥ और उसने उन भीमाक्षी देवी पर भीषण बाण-वर्षा की तथा सहस्रों चक्रों को घुमा कर उन्हें प्राच्छादित कर दिया ॥१६॥ वह सभी चक्र देवी के मुख में घुसने लगे और

मैत्रमण्डन में प्रविष्ट अनेक सूर्यमण्डलो के गमान मुशोभित हुए ॥१७॥ फिर धीरे निनाद करती हुई जाती ने भीषण अट्टहास किया, उस समय वह अपनी दुर्दय दग्ध-प्रभा से दमकने लगी ॥१८॥ तदनन्तर वह देवी अपने महा वाहन निह पर मड़ी होकर चण्ड की ओर वेग में दौड़ी और उसके बाल पकड़ कर अपने यक्ष में उसका शिर काट डाला ॥१९॥ क्षीण कटते समय चण्डासुर ने धार गर्जना की, जिसमें तीन लोक वसित होसके ॥२०॥

अथमुण्डोभ्यधावत्तादृष्ट्वाचड निपातितम् ।
 तमप्यपातयद्भूमौगट्वागानिहतरूपा ॥२१॥
 हतशेषततःसौम्यदृष्ट्वाचड निपातितम् ।
 मु च चमुमहावोर्योदतोभेजेभयातुरम् ॥२२॥
 शिश्नश्चण्डस्थवालीसागृहीत्वामीडमेवच ।
 प्राहप्रचण्डादृहासमिथमभ्येत्याषण्डकाम् ॥२३॥
 मयातवानोपहृतौषण्डमु डोमहापदा ।
 मुदयक्लेश्वमशुम्भनिशुम्भचहनिष्यसि ॥२४॥
 तवानीतीततौदृष्ट्वाचण्डमुण्डोमहासुरा ।
 उवाचवागीयत्पाणीललितचिण्डकावच ॥२५॥
 यस्माच्च ड चमुण्ड चगृहीत्वात्स्वमुपागता ।
 चामुण्डेति ततोलांवेत्स्यातादेवीगविष्यसि ॥२६॥

चण्ड को मरा हुआ देखकर मुण्ड कानी की ओर दौड़ा, तब देवी ने उसे भी मृदुगम में काट कर गिरा दिया ॥२१॥ फिर बची हुई सेना भी चण्ड-मुण्ड का वध देखकर भयातुर हुई इधर-उधर भाग ली ॥२२॥ फिर वह जाती चण्ड-मुण्ड के कटे हुए मस्तक उठाकर चटिका के पास गई और प्रचण्ड अट्टहास पूर्वक बोली ॥२३॥ महा पशु चण्ड-मुण्ड नामक दो असुरों को मार कर मृत उपहार प्रस्तुत है, अब शुभ निशुभ का वध आप स्वयं ही करना ॥२४॥ जपि ने कहा—उन चण्ड-मुण्ड नामक अमुंगे को उग दना में बर्षा देकर चटिका देवी ने जाती से कहा—॥२५॥ देवी बोली—तुम चण्ड-मुण्ड

को लेकर यहाँ आई हो, इसलिये लोक में तुम्हारा 'चामुण्डा' नाम प्रसिद्ध होगा ॥२६॥

८०—रक्त बीज वध

चंडेचनिहतेदैत्येमुंडेचविनिपातिते ।
 बहूलेषुचसैन्येषुक्षयितेष्वसुरेश्वरः ॥१॥
 ततःकोपपराधीनचेताःशुम्भप्रतापवान् ।
 उद्योगंसर्वसैन्यानांदैत्यानामादिदेशह ॥२॥
 अद्यसर्वबलैर्दैत्याःषडशीतिरुदायुधाः ।
 कंदूनांचतुराशीनिर्यान्तुस्वबलैर्वृताः ॥३॥
 कोटिवीर्यारिणंपचाशदसुराणांकुलानिगै ।
 वातंकुलानिधूआणांनिगच्छंतुममाज्ञया ॥४॥
 कालकादौहृदामीर्यकालकेयास्तथासुराः ।
 युद्धायसज्जानिर्यान्तुआज्ञयात्वरितामम ॥५॥
 इत्याज्ञाप्यासुरपतिःशुम्भोभौरवशासनः ।
 निर्जंगाममहासैन्यसहस्रंबहुभिर्वृतः ॥६॥
 आयातंचंडिकादृष्ट्वातत्सैन्यमतिभीषणम् ।
 ज्यास्वनैःपूरयामासधरणीगगनांतरम् ॥७॥

ऋषि ने कहा—चण्ड-मुण्ड के साथ ही समस्त सेना के नष्ट होने के कारण असुरेश्वर ॥१॥ प्रतापी शुंभ ने अत्यन्त क्रोधपूर्वक सम्पूर्ण असुर सेना को एक साथ वहाँ जाकर युद्ध करने की आज्ञा दी ॥२॥ सम्पूर्ण एक साथ ही लेकर उदायुध नामक छियासी और कम्बु नामक चौरासी दैत्य वहाँ जाय ॥३॥ कोटिवीर्य नामक पचास कुल के धूम्रवंश नामक एक सौ कुल के असुर मेरी आज्ञा से निकले ॥४॥ काल, दौहृद मीर्य और कालकेय वंश के असुर भी शीघ्र सज कर संग्राम में पहुँचे ॥५॥ असुरेश्वर शुंभ इस प्रकार आज्ञा देकर सहस्रों की संख्या में महासेना को लेकर स्वयं भी संग्राम के लिये चला ॥६॥

उस अत्यन्त भयङ्कर मैन्य-ममूह को आता देखकर चडिका ने प्रत्यक्षा की घोर
टङ्कार से पृथिवी-प्राकाश को भर दिया ॥७॥

सर्चासिहोमहानादमतोववृत्तवान्मृष ।
घटाम्यनेनतन्नादमविकाचाप्यवृ ह्यत् ॥८॥
धनुज्योसिहघटानानादापूरितदिङ्मुखा ।
निनादंभीषणेकात्री जग्येविस्तारितालना ॥९॥
तन्निनादमुपभ्रूत्यदैत्यसौन्दीश्रतुक्षिप्तम् ।
देवीमिहस्तथाबालीशरीरी परिवारिता ॥१०॥
एतस्मिन् सरेभूपविनाशायसुरद्विषाम् ।
भवायामरसिहानामतिवीर्यबलान्विता ॥११॥
अक्षोमगुहनिधगूनातथेद्रस्मचशक्तय ।
शरीरेभ्याविनिष्कम्यतद्रूपेश्च डिर्वाययु ॥१२॥
यस्यदेवस्ययद्रूपयथाभूषणवाहनम् ।
तद्देवहितच्छक्तिरसुरान्योद्धुमाययी ॥१३॥
हसयुक्तविमानस्थासाक्षसूत्रकमेढलु ।
भायाताग्रहण शक्तिर्ह्याणीसाभिधीयते ॥१४॥

हे राजन् ! फिर देवी के वाहन सिंह ने घोर गर्जन किया और देवी ने
घरने घटा के घण्टे से उस नाद को टिगुण कर दिया ॥८॥ प्रत्यक्षा की टङ्कार
ने घोर सिंह तथा घटा के नाद में दिक्षाएँ परिपूर्ण हो गई और तब बाली ने
भी घोर नाद पूर्वक जय-जमकर किया ॥९॥ उस नाद को सुनकर दैत्य-सेना ने
चडिका, बाली और सिंह को बारों से ओघपूर्वक घेर लिया ॥१०॥ हे राजन् !
सभी घमुरों के नाश और देवताओं के हित के लिये अत्यन्त बल, पराक्रम से
युक्त ॥११॥ अक्ष, शिव, विष्णु, नासिकेय और इन्द्र की शक्तियाँ उनके देह
से प्रवृत्त हो होकर जहाँ देवताओं का रूप ग्रहण कर बरिहत्ता ने निवृत्त पाई
॥१२॥ त्रिम देवता का जो स्वरूप घोर माहन था, वैसे ही रूप घोर माहन
आदि से गजिजा हृद् शक्तियाँ घमुरों से सप्राप्त करने की उद्यत हुई ॥१३॥

ब्रह्माजी की शक्ति हाथ में ग्रहण भाला और कमण्डलु धारण किये हंस युक्त विमान पर आरुढ़ होकर वहाँ आई, उस शक्ति का नाम ब्रह्मांखी हुआ ॥१४॥

माहेश्वरीवृषारूढात्रिशूलवरधारिणी ।

महाहिवलयप्राप्ताचन्द्रलेखाविभूषणा ॥१५॥

कौमारीशक्तिहस्ताचमयूरवरवारहना ।

योद्धुमम्याययौदैत्यानंबिकागुहूरूपिणी ॥१६॥

तथैवविष्णुवीशक्तिर्गण्डोपरिसंस्थिता ।

शालचक्रगदाशङ्खखड्गहस्ताभ्युपाययी ॥१७॥

जज्ञे वाराहमतुलं रूपं यात्रिभ्रतीहरेः ।

शक्ति साध्याययौतत्रवाराहो विभ्रतीतनुम् ॥१८॥

नारसिंहीनृसिहस्यविभ्रतीसदृशवपुः ।

प्राप्तातत्रसटाक्षेपक्षिप्तनक्षत्रसंहतिः ॥१९॥

वज्रदस्तातथैवैन्द्रीगजराजोपरिस्थिता ।

सहस्रनयनाप्राप्तायथाशक्रस्तथैवसा ॥२०॥

ततःपरिवृतस्ताभिरीशानोदेवशक्तिभिः ।

हृन्मतामसुराः शीघ्रं ममप्रीत्याहचंडिकाम् ॥२१॥

शिवजी की शक्ति त्रिशूल को धारण किये, चन्द्ररेखा से सुशोभित, नागों के आभूषण धारण करके और बैल पर चढ़ कर आई, वह माहेश्वरी नाम से प्रसिद्ध हुई ॥१५॥ कौमारी शक्ति हाथ में शक्ति धारण किये, सुन्दर मोर पर चढ़ कर आई ॥१६॥ विष्णु की शक्ति वैष्णवी शंख, चक्र, गदा, शङ्खधनु और खड्ग धारण करके युद्ध के लिये आई ॥१७॥ यज्ञ वाराह रूपधारी भगवान् विष्णु की शक्ति भी वाराहरूप में वहाँ आई ॥१८॥ नारसिंही शक्ति नृसिंह रूप में वहाँ आई, उनके सटाक्षेप से नक्षत्रों की पंक्ति बनायमान होगई ॥१९॥ इन्द्र की शक्ति हाथ में वज्र धारण कर, हाथी पर चढ़ी हुई युद्ध क्षेत्र में आई, उसका नाम ऐन्द्रीशक्ति हुआ ॥२०॥ फिर उन सब देव-शक्तिपौ के सहित चण्डिकासे भगवान् शंकर ने कहा—मेरी प्रसन्नता के लिये इन सब असुरों का शीघ्र ही वध कर डालो ॥२१॥

ततोदं वीररीरात्तु विनिष्प्रांतातिभीषणा ।
 चण्डिकाशक्तिरत्युग्राणिवाशतनिनादिनी ॥२२॥
 साचाहधूम्रजटिलमीशानमपराजिता ।
 दूतत्वगच्छन्नभगवन्पाश्वंशुम्भनिशुभयो ॥२३॥
 ब्रूहिशुम्भनिशुम्भचदानवावतिगविती ।
 येचान्येदानवास्तत्रयुद्धायसमुपस्थिता ॥२४॥
 त्रंलोक्यमिन्द्रोलभतदेवा सत्तुहविभुंज ।
 मूषप्रपातपातालपदिजोविनुमिच्छय ॥२५॥
 वनावलेपादयचेद्भूवतो युद्धकाक्षिण ।
 तदागच्छन्तृप्यनुमच्छिवा पिशितेनव ॥२६॥
 यतोनिमुक्तादूत्येनतयादेव्याशिवःस्वयम् ।
 शिवदूतीतिलोकेस्मिन्तत साख्यातिमागता ॥२७॥

फिर दरी के देह में अत्यन्त भयकर भी शिवाग्रो के सम्मिलित नाद करने के समान भीषण नाद करती हुई चण्डिका शक्ति प्रकट हुई ॥२२॥ तब उन अपराजिता चण्डिका देवी ने भगवान् शंकर से कहा—हे भगवन् ! पाप शुभ निशुभ के पास जाकर दीत्य कर्म कीजिये ॥२३॥ वहाँ पहुँचकर शुभ निशुभ सहित सब वृद्धाभिलाषी दैत्यो से कहिये ॥२४॥ हे दैत्यो ! इन्द्र तीनों लोकों के पाशें, देवता पुन यज्ञ भाग को भोगने वाले हो और तुम यदि जीवन की इच्छा करते हो तो पाताल लोक में जा कर रहो ॥२५॥ अथवा बल में शक्ति हुये तुम यदि युद्ध करना चाहते हो तो याग्रो, मेरी शिवाएँ तुम्हारे रक्त पान से मृत होंगी ॥२६॥ देवी ने शिवजी को दीत्य कर्म में स्वयं नियुक्त किया, हमनिष्ठ उन्हें 'शिवदूती' कहा गया ॥२७॥

तैपित्रुत्वावचोदेव्या शर्वास्यात महामुरा ।
 यमपांगुलिनाजम्भुर्यन्वात्पायनीस्थिता ॥२८॥
 तत प्रथममेवाग्रे नरैश्चक्षतत्पुष्टिम् ।
 वयपुंरुदनामर्पाम्नादेवीममरास्य ॥२९॥

साचतत्प्रहितान्वाणाञ्छूलशक्तिपरश्वधान् ।
 चिच्छेदलीलयाध्मातघनुमुर्वतर्महेषुभिः ॥३०॥
 तस्याग्रतस्तथाकालीशूलपाशविदारितान् ।
 खट्वांगपोथितांश्चारीन्कुर्वनीव्यचरस्तदा ॥३१॥
 कमंडलुजलाक्षेपहतवीर्यान्हतौजसः ।
 ब्रह्माणीवार्करोच्छन्नन्येनयेनस्मधावति ॥३२॥
 माहेश्वरीत्रिशूलेनतथाचक्रैरणैष्णवी ।
 दंत्यास्त्रधानकौमारीतथाशक्त्यातिकोपना ॥ ३॥
 ऐन्द्रीकुलिशपातेनशतशोदैत्यदानवाः ।
 पेतुर्विदारिताःपृथ्व्यांरुधिरौघप्रवर्षिणः ॥३४॥
 तुण्डप्रहारविध्वस्तादंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः ।
 वाराहमूर्त्यान्यपतंश्चक्रैराचविदारिताः ॥३५॥

शिवजी के द्वारा सन्देश प्राप्त करके वह घोर असुर क्रोध पूर्वक उन
 देवी कात्यायनी के समीप पहुँचे ॥३८॥ फिर वे उन देवी के समक्ष बाण, शक्ति
 और ऋषि आदि की भयंकर वर्षा करने लगे ॥३९॥ असुरों द्वारा चलाये गये
 सभी बाणों को चण्डिका देवी ने अपने बड़े-बड़े बाणों से लीला पूर्वक काट-
 डाला ॥३०॥ तभी उन चण्डिका देवी के सामने काली देवी किसी असुर को
 शूल से विदीर्ण करती और खट्वांग से मारती हुई घूम रही थी ॥३१॥ जिस
 जिस ओर दशगुण दौड़ रहे थे, उसी-उसी ओर जाकर ब्रह्माणी शक्ति उन पर
 जल छिड़क कर उन्हें वीर्य और तेज से हीन करने लगी ॥३२॥ माहेश्वरी
 त्रिशूल से, वैष्णवी चक्र से और कौमारी शक्ति के द्वारा ही बहुत से दैत्यों को
 मार रहीं थीं ॥३३॥ ऐन्द्री शक्ति के वज्र-प्रहार से ताड़ित हुए सैकड़ों दैत्य
 रक्त वमन करते-कंते घराशयी होने लगे ॥३४॥ वाराह-शक्ति के मुख प्रहार
 और दंष्ट्रा के अग्रभाग से ताड़ित असुरगण हृदय विदीर्ण होने के कारण पृथिवी
 पर गिरने लगे ॥३५॥

नखैर्विदारितांश्चान्यान्भक्षयंतीमहासुरान् ।

नारसिंहीचवाराजीनादापूरुणंदिगंतरा ॥३६॥

चडाट्टहासैरगुरा शिवदूतप्रभिक्षिता ।
 पेतु पृथिव्यापनितास्ताश्चखादायसातदा ॥३७॥
 इतिमातृगणक्रुद्ध मर्दयतमहासुरान् ।
 दृष्ट्वाभ्युपायैर्विविधैर्ननुर्देवारिमेनिका ॥३८॥
 पलायनपरान्दृष्ट्वादित्यान्मातृगणादितान् ।
 योद्धुमभ्यामयोक्रुद्धोरक्तबीजोमहामुरः ॥३९॥
 रक्तविद्रुपेदाभूमौपतत्यस्यशरीरतः ।
 समुत्पततिमेदिन्यास्तत्प्रमाणोमहामुर ॥४०॥
 युयुधेमगदापाणिरिद्वशवत्यामहामुर ।
 ततश्चन्द्रोस्ववज्रेणरक्तबीजमताडयन् ॥४१॥
 कुलिशेनाहतस्याशुपहुमुन्नावशोणितम् ।
 रागुत्तस्पुन्ततोमोघास्तद्रूपास्तत्पराक्रमा ॥४२॥
 यावत् पतितास्तस्यशरीराद्रक्तविद्रव ।
 तावत्पुरुषाजातास्तद्वीर्यबलविक्रमा ॥४३॥

भारविणी शक्ति यन्त्रे मर्दन में दिशाघो और आकाश को धूमिल
 करने देहों को नष्ट से विदारण कर भक्षण करते करते, इस प्रकार वह मुक्त
 भूमि में घूम रही थी ॥३६॥ शिवदूती के प्रचण्ड घट्टहास से अभिभूत होकर
 राक्षसगण पराभायी होन लगे और फिर उन गिरे हुए असुरों का वह शिवदूती
 भी भक्षण करने लगी ॥३७॥ इस प्रकार उन्हें क्रोध पूर्वक मर्दन करते देख
 कर दैत्य-सेना भाग पड़ी ॥३८॥ उनको भागता हुआ देख कर रक्तबीज
 नामक दैत्य क्रोधपूर्वक मुक्त के लिये आया ॥३९॥ जैसे ही उस असुर के शरीर
 में रक्त बी एक ढूँढ़ पृथिवी पर टपकनी वैसे ही उसी के समान एक दैत्य
 उत्पन्न हो जाता ॥४०॥ यदा ग्रहण पूर्वक वह असुर ऐन्द्री शक्ति के साथ मुक्त
 करने लगा तब ऐन्द्री शक्ति ने उस पर बज्र-प्रहार किया ॥४१॥ बज्र-प्रहार
 के कारण रक्तबीज के देह में टपके हुए रक्त से उसी के समान रूप और
 लक्षणवाले अनेक बीर उत्पन्न हो गये ॥४२॥ रक्त बी जिानी धूँढ़ टपकी

उतने ही योद्धा उत्पन्न हुए, वे सब योद्धा बल, वीर्य, पराक्रमादि में रक्तबीज के ही समान थे ॥४३॥

तेचापियुधुस्तत्रपुरुषारक्तसम्भवाः ।

समंमातृभिरत्युग्रशस्त्रपातातिभीषणम् ॥४४॥

पुनश्चवज्रपातेनक्षतमस्यशिरोयदा ।

ववाहरक्तपुरुषास्ततोजाताःसहस्रशः ॥४५॥

वैष्णवीसमरेचैनंचक्रेणाभिजघानह ।

गदयाताडयामासऐन्द्रोतमसुरेश्वरम् ॥४६॥

वैष्णवीचक्रभिन्नस्यरुधिरस्रावसम्भवेः ।

सहस्रशोजगद्व्याप्तं तत्प्रमाणंमहासुरैः ॥४७॥

शक्त्याजघानकौमारीवाराहीचतथासिना ।

माहेश्वरीत्रिशूलेनरक्तबीजंमहासुरम् ॥४८॥

सचापिगदयादैत्यैः सर्वाएवाहनपृथक् ।

मातृःकोपसमाविष्टोरक्तबज्रोमहासुरम् ॥४९॥

रक्त की बूँदों से उत्पन्न हुए योद्धाभण उन मातृगणों के साथ अत्यन्त तीक्ष्ण शस्त्रों द्वारा घोर संग्राम करने लगे ॥४४॥ जब ऐन्द्री शक्ति ने उसके भस्तक को पुनर्बार छिन्न किया, तब क्षत स्थान से प्रवाहित हुए रक्त से सहस्रों असुर उत्पन्न हो गये ॥४५॥ वैष्णवी शक्ति ने उसे चक्र से तथा ऐन्द्री शक्ति ने बाण से मारा ॥४६॥ वैष्णवी शक्ति के चक्र से कट कर उस दैत्य के देह से जो रक्त प्रवाहित हुआ, उससे उसी के समान उत्पन्न हुए सहस्रों विकराल असुरों से यह संसार व्याप्त हो गया ॥४७॥ तब उस रक्तबीजासुर को कौमारी अपनी शक्ति से, वाराही खड्ग से और माहेश्वरी त्रिशूल से मारने लगीं ॥४८॥ तब वह घोर राक्षस रक्तबीज भी सब मातृगणों पर गदा द्वारा प्रहार करने लगा ॥४९॥

तस्याहतस्यबहुधाशक्तिशूलादिभिर्भुवि ।

पपातयोवैरक्तोघस्तेनासञ्छतशोसुराः ॥५०॥

तंश्चासुर्मृषमभूतैरसुरै र्भवानजगत् ।
 व्याप्तमासीत्ततोदेवाभयमाजग्मुस्तमम् ॥५१॥
 तान्विवर्णान्मुरान्दृष्ट्वाचडिकाप्राहमन्धरा ।
 उवाचवानीचामु षेविस्तीर्णं वदनकुम् ॥५२॥
 मच्छम्भपातसम्भूताग्रक्तविदून्महामुरान् ।
 रक्तबीजाप्रतीच्छस्ववक्त्रेणानेनवेगिना ॥५३॥
 भक्षयतीचररणेत्तदुन्मथान्महामुरान् ।
 एवमेपक्षयदेत्यश्रोणरक्तोममिष्यति ।
 भक्षयमाणास्त्वयाचाग्रानोवोत्पत्स्यतिचापरे ॥५४॥
 द्रव्युत्तरवाताततांदेवीमूलेनाभिजमानतम् ।
 मुलेनकालीजघृहेरक्तबीजस्यनोक्षितम् ॥५५॥

यन्कि दृग्गच्छादि विभिन्न प्रकार के अश्वों से आहत हुए उस रक्तबीज
 के देह से पृथिवी पर पतित हुए रक्त बिंदुका द्वारा संबन्धी घमुरों की उत्पत्ति
 हुई ॥५०॥ जगके रक्त से उत्पन्न हुए घमुरों से सम्पूर्ण विश्व व्याप्त होगया,
 इससे देखगए प्रत्यन्त भयभीत हुए ॥५१॥ तब देवताओं को भयभीत देख कर
 ब्रह्मदेव ने जानी से कहा—हे वायुगडे ! तुम अपना मुख फाड़ो ॥५२॥ और
 मेरे द्वारा शस्त्र मारत से गिरती हुई रक्त की बूँदों या उससे उत्पन्न होने वाले
 घमुरों को बेग पूर्वक अपने मुख में लेती जाओ ॥५३॥ तथा उससे उत्पन्न
 हुए रागवों का भक्षण करती हुई युद्ध भूमि में प्रवेशी रहो, इस प्रकार रक्त
 के क्षीण होने पर ही यह नष्ट हो मरेगा ॥५४॥ इस प्रकार तुम उसका भक्षण
 प्रारम्भ करोगी तो उसका पुन उत्पन्न होता रह जायगा, श्रुति ने कहा—
 जानी के प्रति ऐसा वह कर ब्रह्मदेव देवी ने उस घमुर को विधूल या आहत
 किया और जगस भिरे हुए रक्त को वाली ने अपने मुख में ग्रहण कर
 लिया ॥५५॥

ततोमाजजघानायगदयातयचडिकाम् ।
 नचाभ्यापेदनाचजंगदापातोत्पिबामणि ॥५६॥

तस्याहतस्यदेहात्तुबहुसुखावशोणितम् ।
 यतस्ततःस्वक्त्रेणचामुण्डासंप्रतीच्छती ॥५७॥
 मुखेसमुद्गतायेस्यारक्तपातान्महासुराः ।
 तांचखादाथचामुण्डापपीतस्यचशोणितम् ॥५८॥
 देवीशूलेनचक्रेणवाणैरसिभिरिष्टिभिः ।
 जघानरक्तबीजतांचामुण्डापपीतशोणितम् ॥५९॥
 सपपातमहीपृष्ठेशस्त्रसंहतितोहतः ।
 नीरक्तश्चमहीपालरक्तबीजोमहासुरः ॥६०॥
 ततस्तेहर्षमतुलमवापुस्त्रिदशानृप ॥
 तेषामातृगणोमत्तो ननर्त्तासृङ्मदोद्धतः ॥६१॥

फिर उस रक्तबीज ने देवी पर गदा का प्रहार किया, परन्तु उससे देवी को किंचित् भी वेदना नहीं हुई ॥५६॥ इधर रक्तबीज के देह से गिरते हुए रक्त को चामुण्डा अपने मुख में लिये जा रही थी ॥५७॥ काली के मुख में गिरे हुए रक्त से जो असुर उत्पन्न हुए उनका भी उसने भक्षण कर लिया ॥५८॥ जब इस प्रकार चामुण्डा ने रक्तबीज का रक्त पान किया तब चण्डिका ने उसे शूल, चक्र, बाण, खड्ग और ऋषि से मारा ॥५९॥ फिर वह घोर असुर राज्ञों द्वारा क्षत-विक्षत तथा रक्त-हीन होकर पृथिवी में गिर पड़ा ॥६०॥ हे राजन् ! इस पर देवताओं को महान् हर्ष हुआ और वे मातृगण उन असुरों का रक्त पान करके मदोन्मत्त हुईं नाचने लगीं ॥६१॥

८१-निशुम्भ वध

विचित्रमिदमारूपातंभगवन्भवतामम ।
 देव्याश्चरितमाहात्म्यंरक्तबीजवधाश्रितम् ॥१॥
 भूयश्चेच्छाम्यहंश्रोतुंरक्तबीजेनिपातिते ।
 चकारशुम्भोयत्कर्मनिशुम्भश्चातिकोपनः ॥२॥

चरारकोयमलुलम्कवीजेनिपातिते ।
 शुम्भामुरोनिशुम्भश्चहृतेष्वन्येषुचाहवे ॥३॥
 हन्यमानमहामैन्यविनोऽयामर्षमुद्रहन् ।
 अम्यधावन्निशुम्भोयमुख्ययामुरसेनया ॥४॥
 तस्याग्रनस्तथापृष्टेपाद्वयोश्चमहासुरा ।
 मदष्टोष्टपुटाक्लृडास्तु देवीमुपाययु ॥५॥
 आजगाममहावीर्यं शुभोपिस्वबलैर्वृत्त ।
 तिहनुचडिर्पाकोपात्कृत्वापुष्टं तुमातृभि ॥६॥
 ततोयुद्धमनीत्रासोद्देव्या शुभनिशुम्भयो ।
 दारवपमतीवोग्रमेघयोरिववर्पतो ॥७॥

राजा ने कहा—ह भगवन् आपने मुझ से रक्तबीज के वध के विषय
 में देवी चरित्र के धर्मभूत माहात्म्य का वर्णन किया ॥१॥ अत्यन्त क्रोधित
 शत्रु ने रक्तबीज व मार जान पर जो कार्य किया, मैं अब उसे सुनना चाहता
 हूँ ॥२॥ ऋषि बोले—युद्ध में रक्तबीज के समाप्त होन पर एव विभिन्न सेनाओं
 के मारे जान पर दोनों राजाश्व शुभ व धीर निशुभ बहुत क्रोधित हुए ॥३॥ इस
 प्रकार उस सभी सेना को भरता देगकर निशुभामुर अत्यन्त क्रोध सहित
 राजाओं की मूर्ख सेना की माय लेकर देवी के सामने दौड़ा ॥४॥ तथा उस
 धीर शत्रु के सम्मुख, पृष्ठ भाग में एव अगल-बगल बड़े बड़े राक्षस अपने
 घोड़ों को भीतने हुए क्रोध सहित देवी को समाप्त करने के लिए आये ॥५॥
 तत्पश्चात् महाबलशाली शत्रु शुभ अपनी सेना की माय लेकर देवी के गली
 के माय युद्ध करने हुए देवी का मार्ग के निमित्त क्रोधपूर्वक आया ॥६॥
 तब दो मैत्री के समान अत्यन्त प्रबल बाल-वर्षा करते हुए शुभ व निशुभ
 का देवी के माय अथवा युद्ध होन लगा ॥७॥

चिच्छेदास्तान्दलगास्ताभ्याचटिकास्वगरोत्तरैः ।

तादयामामचामेषुशम्भोर्धरमुखेश्वरी ॥८॥

निशुम्भो निशितं खड्गं चर्मचादाय सुप्रभम् ।

अताडयन्मूर्ध्नि सिंहं देव्या वाहनमुत्तमम् ॥६॥

ताडिते वाहने देवी क्षुरप्रेणासिमुत्तमम् ।

निशुम्भस्याशुचिच्छेदचर्मचाप्यष्टचन्द्रकम् ॥१०॥

द्विध्वजचर्मणि खड्गे च शक्तिचिक्षेपसोमुरः ।

तामप्यस्य द्विधा चक्रचक्रेणाभिमुखागताम् ॥११॥

कोपाध्मातो निशुम्भो थशूलं जग्राह दानवः ।

आयातं मुष्टिपातेन देवी तच्चाप्यचूर्णयत् ॥१२॥

अथादाय गदां सोपि चिक्षेप चंडिकां प्रति ।

सापि देव्या त्रिशूलेन भिन्ना भस्मत्वमागता ॥१३॥

ततः परशुहस्तं तमायातं दैत्यपुङ्गवम् ।

आहत्य देवी वाणी धैरपातयत् भूतले ॥१४॥

चण्डिका देवी उन दोनों राक्षसों द्वारा चलाये गये बाणों को अपने बाणों के द्वारा जल्दी से काटकर अपने शस्त्रों से दोनों विकराल असुरों के अंगों पर धार करने लगीं ॥८॥ तेज धार वाली तलवार और चमकती डाल निशुम्भ ने देवी के श्रेष्ठ वाहन सिंह के मस्तक में मारी ॥९॥ वाहन पर आक्रमण हुआ देखकर देवी ने क्षुरप्र नाम के अस्त्र से निशुम्भ की तेज तलवार काटकर उसकी अष्टचन्द्रक डाल भी काट डाली ॥१०॥ तलवार और डाल के कट जाने पर अक्षुर निशुम्भ ने देवी पर शक्ति छोड़ी लेकिन देवी ने चक्र द्वारा उस सम्मुख आती हुई शक्ति के भी दो टुकड़े कर दिये ॥११॥ फिर क्रोध में भरे हुए राक्षस ने शूल लेकर चलाया और देवी ने आक्रमण से शूल को भी धूँसा मारकर चूर्ण कर डाला ॥१२॥ तब उस दानव ने घुमाकर गदा चलाई, किन्तु देवी ने उस गदा को भी अपने त्रिशूल से खण्ड करके भस्म कर दिया ॥१३॥ फिर जब वह महादानव फरसा हाथ में लेकर आया तो देवी ने उसे बाणों से घायल कर धरती पर गिरा दिया ॥१४॥

तस्मिन्निपतिते भूमौ निशुम्भे भीमविक्रमे ।

आतर्पयतीव संक्रुद्धन्प्रययी हंतुमम्बिकाम् ॥१५॥

सरथस्थस्तदात्युच्चैर्गृहीतपरमायुषं ।
 भुजैरष्टाभिरतुलैर्व्याप्याशेषवभौनभ ॥१६॥
 समायान्ततमालोक्यदेवीशश्वमवादयत् ।
 ज्याशब्द चापिघनुपश्चकारातीवदुःसहम् ॥१७॥
 पूरयामासककुभोनिजघटास्वनेनच ।
 समस्तदेत्यसैन्यानातेजोवधविधायिना ॥१८॥
 ततःसिंहमहानादस्त्याजितेभमहामदः ।
 पूरयामासगगनगातयंवशिशोदश ॥१९॥
 ततःकालीसमुत्पत्यगगनदमामताडयत् ।
 कराभ्यांतत्तिनादेनप्राक्स्वनास्तेतिरोहिता ॥२०॥
 अट्टाट्टासमशिवशिवदूतीचकारह ।
 तंशब्दंरसुरास्त्रं सुशुभंकोपपरययो ॥२१॥

महावली भयंकर भाई निजु भ को पृथ्वी पर गिरता देख कर राक्षस
 शुभ प्रायन्त क्रोधपूर्वक देवी को मारने आया ॥१५॥ तथा बहुत लम्बी महा-
 पराक्रमयुक्त अष्टभुजाओ सहित और बड़े-बड़े भस्त्र लेकर रण में बैठकर वह
 सम्पूर्ण आकाश में फैला हुआ दीखने लगा ॥१६॥ उसे आता देखकर देवी ने
 गत्व वजाकर अत्यन्त अमहनीय शब्द घनुष की प्रत्यक्षा से किया ॥१७॥ तथा
 सम्पूर्ण अमुरो की मेना का गतिजाल विनाश करने वाले अपने घटे की शब्द-
 ध्वनी से सम्पूर्ण दिशाओं को भर दिया ॥१८॥ अनन्तर सिंह ने भी हाथियों
 के महामद को नष्ट करने वाले महानाद से आकाश, पृथ्वी एवं दस दिशाओं
 को पूर्ण कर दिया ॥१९॥ फिर देवी काली ने आकाश में उछलकर अपने
 दोनों हाथों से पृथ्वी पर आघात किया, जिसकी शब्द-ध्वनि ने पहली समस्त
 शब्द-ध्वनि मन्द हो गयी ॥२०॥ शिवदूती भी शत्रु राक्षसों का अमंगल करने
 वाली तेज हंसी में हँसी, उस के शब्द से राक्षस लोग दुखी हुए और शुभ
 अत्यन्त प्रोचित हुआ ॥२१॥

शुभं नामत्ययाशक्तिमुक्ताज्वालातिभीषणा ।

धामातीरहित्वाभासागिरताग्नेहोल्कया ॥२३॥

सिंहनादेनशुम्भस्यव्याप्तंलोकत्रयांतरम् ।
 निर्घातिनिःस्वनोघोरोजितवानवनीपते ॥२४॥
 शुम्भमुक्ताञ्छरान्देवीशुम्भस्तत्प्रहिताञ्छरान् ।
 चिच्छेदस्वशरैस्त्रैःशतशोथसहस्रशः ॥२५॥
 ततःसाचण्डिकाक्रुद्धाशूलेनाभिजघानतम् ।
 सतदाभिहतोभूमौमूर्च्छितोनिपपातह ॥२६॥
 ततोनिशुम्भः सप्राप्यचेतनामात्तकामुर्कः ।
 अजघानशरैर्देवीकालीकिसरिरांतथा ॥२७॥
 पुनश्चकृत्वाबाहूनामयुतदनुजेश्वरः ।

चक्रायुतेनदितिजश्छादयामासचण्डिकाम् ॥२८॥

आकाश में स्थित देवगण तब जय-जय शब्द करने लगे जब अम्बिका ने शुंभ से कहा "दुरात्मन् ! ठहर, ठहर" ॥२२॥ असुर शुंभ ने अत्यन्त भयंकर तेज अग्नि वाली शक्ति छोड़ी, अग्नि के समान आती हुई उस शक्ति को देवी ने महोत्त्वानाम्नी शक्ति से काट कर दूर फेंक दी ॥२३॥ फिर तीनों लोक शुम्भ दानव के सिंहनाद से पूर्ण हो गये, तब हे अवनीपाल ! आकाश से उत्पन्न विद्युत् की भयानक शब्द-ध्वनि ने शुंभ के ताद पर विजय पाली ॥२३॥ शुंभ द्वारा चलाये गये सौ सहस्र शरों को देवी ने अपने तेज बाणों से काट डाला और देवी द्वारा चलाये गये सैकड़ों सहस्रों बाणों को शुंभ ने भी अपने तेज बाणों से काट डाला ॥२५॥ तत्पश्चात् चण्डिका देवी ने क्रोध सहित शूल द्वारा शुंभ को घायल किया और शूल से आहत असुर शुंभ अचेत होकर धरती पर गिर गया ॥२६॥ इसके बाद चेतना आने पर निशुंभासुर धनुष के बाणों से देवी काली और सिंह को आहत करने लगा ॥२७॥ फिर राक्षसराज दैत्य निशुंभ ने दस हजार भुजाएँ धारण कीं और उनसे चक्र व युद्धास्त्रों द्वारा चण्डिका देवी पर छा गया ॥२८॥

ततोभगवतीक्रुद्धादुर्गादुर्गात्तिनाशिनी ।

चिच्छेदतानिचक्राणिस्वशरैः सायकांश्चतान् ॥२९॥

ततोनिधु भोवेगेनगद्रामादायचण्डिकाम् ।
 अन्यथावतवै हतु दैत्यसेनासमावृत ॥३०॥
 तम्पापतनूवाशुगदाचिच्छेदचण्डिका ।
 पङ्गे नशितधारेणसचशूलसमाददे ॥३१॥
 शूलहस्ततमायाननिधु भममराद् नम् ।
 रूदिविब्रधाघशूलेनवेगाविद्धे नचण्डिका ॥३२॥
 भिन्नस्यतस्यशूलेनरूदयात्रि मृतोपर ।
 महात्रलोमहावीर्यंस्तिष्ठेतिपुरुषोऽदम् ॥३३॥
 तस्यनिष्क्रामतोदेवीप्रहस्यस्वनवसत ।
 शिरश्चिच्छेदतङ्गेनततोसावपतद्भुवि ॥३४॥
 तत सिंहश्चछादोग्रदष्टाभुण्णमिरोधरान् ।
 असुरास्तस्तिथाकालोशिवद्वृतीतथापरान् ॥३५॥

इसमें क्रोधित हुई सबट नाशिनी देवी दुर्गा ने उन सम्पूर्ण बाणों और
 चक्रों को काट डाला ॥३२॥ उसके पदचान् निधु भ दैत्यों की सेना सहित गदा
 लेकर उन देवी को नष्ट करने के लिए अत्यन्त तेजो से दौड़ा ॥३०॥ तब निधु भ
 राक्षस भी उस छाती हुई गदा को चण्डिका देवी ने अत्यन्त तेज धार वाली
 तलवार से काट डाला फिर निधु भ ने घूम ले लिया ॥३१॥ फिर शूल लेकर
 सामने धाने हुए असुर निधु भ की देवी ने महान् गति से प्रपना निशूल चला-
 कर हवय के बीच वेम दिया ॥३२॥ तो शूल से बिछे असुर-हवय में एक
 दूमरा महाबली और महावीर्यवान् पुरुष देवी से 'रूद' शब्द कहता हुआ निकला
 ॥३३॥ तब देवी ने हंसकर नाद करते हुए उस बाहर भागे हुए असुर का मिर
 तनवार में काट डाला और वह धरती पर गिर पड़ा ॥३४॥ इसके बाद सिंह
 तेज दातोसे गर्दन चबाकर असुर का भक्षण करने लगा तथा शिवद्वृती और
 काली अन्य दूसरे राक्षसों का भक्षण करने लगी ॥३५॥

योभारीगक्तिनिमिन्नावेचिन्नेशुमंहासुरा ।
 ग्रहाणीमप्रभून्नेनतीयेनान्येनिगदन्तः ॥३६॥

माहेश्वरीत्रिशूलेनभिन्ताःपेतुस्तथापरे ।
 वाराहीतुण्डघातेनकेचिच्चूर्णीकृताभुवि ॥३७॥
 खंडंखंडंचक्ररेणवैष्णव्यादानवाःकृताः ।
 वज्रंणचेंद्रीहस्ताग्रविभुक्तेनतथापरे ॥३८॥
 केचिद्विनेशुरसुराःकेचिन्नष्टामहाहवात् ।
 भक्षिताश्चापरेकालीशिवदूतीमृगांघिर्षः ॥३९॥

कई विकराल राक्षस कौमारी-शक्ति के दर्ल से कटकर मरगये ।
 ब्रह्माणी के मंत्रपूत जल को छूने से ही अपने आप अनेक राक्षस समाप्त हो गये
 ॥३६॥ माहेश्वरी के त्रिशूल की चोट से बहुत से अनेक दानव अलग-अलग
 होकर गिर पड़े और कोई-कोई दानव वाराही के मुख के व्याघात से पिसकर
 भूमि पर गिर गये ॥३७॥ वैष्णवी ने चक्र से अन्य दूसरे असुरों को टुकड़े-
 टुकड़े कर डाला और ऐन्द्री द्वारा छोड़े गये वज्र से धायल होकर ॥३८॥ उन
 दानवों में कोई समाप्त हुए और कोई-कोई महायुद्ध से भाग गये । तथा जो
 बचे, उनका काली, शिवदूती और सिंह ने भक्षण कर लिया ॥३९॥

८२-शुम्भ वध

निशुम्भनिहृतं दृष्ट्वा भ्रातरं प्राणसंमितम् ।
 हन्यमानं वलंचैव शुम्भः क्रुद्धो ब्रवीद्वचः ॥१॥
 वलावलेपाद्दुष्टे त्वं मादुर्गं गर्वमावह ।
 अन्यासां बलमाश्रित्य युध्यसे यातिमानिनी ॥२॥
 एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया काममापरा ।
 पश्यतां दुष्टमभ्येव विशत्योमद्विभूतयः ॥३॥
 ततः समस्तास्ता देव्या ब्रह्माणी प्रसुखालयम् ॥
 तस्या देव्यास्तनीजम्पुरे कैवासीत्तदां विका ॥४॥

प्रहविभूत्यायहृभिरिहृरूपैर्दयाम्बिता ॥
नत्मतृत्तमयैर्नवतिष्ठाम्याजोस्विराभव ॥५॥
तन प्रवृत्तयुद्ध दव्या शुभम्पचाभया ।
पश्यतामवदयानामसुराणाचदारुणम् ॥६॥
शरवर्षे शितं शस्त्रंस्तवाचाम्त्रं सुदारुणं ।
ततोयुद्धमभूद्रूय सवसाकभयकरम् ॥७॥

अपि वीर—तुम न प्राणा के समान आईं हैं निजु भ श्रीर सेना की
मग दहर कर काशूय कह ॥१॥ ह हूँ हूँ । तू वन वा अभिमान न कर,
तू दूरा न उन पर आविन राजा मानवा के समान युद्ध करती है ॥२॥
म्या न रहा—आ दृष्ट । इस समय मैं वनन गङ्गा में ही हूँ मेरे पलावा दूर
वीर है ? दस गङ्गा मगे सब विभूति मुझ में ही विद्यमान है ॥३॥ अर्पि ने
गहा—इस पदवान् ब्रह्माणी आदि समस्त शक्तियाँ देवी की देह में विलीन
है गर्भ शीत तज शकेरी प्रविष्टा ही सम्मुख रह गई ॥४॥ फिर देवी बोली—
मेरे शुभ । इस म्यान पर मैं अपनी विभूति द्वारा जनक रूप में विद्यमान थी,
अब उन सभी रूपों को नष्ट करके मैं युद्ध-क्षेत्र में शकेली ही रही हूँ तू
स्विर हो ॥५॥ अर्पि ने कहा—तदनन्तर यह सब देखत हुए देवता श्रीर
दानवी के सामने प्रमुख तुम श्रीर देवी मानवा का भयकर युद्ध होने लगा
॥६॥ फिर देवी श्रीर तुमामूर में परस्पर दामावर्षा, शालित म दाहण
बस्त्रों के प्रहार द्वारा एका युद्ध हुआ जो सम्पूर्ण लोगो में भय उत्पन्न करने
वाला था ॥७॥

दिव्यान्यस्याणिननोमुमुचेनान्ययायिका ।
यमजतानिर्दं त्यंद्रस्ततत्प्रतीयातवतृभि ॥८॥
मुक्तानितेनवास्यागिदिव्यानिपरमश्वरी ।
बमश्रोतयैवोपहृत्तारोच्चारणादि म ॥९॥
तन शरजतैर्दवीमाच्छादयतगामुर ।
माचनत्कृपितादवीधनुश्चिच्छेदचेपुमि ॥१०॥

छिन्नेधनुषिदैत्यैर्द्रस्तथाशक्तिमथाददे ।
 चिच्छेददेवीचक्रेणतामप्यस्यकरेस्थिताम् ॥११॥
 ततःखड्गमुपादायशतचन्द्रचभानुमत् ।
 अभ्यधावततांहंतुदैत्यानामधिपेश्वरः ॥१२॥
 तस्यापततएवाशुखड्गचिच्छेदचण्डिका ।
 धनुमुक्तैःशितैर्बाणैश्चर्मचार्ककरामलम् ॥१३॥
 अश्वांश्चपातयामासरथंसारथिनासह ।
 हताश्वःसतदादैत्यश्छिन्नधन्वाविसारथिः ।
 जग्राहमुगदरंधोरमंबिकानिधनोद्यतः ॥१४॥

अम्बिका द्वारा छोड़े गये शत-शत दिव्य अस्त्रों को उस दैत्यराज
 शुंभासुर ने उनको काटने वाले अस्त्रों से सभी अस्त्रों को काट डाला ॥१॥
 और शुंभासुर द्वारा छोड़े गये सभी दिव्यास्त्रों को देवी चण्डिका ने अपनी सीला
 से ब हुंकार द्वारा तोड़ डाला ॥१॥ फिर उस भयंकर राक्षस ने सौकड़ों बाणों
 की वर्षा द्वारा देवी को आच्छादित कर दिया । तब देवी ने भी क्रोध से
 बाणों द्वारा उसका धनुष काट डाला ॥१०॥ धनुष कट जाने पर शुंभ राक्षस
 ने शक्ति ले ली, किन्तु देवी ने उस शक्ति को भी चक्र से उसके हाथों ही में
 काट डाला ॥११॥ तब वह दैत्यराज ने दीप्तियुक्त विशिष्ट चन्द्र ढाल और
 तलवार लेकर देवी पर आक्रमण वाला हुआ ॥१२॥ तब देवीने शुंभ की तलवार
 एवं सूर्य की किरणों के समान उज्ज्वल ढाल को धनुष से तीक्ष्ण बाण छोड़-
 कर काट डाला ॥१३॥ जब उस राक्षस-राज के रथ के घोड़े निर्जीव हो गये,
 धनुष खण्डित होगया और सारथी भी नष्ट हो गया, तब वह भयंकर मुगदर
 लेकर अम्बिका को मारने के लिये तैयार हुआ ॥१४॥

चिच्छेदापततस्तस्यभुदगरंनिशितैःशरैः ।
 तथापिसोम्यधावतांमुष्टिमुद्यम्यवेगवान् ॥१५॥
 समुष्टिपातयामासहृदयेदैत्यपुङ्गवः ।
 देव्यास्तचासिसादेवीतलेनोरस्यताडयत् ॥१६॥

४]

तलप्रहाराभिहतो निपपातमहीतले ।
मदं त्यराज सहसा पुनरेव तथोत्थित ॥१६॥
उत्पत्य च प्रगृह्योर्ज्वदेवी गगनमास्थित ।
तत्रापि सानिराघारायुधुधेतेन चडिका ॥१८॥
निमुद्ध खेतदादं त्यश्चणिकाचपरस्परम् ।
चक्रतु प्रथमसिद्धमुनिविस्मयकारकम् ॥१९॥
ततानिमुद्ध सुचिरकृत्वा तेन विकासह ।
उत्पात्य भ्रामयामास चिक्षेप घरणीतले ॥२०॥
भक्षिमाधरणीप्राप्य मुष्टिमुद्यम्य वेगित ।
अम्यघावनद्रुष्टात्मा चडिवा निघनेच्छया ॥२१॥

तब सामने आय दानव ना मुदगर देवी ने सीटण बाणो से नष्ट कर दिया किन्तु फिर भी वह महादानव मुष्टिका सानकर तेज गति से देवी पर दौडा ॥१६॥ महादानव ने वह मृष्टिका प्रहार देवी के हृदय पर किया । तब देवी ने भी घण्टन द्वारा उनके मीन पर आपात किया ॥१६॥ बण्ड के घाघात ने पीडित दैत्यगज पृथ्वी पर गिरा और तुरन्त ही पुन उठा ॥१७॥ इसके पश्चात् उद्यन वर देवी को लेकर गुभ आकाश में पहुँच गया और देवी भी आकाश में निरालम्ब होकर केवल भुजाओं से मुद्र करके लगी ॥१८॥ आकाश में गुभ व चण्डिका देवी अद्वितीय और मुनियों को श्रवण्यो में डालने वाला मुद्र करने लग ॥१९॥ उस दानव ने माय बिना शस्त्र केवल भुजाओं से मुद्र करके उसे उद्यान वर ऊपर घुमाया और फिर घरती पर पटक दिया ॥२०॥ घरती पर गिरकर वह दृष्टात्मा दानव मुष्टिका उठाकर चडिवा को मारने की इच्छा में आक्रामक हुआ ॥२१॥

तमायीतततोदवीसवंदं त्यजनश्चरम् ।
जगत्यापातयामास भित्वा गूलेन वलति ॥२२॥
गतामुपपातोव्यदिवोगूलाप्रविशत ।
बालयन्मबलापृथ्वीसाव्यद्वीपोमपवंताम् ॥२३॥

ततःप्रसन्नमाखिलं हतेतस्मिन्दुरात्मनि ।
जगत्स्वास्थ्यमतीवापनिर्मलचामवन्नमः ॥२४॥
उत्पातमेघाः सौत्काये प्रागासस्ते शमयन्तुः ।
सरितो मागवाहिन्यस्तथा शुम्भे निपातिते ॥२५॥
ततो देवगणाः सर्वहर्षा निभरमानसाः ।
बभूवुर्निहते तस्मिन्नाधर्वाल्लितजगुः ॥२६॥
अवावयन्त्येवा न्येन नृतुश्चाप्सरो गणाः ।
चतुःपुण्यास्तथा वाताः सुप्रभो भूदिवाकरः ॥२७॥
जज्वलुश्चाग्नयः शान्तः शान्तः दिग्जनितस्वनाः ॥२८॥

उस दैत्यराज शुभ को आक्रामक देव देवी ने अपने शूल से उसका हृदय वेध दिया और उसको पुनः पृथ्वी पर गिरा दिया ॥२२॥ देवी के शूल के अग्र भाग द्वारा शुभ का हृदय आहत हुआ जब वह निर्जिव होकर पृथ्वी पर गिरा तो उस समय समुद्र, द्वीप और पर्वतों सहित समस्त पृथ्वी विचलित हो गई ॥२३॥ उस दुरात्मा दानव के मारे जाने पर सभी आनन्दित हुए, संसार बहुत स्वस्थ हुआ और आकाश पूर्णतः स्वच्छ होगया ॥२४॥ शुभ के रहते हुए जो भी अतिष्ठकारी मेघ और उत्काण्ड विद्यमान थे, वे सब शुभ के मृत्यु-परान्त अहृदय होगये और नदियाँ भी अपने समुचित मार्गों में बहने लगीं ॥२५॥ उस दानव के समाप्त होने पर सम्पूर्ण देवगण के चित्त में अत्यन्त हर्ष हुआ और गंधर्व मधुर गान करने लगे ॥२६॥ कोई बाद्य बजाने लगा और अप्सराएँ नाचने लगीं, शीतल मन्द वायु चलने लगी और सूर्य ने भी सुन्दर आभा फैला दी ॥२७॥ यज्ञ की बुझी अग्नि जलने लगी और सभी दिशाओं में शान्त शब्द फैला प्रतीत हुआ ॥२८॥

८३—देवी स्तोत्र

देव्याहतेतत्रमहासुरेन्द्रे सैन्द्राः सुरावह्निपुरोगमास्ताम् ।
कात्यायनी तुष्टु चुरिष्टलाभा द्विकासि वक्राब्जविकसिताशाः ॥१॥

देवाऊनु देविप्रपन्नातिहरेप्रसीदप्रसीदमातर्जगतोखिलस्य ।
 प्रसीदविश्वेश्वरिण, हिविश्व त्वमीश्वरीदेविचराचरस्य ॥२॥
 आधारभूताजगतस्त्वमेवामहोम्बरूपेणयत स्थितासि ।
 प्रपास्वरूपस्थितयात्वयंतदाप्याप्यतेकृत्स्नमलघ्यवीर्यं ॥३॥
 त्वद्योऽणवीशक्तिरनतविर्याविश्वस्यबीजपरमासिदेवि ।
 मायासमोहितदेविसमस्तमेतस्त्वगोप्रसन्नाभुविमुक्तिहेतुः ॥४॥
 विद्या समस्तास्तवदेविभेदा स्त्रियं रामस्ता सकलजगच्च ।
 त्वयंकयापूरितमवयंतस्कातेस्तुतिस्तव्यपरापरोक्ति ॥५॥
 सर्वभूतायदादेवीभुक्तिमुक्तिप्रदामिमी ।
 त्वस्तुतास्तुतयेकावाभवतिपरमोक्तय ॥६॥
 सर्वस्यवृद्धिरूपेणजनस्यहृदिसस्थिते ।
 स्वर्गापवर्गदेदेविनारायणिनमोस्तुते ॥७॥

ऋषि ने कहा—देवी ने जब उन महावानव को नष्ट कर दिया, तो
 समस्त देवता अपने हाथियन पल प्राप्त होने के कारण प्रसन्न मुख कमलों से इन्द्र
 व अग्नि को आगे कर समस्त दिशाओं को प्रवासित कर उन काल्यायनी देवी
 की स्तुति करने लगे ॥१॥ देवता बोले—“हे शरणागत तुल्य भजन देवि ।
 प्रसन्न हो, हे सम्पूर्ण जगत् की जननी प्रसन्न हो, हे विश्वेश्वरि ! प्रसन्न हो, तुम
 विश्व की रक्षा करो, हे देवि ! बराबरो की तुम ही ईश्वरी हो ॥२॥ हे देवि !
 तुम ही जगत् की आमात रूप हो, क्योंकि पृथ्वी का रूप तुम्हीं ने स्थित है हे
 देवि ! जल का स्वरूप भी तुम ही कारण बरवे इस सम्पूर्ण जगत् को तृप्त
 करती हो, हे देवि ! तुम्हारा वीर्य उत्तम नही किया जा सकता ॥३॥ हे
 देवि ! अनन्त वीर्य वैष्णवी शक्ति तुम ही हो, ससार की हेतुभूत परमलीला
 तुम ही हो, सम्पूर्ण जगत् की तुम ही मोहित कर रक्षा है, हे देवि ! तुम जब
 प्रसन्न होती हो, तब ही पृथ्वी पर मुक्ति का कारण होनी हो ॥४॥ हे देवि
 तुम्हारी मूर्ति विशेष मे ही समस्त विद्या विद्यमान है और त्रिलोक में समस्त
 श्रियां तुम्हारी मूर्ति विशेष हैं, हे जननी ! तुम एक अकेली इस जगत् में व्याप्त
 हो तुम स्तुति से पर और तुम्हारी स्तुति ही श्रेष्ठ उक्ति है और अश्रित कथ

स्तुति करें ॥५॥ सभस्त प्राणी-स्वरूप में तुम ही प्रकाशमान हो और स्वर्ग व भुक्ति तुम ही प्रदान करती हो, इसलिये तुम्हारी स्तुति करते हैं, किन्तु हे देवि ! तुम्हारे निर्गुण ब्रह्मस्वरूप की स्तुति के लिए कोई भी उक्ति श्रेष्ठ नहीं है, क्योंकि तुम निर्गुण हो और निर्गुण के गुणों की कीर्तन रूप स्तुति किस प्रकार संभव है ? ॥६॥ तुम बुद्धि के रूप में सबके हृदय में बसी हो, हे स्वर्ग-भुक्ति दाता ! हे देवि ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार है ॥७॥

कलाकाष्ठादिरूपेणपरिणामप्रदायिनी ।

विश्वस्योपरतौशक्तेनारायणिनमोस्तुते ॥८॥

सर्वमङ्गलमांगत्येशिवेसर्वार्थसाधिके ।

शरण्येश्वरकेगौरिनारायणिनमोस्तुते ॥९॥

सृष्टिस्थितिविनाशानांशक्तिभूतेसनातनि ।

गुणाश्रयेगुणमयेनारायणिनमोस्तुते ॥१०॥

शरणागतदीनार्त्तपरित्राणपरायणे ।

सर्वस्यातिहरेदेविनारायणिनमोस्तुते ॥११॥

हंसयुक्तविमानस्थेब्रह्माणोरूपधारिणि ।

कौशाभःक्षीरकेदेविनारायणिनमोस्तुते ॥१२॥

त्रिशूलचन्द्राहिधरेमहावृषभवाहिनि ।

माहेश्वरीस्वरूपेणनारायणिनमोस्तुते ॥१३॥

मयूरकुक्कुटवृतेमहाशक्तिधरेनघे ।

कौमारीरूपसंस्थानेनारायणिनमोस्तुते ॥१४॥

हे विश्व-विनाश में समर्थ ! कला एवं काष्ठादि रूप से तुम जगत् का विधान करती हो अथवा सस्र भर में मानवों को अंत प्रदान करती हो, हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥८॥ हे सर्व मंगल-माङ्गल्ये ! हे शिवे ! हे सर्वार्थसाधिके ! हे शरणदाता ! हे त्रिनेत्र वाली ! हे गौरी ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥९॥ तुम सृष्टि के स्थिति और विनाश की शक्ति रूप हो, हे सनातनि ! गुणाश्रये ! हे गुणमये ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥१०॥ शरणागत, दीन, आर्त्त व असिक्तों का उद्धार करने वाली सबका दुख हरती हो,

हे देवि ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥११॥ इस युक्त विपान में ब्राह्मी
रूप धारण कर युद्ध क्षेत्र में कुशामित्रित जल छिड़वती हो, हे देवि ! हे
नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥१२॥ माहेश्वरी रूप में बैल पर सवार होकर
अर्द्धचन्द्र और नाभ भूषण सहित त्रिभूल आपने धारण किया, हे नारायणि ! तुमको
नमस्कार है ॥१३॥ तुमने कौमारी रूप में मयूर और कुङ्कुट युक्त होकर महा
शक्ति धारण की, हे अनघे ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥१४॥

शङ्खचक्रगदापाङ्ग गृहीतपरमायुधे ।

प्रसीदगौणवीरूपेनारायणिनमोस्तुते ॥१५॥

गृहीतोग्रमहाचक्रं द द्रोढ तवसुन्धरे ।

वराहरूपिणिशिवेनारायणिनमोस्तुते ॥१६॥

नृसिंहरूपेणोग्रेण हतु दं त्यान्कृतोद्यमे ।

त्रैलोक्यत्राणसहिनेनारायणिनमोस्तुते ॥१७॥

किरीटिनिमहाषष्ठे सहस्रनयनोज्ज्वले ।

वृषप्राणहरे चैद्विनारायणिनमोस्तुते ॥१८॥

शिवदूतीस्वरूपेण हतवत्ये महाबले ।

घोररूपे महारावेनारायणिनमोस्तुते ॥१९॥

द द्वाकरानवदने शिरोमालाविभूषणो ।

चामुण्डे मुण्डमयने नायणिनमोस्तुते ॥२०॥

लक्ष्मिलज्जे महाविद्ये थद्वे पुष्टिस्वधे ध्रुवे ।

महारात्रे महाभाये नारायणिनमोस्तुते ॥२१॥

बैष्णवी रूप में राज, बज्र, गदा एवं पाङ्ग पनुष परम चामुर्षी की
तुमने धारण किया, हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥१५॥ वराह रूप में
तुमने हे शिवे ! हे नारायणि ! दाँतों से जल मग्न पृथ्वी की उठाकर महाचक्र
ग्रहण किया, तुमको नमस्कार ॥१६॥ नृसिंह रूप में दानवों के नाश को उद्यत
हो त्रैलोक्य की रक्षा करने वाली हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥१७॥ हे
नारायणि ! हे ऐन्द्री ! हजारों नयनों से उज्ज्वल किरीटों के धारण करने वाली
एवं महाबल ग्रहण करने वाली, तुमको नमस्कार ॥१८॥ निरद्वयी के रूप में

भयंकर स्वरूप धारण कर हे नारायणि तुमने महाबलि दानवों को समाप्त किया, तुमको नमस्कार ॥१९॥ दंष्ट्रा और कराल मुख के सिरों की माला धारण कर हे नारायणि ! तुमने चण्ड और मुण्ड नाम के दानवों को नष्ट किया, तुमको नमस्कार ॥२०॥ लक्ष्मी, लज्जा, महाविद्या, श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा, महारात्रि, महा-माया, ध्रुवा तुम ही हो, हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥२१॥

मेघेसरस्वतिवरभूतिवाभ्रवितामसि ।

नियतेस्त्वंप्रसीदेषेनारायणि नमोस्तुते ॥२२॥

सर्वतःपाणिपादांतिसर्वतोक्षिशिरोमुखे ।

सर्वतःश्रवणघ्राणेनारायणि नमोस्तुते ॥२३॥

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।

भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोस्तुते ॥२४॥

एतत्तेवदनं सौम्यं लोचनं त्रयभूषितम् ।

पातु नः सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि नमोस्तुते ॥२५॥

ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् ।

त्रिशूलं पातु नो भीते भद्रकालि नमोस्तुते ॥२६॥

हिनस्ति दंत्यते जांसि स्वनेनापूर्यया जगत् ।

सा घंटा पातु नो देवि पापेभ्यो नः सुप्तानिव ॥२७॥

असुरासृग्वसापंकचचितस्ते करोज्ज्वलः ।

शुभाय खड्गो भवतु चंडिके त्वानंता वयम् ॥२८॥

मेधा, सरस्वती, भूति, आभवी, तामसि तुम ही हो, हे नारायणि ! हे ईशे ! हे नियते ! तुम प्रसन्न हो, तुमको नमस्कार ॥२२॥ सर्वत्र हाथ, पैर, सिर, मुख, कान, नासिका तुम्हारे ही स्वरूप हैं, हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥२३॥ सर्वस्वरूप, सर्वेश्वरी, सर्वशक्ति समन्वित हे देवि ! हे दुर्गे ! भय से रक्षा करो, तुमको नमस्कार ॥२४॥ तुम्हाग सौम्य मुख और उस पर विभू-पित त्रिशूलों वाली हे कात्यायनि ! सबसे रक्षा करो, तुमको नमस्कार ॥२५॥ ज्वाला से भी अधिक कराल बहुत तेज और शेषासुर को नष्ट करने वाला

मुम्हारा त्रिभुज, हे भद्रवाति । हमारी ध्वज से रक्षा करे, तुमको नमस्कार ॥२६॥ अपनी ध्वज से विश्व को पुरित कर दातव्य के तेज की नष्ट करने वाला मुम्हारा घटा पुष्यवत् यथा मे हमारी रक्षा करे ॥२७॥ अमुरगण ने तल्लू और दशा के एक से चचित निग्रहों के समान उज्ज्वल यह दोभाममान जनवार, हूँ चाहिइये । हृमाग वर्याणु करे ॥२८॥

रोगानक्षोपात्तपहमितुष्टाददासिकामान्मकवानभीष्टान् ।

त्वामाश्रितानानविवक्षन्नास्त्वामाश्रितान्नाह्याश्रयताप्रदाति ॥२९॥

एतत्तुल्यरक्तदनत्वयाद्यधर्मद्विपादेविमहामुराणाम् ।

एपरनेकैर्वहुपातमभूत्सिद्धत्वाविकेतत्प्रकरोतिकान्या ॥३०॥

विद्याभुजास्थेषुविश्वदोषेत्वाद्येपवाक्येषुचकाश्वदन्त्या ।

ममत्तगतोत्तिमहाधकारेयिभ्रामयन्पेतदतीवविश्वम् ॥३१॥

रक्षासिधन्नायविपाश्रनागायभारयोदस्पुबलानियन् ।

दावानलोपन्नयातिवप्येतन्नस्थितात्वपरिपानिविश्वम् ॥३२॥

विश्वेश्वरीत्वपरिपासिविश्वविदवात्मिकाधारयमोतिविश्वम् ।

विश्वशश्वद्याभवतीभवतिविश्वशश्वयायेस्वयिभक्तिनन्नाः ॥३३॥

दैविप्रगीदपरिपालयनोरिभीनेनित्यययामुरवधादधुनैवसद्यः ।

पापानिमर्जजगताप्रममनयाधुत्पातपाकजनिताश्चमहोपसर्गान् ॥३४॥

प्रमत्तानाप्रमीदत्वदेविविश्वान्तिहारिणि ।

शैलोकमवानिनामोडयैलोकानावरदाभव ॥३५॥

प्रमत्त होने पर सभी लोगों की नष्ट करती हो। तब अप्रमत्त होने पर सभी आनाशित वानुषों की क्षीन बेनी हो। तुम्हारे आदिगो पर सभी कोई निर्गल नहीं रहती और मुम्हारा आश्रित ही धन्य सबको आश्रय देने वाले होते हैं ॥२९॥ एतत् कथं चान्तात्तुमने धर्म के विपत्तियों और अमुरों का प्राण, यह क्या कोई दूसरी ताते पर मरने है ? ॥३०॥ विश्व, महा दाम्प्यो, विश्व-क्षेत्र और देशों के आदि व्यक्तियों के होने हुए भी महा अप्रकारभक्त समस्त सभी धर्म से विश्व को तुम्हारे अविनिन्द्य धन्य कौन क्या सकता है ॥३१॥ जहाँ अमुर हैं, विनाशक हैं, प्रभु हैं, लोगों के समूह हैं, दातव्य हैं, तुम वहाँ

और समुद्र में रह कर जगत् की रक्षा करती हो ॥३२॥ तुम जगत् की रक्षा करने वाली दिव्येश्वरी हो, विश्व को धारण करने वाली विश्वात्मिका हो । विश्व-ईश ब्रह्माजी द्वारा वन्दनीया हो और विश्व के आश्रय ब्रह्माजी भी तुम्हारे प्रति भक्ति-नम्र हैं ॥३३॥ हे देवि ! तुमने जेमे दानवों का नाश करके इस समय रक्षा की है उसी प्रकार अब प्रसन्न होकर शत्रु भय मे रक्षा करो । समस्त विद्व के पापों का नाश करो और जगत् के उत्पातों से हुई महामारी को तुरन्त शान्त करो ॥३४॥ समस्त जगत् के दुखों को नष्ट करने वाली, प्राणियों पर प्रसन्न होओ और हे त्रिलोकवासियों द्वारा पूजी जाने वाली देवि ! उन सबको वर दो ॥३५॥

वरदाहंसुरगणाःवरयंमनसेच्छथ ।

तंवृणुध्वंप्रयच्छामिजगतामुपकारकम् ॥३६॥

सर्वबाधाप्रशमनत्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि ।

एवमेतत्त्वयाकार्यमस्मद्देवि विनाशनम् ॥३७॥

वैवस्वतंतरेप्राप्तेमृष्टाविघतिमेयुगे ।

शुम्भोनिशुम्भश्चैवान्यानुत्पत्स्येतेमहासुरो ॥३८॥

मंदगोपकुलेजातायशोदागर्भसंभवा ।

ततस्तोनाशयिष्यामिर्विध्याचलनिवासिनी ॥३९॥

पुनरप्यतिरौद्रेणरूपेणपृथिवीतले ।

अवतीर्यहनिष्यामिर्वैप्रचित्तास्तुदानवान् ॥४०॥

भक्षयंत्याश्रतानुग्रान्वैप्रचित्तान्सुदानवान् ।

रक्तादंताभविर्ध्यतिदाडिभीकुसुमोपमाः ॥४१॥

ततोमां देवताःस्वर्गमर्त्यलोकेचमानवाः ।

स्तुवंतोव्याहरिष्यंतिसततंरक्तदन्तिकाम् ॥४२॥

देवी बोली—हे देवताओ ! मैं वर प्रदान करूंगी, और तुम तीनों, लोकों के कल्याण करने वाले जिस वर की आकांक्षा करते हो, वही मांगो और प्रदान करूंगी ॥३६॥ सुरगणों ने कहा—हे अखिलेश्वरि ! तीनों लोकों की सभी प्रकार की विपदाओं को नष्ट करो और इसी प्रकार हमारे

सबूझो को नष्ट करती रहो, यही वर हम मांगते हैं ॥३७॥ देवी बोली—
 घैवस्यत मन्वन्तर के बीच अट्टाईसवें युग में दो महादानव धूम और निमुंभ के
 नाम ने जन्म लेंगे ॥३८॥ उस समय में यक्षोदा के गर्भ से गोपनन्द के गेह में
 जन्म लूँगी श्री विष्णुचलधामिनी होकर उन दोनों को नष्ट करूँगी ॥३९॥
 फिर पृथ्वी पर अश्वत्थ विकरात रूप में अवतार लेकर वैष्णव नाम के घमूरो
 का विनाश करूँगी ॥४०॥ वैश्वचित नाम के भीषण दैत्यो को मक्षण करते
 हुए मेरी दन्तमुत्तावनी कुम्भ के समान लाल रंग की हो जायगी ॥४१॥ हमने
 पाश्चात् स्वर्ग में देवगण और मर्यादोंक से मानव स्तुति करते हुए राक्षस मुझे
 "रक्त दंतिका" के नाम से पुकारेंगे ॥४२॥

भूयश्चतुर्वापिकयामनावृष्ट्यामनभमि ।
 मुनिभिर्मस्तुताभूषोमभविष्याम्ययोनिजा ॥४३॥
 सत शनेननेत्राणानिरीक्षिष्यामिपन्मुनीन् ।
 धीर्संपिप्यतिमनुजा शताधीमितिमासत ॥४४॥
 सतोहमखिललोकमात्मदेहममुद्धवी ।
 भरिष्यामिसुरा शार्करावृष्टं प्राणधारकं ॥४५॥
 शाकभरीतिविख्यातितदायास्याम्यहमुवि ।
 तत्र वचत्रधिष्यामिदुर्गमाभ्यमहासुरम् ।
 (दुर्गादेशीतिविख्याततन्मेनामभविष्यति ।
 पुनश्चाहमदाभीमरूपकृत्वाहिमाचले) ॥४६॥
 रक्षातिभक्षयिष्यामिमुनीनौशरणकारणात् ॥४७॥
 तदामामुनय सर्गेस्तोष्यत्यामममूर्तय ।
 भीमादेवीतिविख्याततन्मेनामभविष्यति ॥४८॥
 यदारुणस्त्र्यस्त्रं लोकयेमहावाधाकरिष्यति ।
 तदाहमामररूपकृत्वामप्येवपट्पदम् ॥४९॥
 त्रं लोकस्यहितार्यायवधिष्यामिमहामुरम् ।
 भामरीनिचर्मानोनाम्तदाम्तोप्यन्तिमर्वन ॥५०॥

इत्थंयदायदावाघादानवोत्थाभविष्यति ।

तदातदावतीर्याहंकरिष्याम्यरिसंक्षयम् ॥५१॥

फिर जब सौ साल तक वर्षा न होगी तो जल न होने यानी सूखा के कारण ऋषिगण मेरी प्रार्थना करेंगे उस समय मैं बिना मनुष्य योनि के ही जन्म लूँगी ॥४१॥ उस समय मेरे सौ नेत्र होंगे, जिनसे मुनियों को देखूँगी और मुनिगण मुझे 'शताक्षी' कहकर कीर्तन करेंगे ॥४२॥ तत्पश्चात् जब तक वर्षा का अभाव रहेगा, तब तक हे सुरमण ! स्वकीय-देह उत्पन्न शाक से समस्त लोकों का पालन करूँगी ॥४३॥ इसलिए जगत् में मेरा 'शाकम्भरी' नाम प्रसिद्ध होगा और वर्षा न होने की उस अवधि में दुर्गम नाम के महादानव को समाप्त करूँगी ॥४४॥ और फिर मैं ऋषियों की रक्षा के लिए हिमालय पर विकराल स्वरूप से असुरों का वध करूँगी ॥४७॥ उस समय सभी ऋषिगण विनम्र होकर मेरी प्रार्थना करेंगे और मैं भीमा देवी के नाम प्रसिद्ध होऊँगी ॥४८॥ जिस काल में अरुण नामक एक महादानव तीनों लोकों में भारी विपत्ति पैदा करेगा, उस समय अनेक षट्पद ममन्वित अमरों का रूप ग्रहण कर ॥४९॥ तीनों लोकों का उद्धार करने के लिए उस महादानव को मारूँगी, इसलिए प्राणी मेरी 'भ्रामरी' नाम से स्तुति करेंगे ॥५०॥ इस तरह जिस काल में असुरों द्वारा विपत्तियाँ पैदा की जायँगी, उस समय मैं अवतरित होकर उनका नाश करूँगी ॥५१॥

८४—देवताओं को देवी का वरदान

एभिःस्तनैश्चरमानित्यंस्तोष्यतेयःसमाहितः ।

तस्याहंसकलाबाधानाशयिष्याम्यसंक्षयम् ॥१॥

मधुकैटभनाशंचमहिषासुरघातनम् ।

कीर्त्तयिष्यंतियेतद्ब्रह्मंशुम्भनिशुम्भयोः ॥२॥

अहम्यांचचतुर्दश्यांनवम्यांचैकचेतसः ।

स्तोष्यन्तिचैवयेभक्त्यामममाहात्म्यमुत्तमम् ॥३॥

नतेपांददुष्टृतरिचिदुद्धृतोत्थानचापद ।
 नभविष्यतिदारिद्र्यनचैवेष्टवियोजनम् ॥४॥
 शयुतो न भयते पांदस्युतो वानराजत ।
 न दान्त्रानलतो योधात्कदाचित्मभविष्यति ॥५॥
 तन्मन्ममंतन्माहात्म्यपठित्व्यसमाहितै ।
 श्रौतव्यवसदाभक्त्या परस्वत्ययनमहम् ॥६॥
 उपमर्गानि शोपांस्तु महामारी समुद्भवान् ।
 तथा त्रिविधमुत्पातमाहात्म्यश्रमयेन्मम ॥७॥

देवी ने कहा—इन सभी वचनों से सचेत होकर जो मनुष्य मेरी प्रति-
 दिन स्तुति करेगा, यह सदेहहीन है कि मैं उन सभी विपत्तियों का विनाश
 करूँगी ॥१॥ मधुर्दंत, शुभ निगुभ और महिषासुर की कथा का उत्तम
 माहात्म्य जो मनुष्य एक चित्त होकर भविष्य पूर्वक पढ़ेगी, बतुर्दंती या नवमी
 तिथि में सुनें या वह ॥२॥ तो उनको पाप एवं पाप से पैदा कोई बाधा नहीं
 रहेगी, दरिद्रता दूर होगी एवं प्रियजनों का वियोग भी न होगा ॥४॥ दुश्मन,
 छोर और राजा से किसी स्थान पर भय न होगा और भस्त्र, भस्त्रि व पानी
 से भी निडर रहेंगे ॥५॥ इसलिए मेरा वह माहात्म्य दत्तचित्त होकर अध्ययन
 करें और श्रवण करें । मेरा यह माहात्म्य ही मेरी सर्वश्रेष्ठ स्तुति है ॥६॥ यह
 महामारी जन्म सभी विपदाओं और तीनों प्रकार की विपत्तियों को नाश करता
 है ॥७॥

यत्र तत्संनतसम्यक् नित्यमायतने मम ।
 सदान्तद्विमोक्ष्यामि सान्निध्यतत्र मे स्थितम् ॥८॥
 वलिप्रदाने पूजयामग्निवायं महोत्सवे ।
 सर्वममंतश्चरितमुच्चार्य श्राव्यमेव च ॥९॥
 जानता जानता वापि वलिपूजां तया कृताम् ।
 प्रतीच्छिप्याम्यहं प्रीत्या वह्निहोमतया कृतम् ॥१०॥
 परत्नानि महापूजात्रियतेषां च वापि की ।
 तस्यां ममंतन्माहात्म्यं तूष्ठां भक्तिममन्त्रितः ॥११॥

सर्वबाधाविनिर्मुक्तो घनघान्यसमन्वितः ।

मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः ॥१२॥

श्रुत्वाममैतन्माहात्म्यमथोत्पत्तीः पृथक्शृणुः ।

पराक्रमांश्च युद्धेषु जायते निर्भयः पुमान् ॥१३॥

रिपवः संक्षयं यांति कल्याणं चोपपद्यते ॥

नन्दते च कुलं पुंसां माहात्म्यं भमशृण्वताम् ॥१४॥

जिस गृह में यह माहात्म्य समुचित विधि से मनन किया जाता है, मैं सर्वदा उसी गृह में अथवा उसके समीप वास करती हूँ ॥८॥ पूजा-कार्य या बलि के अवसर पर तथा यज्ञ कार्य आदि उत्सवों में मेरी यह समस्त कथा बोलनी और सुननी चाहिए ॥९॥ प्राणीगण जाने या अनजाने जो पूजा करें, बलि दें या अग्नि में आहुति देते हैं, वह सब मैं प्रसन्न होकर स्वीकार करती हूँ ॥१०॥ शरद ऋतु में वार्षिक महा पूजा के अवसर पर मेरा यह चरित्र भक्ति-पूर्वक सुनने से ॥११॥ मनुष्य मेरा प्रसाद पाकर समस्त बाधाओं से विमुक्त होते हैं और यह संदेह से परे है कि वे धन, सम्पत्ति और पुत्र प्राप्त करते हैं ॥१२॥ यह माहात्म्य, शुभ उत्पत्ति की कथा एवं युद्ध-कौशल चरित्र सुनने से मनुष्य को भय नहीं रहता ॥१३॥ उसके शत्रुओं का शमन होता एवं उसका कल्याण होता है । और मेरे माहात्म्य का श्रवण करने वाले मनुष्य का परिवार आनन्द-पूर्ण हो जाता है ॥१४॥

वान्तिकर्मणि सर्वत्र तथा दुःस्वप्नदर्शने ।

ग्रहपीडासु चोग्रासु माहात्म्यं शृणुयान्मम ॥१५॥

उपसर्गाः शमयांति ग्रहपीडाश्च दारुणाः ।

दुःस्वप्नं च नृभिर्हृष्टं सुस्वप्नमुपजायते ॥१६॥

बालग्रहाभिभूतानां बालानां शांतिकारकम् ।

संघातभेदे च नृणां भैत्रीकरणमुत्तमम् ॥१७॥

दुर्वृत्तानामशेषाणां बलहानिकरं परम् ।

रक्षोभूतपिशाचानां पठनादेव नाशनम् ॥१८॥

सर्वममैतन्माहात्म्यं भमसंनिधिकारकम् ॥१९॥

पशुपुष्पार्घ्यधूपैश्चगन्धदीपैस्तयोत्तमैः ।

विप्राणामोजनेहोमैःप्रेक्षणीयैरह्निनाम् ॥२०॥

ग्रन्थैश्चविविधैर्भोगैःप्रदानैर्वत्सरेणया ।

प्रीतिर्मेक्रियतेसास्मिन्सकृदुच्चरितश्रुते ॥२१॥

सभी दानि कायों, भयानक स्वप्न देखने के अवसर पर और घोर पारि-
वारिक दुःख के समय मेरा यह चरित्र सुने ॥१५॥ इसके श्रवण में विपदाएं
एव घोर पारिवारिक दुःख मिट जाते हैं और जैसे मनुष्य को दुःखद स्वप्न शीघ्र
फलदायक बनते हैं, उसी प्रकार तुरन्त उत्तम फल प्रदान करते हैं ॥१६॥ मेरी
यह कथा पूतना, डकिनी, माकिनी, वासुकी पर आयी ग्रहों को दामन करने
वाणी है और यदि मनुष्यों में आपस में मतभेद व घत्रता हो जाय तो श्रेष्ठ
विधि से पुन प्रीति कराने वाली है ॥१७॥ यह समस्त अविचारी व दुष्ट मनुष्यों
को निर्बल करता, उनके बल को घटाता है, इसके अध्ययन से असुर, भूत व
पिशाच नष्ट हो जाते हैं ॥१८॥ माहात्म्य के अध्ययन से अध्ययन करने वाला
मेरे निकट आता है । यह प्रारम्भ, मध्य और समाप्ति पर मुझे सर्व प्रकार प्रमत्त
करता है ॥१९॥ उत्तम पशु, फूल, अर्घ्य, धूप, गन्ध, दीप, ब्रह्मभोज, यज्ञ,
प्रेक्षणीय एव ॥२०॥ अथ दूधरी रीतियों से एक वर्ष पर्यन्त दिन रात पूजा
करने वाले से मैं जितनी प्रसन्न हो सकती हूँ, उतनी इस माहात्म्य को सिर्फ एक
ही बार श्रवण से प्रमत्त हो जानी है ॥२१॥

श्रुतहरतिगापानितयारोग्यप्रयच्छति ।

रक्षाकरोतिभूतेभ्योजन्मनाकीर्त्तनमम ॥२२॥

मुद्धेपुचरितयन्मेदुष्टदं त्यनिवहंणम् ।

तस्मिन्ज्युतेधैरिष्टतमपशु सानजायते ॥२३॥

गुप्ताभिस्तुतयोयाश्चयाश्चब्रह्मर्षिभिःकृता ।

ग्रहोणाचकृतायास्ताःप्रयच्छतिशुभागत्यम् ॥२४॥

अरण्येर्गन्निरेवापिदावाग्निपरिवारितः ।

दम्बुमिर्वातृत दून्मेगृहीतोवापिशत्रुभिः ॥२५॥

सिंहव्याघ्रानुयातोवावनेवावनहस्तिभिः ।

राजाक्रुद्धेनचाक्षप्तोवध्योबन्धगतोपिवा ॥२६॥

आधूर्णितोवावातेनस्थितःपोतेमहार्णवे ।

पतत्सुचापिस्त्रेषुसंग्रामेभृशदारुणे ॥२७॥

सर्वावाधासुघोरासुवेदनाभ्यर्दितोपिवा ।

स्मरन्ममैतच्चरितंनरोभुज्येतसंकटात् ॥२८॥

मेरे माहात्म्य का श्रवण सर्व पापों का हरण-कर्त्ता है और नीरोगता प्रदान-कर्त्ता है, साथ ही मेरे जन्म सम्बन्धी कीर्त्तन करने से भूतों वगैरह से भय जाता रहता है ॥२२॥ घोर दानवों के शमन-युद्ध का वर्णन सुनने से मनुष्य को किसी शत्रु से भय नहीं रहता ॥२३॥ हे देवताओ ! तुम्हारी प्रार्थना और ब्रह्म ऋषियों द्वारा की गई प्रार्थनाएँ एवं ब्रह्माजी द्वारा मेरे स्तवन, इन सबको अध्ययन करने से शुभ फल प्राप्त होता है ॥२४॥ ऐसे स्थान पर जहाँ अपना प्रिय कोई न हो, वहाँ शत्रुओं द्वारा घेरे जाने पर, चोरों द्वारा घेरे जाने पर और प्रान्तर में दावानल से ग्रसित होने पर ॥२५॥ खेर या व्याघ्र द्वारा वन में घेरे जाने पर, हाथियों से घिरने पर, आग में गिर जाने पर, क्रोधित राजा द्वारा वध का दण्ड देने के कारण कारागार में होने पर ॥२६॥ विशाल समुद्र में किसी छोटी नाव पर बँठे हुए तूफान द्वारा घिर जाने पर, घोर युद्ध के समय शस्त्रों के समाप्त होने पर ॥२७॥ अथवा सभी तरह की आपदाओं में अंतर्कित या ग्रसित होने पर प्राणी यदि मेरा माहात्म्य या चरित्र का स्मरण करे तो वह समस्त आपदाओं से विमुक्त होता है ॥२८॥

ममप्रभावात्सिंहाद्यादस्यवोर्गैरिणस्तथा ।

दूरादेवपलायतेस्मरतश्चरितंमम ॥२९॥

इत्युक्त्वासाभगवतीचण्डिकाचण्डविक्रमा ।

पश्यतामेवदेवानांतत्रैवांतरधीयत ॥३०॥

तेपिदेव्यानिरातंकाःस्वाधिकारान्यथापुरा ।

यज्ञभागभुजःसर्वेचक्रुर्विनिहतारयः ॥३१॥

दंत्याश्चदेव्यानिहतेशृम्भेदेवरिपीयुधि ।

जगद्विघ्नसकेनस्मिन्महोम्नेतुलविक्रमे ।
 निशुम्भेचमहावीर्येदोषा पातालमाययु ॥३२॥
 एवभगवतीदेवीसानित्यापि पुन पुन ।
 सम्भूयकुरुतेभूषजगतपरिपालनम् ॥३३॥
 तथैनन्माह्यतेविद्वत्सौवविद्वत्प्रसूयते ।
 सायाचिताचविज्ञानतुष्टाऋद्धिप्रयच्छति ॥३४॥

मेरे चरित्र को बार-बार मनन करने वाले प्राणी को देवन्दर ही मेरे प्रभाव से सिंह जैसा हिंसक पशु चोर और शत्रु भी पलायन कर जाते हैं ॥३२॥ ऋषि ने कहा—अन ऐमा उपदेश देनी हुई महा पराक्रमी चण्डिका देवी सुरगण के सम्मुख एकदम अन्तर्धान होगई ॥३०॥ तत्पश्चात् शत्रुओं के भय से निर्भीक सुरगण यज्ञ भाग भोजन करते हुए अवन-अपने कार्यों में व्यस्त होगये ॥३१॥ विश्व का विनाश करने वाले महा पराक्रमी व देवताओं के शत्रु शुभ एव महाशक्ती निशुभ को जब रण स्थल में चण्डिका ने नष्ट कर दिया तो शेष प्रमुखगण पातान को चले गये ॥३२॥ ह राजा ! वह भगवती देवी निरवा होकर भी अनन्त बार पृथ्वी पर प्रकट होकर इन विश्व का पोषण करती है ॥३३॥ उगी भगवती की माया से वह जगत् मोहित है वही इस जगत् की गृष्टि-कर्त्ता है और उगने समीप स्तुति करने पर वह प्रसन्न होकर तराशान एव मन-धान्य प्रदान करती है ॥३४॥

ऋषाप्ततर्पितरसवत्प्रह्लाद मनुजेश्वर ।
 महापाल्यामहाकालेमहामारीम्बरूपमा ॥३५॥
 सौमकालेमहामारीमेवगृष्टिर्भवत्यजा ।
 स्थितिकर्गेनिभूतानासंवकालेसनातनी ॥३६॥
 भवकालेनृगामेवलक्ष्मीवृद्धिप्रदागृहे ।
 संवामावेनयालक्ष्मीविनाशायोपजायते ॥३७॥
 स्तुनामपूजितापुष्पैर्गन्धधूपादिभिस्तथा ।
 ददातिस्त्रिपुत्राश्चमन्निधर्मैर्गनिशुभाम् ॥३८॥

हे मनुजेश्वर ! समस्त ब्रह्मांड उन देवी से युक्त है और प्रलय के समय में यह ब्रह्माण्ड महाभारी के रूप में महाकाली से युक्त होता है ॥३१॥ वही, जब समय आता है तो महामारी बन जाती है, तथा जगत् की उत्पत्ति के अवसर पर वही सृष्टि का स्वरूप हो जाती है और रक्षा के समय वही देवी सनातनी रूप में मनुष्यों की रक्षा करती है ॥३६॥ आनन्द के समय वही प्राणियों के मोह में विभिन्न ऐश्वर्य प्रदान करती है और जब वह नहीं होती तो लक्ष्मी रूपी ऐश्वर्य बसा जाता है व विनाश हो जाता है ॥३७॥ उस देवी की प्रार्थना जो करे और सुगन्ध, धूप, पुष्प, दीप वगैरह से पूजा जो करे उसे ऐश्वर्य, पुत्र और धर्म भक्ति की प्राप्ति होती है ॥३८॥

८५—सुरथ और वैश्य को देवी का वरदान

एतत्तै कथितं भूपदेवीमाहात्म्यमुत्तमम् ।
 एवं प्रभावासादेवीययेदं धार्यते जगत् ॥१॥
 विद्यातथैव क्रियते भगवद्विष्णुमायया ।
 तथा त्वमेव वैश्यश्च तथैवान्ये विवेकिनः ।
 मोह्यं ते मोहिताश्चैव मोहमेष्यं तिचापरे ॥२॥
 तामुपैहि महाराज शरणां परमेश्वरीम् ।
 आराधिता सर्वनृणां भोगस्वर्गपिवर्गदा ॥३॥
 इति नस्य वचः श्रुत्वा सुरथः सनराधिपः ।
 प्रणिपत्य महाभागं तमृषिसंशितव्रतम् ॥४॥
 निविण्णोति ममत्वेन राज्यापहरणेन च ।
 जगाम सद्यस्तपसे सच वैश्यो महामुने ॥५॥
 सदर्शनार्थं मवाया नदी पुलिनसंस्थितः ।
 सच वैश्यस्तपस्तपे देवीसूक्तं परं जपन् ॥६॥
 तौ तस्मिन् पुलिने देव्याः कृत्वामूर्तिमहीमयीम् ।
 अर्हणां च क्रतुस्तस्याः पुष्पधूपान्गितपङ्क्तैः ॥७॥

श्रुति ने कहा—हे भूप ! आपकी मैंने यह सर्वोत्तम माहात्म्य देवी का वर्णन किया । वह देवी जो इस विश्व को धारण करने वाली विष्णु माया भगवती की कृपा ऐसी है कि वही मनुष्य को तत्त्वज्ञान प्रदान करती हैं और वही तुम्हें इस ब्रह्म का एवं अन्य दूसरे बुद्धिमान् व्यक्तियों का भी मोहित किये हुए है, साथ ही भविष्य में भी मनुष्य उनके ही द्वारा मोहित रहेंगे ॥१॥ हे राजा ! ऐसी परमेश्वरी भगवती की शरणागत होओ जिनकी पूजा करने से ही यह प्राणी को ध्यान-द स्वर्ग एवं मुक्ति प्राप्त होती है ॥३॥ मार्कण्डेय ने कहा—
 “ह महर्षि ! भारी ममता एवं राज्य के हरण होने से बहुत दुखी वह कठोर बन करने वाला सुख्य मुनि क इन वचनों को सुनकर वह उन मुनि की प्रणाम करके तुरन्त तपस्या करने चला गया एवं वह वैश्य भी तपस्या करने चला गया ॥४-५॥ तत्पश्चात् राजा व ब्रह्म दोनों नदी के तट पर पहुँचे और वहाँ देवी व दशनी के लिए सर्वोत्तम देवी-मूर्ति अपने हुए तपस्या में लीन हो गये ॥६॥ वही दोनों न मिट्टी से देवी की मूर्ति स्थापित की और पुष्प सुगन्ध, धूप, यज्ञ एवं संपन्न से उनकी आराधना की ॥७॥

निराहारौयतात्मानोत्तमस्कोसमाहितो ।
 वदतुस्तीर्त्नार्चननिजगात्रामृगुक्षितम् ॥८॥
 एवमामाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षेयतात्मनो ।
 परितुष्टाजगद्भ्रातृप्रत्यक्षग्राहचडिवा ॥९॥
 यत्प्राप्यतेऽस्याभूषत्वयाचतुलन्दन ।
 मत्तस्तत्प्राप्यतासवपश्चितुष्टावदामितत् ॥१०॥
 तनोवन्नृपोऽगज्यमविभक्ष्यग्रजन्मनि ।
 अन्नं यच्च निजराज्यहनशश्रुधलयतात् ॥११॥
 मोषिर्वदन्तनाज्ञानवशे निविण्णमानसः ।
 ममेत्यहमिनिप्राज्ञमगच्छिष्युनिनारकम् ॥१२॥
 स्मरन्नेहोभिर्नृपतेस्वराज्यपाप्यतेभवान् ।
 हत्वाग्निपूनस्तलिततवतत्रभविष्यति ॥१३॥

मृतश्चभूयः संप्राप्यजन्मदेवाद्विवस्वतः ।

सार्वाणिकोनाममनुर्ध्वान्भुविभविष्यति ॥१४॥

वैश्यवर्यत्वयास्मत्तोवरोयश्चाभिवाञ्छितः ।

संप्रयच्छामिसंसिद्धयै तवज्ञानंभविष्यति ॥१५॥

इतिदस्त्वातयोर्देवीयथाभिलषितंवरम् ।

अभूवांतर्हितासद्योभक्त्याताम्यामभिष्टुता ॥१६॥

एवंदेव्यावरंलब्ध्वासुरथः क्षत्रियवर्षभः ।

सूर्याज्जन्मसमासाद्यसार्वाणिर्भवितामनुः ॥१७॥

वे दोनों आहार बिना अथवा सूक्ष्म आहार लेकर आराधना में लीन हुए और उन्होंने अपने शरीरों से रक्त की बलि दी ॥१४॥ इस तरह तीन वर्ष पर्यन्त एकाग्रचित्त से तपस्या करने पर जगत् उद्धारक चण्डिका ने प्रसन्न हो उनसे सम्मुख आकर कहा ॥१५॥ देवी ने कहा—हे राजा ! और हे श्रेष्ठ कुल वैश्य ! तुम जो मेरी आराधना करते हो, तुम मेरे समीप होकर सभी इच्छित फल प्राप्त करोगे, मैं प्रसन्न होकर तुम्हें प्रदान करती हूँ ॥१६॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—दूसरे पश्चात् नृप ने वर मांगा कि द्वितीय जन्म में अखंड-राज्य और इस जन्म में बल द्वारा अपने शत्रुओं को नष्ट कर अपना राज्य पुनः पा सकूँ ॥१७॥ पीड़ित मन वाले ब्रिगेकी वैश्य ने 'यह मेरा' और 'मैं' के मोह नाश करने वाला ज्ञान मांगा ॥१८॥ देवी ने कहा—हे राजा ! कुछ ही समय में तुम शत्रुओं का क्षमन करके अपने राज्य को पुनः प्राप्त करोगे एवं भविष्य में तुम्हें अपने राज्य का त्याग नहीं करना होगा ॥१९॥ फिर मरने के बाद तुम उत्पत्ति लाभ प्राप्त करके पृथ्वी पर सार्वणि नामक प्रसिद्ध मनु होओगे ॥२०॥ हे वैश्य ! तुमने जो वर मुझसे मांगा है, उसकी सिद्धि के लिए तुमको वर प्रदान करती हूँ ॥२१॥ मार्कण्डेय ने कहा—इस प्रकार उन दोनों को इच्छित वरदान प्रदान कर तुरन्त ही वह अन्तर्धान होगई उससे पूर्व उन्होंने पूर्ण भक्ति से देवी की स्तुति की ॥२२॥ अतः क्षत्रिय में श्रेष्ठ राजा सुरथ देवी से वर प्राप्त करके सूर्यदेव से उत्पत्ति लाभ प्राप्त कर पृथ्वी पर सार्वणि नामक मनु होने ॥२३॥

८६—पाँच मन्वन्तर कथन

सार्वणिकमिदमम्यक्प्रोक्त मन्वन्तरतव ।
 तथोपदेवीमाहात्म्यमहिषासुरघातनम् ॥१॥
 उत्पत्तयश्चयादेव्यामातृणाञ्चमहाहवे ।
 तयैवसमवोदेव्याश्चामुण्डायायथाभय ॥२॥
 शिवदूताश्चमाहात्म्यवधं शुम्भनिगुम्भयोः ।
 रक्तबीजत्रयश्चैवसर्वमेतत्तवोदितम् ॥३॥
 श्रूयतांमुनिशार्ङ्गलसार्वणिक्प्रमथापरम् ।
 दत्तपुत्रश्चसायणिभावीयोनवमोमनु ॥४॥
 कथयामिमनोस्तस्ययेदेवामनयोनृपा ।
 पारामरीचिभर्गाश्चसुधर्माणस्तथासुरा ॥५॥
 एतेत्रिधाभविष्यन्तिसर्वेद्वादशवागणा ।
 तेषामिन्द्रोभविष्यन्तुसहस्राक्षोमहाबल ॥६॥
 साम्प्रतकालिकेयोमावह्निपुत्रपदानन ।
 अद्भुतोनामशक्राऽसीभावीतस्यान्तरेमनो ॥७॥

मार्कण्डेय जी ने कहा—हे ऋषि श्रेष्ठ ! यह सार्वणिक का मन्वन्तर
 आपने वर्णन किया अब इसी मन्वन्तर में देवी माहात्म्य, महिषासुर-घातन ॥१॥
 पार रण में मातृगणा एक देवी की उत्पत्ति, कामुण्डा देवी की उत्पत्ति ॥२॥
 शिवदूतों माहात्म्य, शुम्भ निगुम्भ घोर रक्त बीज वध इन सभी को उचित
 प्रकार में आपसे कहा ॥३॥ हे ऋषिवर ! अब गये दश-गुण सार्वणिक के
 मन्वन्तर का वर्णन मुनी ॥४॥ उसमें मनु के मानव-काल में जो देवता, मुनि
 घोर राजा होंगे, वह मुनी । पारंगर, मरीचि, भर्ग घोर सुधर्मा देवताओं के
 ॥५॥ यह तीन गण अब प्रत्यक् गण में बँट रहे गये देवगण हैं । दत्तमान बनि
 पुत्र पदानन कालिकेय, इन भविष्य के मन्वन्तर में महा पराक्रमी महस्राक्ष ह
 रण ॥६॥ ७॥

मेधातिथिर्वसुःसत्योज्योतिष्मान्द्युतिमांस्तथा ।

सप्तर्षयोऽन्यःसबलस्तथान्योहव्यवाहनः ॥८॥

धृष्टकेतुर्वहकेतुःखड्गहस्तोनिरामयः ।

पृथुश्रवास्तथाचिंष्मान्भूरिद्युम्नोवृहद्भ्यः ॥९॥

एतेनृपसुतास्तस्यदत्तपुत्रस्यवैनृपाः ।

मनोस्तुदशमस्यान्यच्छृणुमन्वरन्तद्विज ॥१०॥

मन्वन्तरेचदशमेग्रहपुत्रस्यधीमतः ।

सुखासीनानिरुद्धाश्चद्विप्रकाराःसुराःस्मृताः ॥११॥

शतसंख्याहितेदेवाभविष्याभाविनोमनोः ।

यत्पुत्राणांशतंभावितद्देवानां तदाशतम् ॥१२॥

शान्तिरिन्द्रस्तथाभावीसर्गैरिन्द्रगुणैर्युतः ।

सप्तर्षीस्तान्निबोधत्वंयेभविष्यन्तिवैतदा ॥१३॥

आपोमूर्तिर्हविष्मांश्चसुकृतीसत्यएवच ।

नाभागोऽप्रतिमश्चैववासिष्ठश्चैवसप्तमः ॥१४॥

उस समय मेधातिथि, वसु, सत्य, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, सबल एवं हव्य-वाहन ऋषि होंगे ॥८॥ धृष्टकेतु, वहंकेतु, खड्गहस्त, निरामय, पृथुश्रवा, चिंष्मान्, भूरिद्युम्न एवं वृहद्भ्य ॥९॥ दक्ष-पुत्र सावर्णिक मनु के पुत्र नृप होंगे । हे ब्राह्मण ! तत्पश्चात् दशम मनु के दूसरे मन्वन्तर को श्रवण करो ॥१०॥ इस मन्वन्तर में महा बुद्धिमान् ब्रह्माजी के पुत्र दशम मनु होंगे और उनके मानव-काल में सुखासीन एवं निरुद्धादि नाम के तीन तरह के सुरगण होंगे ॥११॥ भविष्यत मनु के मन्वन्तर में भावी सुरगण सौ होंगे, इस मानव-काल में प्राणियों की संख्या भी सौ और सुरगण की संख्या भी सौ होगी ॥१२॥ इन्द्र के समस्त गुणों से पूर्ण शान्ति उस समय इन्द्र होंगे और सप्त मुनियों के संबंध में भी मेरा कथन सुनो ॥१३॥ सप्त मुनियों के नाम आपोमूर्ति, हविष्मान्, सुकृत, सत्य, नाभाग, अप्रतिम एवं सप्तम वसिष्ठ हैं ॥१४॥

सुक्षेत्रश्चोत्तमौजाश्चभूरिषेणश्चवीर्यवान् ।

शतानीकोऽथवृषभोह्यनमित्रोजयद्रथः ॥१५॥

भूरिष्टुम्न सुपर्वाद्यतस्यैतन्नमामनोः ।
 भविष्याद्यमंपुत्रस्यसावर्णस्यान्तरशृणु ॥१६॥
 विहगमा कामगाश्चनिर्माणरतयस्तथा ।
 त्रि प्रकाराभविष्यन्तिर्कैर्कस्मिन्नकोगण ॥१७॥
 मासस्तु दिवसाभ्येतुनिर्माणपतयस्तुते ।
 विहङ्गमारात्रयोऽथमोहूर्ताकामगागणा ॥१८॥
 इन्द्रोवृषारयोभवितातेपाप्रस्थातविक्रमः ।
 हविष्माश्चवरिष्ठश्चष्टिर्न्यस्तथारुणिः ॥१९॥
 निश्चरश्चानघश्च विष्टिश्चान्योमहामुनिः ।
 सप्तयमोऽन्तरेतस्मिन्नगितेजाश्चसप्तम ॥२०॥
 सर्वेनग मुशर्माचिदेवानीक पुरुद्वहः ।
 हेमघन्याहृदामुश्चभाविनस्तत्सुतानृपा ॥२१॥

मुनेत्र, वसमीजा, भूरिषेण, धीर्यवान्, सतामीह, वृषभ, धनमिम, जय-
 त्रय ॥१६॥ भूरिष्टुम्न और सुपर्वा वस पुत्र वसय मनु के हैं, अन्य मनु धर्म पुत्र
 सावर्ण का मन्वन्तर इस प्रकार है ॥१६॥ विहगम, का मन एवं निर्माण पति
 तीन गण देवताओं के हैं और प्रत्येक गण में तीस मुर होंगे ॥१७॥ मास, शृणु
 एवं दिवस निर्माण-पति हैं, रात्रि विहङ्गमदेव और सम्पूर्ण भूतर्त अन्य दिवस-
 कामग मुरों के गण हैं ॥१८॥ महा पराक्रमी वृषास्य इन्द्र होंगे । इस मन्वन्तर
 की सप्तभि में हविष्मान्, वरिष्ठ, अदण्डतनय ॥१९॥ निश्चर, धनघ, विष्टि एवं
 सप्तम अग्निदेव, सप्तभि होंगे ॥२०॥ सर्गत्रय, मुशर्मा, देवानिक, पुरुद्वह, हेमघन्या
 व हृदामु एवं मनु के पुत्र होंगे और राजा होंगे ॥२१॥

द्वादशोऽक्षपुत्रस्यप्राप्येवमन्वन्तरेमनो ।
 सावर्णय्याश्चयेदेवामुनयश्चशृणुप्यतान् ॥२२॥
 मुधर्माण मुमनसोहरितोरोहितस्तया ।
 मुवर्णाश्चगुरास्तत्रपञ्चैतेदजवागणा ॥२३॥
 तेषामिन्द्रश्चनुविज्ञेयश्चतुर्धामामहावत ।
 सगैरिन्द्रगुण्युक्ता मत्तर्षीनयिमेष्टुगु ॥२४॥

धृतिस्तपस्वीसुतपास्तपोमूर्तिस्तपोनिधिः ।

तपोरतिस्तप्यैवान्प्रसप्तमस्तुतपोधृतिः ॥२५॥

देववानुपदेवश्चदेवश्चेष्टोविदूरथः ।

मित्रवान्मित्रविन्दश्चभाविनस्तत्सुतानृपाः ॥२६॥

सावरां मनु के द्वादश मन्वन्तर के बीच जो देव और ऋषि होंगे, अब उनका वर्णन सुनो ॥२२॥ उनके मन्वन्तर में सुधर्मा, सुमना, हरित, रोहित एवं सुवरां इस प्रकार के देवता होंगे और प्रत्येक गण में दश देवगण होंगे ॥२३॥ इंद्र के समस्त गुराओं से युक्त पराक्रमी ऋतधामा इंद्र होंगे । सप्तर्षियों का वर्णन सुनो ॥२४॥ सप्तर्षियों के नाम हैं, धृति, तपस्वी, सुतपाः, तपोमूर्ति, तपोनिधि, तपोरति एवं सप्तम तपोधृति ॥२५॥ देववान् उपदेव, देवश्चेष्ट, विदूरथ, मित्रवान् एवं मित्रविन्द उन मनु के पुत्र एवं भावी नृप होंगे ॥२६॥

त्रयोदशस्यपट्ययिरीच्यारुस्यमनोःसुरान् ।

सप्तर्षीश्चनृपांश्चैवगदतोमेनिशामय ॥२७॥

सुधर्माणःसुरास्तत्रसुकर्माणस्तथापरे ।

सुशर्माणःसुराह्येतेसमस्तामुनिसत्तम ॥२८॥

महाबलोमहावीर्यस्तेषामिन्द्रोदिवस्पतिः ।

भविष्यानथसप्तर्षीन्गदतोमेनिशामय ॥२९॥

धृतिमानव्ययश्चैवतत्त्वदर्शीनिरुत्सुकः ।

निर्मोहःसुतपाश्चान्योनिष्प्रकम्पश्चसप्तमः ॥३०॥

चित्रसेनोविचित्रश्चनियतिर्निर्भयोदृढः ।

सुनेत्रःक्षत्रबुद्धिश्चसुव्रतश्चैवतत्सुताः ॥३१॥

अब मैं रौष्य नाम के तृयोदश मनु के मन्वन्तर में जो सप्तर्षि और उनके पुत्र राजा होंगे, उनका वर्णन सुनो ॥२७॥ हे ऋषि श्रेष्ठ ! उनके मन्वन्तर में सुधर्मा और सुकर्मा देवता होंगे ॥२८॥ महापराक्रमी दिवस्पति इन्द्र होंगे । साथ ही सप्तर्षियों के विषय में भी सुनो ॥२९॥ धृतिमान्, अव्यय, तत्त्वदर्शी, निरुत्सुक, निर्मोह, सुतपा एवं सप्तम निष्प्रकम्प सप्तर्षि होंगे ॥३०॥ एवं रौच्य

मनु के पुत्र विप्रमेन, विविध नियति, निर्भय, दृढ, मुनेन, सप्तबुद्धि और सुग्रव नामक पुत्र होंगे ॥३१॥

८७-रुचि को पितरों का गार्हस्थ्य उपदेश

रुचि प्रजापति पूर्वनिर्ममोनिरहवृत्तः ।
 यनास्तमितदायीचचचारपृथिवीमिमाम् ॥१॥
 अग्निमनिकेतन्तमेवाहारमनाश्रमम् ।
 विमुक्तमङ्ग तद्व्याप्रोचुस्तत्पितरोमुनिम् ॥२॥
 वत्सकम्मास्वयापुण्योनवृत्तोदारमग्रहः ।
 स्वर्गपिवगंहेतुत्वादबन्धमो नानिदमिना ॥३॥
 गृहीतमन्तदेवानापितृणाञ्चतयाहंणाम् ।
 ऋषीणामतिथीनाञ्चकुर्वेल्लोकानुवाञ्छुते ॥४॥
 स्वाहोच्चारणतोदयान्स्वघोच्चारणतः पितॄन् ।
 विभजत्यन्नदानेनभूताद्यानतिथीनपि ॥५॥
 मत्स्रदंश्चादृशाद्वन्धवन्धमस्मदृणादपि ।
 आवाप्नोपिमनुष्यपिभूतेभ्यश्चदिनेदिने ॥६॥
 अनुत्पाद्यमुताग्देवानमस्तप्यंपितृस्तथा ।
 भूनादीश्रकयमीष्ट्यास्मुगतिगन्तुमिच्छसि ॥७॥

मार्कण्डेय जी ने कहा—प्राचीन काल की बात है कि प्रजापति रुचि ने ममत्त मनसा का त्याग कर दिया और अहङ्कार रहित होकर जहाँ भी मूर्खता हो जाय, वहाँ सो जानें थे. इस प्रकार से पृथिवी में घूमण करने लगे ॥१॥ उनके पितरों ने जब उन्हें धर्मि रहित, गृह-रहित, एकाहारी, निराश्रय और मग त्यागी के रूप में देखा तो इस प्रकार बोले ॥२॥ पितरों ने कहा—हे धर्म ! सुमन स्त्री का पालनग्रहण क्यों नहीं किया, क्योंकि वह स्वर्ग और मोक्ष का कारण है, विवाह के न होने से तो सभी बन्धन हैं ॥३॥ रुचि, देवता, पितर,

ऋषि, अतिथि आदि का सत्कार करके ही गृहस्थ स्वर्गादि लोकों के सुख भोगते हैं ॥४॥ स्याहा कह कर देवताओं की, स्वघा कहकर पितरों की और अन्न देकर अतिथि की सेवा रूपी यह तीन ऋणों को चुका कर ही पुरुष गृहस्थ होता है, तुम इस प्रकार दिनों दिन देवता, पितर, मनुष्य और सब जीवों के ऋण में बन्धन को प्राप्त हो रहे हो ॥५-६॥ पुत्र को उत्पन्न किये बिना, देवताओं और पितरों का तर्पण किये बिना तथा कर्मों का अनुष्ठान किये बिना श्रेष्ठ गति पाने की किस प्रकार आशा करते हो ? ॥७॥

क्लेशमेवैहिकं पुत्रमन्यामोऽत्र भवेत्तव ।

मृतस्य नरकं तद्वत्क्लेशमेवान्यजन्मनि ॥८॥

परिग्रहोऽतिदुःखाय पापायाधोगतेस्तथा ।

भवत्यतो मया पूर्व न कृतो दारसंग्रहः ॥९॥

आत्मनः संयमो योऽयं क्रियते क्षणियन्वणात् ।

समुक्तिहेतुर्न भवत्यसावपि परिग्रहात् ॥१०॥

प्रक्षाल्यतेऽनुदिव संयदात्मानिष्परिग्रहैः ।

ममत्वपङ्कदिग्धोऽपि वित्ताम्भो भिर्वरहितत ॥११॥

अनेक भवसंभूत कर्मपङ्काच्छित्तो बुधैः ।

आत्मा सद्वासनातोयैः प्रक्षाल्यो नियतेन्द्रियैः ॥१२॥

युक्त प्रक्षालनं कर्तुं मात्मनो नियतेन्द्रियैः ।

किन्तु लेपाय मार्गोऽयं यत्र त्वं पुत्रवर्तसे ॥१३॥

पंचर्णदीनैरशुभं नृद्यतेऽनभिसन्वितैः ।

फलैस्तथोपभोगैश्च पूर्वकर्मशुभाशुभैः ॥१४॥

हे पुत्र ! तुमको जिस-जिस क्लेश की प्राप्ति होगी, उस-उस को हम भले प्रकार जानते हैं, जैसे मरने के पश्चात् नरक भोगने वाला दुःख पाता है, वैसे ही तुम्हें जन्मजन्मान्तर में दुःख भोगने होंगे ॥८॥ रुचि ने कहा—स्त्री का ग्रहण अत्यन्त दुःख का देने वाला और पाप का कारण ही है, उसी से अधोगति होती है, इसी कारण मैंने स्त्री परिग्रह नहीं किया ॥९॥ इन्द्रियों का दमन करने के लिये आत्म संयम करना ही मोक्ष का कारण है, दार परिग्रह कभी भी मोक्ष

का कारण नहीं हो सकता ॥१०॥ भ्रमता रूपी कीचड़ में लिस होने वाले
 आत्मा को जो परिग्रह हीन पुरुष नित्यप्रति चित्त रूपी जल से धोते हैं वही
 पुरुष श्रेष्ठ हैं ॥११॥ अनक जन्मा में उत्पन्न कर्मरूपी कीचड़ में सने हुए आत्मा
 को सद्वासना रूपी जल से स्वच्छ करना ही बुद्धिमानों को उचित है ॥१२॥
 नितर बोले—यह ठीक है कि सयतेन्द्रिय पुरुषों को आत्मा को स्वच्छ करना
 चाहिये, परन्तु हे वरुण ! तुम जिस मार्ग पर चल रहे हो, क्या वह मार्ग मोक्ष
 प्राप्ति कागन दाता है ? ॥१३॥ जैसे निष्काम दान से भ्रमण का नाश होता
 है, वैसे ही शुभ अशुभ फल के भोग से पूर्व जन्म के संचित कर्म का नाश होता
 है ॥१४॥

एवमवन्धीभवतिकुवत कारणात्मक ।
 नचबन्धायतत्त्वमभवत्यनभिसन्धितम् ॥१५॥
 पूर्वकर्मकृतभोगं क्षीयतेऽह्निशतथा
 सुखदुःखारम्भैर्वत्सपुण्यापुण्यात्मनैर्नृणाम् ॥१६॥
 एवप्रक्षाल्यतेप्राज्ञैरात्माबन्धाच्चरक्ष्यते ।
 नत्वेवमविवेकेनपापपङ्कजेननिप्यते ॥१७॥
 अविद्यापठघतेवदैकर्ममागपितामहा ।
 तत्त्वयैकर्मणामार्गैर्भवन्तोयोजयन्तिमाम् ॥१८॥
 अविद्यासत्यमेवैतत्तर्मनैतन्मृषावच ।
 किन्तुविद्यापिप्राप्तीहेतुःकमनससाय ॥१९॥
 विहितकरणात्पुंभिरमद्भिः क्रियतेतुय ।
 सयमामुक्तयनासोप्रत्युताऽधोगतिप्रद ॥२०॥
 प्रदातव्यमामोनिभवान्तरमात्मानन्तुमन्यते ।
 विहितानरणोद्भूतैर्पापैस्त्वन्तुविलिप्यसे ॥२१॥
 अविद्याप्युपकारायविषयज्जायतेनृणाम् ।
 अनुष्ठिताभ्युपायेनबन्धायान्यायनोहिमा ॥२२॥
 तस्माद्वत्सकुम्भवत्तविधिवद्धारसग्रहम् ।
 भाजन्मविषयतस्तुभ्रसम्प्राप्यनुलोचिषम् ॥२३॥

अनभि संधि के कर्म बन्धन का कारण न होने से कर्म करने वालों को ही संसार के बन्धन में नहीं पड़ना होता ॥१५॥ हे पुत्र ! सुख, दुःख के रूप में भोगे जाने वाले भोग से ही पूर्व जन्म के संचित पुण्य पाप युक्त कर्म दिन रात क्षीण होते रहते हैं ॥१६॥ बुद्धिमान् मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अविवेक रूप पाप के कीचड़ में निमग्न न हों और आत्मा को इस प्रकार स्वच्छ करें तथा बन्धन से अपने को बचावे ॥१७॥ रुचि ने कहा—हे पितरमण ! वेद में कर्म मार्ग को ही अविद्या कहा गया है, फिर आप मुझे कर्म मार्ग में क्यों प्रवृत्त करना चाहते हैं ॥१८॥ पितरों ने कहा—कर्ममार्ग को अविद्या कहा है, वह यथार्थ है, परन्तु कर्म के द्वारा यह बचन असत्य हो जाता है, क्योंकि कर्म से ही तो विद्या की प्राप्ति होती है ॥१९॥ सभी करने योग्य कार्यों के न करने से असत् पुण्य मोक्ष के लिये जो संयमादि करते हैं, अन्त में वह अधोगति को प्राप्त होते हैं ॥२०॥ हे पुत्र ! तुम समझते हो कि मैं आत्मा को धो रहा हूं, परन्तु यह निश्चय समझो कि विहित कर्म के न करने से उसके पाप में जलते हैं ॥२१॥ जैसे अपकार करने वाला विष औषधि रूप में मनुष्य का उपकार करने वाला होता है, वैसे ही यह अविद्या भी मनुष्य के लिये उपकारिणी होती है, अन्य गुण वाला होने पर भी अनुष्ठित कार्य उचित उपाय के द्वारा हमारे लिये कल्याण-प्रद होता है ॥२२॥ हे पुत्र ! इसलिये तुम अब विवाह कर लो, जिससे सांसारिक धर्म की प्राप्ति न होने से तुम्हारा जन्म असफल न हो ॥२३॥

८८—रुचिकृत पुत्रस्तव

सत्तेनपितृवाक्येनभृशमुद्विग्नमानसः ।

क्रन्यामिलापीविप्राधिःपरिवभ्राममेदिनीम् ॥१॥

कन्यामलभमानोऽसौपितृवाक्याग्निदीपितः ।

चिन्तामवापमहतीमतीवोद्विग्नमानसः ॥२॥

किकरोमिवगच्छामिकथमेदारसंग्रहः ।

क्षिप्रंभवेत्पितृणांयोममभ्युदयकारकः ॥३॥

इति चित्तयत्तम्यमतिर्जानामहात्मन ।
 तपसारायाम्यनग्रह्याणकमलाद्भवम् ॥४॥
 ततावपशतदिव्यतपस्तपेसवयसम् ।
 दिदृक्षु मुचिरवानपरनियममास्थित ॥५॥
 ततस्वदशयामामग्रह्यानाकपितामह ।
 उवाचतप्रवक्षोऽस्मीत्युच्यतामभिवाञ्छितम् ॥६॥
 ततोऽप्योप्रणिपत्याहग्रह्याणजगतामितिम् ।
 पितृणावचनात्तनयत्नतुंमभिवाञ्छितम् ।
 ब्रह्माचाहृर्हविविप्रश्रुत्वात्तम्याभिवाञ्छितम् ॥७॥

मावण्डेय जी न ब्रह्मा—ब्रह्मापि हवि ने पितरों का ऐसा महत्त्व मुन
 को उद्दिष्ट किन्तु स कथा की इच्छा की और इसमें नियम पृथिवी में विचरणा
 करने योग्य ॥१॥ पितरों की वाणी कभी भ्रमिन् में तपन के पश्चात् कथा प्राप्त
 न होने में उन्हें बड़ी चिन्ता हुई ॥२॥ पितरों का अभ्युदय करने वाला मेरा
 विद्वान् बाप किन प्रकार में योग्यता पूर्वक सम्पन्न हो ? इनके नियम मुझ क्या
 करना और कहाँ जाना चाहिये ? ॥३॥ इस प्रकार चिन्ता करते करते उन्होंने
 निश्चय किया कि 'मुझे तपस्या के द्वारा भगवान् ब्रह्माजी को आराधना करनी
 चाहिये ॥४॥ ऐसा निश्चय कर ब्रह्माजी को प्रसन्न करने के लिये विविध
 तप्येगी वप तब तप किया ॥५॥ तब ब्रह्माजी उसकी समस्त साक्षान् रूप में
 प्रकट हुए और हवि ने उद्दिष्ट कहा—मैं प्रसन्न हुआ हूँ तुम अपना इच्छित कर
 माँगा ॥६॥ यह सुनकर हवि ने ब्रह्माजी को प्रणाम किया और पिता के
 आदेशानुसार जा वापस की है वह उस निवर्तन की, तब हवि की इच्छा
 जान कर ब्रह्माजी बात ॥७॥

प्रजापतिस्त्वभवितामृष्यान्वताप्रजा ।
 मृदाप्रजा मुतान्विप्रममुत्पाद्याक्रियास्तथा ॥८॥
 शृतामृताधिरारम्भतनमिदमवाप्स्यमि ।
 स त्वयात्तपितृभिर्गुणदागप्यग्रहम् ॥९॥

कामंचेममभिध्यायक्रियतांपितृपूजनम् ।
 तएवतुष्टाःपितरःप्रदास्यन्तितदेप्सितान् ।
 पत्नीसुतांश्चसन्तुष्टाः किन्दद्युःपितामहाः ॥१०॥
 इत्यृषेर्वचनंश्चूत्वाब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
 नद्याविविक्तेपुलिनेचकारपितृतर्पणम् ॥११॥
 तुष्टावचपितृन्विप्रःस्तर्वरेभिस्तथावृतः ।
 एकाग्रप्रयतोभूत्वाभक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥१२॥
 नमस्येऽहंपितृञ्छ्राद्धेयेवसन्त्यधिदेवताः ।
 देवैरपिहितर्प्यन्तेयेचश्चाद्धेस्वघोत्तरैः ॥१३॥
 नमस्तेऽहंपितृन्स्वर्गेयेतर्प्यन्तेमहर्षिभिः ।
 श्राद्धैर्मनोमयैर्भक्त्याभुक्तिमुक्तिमभीप्सुभिः ॥१४॥

उन्होंने कहा—हे ब्रह्मन् ! तुम प्रजा को उत्पन्न करने वाले प्रजापति जब तुम प्रजा की सृष्टि और सन्तानोत्पत्ति करके समस्त क्रिया ॥८॥ करके अधिकार से च्युत होजाओगे, तब तुम्हें सिद्धि की प्राप्ति होगी इसीलिये पितर गण तुम्हें विवाह करने का आदेश देते हैं ॥९॥ इसे अपना कर्त्तव्य मानकर पितरों का पूजन करो, वह सन्तुष्ट होकर तुम्हें इच्छित पत्नी और पुत्र देने ? सन्तुष्ट हुए पितर गण क्या नहीं दे सकते ? ॥१०॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजी का ऐसा आदेश पाकर रुचि ने नदी के निर्जन तट पर पितरों का तर्पण किया ॥११॥ उन्होंने अत्यन्त आदर पूर्वक, एकाग्रचित्त से, भक्तिभाव के द्वारा मस्तक झुका कर स्तोत्र के द्वारा पितरों को प्रसन्न किया ॥१२॥ रुचि ने कहा—श्राद्ध काल में जो अधिदेवता रूप से निवास करते हैं और श्राद्ध में देवगण भी स्वाहा कह कर जिनका तृप्ति-विधान करते हैं, उन पितरों को मैं नमस्कार करता हूँ, ॥१३॥ जिन्हें महर्षि गण मुक्ति-मुक्ति की कामना युक्त श्राद्ध में तृप्त करते हैं, उन पितरों को नमस्कार है ॥१४॥

नमस्येऽहंपितृन्स्वर्गेसिद्धाःसन्तर्पयन्तियान् ।

श्राद्धेपुदिव्यैःसकलैरुपहारैरनुत्तमैः ॥१५॥

नमस्येऽहपितृन्मत्पर्यन्तेभुवि ये सदा ।

श्राद्धं पुश्रद्धयाभीष्टलोकप्राप्तिप्रदायिनः ॥१७॥

नमस्येऽहपितृन्विप्रैरर्च्यन्तेभुवि ये सदा ।

वाञ्छितनाभीष्टवाभायप्राजापत्यप्रदायिनः ॥१८॥

नमस्येऽहपितृन्येवेतप्यन्तेऽरण्यवासिभिः ।

वन्धं श्राद्धं यन्ताहारेस्तपोनिघ्नं तत्किल्बिषं ॥१९॥

नमस्येऽहपितृन्विप्रेर्नैः ऋषिभिरिति ।

येष्वयत्तात्मभिर्नित्यतप्यन्तेसमाधिभिः ॥२०॥

नमस्येऽहपितृन्श्राद्धं राजन्यास्तपयन्तियान् ।

वाढ्यैरदोर्षाविधिवत्सोऽन्नयफलप्रदान् ॥२१॥

जिन पितरों को मित्र स्वरूप में श्राद्ध के समय सभी दिग्गज उपहासों से मुक्त करते हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१५॥ जिन पितरों का प्रत्युद्दिष्ट शमृद्धि की कामना वाले गुह्यकगण भक्ति में सन्मग्न होकर पूजन करते हैं, उन पितरों को मेरा नमस्कार है ॥१६॥ मर्त्यलोक के निवासी मनुष्यगण इच्छित मोक्षों के दाना जिन पितरों की श्राद्ध में श्रद्धा सहित पूजा करते हैं, उन पितरों को नमस्कार है ॥१७॥ जो पितरगण प्राजापत्य पद प्रदान करने वाले हैं, वे ब्राह्मणों के द्वारा इच्छित विषय की प्राप्ति के निमित्त पूजे जाते हैं, मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ ॥१८॥ जिन वनवासियों के पाप मिनाहार और तपस्या के कारण क्षीण हो गये हैं, वे वन्य श्राद्ध द्वारा जिन पितरों को नृत्त करते हैं, उन्हें मेरा नमस्कार है ॥१९॥ मयनश्रमा नैष्ठिक ब्रह्मचारों विप्र जिन पितरों को शमाधि द्वारा नृत्त करते हैं, उन्हें मेरा नमस्कार है ॥२०॥ तीनों लोकों में पन्न वेदों वाले जिन पितरों को धनियगण श्राद्ध पूर्वक कथ्य देकर नृत्त करते हैं, उन पितरों को नमस्कार है ॥२१॥

नमस्येऽहपितृन्वैश्यैरर्च्यन्तेभुवि ये सदा ।

श्ववर्माभिरर्न नित्यपुष्पघूषाश्रितारिभिः ॥२२॥

नमस्येऽहपितृन्श्राद्धं यैश्चूडैर्वापभक्तितः ।

मन्तप्यन्तेऽगस्त्यप्रनाम्नाम्यानाः सुभ्राजिनः ॥२३॥

नमस्येहंपितृञ्छ्राद्धैः पातालेयेमहासुरैः ।

सन्तप्यन्तेस्वघाहारास्त्यक्तदम्भमदैः सदा ॥२४॥

नमस्येहंपितृञ्छ्राद्धैः रच्यन्तेयेरसातले ॥

भोगैरशेषैर्विधिवन्नासैः कामानभीप्सुभिः ॥२५॥

नमस्येहंपितृञ्छ्राद्धैः सर्पैः सन्तपितान्सदा ।

तत्रैवविधिवन्मन्त्रभोगसम्पत्समन्वितः ॥२६॥

पितृन्नमस्येनिवसन्तिसाक्षाच्च देवलोकेचतयात्तरिक्षे ।

महोत्तलेयेचसुरादिपूज्यास्तेभेप्रतीञ्छन्तुमयोपनीतम् ॥२७॥

पितृन्नमस्येपरमात्मभूतायेवैविमानेनिवसन्तिमूर्त्ताः ।

यजन्तियानस्तमलेर्मनोभिर्यागीश्वराः क्लेशविभुक्तिहेतून् ॥२८॥

अपने कर्म में लगे हुए वैश्य जिन पितरों को पुष्प, धूप, अन्न और जल के द्वारा तृप्त करते हैं, उन पितरों को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२२॥ इस संसार में जिन सुकालीन नामक प्रसिद्ध पितरों को शूद्रगण श्रद्धा भक्ति पूर्वक तृप्त करते हैं, उन पितरों को नमस्कार है ॥२३॥ जिन स्वघाहारी पितरों को पातालवासी महाअसुर दम्भ और मद का त्याग करके श्राद्ध के द्वारा तृप्त करते हैं, उन पितरों को नमस्कार है ॥२४॥ काम की अभिलाषा वाले नागवंशीय रसातल में जिन पितरों को अशेष भोग और श्राद्ध से सदा तृप्त करते हैं, उन पितरों को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२५॥ जिन पितरों को वे सर्पगण मन्त्र, भोग और सम्पत्ति से युक्त होकर श्राद्ध द्वारा तृप्त करते हैं, उन पितरों को नमस्कार करता हूँ ॥२६॥ जो पितरगण देवलोक और अन्तरिक्ष में प्रत्यक्ष रूप से रहते हैं और भूतल में देवताओं द्वारा जिनका अर्चन किया जाता है, उनको नमस्कार है, वह मेरी प्रार्थना स्वीकार करें ॥२७॥ जो परम आत्मभूत पितर विमान में साक्षात् स्थ से निवास करते हैं, तथा जिन पितरों की क्लेश नाशिनी वाणी द्वारा यज्ञ में आराधना करते हैं, उन्हें प्रणाम करता हूँ ॥२८॥

पितृन्नमस्येदिवियेचमूर्त्ताः स्वघाभुजः काम्यफलाभिसन्धो ।

प्रदानशक्ताः सकलेप्सितानां विभुक्तिदायेजमिसंहितेषु ॥२९॥

तृप्यन्तुतेऽस्मिन्पितर समस्ताश्चैवावतायेप्रदिशन्तिकामान् ।
 सुरत्वमिन्द्रत्वमताऽधिकवासुतान्पशून्स्वानिवलगृहाणि ॥३०॥
 सोमस्ययेरश्मिपुयेऽर्कविम्बेशुक्लेविमानेचसदावसन्ति ।
 तृप्यन्तुतेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयं गन्धादिनापुष्टिमितोन्नजन्तु ॥३१॥
 येषाद्रुतेऽग्नीहविपाचनृत्त्रियेभुञ्जतेविप्रशरीरसस्या ।
 येषिण्डदानेनमुदप्रयान्ति तृप्यन्तुतेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयं ॥३२॥
 वय्यान्यशेषाणि चयान्यभोष्टान्यतीवतेषाममराचितानाम् ॥३३॥
 तेषातुमान्निध्यमिहास्तुपुष्पगन्धान्नभोज्येषु मयाकृतेषु ॥३४॥
 दिनेदिनेयेप्रतिगृह्णतेऽर्चामासातपूज्याभुवियेऽष्टकामु ।
 येयत्सरातेऽभ्युदयेचपूज्या प्रयान्तुतेमेपितरोऽन्नतृप्तिम् ॥३५॥

जो स्वर्ग में मूर्तिमान् रहकर काम्यफल के निमित्त स्वर्ग का आहार करते हैं और प्राणियों को इच्छित प्रदान करने में समर्थ हैं तथा निष्काम कर्म में मोक्ष प्रदान करते हैं, उन पितरों को प्रणाम है ॥३२॥ जो प्राणियों को आपित वस्तु प्रदान करते हैं और जो देवत्व, इन्द्रत्व अथवा इससे भी बढ़ कर तथा जो पुत्र, पशु, घन, बल, पर आदि कामना के अनुसार देते हैं, वह पितरगण मेरे इस पूजन से तृप्ति को प्राप्त हो ॥३०॥ जो पितरगण सोम-चरणों, सूर्य-विम्ब और द्येन विमान में निवास करते हैं, वह मेरे द्वारा तृप्त होने हुए अन्न, जल, घासदि से पुष्टि को प्राप्त हो ॥३१॥ जो अग्नि में घृत की आहुति देने से तृप्ति को प्राप्त होते हैं । जो आह्वण के देह में प्रविष्ट होकर मोक्षन-ग्रहण करते हैं तथा जो पिण्डदान से सन्तुष्ट होते हैं, वह पितरगण इस अन्न और जल के द्वारा सन्तुष्ट हों ॥३२-३३॥ देवताओं द्वारा पूजित उन पितरों के लिए जो बल्य अभीष्ट हैं, उन्हीं पुष्प, गन्ध, अघ्रादि पदार्थों का मैंने समग्र किया है, वह इनके निकट आवें ॥३४॥ जो नित्यप्रति पूजा ग्रहण करते और प्रतिमास अष्टका में पूजे जाते हैं, तथा वर्ष के अन्त में जिनका पूजन होता है, वह पितरगण मेरे इस पूजन द्वारा तृप्त हों ॥३५॥

पूज्याद्विजानांकुमुदेन्दुभासोयेक्षत्रियाणांचनवार्कवर्णाः ।
 तथाविशायैकनकावदातानीलीनिभाःशूद्रजनस्ययेच ॥३६॥
 तेऽस्मिन्समस्ताममपुष्पगंधधूपान्ततोयादिनिवेदनेन ।
 तथाग्निहोमेनचयांतुतृप्तिस्तदापितृभ्यःप्रणतोऽस्मितेभ्यः ॥३७॥
 येदेवपूर्वाप्यतितृप्तिहेतोरश्नन्तिकव्यानिशुभाहुतानि ।
 तृप्ताश्चयेभूतिसृजोभवन्तितृप्यन्तुतेऽस्मिन्प्रणतोऽस्मितेभ्यः ॥३८॥
 रक्षांसिभूतान्यसुरांस्तथोग्रान्निर्नाशयन्तस्त्वशिवंप्रजानाम् ।
 आद्याःसुराणाममरेशपूज्यास्तृप्यन्तुतेऽस्मिन्प्रणतोऽस्मितेभ्यः ॥३९॥
 अग्निष्वात्ताबहिषदआज्यपाःसोमपास्तथा ।
 व्रजंतुतृप्तिश्चाद्धेऽस्मिन्पितरस्तपितामया ॥४०॥
 अग्निष्वात्ताःपितृगणाःप्राचीरक्षन्तुमेदिशम् ।
 तथाबहिषदःपान्तुयाम्यपिपितरःस्मृताः ॥४१॥
 प्रतीचीमाज्यपास्तद्वदुदीचीमपिसोमपाः ।
 रक्षोभूतपिशाचेभ्यस्तथैवासुरदोषतः ॥४२॥

जो पितरगण श्वेत वर्ण वाले और प्रभा से सम्पन्न होकर देवताओं के द्वारा पूजनीय होते हैं तथा नवोदित सूर्य के समान रक्त वर्ण वाले होकर क्षत्रियों के द्वारा पूजित होते हैं जो स्वर्ण जैसी कान्ति वाले होकर वैश्यों द्वारा पूजे जाते हैं और नीलिमा रूप होकर शूद्रों द्वारा पूजनीय होते हैं ॥३६॥ वह सभी पितरगण मेरे द्वारा किये गये पुष्प, धूप, अन्न तथा जलादि की भेंट और अग्निहोत्र से तृप्त हों, उन पितरों को मेरा प्रणाम है ॥३७॥ जो अत्यन्त तृप्ति के लिये देवताओं के समक्ष होमे गये सब श्रेष्ठ अन्न रूप कव्य का आहार करके तृप्त होते और अणिमादि आठों सिद्धियां प्रकट करते हैं, वह मेरे द्वारा तृप्ति को प्राप्त हों, मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ ॥३८॥ जो पितरगण राक्षस, भूत और विकराल असुरों को नष्ट करने वाले और अमंगल को मिटाने वाले हैं तथा जो देवताओं के आदि पुरुष और इन्द्र के पूजनीय हैं, वह पितरगण मेरे द्वारा तृप्त हों, मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ ॥३९॥ अग्निष्वात्ता, बहिषद,

आज्यपा और सोमपा पितरगण मेरे द्वारा तपण को प्राप्त होकर इस श्राद्ध में तृप्त हैं ॥४०॥ अग्निष्वात्ता पितर पृथु दिशा में मेरी रक्षा करें और बहिषद पितर दक्षिण दिशा में रक्षा करें ॥४१॥ आज्यपा पितर पश्चिम दिशा में तथा सोमपा पितर उत्तर दिशा में राक्षस, भूत, पिशाच और असुरों द्वारा उत्पन्न किये उपद्रव में रक्षा करें ॥४२॥

मर्वतश्चाधिपस्तपायमोरक्षाकरातुमे ।
 विश्वोविश्वभुगाराध्योघर्मोघन्य शुभानन् ॥४३॥
 भूतिदोभूतिकृद्भूति पितृणायगणानव ।
 कल्याण कल्यताकर्त्ताकल्य कल्यतराश्रय ॥४४॥
 कल्यताहेतुरनघ पंडिमेनेगुणा स्मृता ।
 वरोवरण्योवरद पुष्टिदस्तुष्टिदस्तथा ॥४५॥
 विश्वपातातथाघातासप्तैवेततयागणा ।
 महान्महात्मा महितो महिमावान्महाबल ॥४६॥
 गणा पञ्चतयैवेतेपितृणापापनाशना ।
 सुखदोघनदश्चान्योघर्मदोघ्न्यश्चभूतिद ॥४७॥
 पितृणाकथ्यतेचतुस्तयामणचतुष्टयम् ।
 पुत्रत्रिंशत्पितृगणायैव्याप्तमखिलत्रयम् ।
 तमेजुतृप्तास्तुप्यतुयच्छन्तुचसदाहितम् ॥४८॥

जिन पितरों के विश्व, विश्वभुक्त भाराध्य घम, घन्य, शुभानन् भूतिद, भूतिकृत् और भूति यह नौ सन्ध्यक गण हैं उनके अधिपति घम मेरे सब ओर से रक्षा करें कल्याण कल्यता, कर्त्ता कल्य, कल्यतराश्रय ॥४३-४४॥ कल्यता हेतु और अनघ यह प्रवार के गण जिन पितरों के हैं तथा जि पितरों के वर, वरेण्य, वरद, पुष्टिद, तुष्टिद ॥४५॥ विश्वपाता और घात यह पाँच प्रवार के गण हैं तथा महान्, महात्मा, महित, महिमावान् महाबल ॥४६॥ यह पाँच प्रवार के गण जिन पितरों के हैं एवं सुखद, घनद, घम और भूतिनाशक यह चार प्रकार के पितरों के गण हैं यह सब मिलकर

इकत्तीस पितरगण सम्पूर्ण विद्वत् को व्याप्त किये हुए हैं, वह सभी मेरे द्वारा तुम्हें को प्राप्त होकर मेरी कामना पूर्ण करें और मेरे लिये सदैव हितकारी हों ॥४८॥

८६—रुचि को पितरों का वरदान

एवंतुस्तुवतस्तस्यतेजसोराशिर्ह्युद्धतः ।
 प्रादुर्बभूवसहस्रगुणव्याप्तिकारकः ॥१॥
 तद्दृष्ट्वासुमहत्तेजःसमासाद्यस्थितजगत् ।
 जानुभ्यामवनिगत्वारुचिस्तोत्रमिदंजगौ ॥२॥
 अमूर्तानांचमूर्तानांपितृणादीप्ततेजसाम् ।
 नमस्यामिसदातेषां ध्यानिनां दिव्यचक्षुषाम् ॥३॥
 इन्द्रादीनांचनेतारोदक्षमीरीचयोस्तथा ।
 सप्तर्षीणांतथान्येषांतां नमस्यामिकामदान् ॥४॥
 मन्वादीनामुनीन्द्राणांसूर्याचन्द्रमसोस्तथा ।
 तान्नमस्याम्यहंसर्वान्पितरश्चाणवेषुये ॥५॥
 नक्षत्राणांग्रहाणांचवाय्वग्नीर्नभसस्तथा ।
 द्यावापृथिव्योश्चतथानमस्यामिकृतांजलिः ॥६॥
 देवर्षीणांग्रहाणांचसर्वलोकनमस्कृतान् ।
 अक्षय्यस्यसदादातुन्नमस्येहकृतांजलिः ॥७॥

भार्कण्डेय जी कहा—रुचि के द्वारा इस प्रकार स्तवन किये जाने पर उनके समीप उच्च शिखायुक्त और आकाश व्यापी तेज सहसा प्रकट हुआ ॥१॥ उस तेज को सम्पूर्ण विद्वत् को आच्छादित करके अवस्थित देखा तो रुचि ने जानु से पृथिवी को स्पर्श करके इस स्तोत्र का कीर्तन किया ॥२॥ रुचि बोले—
 उन ध्यात सम्पन्न, दिव्य नेत्र, दीप्त तेज, निराकार एवं पूजितपितरों को मैं

नमस्कार करता है ॥३॥ दक्ष, मरीचि, सप्तर्षि तथा इन्द्रादि के नेता स्वरूप काम के देने वाले पितरो को मैं नमस्कार करता हूँ ॥४॥ मनु इत्यादि मुनीश्वरों तथा सूर्य-चन्द्रमा के नेता और काम के प्रदान करने वाले, समुद्र और जल से अवस्थित उन सभी पितरो को मैं नमस्कार करता हूँ ॥५॥ नक्षत्र, ग्रह वायु, अग्नि, आकाश, स्वर्ग और पृथिवी के नेता तथा काम प्रदायक पितरों को हाथ जोड़ कर प्रणाम करता हूँ ॥६॥ देवपितृ के उत्पत्ति कर्त्ता, अक्षय फल के दाता और सब जोको द्वारा नमस्कार किये जाने वाले पितरों को बरबट्ट प्रणाम करता हूँ ॥७॥

प्रजापते कश्यपायसोमायवरुणाय च ।
 योगेश्वरेभ्यश्च सदानमस्यामि कृताञ्जलि ॥८॥
 नमोग्राम्य सप्तम्यस्तथालोकेषु सप्तसु ।
 स्वयंभुवेनमस्यामि ब्रह्माण्योगचक्षुषे ॥९॥
 सोमाधारान् पितृगणान्योगमूर्तिधरांस्तथा ।
 नमस्यामितथा सोमपितरजगतामहम् ॥१०॥
 अग्निरूपास्तथवान्यान् नमस्यामि पितृनहम् ।
 अग्नीषोममयविश्वयतएदशेषतः ॥११॥
 येतुतेजसि ये च ते सोमसूर्याग्निमूर्त्तयः ।
 जगत्स्वरूपिणश्चैव तन्मात्रास्वरूपिण ॥१२॥
 तेभ्योऽग्निलेभ्यो योगिभ्यः पितृभ्यो यतमानसः ।
 नमोनमोनमस्ते मे प्रसीद तु स्वधाभुजः ॥१३॥

प्रजापतिषो म कश्यप और सोम, वरुण तथा योगेश्वर स्वरूप हैं, उन पितरों को मैं हाथ जोड़ कर प्रणाम करता हूँ ॥८॥ जो सप्त लोकों में सात गणों के मध्य स्थित हैं, उन्हें तथा जो योग-चक्षु स्वयम् ब्रह्मा स्वरूप हैं, उन पितरों को प्रणाम करता हूँ ॥९॥ जो पितर सोम के आध्यक्ष, योगमूर्ति, सोम-रूप एवं अगतिता है, उनको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१०॥ जिन अक्षय पितरों के द्वारा अग्नि सोम और जगत् उत्पन्न हुआ है, उन अभि रूपों अयाग्य

सभी पितरगण को मैं प्रणाम करता हूँ ॥११॥ जो चन्द्र, सूर्य, अग्नि रूपी तेज में स्थित होकर विश्व स्वरूप और ब्रह्मस्वरूप हैं उन समस्त योगी पितरों को मैं अपने संयत मन के द्वारा बारम्बार नमस्कार करता हूँ, वे स्वर्धा का प्रास्वादन करने वाले पितर मुझ पर प्रसन्न हों ॥१२-१३॥

एवंस्तुतास्ततस्तेनतेजसामुनिसत्तम ।
निश्चक्रमुस्तेपितरोभासयन्तोदिशोदश ॥१४॥
निवेदितंश्वयत्तेनपुष्पगंधानुलेपनम् ।
तद्भूषितानथसतान्दृष्टोपुरतःस्थितान् ॥१५॥
प्रणिपत्यपुनर्भवत्थापुनरेवकृतांजलिः ।
नमस्तुभ्यंनमस्तुभ्यमित्याहृथगादृतः ॥१६॥
ततःप्रसन्नाःपितरस्तमूबुर्मुनिसत्तमम् ।
वरंवृणीष्वेतिसत्तानुवाचानतकंधरः ॥१७॥
सम्प्रतसर्गकर्तृत्वमादिष्टं ब्रह्मणामम ।
सोऽहंपुत्रीमभीप्सामिघन्यादिव्यांप्रजावतीम् ॥१८॥
अर्घ्यं वसद्यःपत्नीतेभवत्वतिमनोरमा ।
तस्यांचिपुत्रोभविताभवतोमनुरुत्तमः ॥१९॥
मन्वन्तराधिपोधीमांस्त्वन्मार्त्तवोपलक्षितः ।
रुचेरीच्यइतिख्यातियोयास्यतिजगत्त्रये ॥२०॥
तस्यापिवह्वःपुत्रामहाबलपराक्रमाः ।
भविष्यन्तिमहात्मानःपृथिवीपग्नपालकाः ॥२१॥

मार्कण्डेय जी ने कहा—हे मुनिवर ! रुचि के द्वारा इस प्रकार स्तवन किये जाने पर दशों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए पितरगण प्रकट हुए ॥१४॥ फिर उन्हें जो पुष्प, गंध कव्यादि अर्पण किया गया था, उससे विभूषित हुए पितरों को रुचि ने अपने सामने आते हुए देखा ॥१५॥ तब वह भक्ति संहित हाथ जोड़ कर प्रणाम पूर्वक सब को नमस्कार करने लगे ॥१६॥ फिर पितरों ने प्रसन्न होकर मुनिवर रुचि से कहा—वर मांगो, इस पर रुचि ने श्रीवा नीची

करके उनसे निवेदन किया ॥१७॥ इति बोले—मुझे ब्रह्माजी ने सृष्टि उत्पन्न करने का आदेश दिया है, इसलिए मैं अब सत्त्वानोत्पत्ति के निमित्त भार्या प्राप्त करना चाहता हूँ ॥१८॥ पितरो ने कहा—हे बत्स ! तुम्हें अभी इसी स्थान में मनोहारिणी भार्या की प्राप्ति होगी उसके गर्भ से तुम्हारे श्रेष्ठ मनु पुत्र की उत्पत्ति होगी ॥१९॥ हे रुचे ! तुम्हारा वह पुत्र बुद्धिमान् मन्वन्तराधिपति होगा और तुम्हारे नाम के धनुमार ही उसकी ख्याति होगी मर्यात् वह 'रीष्य' नाम से विश्व में विख्यात होगा ॥२०॥ फिर उस रीष्य के भी महाबली, पराक्रमी, वृषिबी का वाचन करने वाले बहुत से महारथी पुत्र उत्पन्न होंगे ॥२१॥

त्वच्चप्रजापतिभूँस्त्वाप्रजा सृष्ट्वाचतुर्विधा ।
 क्षीणाधिकारोघर्मजतत सिद्धिमवाप्यसि ॥२२॥
 स्तोत्रेणानेनचनरोमाऽस्मांस्तोष्यतिभक्तित ।
 तस्यतुष्टावयभोगानात्मज्ञानतपोत्तमम् ॥२३॥
 शरीरारोग्यमयंचपुत्रपौत्रादिकन्तया ।
 प्रदास्यामोनसदेहोयश्चान्यदभिवांछितम् ॥२४॥
 तस्मात्पुण्यफललोकेवांछिद्भिः सततनरैः ।
 पितृणां चाक्षर्यातृभिस्तव्या स्तोत्रेणमानवैः ॥२५॥
 वांछिद्भिः सततस्तव्या स्तोत्रेणानेनवैयत ।
 आदौ चयद्भमभक्त्याऽस्मत्प्रीतिवरस्तवम् ॥२६॥
 पठिष्यतिद्विजाग्नीषाणां भुजतामपुनरुत स्थित ।
 स्तोत्रश्रवणसंप्रीत्यातग्निधानेनपरेकृते ॥२७॥
 अस्माकमदायथादत्तदभविष्यत्यसशयम् ।
 यद्यप्यत्रोनियथादत्तयद्यप्युपहतभवेत् ॥२८॥

तुम भी प्रजापति होकर चार प्रकार की प्रजा उत्पन्न करोगे और जब मैं शता तथा अधिकार से क्षीण हूँ तब तुम्हें निद्धि की प्राप्ति होगी ॥२२॥
 ॥ मनुष्य इस स्तोत्र के सहित भक्ति भाव पूर्वक हमारा स्तवन करे, हम

उन पर संतुष्ट होने और उन्हें भोग तथा श्रेष्ठ आत्मज्ञान प्रदान करेंगे ॥२३॥
जो शरीर की आरोग्यता, धन, पुत्र-पौत्रादि की कामना अथवा अन्यान्य
अभिलाषा करेंगे वह इस स्तोत्र के द्वारा हमारी स्तुति करने पर, हम से
अभीष्ट पदार्थ प्राप्त करेंगे ॥२४॥ इसलिए संसार में पुण्यफल प्राप्ति की कामना
वाले मनुष्यों को इस स्तोत्र के द्वारा पितरों की अक्षय तृप्ति करनी उचित है
॥२५॥ जो हमें प्रसन्न करना चाहें, वह इस स्तोत्र का निरन्तर पाठ करें,
श्राद्ध के समय भोजन करते हुए ब्राह्मणों के समक्ष स्थित होकर जो मनुष्य
हमारी प्रीति उत्पन्न करने वाले ॥२६॥ इस स्तोत्र की भक्तिपूर्वक पाठ
करेगा और स्तोत्र सुनने से उत्पन्न हुई प्रीति के द्वारा निकट में स्थित को
दृष्टि सानेगा, उसके द्वारा हमारा अक्षय श्राद्ध अवश्य ही सम्पन्न होगा यदि
श्राद्ध श्रोत्रिय रहित अथवा दोष युक्त हो ॥२७॥

अन्यायोपात्तवित्तं नयदिवाकृतमन्यथा ।

अश्राद्धाहं रूपहृत्तर्पहारैस्तथाकृतम् ॥२८॥

अकालैष्यथवाऽदेशे विधिहीनमथापि वा ।

अश्राद्धया वा पुरुषं दम्भमाश्रित्य वाकृतम् ॥२९॥

अस्माकंतृप्तये श्राद्धं तथाप्येतदुदीरणाद् ।

यत्र तत्पथं तैश्चाद्धं स्तोत्रमस्मत्सुखावहम् ॥३०॥

अस्माकं जायते तृप्तिस्तत्र द्वादशवार्षिकी ।

हैमते द्वादशाब्दानि तृप्तिमेतत्प्रयच्छति ॥३१॥

शिविरेद्विगुणाब्दांश्च तृप्तिस्तीव्रमिदं शुभम् ।

वसंते षोडशसमास्तृप्तये श्राद्धकर्मणि ॥३२॥

ग्रीष्मे च षोडशैवैतत्पठितं तृप्तिकारकम् ।

विकलेऽपि कृते श्राद्धे स्तोत्रेणानेन साधिते ॥३३॥

वर्षासु तृप्तिरस्माकमक्षया जायते रुचे ।

शरत्कालेऽपि पठितं श्राद्धकाले प्रयच्छति ॥३४॥

अस्माकमेतत्पुरुषस्तृप्तिपंचदशाब्दिकीम् ।

यस्मिन्गृहेचलिखितमेतत्तिष्ठतिनित्यदा ॥३६॥

मग्निधानकृतेऽथाद्धे तत्रास्माकभविष्यति ।

तस्मादेतत्त्वयाऽथाद्धे विप्राणां भुञ्जतपुरः ॥३७॥

या धन्याय द्वारा उत्पादित धन के द्वारा किया जाय या प्रसन्न हो, विपरीत स्थान में या अविधि से, अथवा पूर्वक भयवा दूषित उपहार से दंभी मनुष्यों के द्वारा सम्पन्न किया जाय ॥२८-२९-३०॥ तो भी इस स्तोत्र का पाठ होने से वह आठ में तृप्ति देने वाला होगा, जिस आठ में हमें सुखी करने वाले इस स्तोत्र का पाठ होता है ॥३१॥ उस आठ से हमें बारह वर्ष तक तृप्ति रहती है, या हमस्त काल में यह स्तोत्र हमें बारह वर्ष तक तृप्ति देने वाला होता है ॥३२॥ शिशिर ऋतु में यह स्तोत्र चौबीस वर्ष तक धीरे धीरे ऋतु में करने पर सोनह वर्ष तक तृप्ति दायक होता है ॥३३॥ ग्रीष्मकाल में इस स्तोत्र के पाठ पूर्वक आठ परन से सोलह वर्ष तक तृप्ति रहती है, किसी कारणवश आठ दूषित हो तो इस स्तोत्र के पाठ से थोड़ा ही जाता है ॥३४॥ हे रुचे ! वर्षाऋतु में आठ के समय इस स्तोत्र के पढ़ने से हमारी अक्षय तृप्ति होती है, यदि शरद ऋतु में इस स्तोत्र के पाठ सहित आठ का द्रव्य धर्मण करे तो पन्द्रह वर्ष तक तृप्ति होती है, जिस घर में यह स्तोत्र लिखा हुआ थोड़ा स्थान पर रखा रहता है, उस घर में आठ करने से हमारी सन्निधि प्राप्त होती है, अर्थात् हम उस घर में उस समय उपस्थित रहते हैं, हमलिये पुन आठ में भोजन करते हुए बाह्याणो के सम्मुख हमारे इस स्तोत्र को पढ़ कर गुणायो । इससे हमारी पुष्टि होगी । इस प्रकार रुचि को समझा कर पितृगण स्वर्ग को चले गये ॥३५-३८॥

६०—रीच्य मनु का जन्म

ततस्तस्मात्प्रदीपध्यात्ममुत्तस्योमनोरमा ।

प्रम्लोचानामतन्वद्भीतत्समीपेवराप्सरा ॥१॥

साचोवाचमहात्मानंरुचिसुमधुराक्षरम् ।

प्रश्रयावनतासुभ्रूःप्रम्लोचावैवराप्सराः ॥२

अतीवरूपिणीकन्यामत्सुतातपतांवर ।

जातावरुणपुत्रेणपुष्करेणमहात्मना ॥३

तांगृहाणमयादत्तांभार्य्यार्थंवरवर्णिनीम् ।

मनुर्महामतिस्तस्यांसमुत्पत्स्यतितेसुतः ॥४

तथेतितेनसाऽप्युक्तातस्मात्तोयाद्वपुष्मतीम् ।

उज्जहारततःकन्यांमालिनींनामनामतः ॥५

नद्याश्रुपुलिनेतस्मिंश्चरुचिर्मुनिसत्तमः ।

जग्राहपार्ष्णिविधिवत्समानाव्यमहामुनः ॥६

तस्यांतस्यसुतोज्जमहावीर्यमहामतिः ।

रौच्योऽभवत्पितुर्नाम्नाख्यातोऽत्रवसुधातले ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—फिर उस नदी में से प्रम्लोचना नाम की एक अप्सरा बाहर आई और उन रुचि नामक मुनि से कहने लगी—हे महात्मन् ! मेरी मालिनी नामक एक कन्या है जो वरुण देव के पुत्र श्रीमान् पुष्कर द्वारा उत्पन्न की गई है । उस अत्यन्त रूपवती सुशील कन्या रत्न को मैं आपको अर्पित करती हूँ । आप उसे भार्या रूप में ग्रहण करके गृहस्थी बनिये (उसके गर्भ से आपका जो पुत्र उत्पन्न होगा वही आगामी मन्वन्तर में मनु बनेगा । (१ से ४) मार्कण्डेयजी कहने लगे कि उस अप्सरा के ऐसे वचन सुनकर रुचि ने उसे स्वीकार कर लिया और उसी नदी के तट पर महामुनियों को एकत्र करके उस मालिनी कन्या से विधिवत् विवाह कर लिया । कुछ काल उससे जो महापराक्रमी और वीर्यवान् पुत्र उत्पन्न हुआ वह अपने पिता के नाम के अनुसार रौच्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥७॥

तस्यमन्वन्तरेदेवास्तथासप्तर्षयश्चये ।

तनयाश्रनृपाश्चैवतेसम्यक्प्रथितास्तव ॥८

धर्मवृद्धिस्तथारोग्यघनघान्यसुतोद्भवः ।

नृणांभवत्यसन्दिग्धमस्मिन्मन्वन्तरेऽश्रुते ॥९

पितृस्तवंतयाथ त्वापितृणांचतथागणान् ।

सर्वा-कायानवाप्नोतितत्प्रसादान्महामुने ॥१४॥

इमं रोष्य नामक मन्वन्तर के देवता, सप्तविंश और सप्तसत् राजाओं तथा उनके पुत्रों के विषय में पहले बतसाया जा चुका है ॥६॥ इस मन्वन्तर की कथा सुनने से धर्म की वृद्धि होती है, आरोग्य, धन, धान्य और पुत्र की प्राप्ति होती है । जो पितरों की स्तुति और उनके गुणों की श्रद्धा पूर्वक ध्यावण करता है उसकी सभी अभिलाषाएँ पूरी होती हैं ॥६-१०॥

६१—भीत्य मन्वन्तर आरम्भ

तत परंतुभीत्यस्यसमुत्पत्तिर्निगमय ।

देवानृपोस्तथापुत्रास्तथैववेसुधाधिपान् ॥१॥

बभूवाङ्गिरस शिष्योभूतिर्नाम्नातिकोपनः ।

षण्डरापप्रदोऽप्येऽर्जुनिरागस्यसौम्यवाक् ॥२॥

तस्याथमेमातरिभानववावर्तिनिष्ठुरम् ।

नातितापरविभ्रक्पेज्जंन्योनातिकदंभम् ॥३॥

नातिशीतबशीतानुःपरिपूर्णोऽपिरदिमग्निः ।

षकारभीत्याद्यैतस्यकोपनस्यातितेजसः ॥४॥

श्रुतवभ्रक्मंत्यवत्वावृक्षेन्द्राश्रमजन्मसु ।

तस्यपुष्पकनचक्रुराज्ञयामार्वकानिकम् ॥५॥

ऊढुरापश्चछन्देनतम्याश्रमसमीपगाः ।

षमण्डलुगताश्चैवतस्यभीतामहात्मनः ॥६॥

नातिकनेरासहोविप्रसोऽभवत्कोपनीभृशम् ।

अपुत्रश्चमहाभागसतपस्यकरोन्मनः ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—“तत्प्रसाद” भीत्य नामक मनु के उल्लेख होने और उनसे मन्वन्तर के गुरुगण, ऋषि और उनके गुण-पुत्रों की वृद्धि होने ॥१॥

महर्षि अङ्गिरा के भूति मुनि शिष्य थे, जो कि क्रोधी और क्षणिक अपराध पर ही घोर शाप देते थे एवं अनजाने ही निरपराधी को उनके कटु वचनों का सामना करना पड़ता था ॥२॥ उन क्रोधी और तेजस्वी का ऐसा भय छाया हुआ था कि उनके आश्रम में वायु सरल स्वभाव बहती थी, सूर्य असहनीय ऊष्णता नहीं देते थे, इन्द्र अनपेक्षित वर्षा नहीं करते थे ॥३॥ पूर्ण चन्द्रमा अपनी चाँदनी से शीत प्रदान नहीं करता था एवं उनके भग्न से असहनीय शीत नहीं होता था ॥४॥ ऋतुएँ भी उनकी आज्ञा का पालन करते हुए सभी ऋतुओं में सभी प्रकार के फल पुष्प उनके आश्रम की वृक्षावलियों में उत्पन्न करती थीं ॥५॥ ऋषि भूति के भय से आश्रम के समीप बहता हुआ जल भी उनकी इच्छानुसार क्षणमात्र में उनके कमण्डलु में आ जाता था ॥६॥ हे ब्राह्मण ! वह महा क्रोधी ऋषि किसी बाधा को सहन नहीं करते थे, चूंकि उनके पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ इस कारण वह तपस्या में लीन हुए ॥७॥

पुत्रकामोयताहारः शीतवातानलाहतः ।

तपस्यामिविचिन्त्येतितपस्येवमनोदधे ॥८॥

तस्येन्दुर्नातिशीताग्रजातितापायभास्करः ।

अभवन्मातरिश्वाचववौनातिमहामुने ॥९॥

आपीड्यमानोदृष्ट्वैश्वसभूतिमुनिसत्तमः ।

अनवाप्याभिलाषंततपसःसन्वर्त्तत ॥१०॥

तस्यभ्रातासुवर्चाऽभूद्यज्ञेतेनाभिमन्त्रितः ।

यियासुःशान्तिनामानशिष्यमाहमहामतिम् ॥११॥

प्रशान्तमक्षप्रतिमंविनीतंगुह्मकर्मणि ।

सदोद्युक्तं शुभाचारमुदारं मुनिसत्तमम् ॥१२॥

ग्रह्यज्ञं गमिष्यामिभ्रातुःशान्तेसुवर्चसः ।

तेनाहूतस्त्वयाचेहयत्कर्त्तव्यंशृणुष्वतत् ॥१३॥

अतिजागरणं वृद्धे स्त्वयाकार्यं ममाश्रमे ।

तथातथाप्रयत्नेन यथाग्निर्नशमं ब्रजेत् ॥१४॥

पुत्र की इच्छा से तपस्या करने वाले उन महात्मा ने सयत्त प्राहार एवं घीत, वायु व अग्नि की वेदना महकर भी तपस्या करने का व्रत लिया और अन्ततः तपस्या में ही चित्त लगाया ॥८॥ हे महर्षि ! उनके तपस्या-काल में भी भयभीत चन्द्रमा शीत एवं सूर्य असहनीय ऊष्णता नहीं देते थे तथा वायु भी समक्ष में मन्द-मन्द से स्वाभाविक बढ़ती थी ॥९॥ वह ऋषि श्रेष्ठ भूति शीत एवं ताप दोनों ही से पीड़ित रहकर अपनी मनोकामना प्राप्त न कर सके, तो उन्होंने तपस्या त्याग दी ॥१०॥ उनके एक भाई सुवर्चा ने उनको यज्ञ में आमन्त्रित किया उस समय भाई के यहाँ जाने की इच्छा कर उन्होंने अपने शिष्य शातिनाम को बुलाया अपने नाम के अनुकूल वह गुरु के कार्य में सदैव उत्तर और उदार-चित्त एवं सदाचारी थे ॥१२॥ भूति बोले—हे भान्ते ! अपने भाई सुवर्चा के आमन्त्रण पर मैं यज्ञ में जाता हूँ, अब तुम्हें आश्रम में रहकर जो कार्य करने हैं, वह ध्यान से सुनो ॥१३॥ मेरे आश्रम में प्रतिदिन अग्नि प्रज्वलित रहता, वह बुझे नहीं ऐसे यत्नशील रहना ॥१४॥

इत्याजाप्यतमेत्युक्तोगुरुः शिष्येण शान्तिना ।

जगाम यज्ञं तन्नातुराहूतः सयवीर्यम् ॥१५॥

सर्वशान्तिर्गताद्यावत्समित्पुष्पफलादिकम् ।

उपानयतिभूत्यर्धगुरोस्तस्य महात्मन ॥१६॥

अग्न्यञ्चकुरुते कर्मगुरुभक्तिवशानुग ।

प्रशान्तिस्तावदनलो योऽग्नीभूतिपरिग्रहः ॥१७॥

तद्दृष्ट्वा मोक्षलशान्तशान्तिरत्यन्तदुक्वित ।

भीतश्चभूतेर्वहुधाचिन्तामापमहामति ॥१८॥

किं करोमि कथं वात्र भवितामनगुरो ।

मयाद्यप्रतिपत्तव्यं किं कृतं मुकृतं भवेत् ॥१९॥

प्रशान्ताग्निमिमघिष्प्ययदि पश्यति मे गुरुः ।

ततो माविपमेह्यद्यव्यसने त्रियोदयति ॥२०॥

यद्यन्यदग्निमत्राहमग्निस्थाने करोमि तत् ।

सर्वाप्रत्यक्षदृग्भस्मभोऽवश्यमाकरिष्यति ॥२१॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—शिष्य शान्ति ने गुरु की आज्ञा को 'इसी प्रकार होगा' कहकर शिरोधार्य किया। तब भूति अपने भाई के यहाँ घन में गये ॥१५॥ तदनन्तर अपने गुरु की अग्नि प्रज्वलित रखने के लिए जंगल से समिधा, पुष्प, फल आदि एकत्रित कर लाते ॥१६॥ साथ ही गुरु-भक्ति में वशीभूत शान्ति अन्य दूसरे कार्य भी करने लगे, उसी समय भूति द्वारा प्रज्वलित रखी गई, अग्नि किसी प्रकार बुझ गई ॥१७॥ बुद्धिमान् मुनि शान्ति उस अग्नि को बुझी हुई देखकर दुखी हुए और अपने गुरु भूति के भय से चिन्ता-ग्रस्त होगये ॥१८॥ वह विचारने लगे कि क्या किया जाय ? इस समय क्या उचित कर्म हो, जिससे भला हो सके, अब गुरु किस प्रकार आयेगे ? ॥१९॥ मेरे गुरु यदि आश्रम में अग्नि को बुझी हुई देखेंगे तो तत्काल मुझे दण्ड देकर दुःख देंगे ॥२०॥ और यदि मैं पुनः अग्नि प्रज्वलित करता हूँ, तो वह सर्वज्ञानी गुरु मुझे निश्चय ही मरम कर देंगे ॥२१॥

सोऽहंपापोगुरोस्तस्यनिमित्तंकोपशापयोः ।

तथास्मान्नशोचामियथापापंकृतंगुरोः ॥२२॥

दृष्ट्वाप्रशान्तमनलनूनशप्स्यतिमांगुरः ।

यथावापावकःक्रुद्धस्तथावीर्योहिसद्विजः ॥२३॥

यस्यप्रभावाद्बिभ्यन्तोदेवास्तिष्ठन्तिशासने ।

कृतागसंसमायुक्त्याकयानोधर्षयिष्यति ॥२४॥

बहुधैर्वाविचिन्त्यासौभीतस्तस्यसदागुरोः ।

ययौमतिमतांश्रेष्ठःशरणंजातवेदसम् ॥२५॥

सचकारतदास्तोत्रं सप्तर्च्यैतमानसः ।

सचैकचित्तोमेदिन्यान्वस्तजानुःकृताञ्जलिः ॥२६॥

मैं पापात्मा उन गुरु के क्रोध और शाप का वैसा शोक नहीं कर सकता जिस तरह गुरु के समीप हुए पाप का शोक होता है ॥२२॥ गुरु जब आयेंगे तो अग्नि को बुझी देखकर अवश्य घोर रूप में क्रोधित होकर मुझे शाप देंगे अथवा उनसे भयभीत अग्नि भी मुझे शाप दे सकती है, क्योंकि मेरे गुरु का

कीयें ही ऐसा है ॥२३॥ जितसे भयभीत होकर सुरमण भी उनके पराधीन हो गये हैं, वह मुझ अपराधी की देखकर किस प्रकार दण्डित करेंगे ? ॥२४॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—अपने गुरु से भयभीत विवेकी विष्णु शान्ति इस प्रकार चिन्तित हुए जातवेशः अग्नि की धारण में पहुँचे ॥२५॥ इसके पश्चात् वह शान्त संयत चित्त होकर धरती में धुटने नवा एक हाथ जोड़ सप्तधिया युक्त अग्नि-स्तोत्र का पाठ करने लगे ॥२६॥

मोनम सर्वभूतानासाधनायमहात्मने ।

एकद्विपञ्चधिप्यायराजसूयेपडात्मने ॥२७॥

नम समस्तदेवानावृत्तिदायसुवचंसे ।

धुक्कृपायजगतामशेषाणास्थितिप्रदः ॥२८॥

त्व मुत्सर्गदेवानात्वयात्त भगवन्हवि ।

प्रीणयस्यखिलान्देवास्त्वत्प्राणासर्गदेवताः ॥२९॥

हुतहविस्त्वभ्यनलमेघत्वमुपगच्छति ।

ततश्चजनहृषेणपरिणाममुपतियत् ॥३०॥

तेनाखिलीपधीजन्मभवत्यनिलसारथे ।

भौपधीभिरशेषाभि मुखजीवन्तिजन्तवः ॥३१॥

वितन्वतेनरायज्ञास्त्वत्सृष्टास्वोपधीपुत्र ।

यज्ञ देवास्तथादैत्यास्तद्वद्रक्षासिपावकः ॥३२॥

आप्याम्यन्तेचतेमज्ञास्त्वदाधाराहुताशनः ।

भूत सर्गस्यस्यमोनिस्त्व बह्वैर्सेव्यमयस्तथा ॥३३॥

देवतादानवाप्रक्षादेत्यागन्धर्वराक्षसाः ।

मानुषा पशवोवृक्षामृगपक्षिसरीसृपाः ॥३४॥

आप्याम्यन्तेत्वयासर्वेसवर्धयन्तेचपावकः ।

स्वत्तएवोद्भवयान्तित्वम्यन्तेचतयानयम् ॥३५॥

शान्ति बोले—समस्त प्राणियों के माधन, महात्मा, दो पक्ष रूप एक राजमूय यज्ञ में एणमूर्ति धारण करने वाले, उनकी ममस्वार ॥२७॥ सम्पूर्ण सुरमण की कृति प्रदान-कर्ता सुवर्चा और सम्पूर्ण विश्व को स्थिति प्रदान करने

वाले शुक्र रूप, तुमको नमस्कार ॥२८॥ हे सम्पूर्ण देवगण के मुख-स्वरूप ! ईश्वर तुम्हारे द्वारा ही घृत, पान कर देवगण को सन्तुष्ट करते हैं एवं तुम ही समस्त देव गण के प्राण रूप हो ॥२९॥ तुम ही में हविः हुत होकर अमल मेघस्व प्राप्त करती है और फिर उसका जल स्वरूप हो जाता है ॥३०॥ हे अनिलसार ! तुम से ही सभी औषधियों की उत्पत्ति होती है और उन औषधियों से ही प्राणिगण सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं ॥३१॥ हे पावक ! तुम्हारे द्वारा उत्पन्न औषधियों से प्राणी जो यज्ञ करते हैं, ऐसे यज्ञों से ही सुर, दैत्य और असुर ॥३२॥ तृप्त होते हैं । हे हुताशन ! उन सभी यज्ञों के तुम आधार रूप हो । इसलिए हे बह्म ! तुम सभी के उत्पन्न करने वाले और सर्वा व्यापी हो ॥३३॥ हे पावक ! सुर, असुर, यक्ष, दैत्य, गन्धर्व, राक्षस, मानव, पशु, वृक्ष, मृग, प्राणही से तृप्त व पोषित होते हैं एवं तुम से ही उत्पन्न अन्त में तुम ही में मिल जाते हैं ॥३४॥

अपःसृजसिदेवत्वंत्वमृत्सिपुनरेवतः ।

पच्यमानास्त्वयाताश्चप्राणिनां पुष्टिकारणम् ॥३६॥

देवेषु तेजोरूपेण कान्त्या सिद्धेष्ववस्थितः ।

विषरूपेण नागेषु वायुरूपः पतत्रिषु ॥३७॥

मनुजेषु भवान्क्रोधो मोहः पक्षिमृगादिषु ।

अवष्टम्भोऽसितरुषु काठिन्यं त्वमही प्रति ॥३८॥

जले द्रवस्त्वभगवाञ्छवरूपी तथाऽनिले ।

व्यापित्वेन तथैवाग्नेर्भसित्वं व्यवस्थितः ॥३९॥

त्वमग्नेः सर्गभूतानामन्तश्चरसि पालयन् ।

त्वामेकमाहुः कवयस्त्वामाहुः स्त्रिविधं पुनः ॥४०॥

त्वया सृष्टमिदं विश्वं वदन्ति परमर्षयः ॥४१॥

त्वामृते हि जगत्सर्वं सद्यो नश्येद्धुताशन ।

तुम्यं कृत्वा द्विजः पूजां स्वकर्मविहितां गतिम् ॥४२॥

हे देव ! तुम ही जल के उत्पादक हो और फिर उसको पान करते हो, तथा तुम्हारे द्वारा ही उसका पाचन होता है, जो प्राणिमणियों को पुष्टिकारक

बनाता है ॥३६॥ देवगण मे तुम्ही तेज स्वरूप' सिद्धो मे क्रान्ति स्वरूप, नागो मे विष स्वरूप एवम् पक्षियो मे वायु स्वरूप हो ॥३७॥ मनुष्यो मे कोप रूप मे पक्षी व मृगादि मे मोह रूप मे, वृक्षो मे अड रूप मे, पृथिवी में कठोर रूप मे ॥३८॥ जल मे द्रव्य रूप मे तुम ही स्थित हो और वायु की गति रूप मे और आकाश को व्याप्त रूप मे आत्मा द्वारा अवस्थित किया है ॥३९॥ हे अग्ने ! पापण करते हुए तुम ही उन प्राणियो के अन्तर मे विचरते हो । यद्यपि कवि तुम्हारा निर्देश एक से ही करते हैं, फिर भी तुम त्रिविध कहलाती हो ॥४०॥ कविगण तुम्हारी अष्टधा के रूप मे कल्पना करके आप यज्ञ की कल्पना करते हैं, तुम से ही विश्व की उत्पत्ति हुई है, ऐसा महान् ऋषियो ने कहा है ॥४१॥ हे इताशन ! समस्त विश्व तुम्हारे नष्ट होने पर विनाश होता है ॥४२॥

प्रयातिहव्यकव्याद्यं स्वधास्वाहाम्युदीरणात् ।

परिणामात्मवीर्याणिप्राणिनाममराचित ॥४३॥

दहन्तिसर्वं भूतानिततोनिष्क्रम्यहेतयः ।

जातवेदस्त्वयैवेदविश्वं सृष्टमहाद्युते ॥४४॥

तवैवैवैदिककर्ममर्षभूतात्मकजगत् ।

नमस्तेऽनलपिगाक्षनमस्तेऽस्तुहुताशन ॥४५॥

पावकाद्यनमस्तेऽस्तुनमस्तेहव्यवाहन ।

त्वमेवमर्षभूतानापाचनाद्विश्वपावन ।

त्वमेवभुक्तपीतानापाचनाद्विश्वपाचकः ॥४६॥

सस्यानापावकस्तत्त्वपोष्ठात्वजगतस्तथा ।

त्वमेवमेघस्त्ववायुस्त्वबीजसस्यहेतुवम् ॥४७॥

दोषाय सर्वभूतानाभूतमव्ययमवोत्सि ।

त्वज्योतिः सर्वभूतेषुत्वमादित्योविभावसुः ॥४८॥

त्वमहस्त्वंतथारात्रिरभेसन्ध्येतथाभवान् ।

हिरण्येतास्त्वंवह्नेहिरण्योद्भवकारणम् ॥४९॥

विप्रगण हव्य कव्यादि द्वारा तुम्हारी आराधना करके 'स्वाहा' शब्द का उच्चारण करके स्वकर्म विहित गति प्राप्त करते हैं । हे अमराचित अर्थात् सुरगण द्वारा पूजित ! प्राणियों के परिणामात्मा वीर्य स्वरूप ॥४३॥ तुम से उत्पन्न सम्पूर्ण अग्निशिखाएँ भूतगणों को भस्म करती हैं, हे महाद्युते जातवेदः ! सम्पूर्ण विश्व के तुम सृष्टि-कर्त्ता हो ॥४४॥ हे अनल ! सर्वभूतात्मक यह विश्व एवम् वैदिक कर्म तुम्हारे अधीन हैं । हे पिङ्गाक्ष अनल ! तुमको नमस्कार, हे हुताशन ! तुमको प्रणाम ! ॥४५॥ हे आद्य ! हे पावक तुमको प्रणाम, तुम ही भोज्य एवम् पेय को पचाने वाले विश्व-पावन हो, हे विश्व पावन ! तुम सर्व भूत पवित्रकर्त्ता हो ॥४६॥ अन्न को पकाने वाले तुम विश्व को पुष्टिकरण एवं तुम ही मेघ, वायु व सस्य उत्पादन के लिए बीज रूप भी हो ॥४७॥ सभी का पोषण करने वाले तुम ही भूत, भविष्य और वर्तमान रूप हो । तुम ही सम्पूर्ण प्राणियों में ज्योति का स्वरूप और आविर्भूत सूर्य हो ॥४८॥ विन, रात्रि और सन्ध्या तुम ही हो । हे बह्ने ! रेता एवम् हिरण्य की उत्पत्ति कारक तुम ही हो ॥४९॥

हिरण्यगर्भश्चभवान्हिरण्य सदृशप्रभः ।

त्वंमुहूर्त्तक्षराश्चत्वंत्वंत्रुटिस्त्वंतथालवः ॥५०॥

कलाकाष्ठानिमेवादिरूपेणासिजगत्प्रभो ।

त्वमेतदखिलकालःपरिणामात्मकोभवान् ॥५१॥

याजिह्वाभवतःकालीकालनिष्ठाकरीप्रभो ।

तयानःपाहिपापेभ्यऐहिकाञ्चमहाभयात् ॥५२॥

करालीनामयाजिह्वामहाप्रलयकारणम् ।

तयानःपापिपापेभ्यऐहिकाञ्चमहाभयात् ॥५३॥

मनोजवाचयाजिह्वालघिमागुणलक्षणा ।

तयानःपाहिपापेभ्यऐहिकाञ्चमहाभयात् ॥५४॥

करोतिकामंभूतेभ्योयातेजिह्वासुलोहिता ।

तयानःपाहिपापेभ्यऐहिकाञ्चमहाभयात् ॥५५॥

सधून्नवर्णयाजिह्वाप्राणिनारोगदायिका ।

तयान पाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥५६॥

तुम ही हिरण्य गर्भ एवं हिरण्य के समकक्ष कातिमान् हो । मुहुर्त्तं क्षण, गुटि एव त्वं तुम ही हो ॥५०॥ हे जगत्प्रभो ! बलाकाष्ठा घोर निमेषादि के रूप में तुम ही परिणामात्मक अन्तकाल हो ॥५१॥ हे प्रभो ! अपनी कालनिष्ठा पूर्ण कानो जीभ द्वारा पाप, भय एवं ऐहिक भय से हमारी रक्षा करो ॥५२॥ करानो नामक जो जीभ तुम्हारी महाप्रलय के समय में है, उसके द्वारा हमारी ऐहिक भय और पापों से रक्षा करो ॥५३॥ अपनी सविभागुण युक्त मनोऽर्वा जीभ से हमारी ऐहिक भय और पापों से रक्षा करो ॥५४॥ प्राणियों की कामना पूर्ति करने वाली अपनी सुलोहिता नाभक जीभ से हमारी ऐहिक भय और पापों से रक्षा करो ॥५५॥ प्राणियों के रोगों का शमन करने वाली, सधून्नवर्ण जीभ से ऐहिक भय और पापों से हमारी रक्षा करो ॥५६॥

स्फुलिगिनीचयाजिह्वायत संवत्सपुद्गला ।

तयान पाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥५७॥

यातेविश्वमृजाजिह्वाप्राणिनाशमंदायिनी ।

तयान पाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥५८॥

पिङ्गाक्षलोहितग्रीवकृष्णवर्त्महृताशन ।

प्राहिमामवंदोपेभ्य ससागदुद्धरेहमाप् ॥५९॥

प्रमीदवह्ने सप्ताचि कृशानोहव्यवाहन ।

अग्निपावकशुक्रादिनामाष्टमिरदीरित ॥६०॥

अग्नेऽग्रे सर्गभूतानासमुत्पत्तिविभावसो ।

प्रमीदहव्यवाहारयग्रभिष्टुतमयाव्यय ॥६१॥

त्वमक्षयोवह्निरचिन्त्यरूप समृद्धिमन्दुप्रसहोऽतितीव्रः ।

तवाव्ययभीममरोपलोक सर्वघकहन्त्ययवातिवीर्यम् ॥६२॥

मृगशर्पकृष्णवर्णः ।

आत्मा एवं देह को उत्पन्न करने वाले स्फुल्लिङ्गिनी भीम से ऐहिक महाभय और पापों से हमारी रक्षा करो ॥५७॥ प्राणियों को मङ्गल दाता विश्वा नामक अपनी जीम से ऐहिक भय और पापों से हमारी रक्षा करो ॥५८॥ हे हुताशन ! तुम्हारे नेत्र पिगल बर्या, ग्रीवा लोहित बर्या और तुम्हारी देह कृष्ण बर्या है । तुम मर्ष प्रकार के दोषों से मेरी रक्षा करो और इस विश्व से उद्धार कीजिये ॥५९॥ हे ब्रह्मे ! आठ नामों वाले हो सप्ताचि, हव्यवाहन, कुशानु, अग्नि, पावक, धुक नाम से विख्यात तुम प्रसन्न होओ ॥६०॥ हे अग्ने ! समस्त भूतों से तुम उत्पन्न हो । हे विभावसो ! हे अक्षय हव्यवाह ! मैं तुम्हारी आराधना करता हूँ उससे तुम मुझ पर प्रसन्न होओ ॥६१॥ हे ब्रह्मे ! तुम प्रलय हो, तुम्हारा अजित्य रूप है, तुम समृद्धिमान्, आश्रयदाता एवं अत्यन्त तीव्रतापूर्ण हो और अक्षय्य व भीम तुम्हारे प्रतिमान् रूप अत्यन्त बलशाली एवं समस्त विश्व का भी विनाश करने वाले हैं ॥६२॥ हे हुताशन ! तुम श्रेष्ठ सत्त्व और समस्त जीवों के हृदय-कमल सबूत हो और तुम उन सबके पूज्य अनन्त ब्रह्म रूप हो । उस ब्रह्म स्वरूप से तुमने इस प्राणी जगत् को परिपूर्ण कर रखा है । इसलिए तुम एक होकर भी अनेक रूप में इस विश्व में स्थिति करते हो ॥६३॥

त्वमक्षयःसगिरिवन्नावसुन्धरानभःससोमार्कमर्हदिवाखिलम् ।
महोदधेर्जठरगतश्चन्द्रोभवान्निभुःपिबतिपयोसिपावक ॥६४॥
हुताशनस्त्वमितिसदाभिपूज्यसेमहाक्रतोनियमपरैर्मर्हषिभिः ।
अभिष्टुतःपिबसिचसोममध्वरेषषट्त्तान्यपिचहवीषिभूतये ॥६५॥
त्वंविप्रैःसततमिहेक्ष्यसेफलार्थवेदाङ्गेष्वथसकलेषुगीयसेत्वम् ।
त्वद्धेतोर्गजनपरायणाद्विजेन्द्रावेदाङ्गान्प्रधिगमयन्तिसर्गकाले ६६
त्वंब्रह्मायजतपरस्तथैवनिष्णुभूतेशःसुरपतिरग्रंमाजलेशः ।
सूर्येन्दूसकलसुरासुराश्चहव्यैःसन्तोष्याभिमतफलान्यथाप्नुवन्ति ६७
अर्चिर्भिःपरममहोपघातदुष्टस्पष्टत्वशुचिजायतेसमस्तम् ।
स्नानानांपरममतीवभस्मनासत्सन्ध्यायामुनिभिरतीवसेवप्रसेतत् ६८

तत्कृत्वा त्रिदिवमवाप्नुवन्ति लोकाः ।

मद्भक्त्या सुसुनियता समूहगीतम् ॥६६॥

प्रसीद वल्ले शुचिनामधेय प्रसीद वायो विमलातिदीप्ते ।

प्रसीद मे पावकनेद्युता भ प्रसीद हव्याशनपाहिमात्मम् ॥७०॥

यत्तं वल्ले शिवरूपये चरो सप्तहेतयः ।

तै पाहिनः स्तुतो देवा पिता पुत्र मिवात्मजम् ॥७१॥

हे भक्त ! तुम मक्षय हो, एक सूर्य सहित पृथ्वी तुम्हारे ही स्वरूप और चन्द्रमा एक सूर्य सहित आकाश स्वरूप तुम ही हो, दिन और रात । रूप में निखिल कामस्वरूप हो, तुम ही महा समुद्र के अन्तर्गत बहवाग्नि भी परम विभूति से समस्त किरणों में विद्यमान हो ॥६४॥ हे हुताशन ! तुम्हारा भोजन हुतहवि है इसीलिए नियम परायण परम मुनियण यज्ञों में तुम्हारा सदैव पूजा करते हैं और उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर विश्व के बरपाणाय सोमरस और वषटकारसहित हवि, सेवन करते हो ॥६५॥ सम्पूर्ण वेदांग । तुम्हारा गायन है और यज्ञ परायण हेतु श्रेष्ठ ब्राह्मण सदैव वेदांग अभ्यस्य करते हैं ॥६६॥ यजन परायण मह्या, विष्णु, भूतनाथ महादेव तुम ही हो देवराज इन्द्र, भयंमा, जलेन्दर वरुण, सूर्य एवं चन्द्रमा तुम ही हो, सुर एवं अमुर द्रव्य द्वारा तुम्हें सन्तुष्ट कर इच्छित फल प्राप्त करते हैं ॥६७॥ नर उपपात से दूषित समस्त वस्तुएँ तुम्हारी ली के स्वयं भाव में पवित्र होती हैं अनेक स्नानों में भस्म द्वारा ही स्नान उत्तम माना जाता है, अतएव श्रद्धावश्या समय यही स्नान करते हैं ॥६८॥ इस प्रकार करने वाले यन्मुख्य स्वयं प्राप्त करते हैं और सच्ची भक्ति से सर्व सुख प्राप्त करते हैं ॥६९॥ हे बल्ले ! इसीलिए ही तुम्हारा नाम शुचि है, आप उसी रूप में मुझ पर प्रसन्न होयें तुम स्वच्छ एवं प्रबल वायु स्वरूप, उसी रूप में मुझ पर प्रसन्न होयें । पावक ! तुम वैद्युताग्नि आदि नामों से कीर्तिमान् हो, उसी रूप में मुझ प्रसन्न होयों । हे हव्याशन ! तुम प्रसन्न होकर मेरी रक्षा करो ॥७०॥ यज्ञे ! तुम मङ्गलमय रूप हो । जो सप्तहेति जानाएँ हैं, उनसे हे देव

स्तुति से प्रसन्न होकर जिस प्रकार एक पिता अपने पुत्र की रक्षा करता है, उसी प्रकार मेरी रक्षा करो ॥७१॥

६२-सर्व मन्वन्तर श्रवण फल कथन.

एवंस्तुतस्तत्स्तेनभगवान्हव्यवाहनः ।
ज्वालामालावृततनुस्तस्यासीदप्रतोमुने ॥१॥
देवोविभावसुःप्रीतस्तोत्रेणानेनवं द्विज ।
तंवांन्तिमाहप्रणतंमेघगम्भीरवागय ॥२॥
परितुष्टोऽस्मितेविप्रभवत्याभातेस्तुतिःकृत्वः ।
वरददामिभवतेप्रार्थ्यतांयत्तवेप्सितम् ॥३॥
भगवन्कृतकृत्योऽस्मियत्त्वांपश्यामिरूपिणम् ।
तथापिभक्तिर्न अस्यभवताश्रयतामम ॥४॥
भ्रातृयज्ञगतोदेवममावाध्योनिजाश्रमात् ।
आगतश्चाश्रमंधिष्यंस्त्वत्सनाथंसपश्यतु ॥५॥
भमापराधात्सन्त्यक्तंधिष्यंयतोविभावसो ।
तत्त्वयाधिष्ठितं सोऽद्यपूर्ववत्पश्यतुद्विजः ॥६॥
तथान्यदपिमेदेवप्रसादं कुरुष्वेयदि ।
पुत्रोविशिष्टोभवतुतदपुत्रस्यमेगुरोः ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे ऋषि ! शांति की ऐसी स्तुति पर भगवान् हव्यवाहन ज्वालामाला सहित उनके समक्ष प्रकट हुए ॥१॥ हे ब्राह्मण ! विभावसु देव ने स्तोत्रों से सन्तुष्ट होकर उन प्रणत तपस्वी शांति से मेघ सम गम्भीर शब्दों में कहा ॥२॥ अग्नि ने कहा—‘हे ब्राह्मण मैं तुम्हारी भक्तिपूर्ण स्तुति से प्रसन्न हुआ हूँ । तुम अपने इच्छित वर की प्रार्थना करो, मैं वर देता हूँ ॥३॥ शांति बोले—हे भगवन् ! आपके स्वरूप को देख कर मैं

वृत्तकृत्य हुआ हूँ । फिर भी नम्रता एव भक्तिपूर्वक मेरा वचन 'सुनिधे ॥४॥
हे देव ! मेरे गुरु अपने इस आश्रम से भाई के यहाँ 'यज्ञ' में गये हैं । आश्रम
में भावर वह अग्निकुण्ड में अग्नि प्रज्वलित देखें ॥५॥ हे विभावसो जिन
अग्निकुण्ड को तुमने मेरे अपराध के कारण वंचित किया है वह द्विज श्रेष्ठ
गुरु आने पर पहिले की भाँति ही प्रज्वलित देखें ॥६॥ हे देव ! यदि तुम
मुझमें प्रसन्न हो, तो दूसरा निवेदन है कि मेरे पुत्रहीन गुरु के गुणवान् पुत्र
उत्पन्न हो ॥७॥

तथाचमैत्रीतनयेसकरिप्यतिमेगुरुः ।

तथासमस्तसत्त्वेपुमवत्त्वस्यमनोमृदु ॥८॥

यश्चत्वास्तोप्यतेऽनेनप्रीतियातोऽसिमेऽप्यय ।

स्तोत्रेणतस्यवरदोभवेयामत्प्रसादितः ॥९॥

एतच्छ्रुत्वावचस्तस्यतमाहंद्विजसत्तमम् ।

स्तोत्रेणाराधितस्तेनगुरुभवत्याचपावकः ॥१०॥

गुरोरर्थयतोब्रह्मन्याचितमेवरद्वयम् ।

नात्मायंतेनमेप्रीतिस्त्वय्यसीवमहामुने ॥११॥

भविष्यत्येतदतिलगुरोर्यत्प्राधितत्त्वया ।

मैत्रीसमस्तभूतेषुपुत्रश्चास्यभविष्यति ॥१२॥

मन्वन्तरापिपुत्रश्चभोयोनामभविष्यति ।

महाबलोमहावीर्योमहाप्राज्ञोगुरुस्तव ॥१३॥

अनेनयश्चेत्तोत्रेणस्तोप्यतेमाससमाहित ।

तस्याभिलषतसर्वपुण्यचास्यभविष्यति ॥१४॥

अपन उस पुर से मेरे आचार्य जिन प्रकार प्रीति करें, वही प्रकार
समस्त प्राणिमों से प्रीति घोर कोमल व्यवहार करने वाले हो ॥८॥ हे अप्यय !
मुझ पर इस प्रकार तुम्हें प्रसन्न हुआ देव कर जो प्राणी भविष्य में 'तुम्हारी
आराधना करें, उनके लिए भी, तुम मेरे लिए प्रसन्न होकर, वर प्रदान' करने
वाली हो ॥९॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—गुरु भक्ति एव इस स्तोत्र द्वारा प्रसन्न

अग्नि देव द्विज शान्ति की प्रार्थना सुन कर बोले ॥१०॥ अग्नि ने कहा—हे ब्राह्मण ! तुमने अपने निच के लिए वर न मांगकर केवल अपने गुरु के लिए वर की प्रार्थना की, हे महर्षि ! इस कारण मैं तुम से अत्यधिक प्रसन्न हूँ ॥११॥ गुरु के हेतु तुम्हारी प्रार्थना पूर्ण होगी, सम्पूर्ण जीवों के प्रति उनकी प्रीति होगी और उनको पुत्र-प्राप्ति होगी ॥१२॥ तुम्हारे गुरु अत्यन्त मेधावी हैं, उनके महापराक्रमी, वीर्यवान् और्य नाम का पुत्र होगा, जो मन्वन्तराधिपति होगा ॥१३॥ साथ ही जो मनुष्य एकचित्त होकर मेरे इस स्तोत्र से मेरी आराधना करेगा, उसकी सम्पूर्ण मन की इच्छाएं पूरी होंगी और पुण्य का भागी भी होगा ॥१४॥

यज्ञेषु पूर्वकालेषु तीर्थेषु यज्ञाहीनकर्मसु ।
धर्माय पठतामेतन्मम पुष्टिकरं परम् ॥१५॥
अहोरात्रकृतं पापं श्रुतमेतत्सकृद्विज ।
नाशायिष्यत्यसन्दिग्धं मम तुष्टिकरं परम् ॥१६॥
अहोमकालदोषादीनयोन्यैरपितकृतैः ।
ये दोषास्ता निदं सद्यः शमयिष्ये तिसंश्रुतम् ॥१७॥
पौर्णमास्यां मावास्यां पर्वस्वन्येषु च स्तवः ।
ममैष संश्रुतो मर्त्यं भविता मापनाशनः ॥१८॥
इत्युक्त्वा भगवान् अग्निः पश्यतस्तस्य वैमुने ।
बभूवादर्शनः सद्यो दीपस्थो निवृत्तो यथा ॥१९॥
स च शान्तिर्गते बह्वौ परितुष्टेन चेतसा ।
हर्षरोमाञ्चिततनुः प्रविवेशाश्रमं गुरोः ॥२०॥
जाज्वल्यमानं तत्रासौ गुरुधिष्ये हुताशनम् ।
ददर्श पूर्ववत्प्रापततः स परमां मुदम् ॥२१॥

यज्ञ, पूर्वकाल, तीर्थ यज्ञ, धर्माय, व यज्ञ-कर्म में यह बलदाता स्तोत्र जप करने अथवा केवल एक बार सुनने से ही दिन रात के सम्पूर्ण पापों का बिना सन्देह विनाश होगा । हे ब्राह्मण मेरा यह स्तोत्र अत्यन्त संतुष्टि दायक

है ॥१६॥ यज्ञकाल के ध्यनीत होने पर यज्ञ करने एवं अनधिकारी पुरुष द्वारा यज्ञादि करने पर जो दोष होता है, वह सभी इस स्तोत्र के श्रवण से ही तुरन्त नष्ट होगा ॥१७॥ यह उत्तम स्तोत्र पूर्णिमा, अमावस्या या अन्य किसी पर्व के श्रवण पर श्रवण करने में प्राणियों के पापों का क्षमन होगा ॥१८॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—हे ऋषिवर ! किसी दीपक की लौ जिस प्रकार अचानक बुझ जाती है, उसी प्रकार वे अग्नि भगवान् यह वर देकर उन क्षाति मुनि के नामने अन्तर्धान हो गये ॥१९॥ पावक के अन्तर्धान होने पर क्षाति मुनि सन्तुष्ट हृदय एवं आनन्द से पूर्ण होकर अपने गुरु के आश्रम में पहुँचे ॥२०॥ तदनन्तर क्षाति मुनि अग्निबुएड में उसी प्रकार अग्नि को प्रज्ज्वलित देख कर अत्यन्त आनन्दित हुए ॥२१॥

एतस्मिन्नन्तरे सोऽपि गुरुस्तस्य महात्मन ।
 भ्रातुर्यवीर्यसो यज्ञादाजगाम स्वमाश्रमम् ॥२२॥
 तस्याग्रतश्च शिष्योऽसौ चक्रे पादाभिवन्दनम् ।
 गृहीतासनपूजश्च तमाह स तदा गुरुः ॥२३॥
 घत्मातिहाद त्वयि मे तथा न्येषु च जन्तुषु ।
 न वेद्वि मिदं त्वञ्चेद्वे तस्ये तत्कथाशुभे ॥२४॥
 ततः स क्षान्तिस्तत्सर्वमाचार्य्याय महामुने ।
 अग्निनाशादिकविप्रः समाचष्टे यथा तथम् ॥२५॥
 तच्छ्रुत्वा स परिष्वज्य स्नेहाद्रनमनो गुरुः ।
 शिष्याय प्रददौ वेदान् सा गोपाङ्गान् महामुने ॥२६॥
 भोक्त्यो नाममनुस्तस्य पुत्रो भूतेरजायत ।
 तस्य मन्वन्तरे देवानृषीन् भूपाश्च भेष्टृणु ॥२७॥
 भविष्यस्य भविष्यास्तु गदतो मम विस्तरात् ।
 देवेन्द्रोऽयश्च भविता तस्य विख्यातवर्मणः ॥२८॥

उसी समय क्षाति ने गुरु वह ऋषि थोड़ा छोटे भाई के यहाँ से यज्ञ में है अपने आश्रम में यागिम आये ॥२२॥ तब सम्मुख आकर शिष्य क्षाति ने

उनकी चरण-वंदना की । उसके पश्चात् गुरु पूजा वन्दन पूर्ण कर आसन ग्रहण कर बांति से बोले ॥२३॥ हे वत्स ! तुम्हारे व अन्य दूसरे जीव प्राणियों के प्रति मेरे हृदय में प्रीति उत्पन्न हुई है, ऐसा कैसे हुआ, मैं अनभिज्ञ हूँ । हे वत्स ! कदाचित्, यदि तुम्हारे ज्ञान में हो, तो मुझ से वर्णन करो ॥२४॥ हे महर्षि ! तब विप्र बांति ने अग्नि बुझने आदि की सम्पूर्णा विमल कथा गुरु से कही ॥२५॥ हे महर्षि ! गुरु ने समस्त घटना सुनकर प्रेम से आर्द्र नेत्रों से शिष्य बांति को आर्त्तिमन बद्ध कर लिया और उसे साङ्गोपाङ्ग सम्पूर्णा वेद्य भी प्रदान किये ॥२६॥ इस प्रकार उम भूति ऋषि के पुत्र भौत्य मनु ने जन्म लिया । उन मनु के मन्वन्तर के बीच जो देवगण, ऋषि, राजा और इन्द्रादि होंगे उनका विस्तार पूर्वक वर्णन सुनो ॥२७-२८॥

चाक्षुषाश्चकनिष्ठाश्चपवित्राभ्राजिरास्तथा ।

धारावृकाश्चेत्येतेषां पञ्चदेवगणाः स्मृताः ॥२८॥

शुचिरिन्द्रस्तदातेषां त्रिदशानां भविष्यति ।

महाबलमहावीर्यं सर्वं रिन्द्रगुणैर्युतः ॥३०॥

आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्चशुचिमुक्तोज्यमाववः ।

शुक्रोऽजितश्चसप्तैतदासप्तर्षयः स्मृताः ॥३१॥

गुरुर्गभीरो ब्रध्नश्चभरतोऽनुग्रहस्तथा ।

श्रीमानीचप्रतीरश्चविष्णुः संक्रन्दनस्तथा ॥३२॥

तेजस्वीसुवल्श्चैव भौत्यस्यैते मनोसुताः ।

चतुर्दशमयैतत्ते मन्वन्तरमुदाहृतम् ॥३३॥

श्रुत्वामन्वन्तराणीत्थं क्रमेण मुनिसत्तम ।

पुण्यमाप्नोति मनुजस्तथाऽक्षीणांच सन्ततिम् ॥३४॥

श्रुत्वामन्वन्तरपूर्वधर्ममाप्नोति मानवः ।

स्वारोचिषस्यश्चवणात्सर्वकामानवाप्नुते ॥३५॥

चाक्षुष, कनिष्ठ, पवित्र, भ्राजिर और धारावृक प्रभार ये देवगण होंगे ॥२८॥ उस काल में इन्द्र के समस्त गुणों से पूर्ण महापराक्रमी वीर्यवान्

“शुचि” उनके इन्द्र होंगे ॥३०॥ उस मन्वन्तर में अग्निघ्न, अग्निबाहु, शुचि, मुक्त, माधव, मुक्त और अजित नामक ऋषि महर्षि होंगे ॥३१॥ गृह, गभीर, धन्, भक्त, अनुग्रह, श्रीमणि, प्रतीर, विष्णु, सकलेश तथा ॥३२॥ तेजस्वी शुबल नामक पुत्र भोक्तृ मनु के होंगे । इस प्रकार मैंने आप से चौदह मन्वन्तरो के विषय में कहा ॥३३॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यह समस्त मन्वन्तरो का क्रम-वृद्ध धर्मानुसारे से मनुष्य पुण्य-नाम प्राप्त करते हैं एवं उनका परिवार-सर्व वधुरा रहता है ॥३४॥ प्रथम मन्वन्तर का वर्णन सुन कर धर्म में, आत्मा बढ़ती है और दूसरे मन्वन्तर के अवलोकन में उनकी समस्त मन की इच्छाएं पूरी होती हैं ॥३५॥

श्रीतमेधनमाप्नोतिज्ञानमाप्नोतितामसे ।
 रैवतेष्वश्रूतेबुद्धिमुत्पाविन्दतेस्त्रियम् ॥३६॥
 आरोग्यचाक्षुषेषु साश्रूतेर्वधस्वतेवसम् ।
 गुणवत्पुत्रपौत्रास्तुमूढमावर्णिकेश्रूते ॥३७॥
 माहात्म्यग्रहसावर्ण्यंमंसावर्णिकेश्रूते ।
 मतिमाप्नोतिमनुजोद्वमावर्णिकेश्रूते ॥३८॥
 ज्ञातिश्रेष्ठोगुणेषु स्तादसवर्णिकेश्रूते ।
 निगातयस्वरिवनरोच्यश्रूत्वानरोक्षम् ॥३९॥
 देवप्रसादमाप्नोतिभोक्तृमन्वन्तरेष्रूते ।
 तयाग्निहोत्रपुत्राश्रगुणयुक्तानवाप्नुते ॥४०॥
 सर्वाभ्यनुक्रमाद्यश्रूणोतिमुनिसत्तम ।
 मन्वन्तराणितस्यापिश्रूयतापिन्मुत्तमम् ॥४१॥

तृतीय मन्वन्तर श्रीतम के अवलोकन से मन व चतुर्थ तमम मन्वन्तर के अवलोकन से ज्ञान प्राप्ति होती है । प्रथम रैवत मन्वन्तर के अवलोकन से बुद्धिमान् एवं रूपवती भार्या मिलती है ॥३६॥ पृथ मन्वन्तर चाक्षुष के अवलोकन से मनुष्य नोरोग रहने है, सप्तम मन्वन्तर वैवस्वत के अवलोकन से पराक्रम एवं अष्टम मूर्ध सावर्णि मन्वन्तर के अवलोकन से गुणी पुत्र एवं पौत्र प्राप्त होने है ॥३७॥

नवम ब्रह्म सावर्णि मन्वन्तर के श्रवण से माहात्म्य, दशम धर्म सावर्णिक मन्वन्तर के श्रवण से कल्याण और ग्यारहवें रुद्रसावर्णिक मन्वन्तर के श्रवण से सुबुद्धि और विजय प्राप्त होती ॥३८॥ हे नर श्रेष्ठ ! बारहवें मन्वन्तर वक्ष सावर्णिक के श्रवण से पुरुष जाति में सर्वोत्तम और गुणवान् होता है, तेरहवें मन्वन्तर रौच्य के श्रवण से सन्तुष्टों का बल शमन करने की समर्थता प्राप्त होती है ॥३९॥ चौदहवें मन्वन्तर भीत्य के श्रवण से भगवान् का प्रसाद, अग्निहोत्र फल एवं गुणवान् पुत्र की प्राप्ति होती है ॥४०॥ हे ऋषि श्रेष्ठ ! प्रथम मन्वन्तर से क्रमबद्ध सभी मन्वन्तरों का श्रवण करने वाले मनुष्यों को किस प्रकार श्रेष्ठ फल प्राप्त होता है, इसका वर्णन सुनो ॥४१॥

तत्र देवानृषीनिन्द्रान्मनूस्तत्तनयान्नुपान् ।
श्रुत्वा वंशांश्च सर्वेभ्यः पापेभ्यो प्रमुच्यते ॥४२॥
देवर्षीन्द्र नृपाश्चान्ये ये तन्मन्वन्तराधिपाः ।
ते प्रीयन्ते तथा प्रीताः प्रयच्छन्ति शुभमिति ॥४३॥
ततः शुभमिति प्राप्य कृत्वा कर्म तथा शुभम् ।
शुभां गतिमवाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥४४॥
सर्वे स्युर्ऋतवः क्षेम्याः सर्वे सोम्यास्तथा ग्रहाः ।
भवन्त्यसंशयं श्रुत्वा क्रमान्मन्वन्तरस्थितिम् ॥४५॥

हे ब्राह्मण ! उन मन्वन्तरों के देवगण, सम्पूर्ण ऋषिगण, मनु के नृप पुत्रगण एवं उनकी वंशावलि वर्णन का श्रवण करने पर मनुष्य समस्त पापों से विमुक्त हो जाते हैं ॥४२॥ देवगण, मुनिगण, इन्द्र, नृपतिगण एवं उस मन्वन्तर के अधिपति अपर, वे सब सन्तुष्ट होते हैं एवं सन्तुष्ट होने पर सद्बुद्धि प्रदान करते हैं ॥४३॥ इस प्रकार सद्बुद्धि प्राप्त कर शुभ कार्य करने से जब तक चौदह इन्द्र रहेंगे, तब-तब सद्बुद्धि मनुष्य प्राप्त करते रहेंगे ॥४४॥ क्रम-बद्ध मन्वन्तरों का वर्णन श्रवण करने सम्पूर्ण ऋतुएं सहनीय होती हैं और नित्सन्देह सम्पूर्ण ग्रह भी शांत हो जाते हैं ॥४५॥

६३—राज वंशानुकीर्तन

भगवन्वथितामम्यवत्वयामन्वन्तरस्थितिः ।

क्रमाद्विस्तरतस्त्वत्तोमयाचंवावधारिता ॥१॥

ब्रह्माद्यमखिलवशभूभुजाद्विजसत्तम ।

श्रोतु ममेच्छत सम्यग्भगवन्प्रब्रवीहिमे ॥२॥

शृणुवत्तमनृपाणां त्वमशेषाणां समुद्भवम् ।

चरितचजगन्मूलमादौकृत्वा प्रजापतिम् ॥३॥

अयं हि वशोभूपा लंखेव क्रतुकर्तृभिः ।

स ग्रामजिद्विधमंजं शतसहस्रं रत्नकृतम् ॥४॥

श्रुत्वा चंपानन्द्रेद्राणां चरितानि महात्मनाम् ।

उत्पत्तयश्च पुरुष सर्वपार्पं प्रमुच्यते ॥५॥

मनुर्यत्र तथेदं वाकुरनरण्यो भगीरथः ।

अन्ये च शतशो भूपा सम्यक्पालितभूमयः ॥६॥

धर्मज्ञाय ज्विन दूरा परमार्थार्यवेदिनः ।

श्रुते तस्मिन्पुमांश्च शेषापोधाद्विप्रमुच्यते ॥७॥

कोष्टवि बोले—हे महाराज । मन्वन्तरो के विषय में आपने बली प्रकार वर्णन किया है और मैंने भी उसे विस्तारपूर्वक ध्वनित किया है ॥१॥ हे ब्रह्माण्येष्ट ! मैं क्षत्रियपतियों की सम्पूर्ण वैशाखि ब्रह्माजी से प्रारम्भ कर सुनने का इच्छुक हूँ । हे महाराज । वह मुझ से सम्यक् प्रकार से कहिये ॥२॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—हे विश्वाधार ब्रह्माजी से प्रारम्भ होकर सम्पूर्ण क्षत्रियपतियों की जन्म-गाथा एवं चरित्र का वर्णन सुनो ॥३॥ यह घट घट करने वाले, रण विजेता, धर्मज्ञ मंडो विविध गुणों से प्रलंबित है ॥४॥ इन महान् नृपतियों के जन्म और चरित्र के विषय में सुनकर मनुष्य सम्पूर्ण पापों से विमुक्त होता है ॥५॥ मनु, इन्द्राकु, अनरण्य, भगीरथ, एवं अन्य दूसरे

शतशः ॥६॥ धर्मात्मा, यज्ञ कर्त्ता, और ब्रह्मज्ञानी नृपों ने जिस वंश में जन्म लेकर पृथ्वी का पोषण किया, उस वंश का वर्णन श्रवण करने से मनुष्य समस्त पापों से बिमुक्त हो जाता है ॥७॥

तदयंश्च यतांवंशोयतोवंशाःसहस्रशः ।

भिद्यन्तेमनुजेन्द्राणामवरोहायथावटात् ॥८॥

ब्रह्माप्रजापतिःपूर्वसिसृक्षुर्विविधाःप्रजाः ।

अंगुष्ठाक्षिणाक्षमसृजद्विजसत्तम ॥९॥

वामङ्गुष्ठाच्चतत्पत्नीजगत्सूतिकूरोविभुः ।

ससर्जभगवान्ब्रह्माजगतांकारणंपरम् ॥१०॥

अदितिस्तस्यदक्षस्यकन्याजायतशोभना ।

तस्यांचकश्यपोदेवमातंडंसमजीजनत् ॥११॥

ब्रह्मास्वरूपंजगतामशेषाणांवरप्रदम् ।

आदिमद्यान्तभूतंचसर्गस्थित्यंतकर्मसु ॥१२॥

यतोऽखिलमिदंयस्मिन्नशेषंचस्थितंद्विज ।

यत्स्वरूपंजगच्चेदंसदेवासुरमानुषम् ॥१३॥

यःसर्वाभूतःसर्वात्मापरमात्मासनातनः ।

आदित्यामभवद्भ्रास्वान्पूर्वमाराधितस्तया ॥१४॥

एक षट्पक्ष के एक अंकुर से ही एक अलग पूर्ण वृक्ष खड़ा हो जाता है, उसी तरह मनुजेन्द्रों के सहस्रों वंश उत्पन्न होगये, यह सुनिये ॥८॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! पूर्व समय में विभिन्न प्रजा उत्पन्न करने की आकांक्षा से प्रजापति ब्रह्माजी ने अपने बाहिने हाथ के अंगूठे से दक्ष अधिपति को जन्म दिया ॥९॥ विश्व के जन्मदाता भगवान् ब्रह्माजी ने विश्व सृष्टि के लिए अपने बांये हाथ के अंगूठे से दक्ष की पत्नी को जन्म दिया ॥१०॥ अदिति नाम की एक सुन्दर कन्या ने दक्ष के यहाँ जन्म लिया । उस कन्या और कश्यप से मार्तण्ड देव उत्पन्न हुए ॥११॥ हे ब्राह्मण ! ब्रह्म स्वरूप जो अशेष इस विश्व को बरदाता है, सृष्टि स्थिति एवं प्रलय के कार्य में प्रारम्भ व अन्त स्वरूप

हैं ॥१२॥ समस्त विश्व के जन्म दाता, जिनमें समस्त विश्व विद्यमान है मुर,
ममुर और मनुष्यो सहित यह विश्व उनका स्वरूप है ॥१३॥ जो सर्व प्राणी
स्वरूप और सर्वात्मा सनातन परमात्मा हैं, प्रदिति द्वारा स्तुति करने पर उन्ही
भास्वर सूर्य ने उनके गर्भ से जन्म ग्रहण किया ॥१४॥

भगवद्भोतुमिच्छामि यत्स्वरूपविवस्वत ।
यत्कारणं चादिदेव सोऽभवत्कश्यपात्मज ॥१५॥

यथाचाराधितो देव्या सोऽदित्याकश्यपेन च ।
आराधितेन चोक्त यत्तेन देवेन भास्वता ॥१६॥

प्रभावचावतीर्णस्य यथावन्मुनिसत्तम ।
भवता कथितसम्यग्भोतुमिच्छाम्यशेषत ॥१७॥

विस्पष्टापरमाविद्याज्यातिर्भांशाश्रयतीस्फुटा ।
कैवल्यज्ञानमाविर्भू प्रानाम्यसविदेव च ॥१८॥

बोधश्चावगतिश्चैव स्मृतिविज्ञानमेव च ।
इत्येता नीहृषाणितस्यारूपस्य भास्वत ॥१९॥

अथ यथाचमहाभाग विस्तराद्वदतो मम ।
यत्पृष्टवानसिरवेराविर्भावो यथाभवत् ॥२०॥

क्रीटुकी बाने—हे महाराज । भास्वात् सूर्य के स्वरूप जिसके कारण
यह प्रादि देव कश्यप के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए उसका कारण मुनना चाहना
है ॥११॥ एव प्रदिति व कश्यप ने त्रिस प्रकार धाराधना की और धाराधना
से प्रसन्न सूर्यदेव ने जो कहा ॥१६॥ एव गृहीत जन्म सूर्य का प्रचार जैसे पहले
भाषने बखान किया है श्रेष्ठ । वह सभी सम्पूर्ण प्रकार से ध्वनि करने की
इच्छा है ॥१७॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—विस्पष्ट, परमा, विद्या, ज्योति,
प्राप्ति, सीति, कैवल्य, ज्ञान, आविर्भाव, प्राणाम्य, सविद् ॥१८॥ बोध, प्रव-
गति, स्मृति एवं विज्ञान प्रादि सभी सूर्यदेव के स्वरूप हैं । हे महामाग ! रवि
ने आविर्भाव के विषय में विस्तारपूर्वक ध्वनि करो ॥२०॥

निरप्रमेर्जम्भिप्रानोवे सर्वतस्तमसावृते ।
वृद्धदृढममूदेकमक्षरकारणपरम् ॥२१॥

तद्विभेदतर्दन्तःस्थोभगवान्प्रपितामहः ।

पद्मयोनिःस्वयं ब्रह्मायः स्रष्टा जगतां प्रभुः ॥२२॥

तन्मुखादोमिति महान् भूच्छब्दो महामुने ।

ततो भूस्तु भुवस्तस्मात्ततश्च स्वरनन्तरम् ॥२३॥

एताव्याहृतयस्ति स्रः स्वरूपं तद्विषयतः ।

ओमित्यस्मात्स्वरूपात्सूक्ष्मरूपं परमेष्ठि ॥२४॥

ततो महरिति स्थूलं जनं स्थूलतरं ततः ।

ततस्तपस्ततः सत्यमिति मूर्तानि सप्तधा ॥२५॥

स्थितानि तस्य रूपाणि भवन्ति न भन्ति च ।

स्वभावभावयोर्भावं यतो गच्छन्ति संक्षयम् ॥२६॥

आद्यन्तं यत्परं सूक्ष्ममरूपं परमं स्थितम् ।

ओमित्युक्तं मया विप्रतत्परं ब्रह्मतत्त्वम् ॥२७॥

सृष्टि के पूर्व, जब यह विश्व आभाहीन, अन्धकारमय था तब क्षय रहित एक विनाश अङ्ग उत्पन्न हुआ ॥२१॥ उसी समय जगत् के जन्मदाता प्रपितामह ब्रह्मा पद्म-योनि में विद्यमान थे, उन्हीं ने स्वयं इस अण्डे को भेद दिया ॥२२॥ हे महर्षि ! ब्रह्माजी के मुखारविन्द से उस समय ॐ शब्द हुआ । ओंकार अब्द से पहले भू, भुवः एवं तत्पश्चात् स्वः उत्पन्न हुआ ॥२३॥ यह व्याहृति भगवान् भास्कर का स्वरूप है । ॐ शब्द के स्वरूप से सूर्य का अत्यन्त सूक्ष्म रूप हुआ है ॥२४॥ उससे स्थूल रूप 'महः' तत्पश्चात् स्थूल रूप 'जन' फिर स्थूल रूप 'तपः' अनन्तर स्थूल रूप 'सत्य' उत्पन्न होगया । सूर्य का संपूर्ण रूप स्थूल है । विवस्वान् सूर्य के स्थूलों के सूक्ष्म भेद से ओंकार के सप्त रूप उत्पन्न हुए ॥२५॥ सूर्य भगवान् के सप्त रूप भी कभी-कभी सम्मुख होते हैं और कभी छिपे रहते हैं, क्योंकि उनके स्वभाव एवं प्रकृति का अस्तित्व संशयात्मक होता है ॥२६॥ हे ब्राह्मण ! इस जगत् के प्रारम्भ व अन्त में निराकार परम सूक्ष्म परमात्मा विद्यमान हैं, ॐ कार से भेरा अभिप्राय उन्हीं से है । हे ब्राह्मण ! वह ब्रह्मस्वरूप ही मार्कण्ड देव की देह है ॥२७॥

६४--वेदमय-मार्कण्ड की उत्पत्ति

तस्मादण्डाद्विभिन्नाद्यतुङ्गाणोऽव्यक्तजन्मनः ।
 ऋचोवभूवु प्रथमप्रथमाद्वदनान्मुने ॥१॥
 जपापुष्पनिभा मयस्तेजोऽन्वाहसहता ।
 पृथक्पृथग्विभिन्नाश्चरजोरूपवहास्ततः ॥२॥
 यजू पिदक्षिणाद्वक्त्रादनिरुद्धानिकानिचित् ।
 यादृग्दर्शनवावर्णान्यसहतिघराणित् ॥३॥
 पश्चिमयद्विभोर्वंशश्च यज्ञाण परमेष्ठिन ।
 प्राविभूतानिनामानिततच्छन्दांमितासितान्यय ॥४॥
 अथर्वणामगोपचभृङ्गाक्षुनचयप्रभम् ।
 यावद्वान्स्वरूपतर्दाभिचारिकशान्तिकम् ॥५॥
 उत्तराप्रवटीभूतवदनातस्मवेधम् ।
 सुगमश्चनम प्रायसौम्यामौम्यस्वरूपवन् ॥६॥
 ऋचारजोगुणान्स्वययुषान्गुणान्मुने ।
 तमोगुणानिसामानिनम मत्स्वमययम् ॥७॥

मार्कण्डेय जी ने कहा— हे ऋषि ! उस अण्ड के भेदन पर अत्यन्त जन्मा ब्रह्माजी साधारण हूँ और उनके मुख में निकलते वचनों में ऋग्वेद की रचना हुई ॥१॥ वह जपापुष्प रूप तेजस्वरूप और पृथक् विभिन्न रजो रूप धारण करने वाला था ॥२॥ ब्रह्माजी के दक्षिण मुख में स्वर्गं सुगमं गुणं युक्तं धनद्वि प्रहृत करने वाले मयस्त यजु की अनिरुद्ध भाव में रचना हुई ॥३॥ तदनन्तर परमारमा ब्रह्माजी के पश्चिम मुख से साम की रचना हुई, सम्पूर्णं साम छन्द पूर्णं था ॥४॥ ब्रह्माजी ने उत्तर मुख में मृगं च अश्वत्थन के समूह के समान धानापूर्णे वृक्षान् बलं, प्रादिचारिक, शान्तिवर्त्ता, सुग, मरु, तम में युक्त सौम्य और धर्मोम्य अगोप बलवं की रचना हुई ॥५-६॥ हे ऋषि ! सम्पूर्णं ऋग् में रजोगुण, सम्पूर्णं यजु में मरु गुण, सम्पूर्णं साम में तमोगुण एवं सम्पूर्णं अथर्व में मरु एवं तमोगुण है ॥७॥

एतानिज्वलमानानितेजसाऽप्रतिमेन वै ।
 पृथक्पृथक्वस्थानं भाञ्जिपूर्वमिवाभवन् ॥८॥
 ततस्तदाद्यं तेजोमित्युक्त्वाभिक्षब्दयते ।
 तस्यस्वभावाद्यत्तेजस्तत्समावृत्य संस्थितम् ॥९॥
 यथा यजुर्मयं तेजस्तद्वत्साम्नामहामुने ।
 एकत्वमुपयातानि परे तेजसि संश्रये ॥१०॥
 शान्तिकं पौष्टिकं चैव तथा चैवाभिचारिकम् ।
 ऋगादिषु लयं ब्रह्मास्त्रितयं त्रिध्वयागमत् ॥११॥
 ततो विश्वमिदं सद्यस्तमोनाशात्सु निर्मलम् ।
 विभावनीयं विप्रर्षेति र्यंगूर्ध्वमघस्तथा ॥१२॥
 ततस्तन्मण्डलीभूतं छान्दसं तेज उत्तमम् ।
 परेण तेजसा ब्रह्मन्नेकत्वमुपगम्यतत् ॥१३॥
 आदित्यसंज्ञामगमदादावेव यतोऽभवत् ।
 विश्वस्यास्य महाभाग कारणञ्चाव्ययात्मकम् ॥१४॥

इत सभी ने अद्वितीय तेज से प्रकाशवात् होकर पृथक्-पृथक् भाव से स्थिति की ॥८॥ उसके पश्चात् प्रथम का वह तेज, जिसके लिये ॐ शब्द प्रयुक्त हुआ है, उससे उत्पन्न जो तेज है, उसे वह अपने में समेट कर स्थित हुआ ॥९॥ हे महर्षि ! इस प्रकार साम युक्त तेज एवं यजुर्युक्त तेज को भी अपने में समेट लिया, इस प्रकार सम्पूर्ण तेज उस ॐ स्वरूप परम तेज में आवृत होकर एक होगये ॥१०॥ हे विप्र ! इसके बाद ऋक्, साम, यजुः तीनों वेदों में, शान्ति युक्त, पौष्टिक, आभिचारिक इन तीनों में अथर्व वेद भी मिल गया ॥११॥ हे ब्रह्मर्षे ! अन्धकार नष्ट होने पर समस्त जगत् तुरन्त स्वच्छ होगया, जिससे उसका ऊर्ध्व, अध और तिर्यक् अथवा पार्श्व देश प्रकाश में आये ॥१२॥ हे विप्र ! तत्पश्चात् वह परम छन्दस तेज मण्डनीभूत हो फिर श्रेष्ठ ॐ कार तेज में लीन होकर एक होगया ॥१३॥ इस प्रकार इस तेज को आदि में उत्पन्न होने के कारण 'आदित्य' की संज्ञा दी गई । हे महाभाग ! यही इस जगत् का अव्ययात्म कारण है ॥१४॥

प्रातर्मध्यन्दिनेचैवतथाचैवापराह्निके ।

त्रयोत्पतिसाकालेऋग्यजु सामसजिता ॥१५॥

ऋचस्तपतिपूर्वाह्णे मध्याह्णे च यजु पिवं ।

सामानिचाराह्णे वैतपन्तिमुनिसत्तम ॥१६॥

शान्तिकमृक्षुपूर्वाह्णे यजु प्वेवचपौष्टिकम् ।

विन्यस्तसाम्निसायाह्णे ह्याभिचारिकमन्तत ॥१७॥

मध्यन्दिनेऽपराह्णे च समेचैवाभिचारिकम् ।

अपराह्णे पितृणान्तुमाम्नाकार्यारणितानिवै ॥१८॥

विसृष्टोऋङ्मयोब्रह्मास्थितांविष्णुर्यजुर्मयः ।

रुद्र पाममयान्तेचतस्मात्तस्याशुचिध्वनिः ॥१९॥

तदेव भगवान्भास्वान्वेदात्मावेदसस्थित ।

वेदविद्यात्मकश्चैव पर पुरुष उच्यते २०

सर्गस्थित्यन्तहेतुश्चरज सत्त्वादिकान्गुणान् ।

आश्रित्य ब्रह्मविष्णवादिसत्तामस्येतिशाश्वत ॥२१॥

देवैः सदेड्य सत्तुवेदमूर्तिरमूर्तिराद्योऽपिलमर्त्यमूर्तिः ।

विश्वाध्वयज्योतिरवेद्यधर्मावेदान्तगम्य परमपरेष्टा ॥२२॥

ऋग् यजु ओर साम तीनो मन्त्राः प्रातः, मध्याह्न एव अपराह्न काल

में तपती है ॥१५॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उनमें ऋक् प्रातः काल, यजु मध्याह्न में

और साम अपराह्न में तपता है ॥१६॥ पूर्वाह्न-काल ऋक् में शान्ति कर्य,

मध्यह्न में यजु में पौष्टिक एवं अपराह्न काल में साम में सम्पूर्ण आभिचारिक

कर्म निहित है ॥१७॥ मध्याह्न और अपराह्न समय में ही अभिचारिक-कर्म करे

एवं साम द्वारा केवल अपराह्न में ही पितरों का कार्य सम्पन्न करे ॥१८॥

गृष्टि के समय में ब्रह्मा ऋक्-मय, स्थितिकाल में विष्णु यजुर्मय एवं शमन काल

में रुद्र नाम मय होते हैं, इसलिये अपराह्न काल को अशुचि कहते हैं ॥१९॥

इस कारण उक्त प्रकार से वेदात्मा, वेद सम्पन्न एवं वेद विद्यायुक्त भगवान्

भास्वान् परम पुरुष नाम उच्चारण किया गया है ॥२०॥ गृष्टि के आदि, स्थिति

व प्रलयकर्ता यह शाश्वत आदित्य सत्त्व रज एवं तमोगुणों को आश्रय कर

ब्रह्मा, विष्णु और महेश नाम प्राप्त होने हैं ॥२१॥ देवताओं द्वारा सर्वत्र आराध्य

वेदमूर्ति, निराकार, सम्पूर्ण प्राणि स्वरूप एवं ज्योति स्वरूप आदि पुरुष भगवान् आदित्य विष्व के आश्रयदाता अवेद्य धर्मा, वेदान्तगम्य एवं उत्तम से भी परमोत्तम हैं ॥२२॥

६५—ब्रह्मकृत रविस्तव

तेस्यसन्ताप्यमानेतुतेजसोद्धर्मघस्तथा ।
सिसृक्षुश्चिन्तयामासपद्मयोनिःपितामहः ॥१॥
सृष्टिःकृतापिमेनाशंप्रयास्यत्यभितेजसा ।
भास्वतःसृष्टिसंहारस्थितिहेतोर्महात्मनः ॥२॥
अप्राणाःप्राणिनःसर्वप्रापःशुष्यन्तितेजसा ।
नचाम्भसाविनासृष्टिर्विश्वस्यास्यभविष्यति ॥३॥
इतिसञ्चिन्त्यभगवान्स्तोत्रंभगवतोरवेः ।
चकारतन्मयोभूत्वाग्रहलोकपितामहः ॥४॥
नमस्येयन्मयंसर्वमेतत्सर्वमयश्चयः ।
विश्वमूर्तिःपरंज्योतिर्यत्तद्वचायन्तियोगिनः ॥५॥
यश्चिन्तयोजुषानिधानंसाम्नांचयोयोनिरचिन्त्यशक्तिः ।
अयमयस्थूलतयार्धमात्रापरस्वरूपोगुणपारयोग्यः ॥६॥
एवासर्वहेतुपरमंचवेद्यमाद्यंपरंज्योतिरवेद्यरूपम् ।
स्थूलचूदेवात्मतयानमस्येभास्वन्तमाद्यंपरमंपरेभ्यः ॥७॥

मार्करण्डेयजी ने कहा—उसके पश्चात् आदित्य के तेज से ऊर्ध्व एवं अधः संतापित होने पर सृष्टि की रचना के इच्छुक ब्रह्मा चिन्तित होने लगे ॥१॥ कि सृष्टि की रचना करने पर भी उसका नाश भगवान् भास्कर की तीव्र किरणों के तेज से होगा ॥२॥ उन भास्कर के तेज से सम्पूर्ण जीवचारी प्राणविहीन एवं जल सूख जाता है, फिर जलहीन इस जगत् की सृष्टि भी नहीं होगी ॥३॥ जगत् पितामह ब्रह्माजी इस प्रकार चिन्तित हुए तल्लीन होकर भगवान् भास्कर

की स्तुति करने लगे ॥४॥ ब्रह्माजी ने कहा—जो समस्त जगत् के आत्मा रूप और इस जगत् में विद्यमान है, विश्व जिनका मूर्तरूप है एवं योगी भी जिस अनिन्द्रयगाह्य अंश ज्याति की आराधना करते हैं, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ ॥५॥ श्रुत्वेद युक्त अचिन्त्य शक्ति, यजुर्वेद के आधार साम की रचना के कारण, स्थूलता प्रभुक्त तीनों में निहित, अर्द्धमाता स्वरूप, परमब्रह्म रूप और महान् गुणी हैं ॥६॥ सर्व प्रथम उन्ही सर्वाद्यान् रूपी परम पूज्य, परमेश्वर, अवक्षिप्त, परमज्योति, देवात्मता के लिये स्थूल रूप एवं अंशों से अंशुतम आदि पुरुष भगवान् भास्कर को नमस्कार करता हूँ ॥७॥

सृष्टिकरामियदहतवगक्तिराद्यातत्प्रेरितोजलमहीपवनाग्निरूपाम् ।
तद्देवतादिविपगाग्रगवाद्यशेषानात्मेच्छयास्थितिलयावपिनद्वदेव ॥८॥
वह्निस्त्वमेवजलशोषगत पृथिव्या सृष्टिररापिजगत्वाचतथाहपाकम् ।
व्यापोत्वमेवभगवन्गगनस्वरूपत्वपञ्चधाजगदिदपरिपामिविश्वम् ॥९॥
यज्ञं यजन्तिपरमात्मविदोभवन्त विष्णुस्वरूपमसितेष्टिमयविवस्वन् ।
ध्यायन्तिचापियतयोनियतात्मचित्ता सर्वेश्वरपरममात्मविमुक्तिकाम १०
नमस्तेदेवरूपपाययज्ञरूपायतेनम ।

परब्रह्मस्वरूपायचिन्त्यमाताययोगिनि ॥११॥

उपसहस्रतेजोपतजस सहस्रिस्तव ।

सृष्टेर्विधातामविभोऽष्टौचाहसमुद्यत ॥१२॥

इत्येवसस्तुतोभाम्बान्ब्रह्मणासर्गकर्तृणा ।

उपसहस्रतमास्तेज परस्वल्पमधारयत् ॥१३॥

चकारचतस्रं सृष्टिजगत पद्मसम्भव ।

तथातेषुमहाभाग पूर्वकल्पान्तरेषुवै ॥१४॥

देवागुरादीन्मर्त्याश्चपञ्चादीन्मृशवीरुध ।

ससर्जपूर्ववदब्रह्मानरकाश्चमहामुने ॥१५॥

हे देव । आपकी ही शक्ति नित्य है, क्योंकि मैं उसने प्रेरणा पाकर

ही, जल, पृथ्वी, वायु और अग्नि देवतादि एवं प्रणवादि अंशों की सृष्टि करता है । इस प्रकार स्थिति और प्रलय भी मन्वेच्छा से नहीं करता, बल्कि सब भी

आपकी प्रेरणा से ही करता हूँ ॥८॥ हे भगवन् ! तुम वह्निरूप भी हो । जिस समय धरती से तुम जल शुष्क करते हो तब मैं विश्व-सृष्टि एवं प्रथम पाक सम्पन्न करता हूँ, सर्वव्यापी आकाश स्वरूप आप ही हो, पञ्चरूप इस जगत् के रक्षक भी आप ही हो ॥९॥ हे भास्कर ! परमात्मविद सकल यज्ञमय विष्णु स्वरूप मैं यज्ञ द्वारा आपकी आराधना करते हूँ, आत्म-मोक्ष के आकांक्षी जितेन्द्रिय यति भी आपको परम सर्वेश्वर मानकर आपका मनन करते हैं ॥१०॥ आप देवरूप हैं, आपको प्रणाम करता हूँ, आप ही यज्ञरूप और परब्रह्म स्वरूप मानकर योगी आपका चिन्तन करते हैं, आपको प्रणाम करता हूँ ॥११॥ हे प्रभो ! आप तेज को त्यागें, मैं सृष्टि की रचना के लिये उद्यत हूँ, आपका तीव्र तेज सृष्टि की रचना में बाधा है ॥१२॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—भगवान् भास्कर ने सृष्टि के रक्षयिता ब्रह्माजी की आराधना से प्रसन्न होकर अपना तीव्र तेज त्याग दिया और केवल सामान्य तेज धारण किया ॥१३॥ फिर महाभाग ब्रह्माजी ने पूर्व कल्पान्त कल्प में विश्व की सृष्टि रचना की ॥१४॥ हे महर्षि ! ब्रह्माजी ने पूर्व की भाँति सुर, असुर, मनुष्य, पशु, वृक्ष आदि एवं समस्त नरक की रचना की ॥१५॥

६६—कश्यप प्रजापति की सृष्टि

सृष्टाजगदिदंब्रह्माप्रविभागमथाकरोत् ।
वर्णाश्रमसमुद्राद्विद्वीपानांपूर्ववद्यथा ॥१॥
देवदैत्योरगादीनारूपस्थानानिपूर्ववत् ।
धेदेम्यएवभगवानकरोत्कमलोद्भवः ॥२॥
ब्रह्माणस्तनयोयोऽभून्मरीचिरिति विश्रुतः ।
कश्यपस्तस्यपुत्रोऽभूत्काश्यपोनामनामतः ॥३॥
दक्षस्तनयाब्रह्मस्तस्यभार्य्यास्त्रयोदश ।
वह्वरस्तसुताश्चासन्देवदैत्योरगादयः ॥४॥

अदितिर्जनयामास देवास्त्रिभुवनेश्वरान् ।
 दंत्यान्दितिर्देनुश्चोग्राब्दानवानुरविव्रजमान् ॥१॥
 गरुडारुणौ च विनतायक्षरक्षासिर्वज्रसा ।
 यद्रूमुपावनागाश्च गन्धर्वांसुपुत्रेभ्युनि ॥६॥
 क्रोधोपाजज्ञिरेकुल्यारिष्टायाश्चाप्सरोगणा ।
 ऐरावतादीन्मातङ्गानिराचसुपुत्रद्विज ॥७॥

मार्कण्डेयजी न ब्रह्मा—ब्रह्माजी ने विद्वत् की रचना करके पूर्व की
 भूमि ब्रह्मा, माध्यम, समुद्र, गिरि और सम्पूर्ण द्वीपों का विभाजन किया ॥१॥
 भगवान् ब्रह्माजी ने देवगण दैत्य एवं उरगणा का रूप तथा स्थिति देवगणों से
 प्रारम्भ कर पूर्व की भूमि ही निर्दिष्ट किया ॥२॥ ब्रह्माजी ने अरीचि नामक पुत्र
 से वश्यप नामक एक विन्यास पुत्र उत्पन्न हुए थे जो कि वश्यप नाम से ही
 विन्यास हुए ॥३॥ हे विप्र ! दक्ष की तरह बन्याए उनकी पत्नियाँ हुई, जिनके
 गर्भ से देव, दैत्य और उरग आदि अनेक पुत्र उत्पन्न हुए ॥४॥ अदिति ने
 त्रिभुवनेश्वर देवताओं को जन्म दिया, दंत न दंत्या और दनु ने महापराक्रमी
 क्रोधो दानवों को जन्म दिया ॥५॥ विनता ने गरुड व अक्षुण्ण, खगा न यक्ष व
 राक्षसा, यद्रू ने नागा एवं भुनि ने गन्धर्वों को जन्म दिया ॥६॥ हे ब्राह्मण !
 क्रोधो ने कुल्यारिष्टा स अप्सराएँ और ईरा से ऐरावत इत्यादि हविषा ने
 जन्म लिया ॥७॥

तामनाचमुपवेश्येनीप्रमुखा वन्यकाद्विल ।
 यासाप्रमूला मृगमाश्वनभासशुजादय ॥८॥
 इलाया पादपाज्जाता प्रधाययादमागणा ।
 आदित्यामासमुत्पन्नावश्यपम्येति सन्तति ॥९॥
 तस्याश्रपुत्रदोहित्रं पौत्रदोहित्रिवादिभि ।
 यमाप्तमेतज्जगत्प्रमूल्यातेपातासाश्ववेभुने ॥१०॥
 तेषामश्वपुत्राणाप्रधानादेवतागणा ।
 सारिक्वाराजमास्तयेते तामसाश्वमुनेगणा ॥११॥

देवान्यज्ञभुजश्चक्रेतथात्रिभुवनेश्वरान् ।
 ब्रह्मब्रह्मविदांश्चेष्टः परमेष्ठी प्रजापतिः ॥१२॥
 तानबाधन्तसहिताः स पत्नादैत्य दानवाः ।
 राक्षसाश्च तथा युद्धं तेषामासीत्सुदारुणम् ॥१३॥
 दिव्यं वर्षसहस्रन्तु पराजीयन्त देवताः ।
 जयिनश्चाभवन्विप्रबलिनो दैत्यदानवाः ॥१४॥

ताम्रा से श्येनी आदि कन्याएँ उत्पन्न हुईं । इन कन्याओं से ही श्येत, भास एवं शुक्रादि क्षेत्रगण उत्पन्न हुए ॥८॥ इसी से पाक्षपणों एवं प्रधा से पतङ्ग गणों ने जन्म लिया । हे ऋषिवर ! अदिति के गर्भ से उत्पन्न कश्यप भी जो सन्तानें थीं ॥९॥ उनके पुत्र, धेवते और नात्ती, धेवते आदि एवं उनकी सन्तानें समस्त विश्व में व्याप्त हो गईं ॥१०॥ हे ऋषि ! कश्यप के पुत्रों में देवता ही प्रमुख हैं, उनके त्रिविधगण, सात्विक, राजस एवं तामस हैं ॥११॥ परमेष्ठ एवं ब्रह्मज्ञ ओष्ठ प्रजापति ब्रह्माजी देवतागणों को त्रिभुनेश्वर एवं यज्ञ-भुक् किया था ॥१२॥ किन्तु विमाताओं से उत्पन्न दैत्य, दावन और राक्षस मिलकर देवतागणों के प्रति शत्रुता का आचरण करते हुए बाधा पैदा करते थे, इसलिये उनका दैवगणों के साथ हजारों वर्षों तक विकराल युद्ध हुआ । हे ब्राह्मण ! इस महायुक्त में देवगणों की पराजय हुई और बलवान् दैत्य व दानव जीत गये ॥१३-१४॥

ततो निराकृतान्पुत्रान्दैत्यैर्यदनिवैस्तथा ।
 हूतत्रिभुवनान्दृष्ट्वा ह्यदितिर्मुनिसत्तम ॥१५॥
 आच्छिन्नयज्ञभागंश्च शुचासंपीडिताभृशम् ।
 आराधनाय सवितुः परं यत्नं प्रचक्रमे ॥१६॥
 एकाग्रानियताहारापरं नियममास्थिता ।
 तुष्टावते जसां राशिगगनस्थं दिवाकरम् ॥१७॥
 नमस्तुभ्यं परां सूक्ष्माभ्रौवर्णी विभ्रतेतनुम् ।
 धाम धामवतामीशधाम्नाभाधारशाश्वत ॥१८॥

जगतामुपकारायतथापस्तवगोपते ।

आददानस्ययद्रूपतीक्ष्ण तस्मै नमाम्यहम् ॥१९॥

ग्रहीतुमष्टमासेनकालेनेन्दुमयरमम् ।

विभ्रतस्तवयद्रूपमतितीक्ष्णं नतास्मितम् ॥२०॥

तमेवमुच्चत सर्वरसवैवर्ण्याययत् ।

रूपमाप्त्वायत्रभास्वस्तस्मैमेघायतेनमः ॥२१॥

हे ऋषिभ्यो ! तदुपरान्त दैत्य दानवा द्वारा त्रिभुवन का हरण किया गया अब हम प्रकार अपने पुत्रों को पराजित हुआ अब यज्ञ भागों से वंचित किसे हुए इतकर, अदिति दाक अब पीडा महित भगवान् भास्वर देव की स्तुति करने लगे ॥१५-१६॥ एकचित्त, नियताहार अब उत्तम नियम परायणता का पालन करती हुए आकाश मटल में विद्यमान तेज राशि भगवान् सूर्यदेव की आराधना करने लगे ॥१७॥ अदिति बोली—हूँ शाश्वत । आप सुन्दर सूक्ष्म मुखों तन धारक हो आप ज्योति स्वरूप, ज्योतिष्कणों में मुख्य अब ज्योति के आधार हो, आपको नमस्कार ॥१८॥ हे गोपत ! विद्वत् का कल्याण करने के लिये जल ग्रहण करने वाली आपकी तीक्ष्ण मूर्ति को नमस्कार ॥१९॥ घाठ महीने की अवधि पर्यन्त इन्दुमय रत्न ग्रहण करने वाली आपकी अत्यन्त तीक्ष्ण मूर्ति को प्रणाम करती हूँ ॥२०॥ हे भगवन् ! उस एकचित्त सम्पूर्ण रत्न को परित्याग कर यथा करने के लिये आप जो वृत्ति कारक मेघ रूप धारण करते हो, उस मेघरूप आपकी मूर्ति का प्रणाम ॥२१॥

वायुं त्समं विनिष्पन्नमशेषश्चोपधीगणम् ।

पावायतवयद्रूपभास्करतनमाम्यहम् ॥२२॥

यच्चरूपनवातीतहिमोत्सर्गादिशीतलम् ।

तत्कालमस्यपोपायतरणेतस्यतेजसः ॥२३॥

नार्ति तीक्ष्ण चयद्रूपनातिशीतचयस्तव ।

वसन्ततीक्ष्णसोम्यतस्मै देवनमोनमः ॥२४॥

आप्यायनमशेषाणादेवानाचतयापरम् ।

पितृणाचनमस्मै नमस्तस्यानायासहेतवे ॥२५॥

यद्रूपंजीवनायैकंवीरुधाममृतात्मकम् ।

पीयतेदेवपितृभिस्तस्मैसोमात्मनेनमः ॥२६॥

आप्यायदाहूरूपाभ्यांरूपंविश्वमयन्त्व ।

समेतमग्नीषोमाभ्यांनमस्तस्मैगुणात्मने ॥२७॥

यद्रूपमृग्यजुःसाम्नामैक्येनत्पतेतव ।

विश्वमेतत्रयीसंज्ञंनमस्तस्मैविभावसो ॥२८॥

जल वर्षा से उत्पन्न अक्षेप औषधियों को पकाने के लिये जो भास्कर मूर्ति आप धारण करते हो, उस मूर्ति को प्रणाम ॥२२॥ हे तरणे ! कश्यप-पोषण हेतु हिमवर्षा इत्यादि के लिये घोर शीतपूर्ण आपका जो रूप है, आपकी उस मूर्ति को प्रणाम ॥२३॥ हे रवे ! बसन्त ऋतु काल में न अत्यन्त तेज और न अत्यन्त शीतपूर्ण आपकी जो सौम्य मूर्ति है, हे देव ! आपकी उस मूर्ति को नमस्कार ॥२४॥ अक्षेप देवता एवं पितृगण को तृप्ति प्रदान करने वाले अन्न को पकाने वाली आपकी जो मूर्ति है, उसको नमस्कार करती हूँ ॥२५॥ संपूर्ण गुल्मलता के जीवन का आधार आपका जो अमृतमय रूप है, जिसे देवता और पितर भी पान करते हैं, ऐसे सोम स्वरूप आपको नमस्कार ॥२६॥ अग्नि एवं सोम दोनों रूपों के मिलन से आपका जो अमृतमय स्वरूप बना है, ऐसे आप गुणात्मा को नमस्कार ॥२८॥

यत्तु तस्मात्परंरूपमोमित्युक्त्व।भिषब्धितम् ।

अस्थूलानन्तममर्लनमस्तस्मैसदात्मने ॥२९॥

एवंसानियतादेवीचक्रेस्तोत्रमहर्निशम् ।

निराहाराविवस्वस्तमारिराघयिषुमुने ॥३०॥

ततःकालेनमहताभगवांस्तपनोऽम्बरै ।

प्रत्यक्षतामगादस्यादाक्षायण्याद्विजोत्तम ॥३१॥

साददर्शमहाकूटंतेजसोऽम्बरसंश्रितम् ।

जगादभेप्रसीदेतिनत्वांपश्यामिगोपते ॥३२॥

यथाहृष्टवतीपूर्वभम्बरस्थंसुदुर्दृशम् ।

निराहाराविवस्वन्तंतपन्तंदनन्तरम् ॥३३॥

नपाततेजमानंददिहपश्यामिभूतले ।

प्रसादकुरूपदयेययद्रूपन्नेदिवाकर ।

भक्तानुकम्पयविभोभक्ताहपाहिमेमुनान् ॥३४॥

इसके अनिरिक्त आपका जो उत्तम गृहम, अनन्त एवं स्वच्छ श्रीरार रूप कहा जाता है, उस निम्बस्वरूप को नमस्कार ॥२६॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे श्रुतिवर ! अदिनि देवी इस प्रकार नियमपरायण एवं निगहार्त जीवन पानन कर भास्कर भगवान् की आराधना करने की आज्ञाक्षा से दिन रात उनकी स्तुति करत लगे ॥३०॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! इसके पश्चात् बहुत समय उद्यमीत होने पर भगवान् मूर्त गगन स्थित रूप दत्त-मुना के समक्ष दिग्यार्द देने लगे ॥३१॥ जो एकदम धमकने वाली अशुमाना द्वारा आकाश मङ्गल में भी स्पष्ट दर्शनीय नहीं थे, उन्हें तेजराशि स्वरूप रवि भगवान् की अदिनि ने पृथ्वी के तल पर विद्यमान दया । उन्हें देखकर अदिनि बहुत भयभीत हुई और बोली—“हे गोपन ! आप मुझ पर प्रमत्त होंगे, मैं आपको देख नहीं सकती ॥३२॥ प्राग्जन्म में निराहार होकर आकाश में विद्यमान असहनीय सूर्यदेव का भिन्न प्रकार तप्तता प्रदान करते दया, अब इस धरातल पर भी मैं उसी प्रकार ही तेजवान् मूर्ति को देख रही हूँ । हे दिवकर ! मुझ पर प्रमत्त होवे, जिसने मैं आपकी स्वभाविक स्वरूप का दर्शन कर सकूँ । हे प्रभो ! ध्यान लता पर कृपा करने हैं, मैं आपकी भक्त हूँ, आप मेरे पुत्रों की रक्षा करें ॥३३-३४॥

त्वमानाविमृजसिप्रिद्वमेतत्त्वपासिम्यतिकरणायनप्रवृत्त ।

वधार्त्नेनयममिन्नप्रयानितत्त्ववत्तोऽन्यान्निहिषतिरन्तिमर्वन्लोके ॥३५॥

तत्राहगिरजसजितस्त्वमिन्द्रोवित्तेशपितृपतिरप्पनिःसमीर ।

नीमाग्निगंगनपतिर्ब्रह्मणोऽजि ।

विन्नव्यनयमवतात्मरूपधाम्न ॥३६॥

यज्ञेगत्वामनुदिनमानमकर्ममुक्ताः ।

स्तुवन्तांविधिपदं द्विजायजन्ति ।

ध्यायन्तांविनियनकेनमो नवन्मयोगस्या यमपदं प्रयातिन्मर्त्या ॥३७॥

तपसिपचसिविश्वं पासिभस्मीकरोषि,
प्रकटयसिमयूखैर्हार्दयस्यम्बुगर्भः ।
सृजसिक मलजन्मापालयस्य,
च्युताख्यः क्षपयसिचयुगांते रुद्ररूपस्त्वमेकः ॥३८॥

आप ब्रह्मा के रूप में इस जगत् के जन्मदाता हैं, जगत् की सृष्टि के पश्चात् स्थिति काल में इसका पोषण करते हैं एवं प्रलय काल में सम्पूर्ण तत्त्व आप में ही विलीन होते हैं। इसलिए सभी लोगों में आपके अतिरिक्त अन्य कोई मति नहीं है ॥३५॥ आप ब्रह्मा, हरि, अजसंज्ञित शिव, इन्द्र, धनर्षति कुबेर, यम, वरुण एवं सभी हैं और आप ही अग्नि, आकाश, पृथ्वी का आधार एवं सागर हैं। आप ही समस्त तेज पदार्थों के आत्मरूप हैं, अधिक आपकी क्या स्तुति करूँ ? ॥३६॥ हे यज्ञेश ! आपके कर्मों में लीन ब्राह्मण लोग प्रतिदिन विभिन्न छन्दों द्वारा स्तुति करके आपकी पूजा करते हैं। एकाग्रचित्त योगी पुरुष आपका ध्यान करते हुए परमधाम प्राप्त करते हैं ॥३७॥ विश्व को ऊँघता प्रदान कर्ता तुम ही जगत् को रक्षित, भस्म किरणों द्वारा प्रकाशित करते हो एवं जल गर्भ को भेदने वाली किरणों के समूह से आह्ला-दित एवं पुनः उत्पन्न करते हो, देवराज व मनुष्य सर्वत्र आपको प्रणाम करते हैं और पापी मनुष्य एकचित्त होने पर भी आपको प्राप्त नहीं कर सकते ॥३८॥

६७—अदिति के गर्भ से आदित्य का जन्म

ततः स्वतेजसस्तस्मादाविर्भूतो विभावसुः ।
अदृश्यत तदादित्यस्तप्तताम्रो यमप्रभः ॥१॥
अथ तां प्रणतां देवीं तस्य संदर्शनान्मुने ।
प्राह भास्वान्वृणुष्वेष्टवरं मत्तोयमिच्छसि ॥२॥
प्रणता शिरसा सा च जानुपीडितभेदिनी ।
प्रत्युवाच विवस्वन्तं वरदं समुपस्थितम् ॥३॥

देवप्रसीदपुत्राणां तद्वत्त्रिभुवनमम ।
 यज्ञभागश्च दैत्यैश्च दानवैश्च बलाधिके ॥४॥
 तन्निमित्तप्रसादत्वरूपममगोपते ।
 अशेनतेषां भ्रातृत्वगत्वानाशयतद्विपून् ॥५॥
 ययामत्तनयाभूय यज्ञभागभुज प्रभो ।
 भवेयुरधिपाश्चैव त्रैलोक्यस्य दिवाकर ॥६॥
 तयानुक्म्पापुत्राणामुप्रसन्ने रवेमम ।
 कुरुप्रपन्नातिहरस्य तत्त्वमुच्यते ॥७॥

भाकंटेय जी न ब्रह्मा—नृपदेवान् भगवान् अपने तेज मण्डल के बीच
 लपे हुए तबि के ममान खमकन हुए प्रकट हुए ॥१॥ हे ऋषिदेव ! उनको
 बिलोच कर अदिनि देवी ने उनको प्रणाम किया तो मूर्त्य भगवान् ने कहा—
 आपकी जो आकांक्षा हो वही अभीष्ट वर मुझ से मागो ॥२॥ अदिति अपने
 पुत्रने पृथ्वी पर देव कर दीक्ष नवा कर प्रणाम करते हुए वर प्रदान करने को
 उग्र भगवान् मूर्त्य से बोली—हे देव ! आप मुझ पर प्रसन्न होवें, घोर बल-
 दानी दैत्य और दानवा मे मेरे पुत्रों का त्रिभुवन एवं यज्ञ भाग हर लिया है
 ॥३॥ हे गोपते ! इस अभिप्राय से आप मुझ पर प्रसन्न होकर और अ-
 दिति मेरे पुत्रों के भाई बन कर शत्रु दैत्य और दानवों का धमन कीजिये
 ॥४॥ हे दिनकर प्रभो ! जिसमें कि मेरे पुत्रगण पुन यज्ञ भाग से अतिकारी
 एवं त्रिभुवन के अधिपति शत्रु ॥५॥ हे रवे ! मुझ पर प्रसन्न होकर मेरे
 पुत्रों को ऐसा अनुग्रहीत कीजिये पीडितों के शत्रु । आपकी लोक-पालन कहत
 है ॥६॥

ततस्तस्माद्भगवान्भाम्नरोवारितस्कर ।
 प्रणनामदिति विप्रप्रसादमुमुक्षोर्विभु ॥८॥
 महसाशेन ते गमैसम्भूयाहमगपत ।
 स्वत्पुत्रगणूनदितेनाशयाध्यागुनिर्वृत ॥९॥
 इत्युन्त्या भगवान्वास्वानन्तर्दनिमुपागमत् ।
 निवृत्तासापित्तमममृताग्निनवाञ्छिता ॥१०॥

ततोरक्षिमसहस्रात्तुसौसुम्नाख्योरवेःकरः ।

विप्रावतारंसंचक्रेदेवमातुरथोदरे ॥११॥

कृच्छ्रचान्द्रायणादीनिसाचचक्रेसमाहिता ।

शुचिःसंभारयामासदिव्यंगर्भमितिद्विज ॥१२॥

ततस्तांकश्यपःप्राहकिञ्चत्कोपप्लुताक्षरम् ।

किम्मारयसिगर्भाण्डमितिनित्योपवासिनी ॥१३॥

साचतंप्राहगर्भाण्डमेतत्पश्येतिकोपना ।

नमारितंविपक्षाणांमृत्यवेतद्भूविष्यति ॥१४॥

माकंरडेय जी ने कहा—हे ब्राह्मण ! उसके पश्चात् जल शुष्क करने वाले भगवान् भास्कर प्रसन्नतापूर्वक नतमस्तक अदिति से बोले ॥११॥ हे अदिति ! सहस्रांशु तुम्हारे गर्भ से मैं जन्म लूँगा और तुम्हारे पुत्रगण के शत्रु समस्त वैश्य व दानवों को समूल नष्ट करूँगा । तुम्हारे पीड़ित पुत्र तुरन्त ही सुखी होंगे ॥१२॥ इस प्रकार वर देकर भगवान् भास्कर अदिति के नामने से अंतर्धान हो गये और अदिति ने भी मनोवांछित वर प्राप्त करके तपस्या त्याग दी ॥१०॥ हे ब्राह्मण ! तदुपरान्त सूर्य की सौ पुत्र किरण सहस्रांशु से अदिति के गर्भ से अवतरित हुई ॥११॥ हे ब्राह्मण ! वह अदिति सावधानी पूर्वक कृच्छ्रचान्द्रायण आदि व्रत व अनुष्ठान करती हुई पवित्रता पूर्वक दिव्य गर्भ धारण करने लगी । तब कश्यप जी ने क्रोधित हो कहा—तुम प्रतिदिन उपवास करके अपने इस गर्भ को नष्ट करोगी ॥१३॥ अदिति बोली—“हे कुपित स्वभाव, मैं इस गर्भ को नष्ट नहीं कर, रही, यह तो शत्रु वैश्य और दानवों का शमन करने वाला होगा ॥१४॥

इत्युक्त्वाततदागर्भमुत्ससज्जंसुरारणिः ।

जाज्वल्यमानंतेजोभिःपत्युर्वचनकोपिता ॥१५॥

तंहृष्टाकश्यपोगर्भमुद्यद्भास्करवर्चसम् ।

तुष्टावप्रणतोभूत्वाऋग्विराद्याभिरादरात् ॥१६॥

संस्तूयमानःसतदागर्भाण्डात्प्रकटोऽभवत् ।

पद्मपत्रसवर्णमिस्तेजसाव्याप्तदिङ्मुखः ॥१७॥

यथान्तरिक्षादाभाप्यकश्यपमुनिसत्तमम् ।
 मनोयमेधगम्भीरबागुवाचाशरीरिणी ॥१८॥
 मारिततेयत प्रोक्तमेतदण्डत्वयामुने ।
 तस्मान्मुनेमुतस्तेऽयमात्तं ण्डारयो भविष्यति ॥१९॥
 सूर्याधिकारचविभुर्जगत्पकरिष्यति ।
 हनिष्यत्यसुराश्चाययज्ञभागहरानरीन् ॥२०॥
 देवानि क्षम्येति वचो गगनात्समुपागमन् ।
 प्रहर्षमतुलयातादानवाश्चरुतौजसः ॥२१॥

मार्कण्डेय जी ने कहा—इस प्रकार कह देवमाता अदिनि पति के वचनो को सुनकर तेज एव जाउवन गर्भ को परित्याग किया ॥१५॥ उगने हुए सूर्य व तुल्य प्रभावान् उस गर्भ को देख कर कश्यप आदर सहित नत-मस्तक होकर मन्त्रोच्चारण द्वारा स्तुति करने लगे ॥१६॥ कश्यप की स्तुति को सुन कर वह आत्कर तेजस्वी शिरणो को दिशाओं में फैलाते हुए पद्मपत्र मुग्ध वर्णमुक्त होकर वर्षाण्ड से प्रकट हुए ॥१७॥ इसके पश्चात् जलपूर्ण मेघ व समान भस्तरिक्ष के मध्य कोई विदेह वाली ऋषिवर कश्यप को सम्बोधित करते हुए कहने लगे ॥१८॥ हे ऋषि, आपने इस घण्ट को 'मारित' कहा, इसलिए आपके इसमें उत्पन्न पुत्र का नाम मातंण्ड होगा ॥१९॥ यह महा-पुरुष, विश्व में सूर्य की भाँति तेजस्वी होने एव आपके देव पुत्रों के यज्ञ भाग हरन वाले दैत्य, दानव और असुरों का विनाश करेंगे ॥२०॥ भस्तरिक्ष वाली के इन वचनों को सुन कर देवगण आश्चर्य कल्पित होकर आकाश में आये एव दैत्य, दानवगण तेज विहीन हो गये ॥२१॥

ततो युद्धायर्दं तेयानाजुहावशतक्रतु ।
 महद्देवीमुं दायुक्तो दानवाश्च समम्ययु ॥२२॥
 तेषां युद्धमभूदोर देवानामममुरं मह ।
 नम्रास्यदोत्तिसदोम समस्तभुवनान्तरम् ॥२३॥
 तस्मिन् युद्धे भगवता मार्तण्डेन निरीक्षिता ।
 तेजसा दह्यमानास्ते भस्मीभूता महामुराः ॥२४॥

ततःप्रहर्षमतुलंप्राप्ताः सर्वेदिवीकसः ।
 तुष्टुबुस्तेजसांयोनिभार्त्तण्डमदितितथा ॥२५॥
 स्वाधिकारांस्तथाप्राप्तायज्ञभागांश्चपूर्ववत् ।
 भगवानपिभार्त्तण्डःस्वाधिकारमथाकरोत् ॥२६॥
 कदम्बपुष्पवद्भास्वानधश्चोर्ध्वचरश्मिभिः ।
 वृत्ताग्निपिण्डसदृशोदघ्रेनातिस्फुरद्वपुः ॥२७॥

उसके पश्चात् सुरगण सहित इन्द्र ने दैत्यों को युद्ध के लिये आमन्त्रित किया तो वे उत्साहपूर्वक आये ॥२२॥ उस समय दानवों से सुरगण का भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया और त्रिभुवन सुरों व असुरों के शस्त्रास्त्रों की चमक से भी उसी प्रकार तेजपूर्ण हो गया ॥२३॥ उस महाभयंकर संघर्ष में तमोगुण युद्ध में असुरगण भगवान् मार्तण्ड के तेज द्वारा नष्ट हो गये और देवगण शक्तिमान् होकर हर्ष मनाने लगे उन्होंने सूर्य भगवान् और अदिति की स्तुति की ॥२४-२५॥ अथ देवता अपने अधिकार को पुनः प्राप्त करके यज्ञ भाग पाने लगे और सूर्य भगवान् और भी अधिक प्रकाशमान होकर आकाश में कदम्ब पुष्प की तरह स्थित होकर सर्वांग तेजोमयी किरणों का प्रसार करने लगे ॥२६:२७॥

६८—भानुतन लेखन

अथतस्मैददौकन्यांसंज्ञानामविवस्वते ।
 प्रसाद्यप्रणतोभूत्वाविश्वकर्मा प्रजापतिः ॥१॥
 वीवस्वतस्तुसम्भूतोमनुस्तस्यांविवस्वतः ।
 पूर्वमेवतथारूपातंतत्स्वरूपंविशेषतः ।
 भूयस्तच्छ्रोतुमिच्छामिभार्त्तण्डस्यमहात्मनः ।
 चरितंहंतियत्पापंकलीसंश्रृण्वतानृणाम् ॥२॥
 त्रीण्यपत्यान्यसौतस्यांजनयामासगोपतिः ।
 द्वौपुत्रौसुमहाभागीकन्याञ्चयमुनांमुने ॥३॥

मनुर्गौवस्वतो ज्येष्ठ आद्वदेव प्रजापतिः ।
 ततायमोयमोचैव यमलोसवभूवतु ॥४
 यत्तेजोऽभ्यधिकतस्य मातं ददस्य विवस्वतः ।
 तेनातिनापयामास त्रीन् लोकान्सचराचरान् ॥५
 गोलाकारन्तु तद्दृष्ट्वा मज्जा रूप विवस्वतः ।
 असहन्ती महत्तेजः स्वाध्यायाप्रेक्ष्य साऽब्रवीत् ॥६
 अहयास्यामि मद्र ते स्वमेव भवनपितुः ।
 निर्विकारस्त्रयाप्यत्र स्थेयमच्छासनाच्छुभे ॥७
 इमोचवालकीमहा कन्या च वरवर्णिनी ।
 सभाष्यी नैव चाख्येयमिदं भगवते त्वया ॥८

मार्कण्डेय जी ने कहा—तदनन्तर प्रजापति विश्वकर्मा ने सूर्य नागायण
 ने सम्पुत्र प्रणत होकर उन्हें प्रसन्न किया और अपनी 'संज्ञा' नाम की कन्या
 का विवाह उनके साथ कर दिया संज्ञा के गर्भ से जिन 'वैवस्वत मनु' का
 जन्म हुआ उनका वर्णन विस्तार पूर्वक पहले ही किया जा चुका है। यह
 मुनिकर कौटिक ने प्रार्थना की कि उनके परचान् मार्तण्ड का जो कृष्ण और
 चरित्र हो उसको भी मैं मुनना चाहता हूँ, क्योंकि उनका पुण्य चरित्र कलि-वान
 के पापों को मिटाने वाला है। मार्कण्डेय जी कहने लगे कि संज्ञा से सूर्य-
 भगवान् के तीन मनाने उत्पन्न हुई, वैवस्वत मनु तथा यम नामक दो पुत्र और
 यमुना नाम की पुत्री इनमें से वैवस्वत मनु ज्येष्ठ हैं और उनके परचात् यम
 और यमी जुड़वा भाई-बहिन उत्पन्न हुए। उस समय का सूर्य का तेज बहुत
 अधिक था जिससे वह तीनों भोक्तों को बहुत अधिक तप्त करते थे। उनकी
 पत्नी मज्जा उस महान् तेज को सहन करने में असमर्थ हुई और उसने अपनी
 छाया में एक धार कहा—हे शुभे ! तुम्हारा बर्याण हो ! मैं अपने पिता
 के घर जाती हूँ। तुम मेरी आज्ञानुसार यही रह कर मेरी इन तीनों सन्तानों को
 प्रेमपूर्वक पालन करती रहना और इस वृत्तान्त को सूर्य भगवान् को कभी
 मासूम न होने देना ॥१-८॥

आकेशग्रहणाद्देविआशापान्नैवर्कहंचित् ।
 आख्यास्यामिमतंतुस्यंगम्यतांयत्रवाञ्छितम् ॥६
 इत्युक्ताछायायासंज्ञाजगामपितृमन्दिरम् ।
 तत्रावसत्पितुर्गोहेकञ्चित्कालंशुभेक्षणा ॥१०
 भर्तुःसमीपंयाहीतिपित्रोक्तासापुनःपुनः ।
 अगच्छद्वडवाभूत्वाकुरुन्विप्रोत्तरांस्ततः ॥११
 तत्रतेपेतपःसाध्वीनिराहारामहामुने ।
 पितुःसमीपंयातायाःसंज्ञायावाक्यतत्परा ॥१२
 तद्रूपधारिणौछायाभास्करंसमुस्थिता ।
 तस्यांचभगवान्सूर्यःसंज्ञंयमितिचिन्तयन् ॥१३
 तथैवजनयामासद्वौसुतौकन्यकांतथा ।
 पूर्णजस्यमनोस्तुल्यःसावर्णिस्तेसोऽभवत् ॥१४
 यस्तयोःप्रथमंजातःपुत्रयोर्द्विजसत्तम ।
 द्वितीयोयोऽभच्चान्यःसग्रहोऽभूच्छनैश्चरः ॥१५

छाया ने कहा—जब तक सूर्य भगवान् जब तक दण्ड देने के भाव से मेरे केब नहीं पकड़ेंगे अथवा शाप देने को उद्यत न होंगे तब तक मैं इसगृहस्थ को कदापि प्रकट न होने दूंगी । यह सुन कर संज्ञा अपने पिता के घर चली गई और कुछ समय तक वही निवास करती रही । इसके पश्चात् जब उसके पिता विश्वकर्मा ने उससे पति के घर जाने का कहा तो वह बड़वा (घोड़ी) का रूप धारण करके उत्तर कुरु प्रदेश में जाकर निराहार तपस्या करने लगी । इस बीच में छाया संज्ञा सूर्य भगवान् की सेवा करती रही और उन्होंने उसे अपनी पत्नी संज्ञा ही समझकर उससे भी दो सन्तानें उत्पन्न कीं इनमें से एक सावर्णि मनु और दूसरे शनिश्चर (ग्रह) थे ॥६—१५॥

कन्याभूतपतीयातांवब्रुसवरणोनृपः ।
 संज्ञातुपाथिवीतेषामात्मजानांयथाऽकरोत् ॥१६
 स्नेहान्नपूर्वजातानांतथाकृतवतीसती ।
 मनुस्तत्क्षान्तवांस्तस्यायमश्रास्यानचक्षमे ॥१७

बहुशोयाच्यमानस्तुपितु पत्न्यासदु सित ॥
 सवत्तोपाक्षवाल्याक्षभाविनोऽर्थस्यवैवलात् ॥१८
 पद्मानन्तर्जंयामासच्छायासज्ञायमोमृने ॥
 तत शशापचयमसज्ञाभामपिणीभृशम् ॥१९
 पद्मानर्जयसेयस्मात्पितृभार्यागिरीयसीम् ।
 तस्मात्तवैवचरण पतिप्यतिनसशय ॥२०

छाया के गर्भ से एक 'मपनी' नाम की बच्चा भी हुई जिसका विवाह
 यथा समय मवरण नामक नृप से किया गया । छाया-मंज्ञा अपनी सन्तानों से
 जितना अधिक स्नेह करती थी उतनी प्रथम परनी की तीनों सन्तानों से नहीं
 करती थी । उसके इस पक्षपात पूर्ण व्यवहार को देखकर वैवस्वत मनु ने तो
 कुछ न कहा पर यम के दूत उसे सहन न कर सके और एक बार उन्होंने रोप
 पूषक तथा होनहार के वशीभूत होकर छाया मंज्ञा को डाँट कर मारने के लिये
 पैर उठाया । इस पर छाया को बड़ा क्रोध आया और अपने कहा—'जि मैं
 तुम्हारे पूजनीय पिता की पत्नी हूँ, फिर भी तुमने मुझे मारने की लात उठाई
 इससे फल स्वरूप तुम्हारा यह पैर कट कर गिर जायगा' ॥१९-२०॥

यमस्तुतेनशापेनभृशपीडितमानस ।
 मनुनामहृधमर्तिमासर्वत्रिरेन्यवेदयत् ॥२१
 स्नेहेनतुल्यमम्मासुमातादेवनयतंते ।
 विमृज्यज्जायसोऽप्यस्मान्कनीयासौबुभूर्पति ॥२२
 तस्यामयोद्यत पादोनतुदेहेनिपातित ।
 वाल्याद्वायदिवामोहात्तद्भ्रवान्भन्तुमर्हति ॥२३
 शतोऽज्ञातवोपेनजनन्यातनयोयत ।
 ततोमन्येजननीमिमावैतपतावर ॥२४
 विगुणेष्वपिपुत्रेषुनमाताविगुणापित ।
 पादस्तेपततापुत्रकथमेतत्प्रवक्ष्यति ॥२५
 तवप्रमादाच्चरणोनपतेद्भ्रगवन्पया ।
 मातृगापादयमेऽद्यतवाचिन्तयगोपते ॥२६

इस शाप को सुनकर यम बड़े दुःखी हुए और पिता के पास जाकर सब घृतान्त उर्नको सुनाया और कहा कि हे देव ! माता हमारी अपेक्षा छोटे भाई-बहिनों का अधिक स्नेह और पालन-पोषण करती है । इससे असंतुष्ट होकर बाल-स्यभाव वश अथवा भूल से मैंने उसकी ओर जात उड़ाई, पर मारा नहीं । फिर भी मैं उस अपराध को आपसे क्षमा चाहता हूँ ॥ यम ने फिर कहा—पिता जी ! यदि कोई पुत्र दुष्ट, दुराचारी होता है तो भी माता उसका कभी अहित नहीं करती । पर उसने क्रोध करके 'तुम्हारा पैर गिर जाय' ऐसा जो शाप दे डाला इससे मुझे वह अपनी माता नहीं जात पड़ती । अब आप ऐसी कृपा करें कि माता के क्रोध पूर्वक दिये शाप के कारण मेरा यह पैर न गिरे ॥२१-२६॥

असंशयमिदंपुत्रभविष्यत्प्रकारणम् ।

येनत्वामाविशत्क्रोधो धर्मज्ञसत्यवादिनम् ॥२७॥

सर्वपापेवशापानांप्रतिघातोहि विचिंते ।

ननुमात्राभिशप्तानां क्वचिच्छापनिवर्तनम् ॥२८॥

न शक्यमेतन्मिथ्यातुकर्तुमातुर्वचस्तव ।

किञ्चित्तत्रविधास्यामिपुत्रस्नेहादनुग्रहम् ॥२९॥

कुमयोर्मांसमादायप्रयास्यन्तिमहीतलम् ।

कृततस्यावचसत्यत्वं च त्रातो भविष्यसि ॥३०॥

आदित्यस्त्वब्रवीच्छायां किं नर्थतनयेषु वी ।

तुल्येष्वप्यधिकः स्नेह एकत्र क्रियते त्वया ॥३१॥

नूनं नैवात्वं जननी संज्ञा कापित्वमागता ।

विगुरोष्वप्यपत्येषुकथं माता शपेत्सु नम् ॥३२॥

सूर्य भगवान् ने कहा—पुत्र ! तुम धर्मज्ञाता और सत्य परायण होकर भी जब क्रोध के वशी भूत हो गये तो उसका यह कुपरिणाम होना संभव है । और सब शायों से छुटकारा मिल सकता है पर माता के शाप से बच सगने का कोई मार्ग नहीं है । इसलिये तुम्हारी माता के वचनों को मिथ्या करने में तो असमर्थ हूँ पर तुम्हारी विनय के कारण कोई अंग्थ उपाय-व्यतलाऊंगा । जिस

से तुम्हारी माता की बात पूरी हो जाय और तुम्हारा पैर भी बच जाय । इन-
लिये ऐसा होगा कि वृषि तुम्हारे पैर का रस लेकर पृथ्वी तल पर डाल देंगे—
ऐसा होने पर तुम्हारी माता का शाप पूरा हो जायगा और फिर तुम्हारा पैर
भी ठीक हो जायगा । इसके पश्चात् सूर्य भगवान् ने छाया से कहा कि—तुम्हारे
लिये सभी सन्तान समान रूप से प्रिय होनी चाहिये । पर ऐसा न करके तुम
किसी के प्रति कम और किसी से अधिक स्नेह करती हो । इससे मालूम पड़ता
है कि तुम इनकी माता नहीं हो, यदि माता होती तो पुत्र को ऐसा शाप नहीं
दे सकती थी ” ॥ २७-३२ ॥

सातत्परिहरन्तीचनाचक्षोविवस्वतः ।

सचात्मानसमाधाययुक्तस्तत्त्वमपश्यत् ॥३३॥

तशप्तमुद्यतदृष्ट्वा छायासज्ञादिवस्पतिम् ।

भयेनकपिताग्रहान्यथावृत्तन्यवेदयेत् ॥३४॥

विवस्वास्तुततोऽक्रुद्धश्चत्वाश्वमुरमम्यमात् ।

सचापितयथान्यायमर्चयित्वादिवाकरम् ।

निर्दग्धुकामरोपेणसान्त्वयामासुव्रतः ॥३५॥

तवातितेजसाव्याप्तमिदरूपमुदु सहम् ।

अमहन्तीततः सज्ञावनेचरतिव्रतप ॥३६॥

द्रव्यतेताभवानक्षस्वभार्याशुभचारिणीम् ।

रूपार्थं भवतोऽरण्येचरन्तीसुमहत्तप ॥३७॥

स्मृतमग्रहाणोवाक्ययदितेदेवरोचते ।

रूपनिवर्तयाम्येतत्तवयान्तदिवस्पते ॥३८॥

यतोहिभास्वतोरूपप्रणासीत्परिमण्डलम् ।

ततस्तयेतितप्राहृत्वपारमगवानुरवि ॥

विश्वकर्मात्वनुज्ञातश्चाकक्षीपेविवस्वतः ।

अभिमारोप्यतरोजः शतनायोपचक्रमे ॥३९॥

तब छाया सना ने सत्य बात छिपा कर कुछ बहाना बना दिया इस
पर सूर्य भगवान् ने कारिद्रव इति से अरुण घटना की कारणविक्षता जान ली और

वे छाया-संज्ञा को शाप देने के लिये उल्लत हुये । इस पर छाया-संज्ञा भयभीत होकर काँप उठी और ओ कुब्ज घटना घटी थी वह सब खोल कर सुतादी । सारा हाल जान कर सूर्य को बड़ा क्रोध पैदा हुआ और मन में प्राया समस्त विद्व को दग्ध कर दें । तब विश्व-कर्मा ने उनकी यथाविधि पूजा करके उनको शान्त किया और कहा कि तुम्हारे इस अत्यन्त दुःसह तेज को सहन न कर सकने से संज्ञा तप करने चली गई है । उसे अब भी एकान्त वन में तपस्या और संयम का पालन करते देख सकते हैं । अगर आपकी प्राज्ञा हो तो मैं आपके वर्तमान रूप और आकार को सौम्य और दर्शनीय रूप में परिवर्तन करूँ । सूर्य भगवान् ने विश्व की बातों से संतुष्ट और प्रसन्न होकर कहा— 'ऐसा ही करो ।' तब भगवान् भास्कर शाकद्वीप में चले गये और विद्व कर्मा उन्हें खराह के समान घुमाकर सबीन सौम्य रूप देने लगे ॥ ३३-४० ॥

भ्रमताऽशेष जगतां नाभिभूतेन भास्वता ।

समुद्राद्रिवनोपेतासारुरोहमहीनभः ॥४१

गगनञ्चाखिलं ब्रह्मन्सचन्द्रग्रह तारकम् ।

अधोगतं महाभागवभूवाक्षितमाकुलम् ॥४२

विक्षिप्त सलिलाः सर्ववभूवुश्चतथाब्धयः ।

व्याभ्रवन्तमहाशैलाः शीर्णसानुनिबन्धनाः ॥४३

ध्रुवाधाराप्यशेषाणि विष्ण्यानि मुनिसत्तम ।

वृत्त्यद्रश्मिनिबन्धानि ह्यधोजग्मुः सहस्रशः ॥४४

वेगभ्रमण संजातवायुक्षिप्ताः समन्ततः ।

व्यशीर्यन्तमहामेघाघोर रावविराविणः ॥४५

भास्वद्भ्रमणविभ्रान्तं भूम्याकाशरसातलम् ।

जगादाकुलमत्यर्थतदासीन्मुनिसत्तम ॥४६

त्रैलोक्ये सकले विप्रभ्रममाणे सुरर्वयः ।

देवाश्च ग्रहाणां सार्द्धं भास्वन्तर्भाभितुष्टुवुः ॥४७

आदिदेवोऽसि देवानां ज्ञातमेतत्स्वरूपतः ।

स्वर्गस्थित्यन्तकालेषु त्रिधा भेदेन तिष्ठसि ॥४८

स्वस्तितेऽस्तु जगन्नाथधर्मवर्षाहिमाकर ।

जुपस्वशान्ति लोकानां देवदेवदिवाकर ॥४१॥

इन्द्रश्चागत्य तदेव लिख्यमानययाऽस्तुवत् ।

जयदेवजगद्व्यापिञ्जयाक्षेप जगत्पते ॥४०॥

मार्कण्डेय जी कहने लगे—भगवान् विश्व के नाभि स्वरूप भगवान् मास्वर के घूमने से समुद्र, पर्वत, वन, जलज्योत, पृथ्वी, आकाश आदि घस्थिर होने लगे । उस समय चन्द्रमा, ग्रह, तारागण आदि के सहित सम्पूर्ण गगन-भरहल ही नीचे गिरता हुआ सा जान पड़ने लगा । समस्त सागर, नदी, जला-शयो की जलराशि में हलचल पैदा होगई और महापर्वतों के शिखर-बिखरने लगे । ध्रुव अपने स्थान से च्युत होने लगा और इससे समस्त आकाशस्थ पिंडों की स्थिति उलटी-पलटी होने लगी । सब नीचे गिरने लगे । वायु भी महा-भयङ्कर वेग से धक्कर काटने लगी और महामेघ धीरे शब्द करने लगे । इस प्रकार सूर्य भगवान् के घूम जाने पर पृथ्वी, आकाश और रसातल में सर्वत्र बिभ्रूललता, गड़बड़ी उत्पन्न होकर समस्त विश्व में आकुलता फैल गई । इस प्रकार त्रिलोक घूम जाने से सर्वत्र सङ्कट व्याप्त होकर देवर्षि, देवगण, ब्रह्मा आदि भगवान् आदित्य की स्तुति, प्रार्थना करने लगे—आप समस्त देवों में आदि देव हैं, आपकी महिमा सर्वत्र विदित है, आप ही स्वर्ग आदि समस्त लोकों और अम्लि भुवनों की स्थिति का कारण हैं, आप ही सबकी रक्षा और कल्याण करने वाले हैं । हे जगन्नाथ ! आप ही श्रीराम, वर्षा और शीत स्वरूप हैं । हे सब देवों में महान् दिवाकर देव । प्रसन्न होकर त्रिलोक की व्याकुलता को दूर करो । स्वर्गाधिपति इन्द्र ने भी आकर सूर्य भगवान् की स्तुति की—हे देव ! आप ही सर्वत्र व्याप्त हैं, आपकी जय हो, हे अखिल जगत् पति आपकी जय हो ॥४१॥ से ५०॥

ऋषयश्च ततः सप्तऋषिपुत्राणि पुरोगमा ।

तुष्टुर्वृषिर्विधं स्तोत्रं स्वस्तिस्वस्तीतिवादिन ॥४१॥

वेदोक्ताभिरथाग्र्यामिर्वालिखित्याश्रतुष्टुवृ ।

भास्वन्तमृगिभिराद्याभिर्लिख्यमानं मुदायुता ॥४२॥

त्वंनाथमोक्षिणामोक्षोध्येयस्त्वंध्यानिनापरः ।

त्वंगतिःसर्वभूतानांकर्मकाण्डेऽपिवर्तताम् ॥५३

संप्रजाम्योऽस्तुदेवेशशन्नोऽस्तुजगताम्पते ।

शन्नोऽस्तुद्विपदेनित्यंशन्नश्चास्तुचतुष्पदे ॥५४

ज्ञतोविद्याधरगणायक्षराक्षसपन्नगाः ।

कृताञ्जलिपुटाःसर्वेशिरोभिःप्रणतारविम् ॥५५

ऊबुरवं विधावाचो मनः श्रोत्रसुखावहाः ।

सह्यंभवतुतेतेजोभूतानांभूतभावन ॥५६

इसके पश्चात् वसिष्ठ, ऋषि आदि सातों ऋषियों ने स्वस्ति वचन उच्चारण करके सूर्य भगवान् की अनेक प्रकार से स्तुति की । बालखिल्य ऋषि भी ऋग्वेद के आद्य वचनों द्वारा इस प्रकार स्तुति करने लगे—“हे भगवन् ! आप ही मुमुक्षुजनों को मोक्ष प्रदान करने वाले, ध्यानी पुरुषों के ध्येय और कर्मकारण बालों को शुभ फल देने वाले तुम्हीं हो । हे देव ! हे जगन्नाथ ! आप समस्त प्रजा का, हमारा और हमारे द्विपद तथा चतुष्पद जीवों का कल्याण करो । फिर विद्याधर, यक्ष, राक्षस, पन्नग आदि सब हाथ जोड़कर सूर्य भगवान् को प्रणाम करके कहने लगे—हे भगवन् ! आपका तेज समस्त छोटे-बड़े जीवों के सहन करने योग्य हो । सब कोई उससे सुखी हो सकें ॥५१ से ५६॥

ततोहाहाहूहृश्च वनारदस्तुम्बुरुस्तथा ।

उपगायितुमारवागान्धर्वकुक्षलारविम् ॥५७

षड्भ्रमध्यमगान्धारग्रामत्रयविशारदाः ।

मूर्च्छनाभिश्चतानैश्चसंप्रयोगैःसुखप्रदम् ॥५८

विश्वाचीचधृताचीचउर्वश्यथतिलोत्तमा ।

मेनकासहजन्याचरम्भाचाप्सरसांवरा ॥५९

ननृतुर्जगतामीशेलिख्यमानेविभावसी ।

ज्ञानभावविलासाख्यान्कुर्वन्तोऽभिनयावहून् ॥६०

प्रावाद्यन्ततस्तत्रवेणुवीणादिभङ्गीरा ।

पणवा पुष्कराश्च वृन्दङ्गा पटहानकाः ॥६१॥

देवदुन्दुभय शङ्खाः शतशोऽप्यसहस्रशः ।

गायत्रिश्च वगाधर्वनृत्यस्त्रिश्चाप्सरोगणैः ॥६२॥

तूर्यवादित्रयोपैश्चसर्गकोलाहलीकृतम् ।

तत कृताञ्जलिपुटाभक्तिर्भ्रातृममूर्तयः ॥६३॥

लिर्यमानसहस्राद्यु प्रसेमु सर्ष देवताः ।

तत कोलाहलेतस्मिन्सर्ष देवसमागमे ।

तेजस शान्तनश्चक्रे विश्वकर्माशनं शनं ॥६४॥

इति हिमजलधर्मकालहेतोर्हंरकमलासनविष्णुसस्तुतस्य ।

सनुपरिलिखननिशम्यभानोर्षजतिदिवाकरलोकमायुषोऽप्ते ॥६५॥

इसके अनन्तर समीत शास्त्र के निपुण हाहा-हूह, वृन्दय, नारद आदि पण्डित, मध्यम और गायार तीनों प्रामो तथा मूच्यंवा, ताल आदि के नियमा-नुसार मूर्त्य भगवान् के सम्मुख श्रव्य गायन करने लगे ॥५७-६०॥ उसी समय पर विश्वाधी, धृताधी, उर्वशी, तिलोत्तमा, मेनका, सहजया, रम्भा आदि स्वर्ग की आनरादे भी मूर्त्य भगवान् के नवीन रूप से प्रसन्न होकर हाव-भाव पूर्वक तरह तरह के नृत्यों का प्रदर्शन करने लगीं ॥६१-६३॥ देवगण द्वारा वेणु, वीणा, दुंदर पणव, पुष्कर, मृदङ्ग, पटव, प्रानक, वृन्दभी, शङ्ख आदि हजारों वाद्यों की ध्वनि होने लगी । इस प्रकार गन्धर्वों के संगीत, अप्सराओं के नृत्य और देवगणों के वाद्या के गन्ध द्वारा उस समय समस्त जगत् महान् ध्वनि से भर गया । फिर सब किसी ने अत्यन्त भक्ति और विनय सहित भगवान् भास्कर की नमस्कार किया । उसी कोलाहल के बीच विश्वकर्मा धीरे-धीरे मूर्त्य के तेज को बम करते गये ॥६१-६४॥ जो सूर्य भगवान् जाड़ा, वर्षा और शीघ्र आदि ऋतुओं के उत्पादक हैं और ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी त्रिनकी स्तुति करते उनकी यह तनुनिष्ठन की कथा भक्ति पूर्वक सुनने से आनुबोध में मग्गति प्राप्त होती है ॥६५॥

६६—विश्वकर्मा द्वारा सूर्यस्तवन

लिख्यमानेततोभानौविश्वकर्माप्रजापतिः ।

उद्भूतपुलकःस्त्रोत्रमिदंचक्रे विवस्वतः ॥१॥

विवस्वतेप्रणतहितानुकम्पिनेमहात्मनेसमजवसप्तसप्तये ।

सुतेजसेकमलकुलावबोधिनेनमस्तमःपटलपटावपाटिने ॥२॥

पावनातिशयपुण्यकर्मेणेनैककामविषयप्रदायिने ।

भास्वरानलमयूखशायिनेसर्वलोकहितकारिणे नमः ॥३॥

प्रजायलोकत्रयकारणायभूतात्मनेगोपतयेवृषाय ।

नमोमहाकारुणिकोत्तमायसूर्यायचक्षुःप्रभवालयाय ॥४॥

विवस्वतेज्ञानभृतेन्तरात्मनेजगत्प्रतिष्ठायजगद्धितैषिणे ।

स्वयम्भुवेलोकसमस्तचक्षुषेसुरोत्तमायामिततेजसेनमः ॥५॥

क्षणमुदयाचलमौलिमणिःसुरगणमहितहितोजगतः ।

स्वमयूखसहस्रवपुर्जगतिविभासितमांसिनुदन् ॥६॥

भवतिमिरासवपानमदाद्भवतिविलोहितविग्रहता ।

मिहिरविभासितः सुतरांश्रिभुवनभावनभानिकरैः ॥७॥

मार्कण्डेय जी कहने लगे—जिस समय विश्वकर्मा जी सूर्य भगवान् के तेज को क्षीण करके सहन योग्य बना रहे थे, उस समय उसके तवीन रूप के दर्शन से पुलकित होकर उन्होंने उस मूर्ति का स्तवन किया । विश्वकर्मा जी बोले—जो जीव आपके सम्मुख प्रणत हो रहे हैं । उन सबका आप कल्याण और कृपा करने वाले हैं । आप ही हम बेग बाले, सप्त अश्व बाले, कमलों को खिलाने वाले और अन्धकार को दूर करने वाले हैं, आपको नमस्कार हो । अत्यन्त पवित्र, पुण्य शाली, कामनाओं की पूर्ति करने वाले, अत्यन्त तीव्र किरणों से युक्त और समस्त लोकों के हितकारी भगवान् भास्कर को नमस्कार हो तीनों लोकों को उत्पन्न करने वाले, पंचभूतों के मूल, रश्मि पति, धर्म स्वरूप, कृपालु और नेत्रों को प्रकाश देने वाले सूर्य भगवान् को नमस्कार हो । जगत् के आधार अन्तरात्मा के प्रकाश, स्वयम्भू, अखिल विश्व को दृष्टि शक्ति

देने वाले, देवों में श्रेष्ठ, महान् तेजस्वी सूर्य भगवान् को नमस्कार हो। हे भगवन् ! तुम ही जगत् के हितकारी और उदयाचल के शिखर के माला स्वरूप हो, तुम ही सहस्रो रूप ग्रहण करके जगत् को प्रकाशित करते हो। तुम्हीं तिमिर रूपी आसव को पान करन के निमित्त तोहित मूर्ति धारण करके किरणों द्वारा दीप्तिमान् होते हो ॥१-७॥

रथमधिरुह्यसमावयवचारुविकपितमुखरचिरम् ।

सततमलिनहयैर्भवंश्चरसिजगदितायविततम् ॥८॥

अमृतमयेनरसेनसमविवृधपितृनपितृपयसे ।

प्ररिगणसूदनतेनतवप्रणतिमुपैत्यलिखामिवपुः ॥९॥

द्युक्समवरणहयप्रथितंतवपदपासुपवित्रतमम् ।

नतजनवरसलमाप्रणतत्रिभुवनपावनपाहिरवे ॥१०॥

इतिमफलप्रभूतिभूतत्रिभुवनभावनघामहेतुमेकम् ।

रविमस्तिजगत्प्रदीपभूतप्रिदशवरप्रणतोऽस्मिसर्वदात्वाम् ॥११॥

हे सूर्य नारायण ! जिस रथ पर चढ़कर सान घोड़ों के द्वारा जगत् के हितार्थे तुम विचरण करते हो वह समान अवयव वाला, आकर्षक विस्तार युक्त और निविस्त्र कपिते वाला है। हे शत्रुहन्ता ! तुम देवता और पितरों को एक ही साथ जीवन प्रदामक मुखा प्रदान करते हो। इसी निमित्त जगत् को हित कामना से मैंने प्रथम ही आपकी प्रणाम करके आपके देह को लिखा है (तथाशा) है। हे भक्तवत्सल ! हे त्रिभुवन की पवित्र करने वाले ! मैं आपकी ही इस हरी-भरी मृष्टि के कारण विश्वात दृष्टा हूँ और तुम्हारी चरण-रज के प्रताप से अश्वत्थ पवित्र माना जाता हूँ आप मेरी रक्षा करें। इस तरह मैं सर्वदा संसार के कारण रूप, त्रिभुवन की पवित्र बनाने वाले, तेज के भण्डार, जगत् के प्रणामक और निर्माणकर्ता भगवान् सूर्य को नमस्कार करता हूँ ॥८-११॥

१००—रविमाहात्म्य वर्णन

एवंसूर्यस्तवंकुर्वन्विश्वकर्मादिवस्पतेः ।

तेजसःषोडशभागंमण्डलस्थमधारयत् ॥१॥

शातितंस्तेजसोभागंदशभिःपञ्चभिस्तथा ।

अतीवकान्तिमच्चारुभानोरासीत्तदावपुः ॥२॥

शातितंचास्ययत्तेजस्तेनचक्रंविनिर्मितम् ।

विष्णोःशूलंचशर्वस्यशिविकाघनदस्यच ॥३॥

दंडःप्रेतपतेःशक्तिर्हर्मसेनापतेस्तथा ।

अन्येषांचैवदेवानामायुधानिसविश्वकृत् ॥४॥

चकारतेजसाभानोभसुराण्यरिशान्तये ।

इतिशातिततेजाःसशुशुभेनातितेजसा ॥५॥

वपुर्दधारमार्तण्डःसर्वावयवशोभनम् ।

सददर्शसमाधिस्थःस्वाभाय्याविडवाकृतिम् ॥६॥

अधृष्यांसर्वभूतानांपसानियमेनच ।

उत्तरांश्चक्रुर्गत्वाऽऽवोभानुरागमत् ॥७॥

मार्कण्डेय जी ने कहा—विश्वकर्मा जी इस प्रकार सूर्य नारायण की स्तुति करके उनके तेज का पंद्रह अंश निकाल कर सोलहवाँ भाग छेप रहने दिया । इससे सूर्य का कलेवर अत्यन्त सुन्दर, सौम्य और कांति वाला बन गया जो पंद्रह अंश तेज निकाला गया था उसके द्वारा विश्वकर्मा ने विष्णु का चक्र, शिव का त्रिशूल, कुबेर की पालकी, यम का दण्ड, कार्तिकेय की शक्ति और अन्य कितने ही अमोघ अस्त्र निर्माण किये जिनसे देवगण शत्रुओं को जीत सकें । इस प्रकार मार्तण्ड का तेज नियन्त्रित हो जाने पर उनकी शोभा बहुत बढ़ गई और जगत् के हितार्थ उनका कलेवर अत्यन्त उत्तम बन गया । इस प्रकार परमोपयोगी आकार पाकर वे अपने स्थान पर स्थित हुए और फिर ध्यान लगाकर अपनी पत्नी को घोड़ी के रूप में देखा जो कुरु प्रदेश में उनके हितार्थ अत्यन्त संयम नियम सहित तपस्या कर रही थी । तब सूर्यदेव भी घोड़े का स्वरूप रखकर उसके पास पहुँचे ॥१-७॥

साचदद्वातमायान्तपरपु सोविशङ्कया ।
 जगामसमुत्तेतस्यपृष्ठरक्षणतत्परा ॥८
 ततश्चनासिकायोगतयोस्तत्रसमेतयो ।
 यदवायाचतेत्ते जोनासिकाम्याविवस्वत ॥९
 देवोतत्रसमुत्पन्नावश्विनोभिपजावरी ।
 नासत्यदस्त्रोतनयावश्विवक्राद्विनिर्गतौ ॥१०
 मार्कण्डेयसुतावेतावश्वरूपधरस्यहि ।
 रेतसोऽन्तेचरेवन्त छङ्गीधन्वीतनुनघृक् ॥११
 अश्वारूढ समुद्भूतोवाणतूणसमन्वित ।
 तत स्वरूपममलदर्शयामासभानुमान् ॥१२
 तस्यशान्तसमालोक्यसारूपमुदमाददे ।
 स्वरूपधारिणीचेमामनिनायनिजालयम् ॥१३
 सज्ञाभाष्यीप्रीतिमतीभास्करोवारितस्कर ।
 तत् पूर्वसुतोयोऽस्यासोऽमूर्द्धवस्वतोमनु ॥१४

उनके समीप आते देवकर सज्ञा को अपने सतीत्व रक्षा की चिन्ता हुई
 और वह उनके सामने झुँह करके खड़ी हुई । जब दोनों की नासिकायें मिली
 तो सूर्य भगवान् का तेज नाव के मार्ग से ही घोड़ी के भीतर प्रविष्ट हुआ और
 उससे दोनों अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए जो देवगण के बँध बने । उनके मुख से
 निकले तेज से 'नासत्य' और 'दस्त्र' की उत्पत्ति हुई और शेष भाग से 'रेवन्त'
 का जन्म हुआ जो रक्षा आवरण, खडग और धनुष धारी हैं । फिर जब सूर्य
 भगवान् ने अपना निर्मल धान्त रूप दिखाया तो सज्ञा परम प्रसन्न हुई और
 अपना वास्तविक रूप ग्रहण करके उनके साथ स्वगृह में आये ॥८-१४॥

द्वितीयश्चयम शापादमर्हद्विग्नप्रहात् ।
 यमस्तुतेनशापेनभृशपीडितमानस ॥१५
 यमोभिरोचतेयस्मादमराजस्वत स्मृत ।
 शृमयोमासमादायपादतप्तमेहीतलम् ॥१६

पतिष्यन्तीतिशापान्तंतस्यचक्रेपितास्वयम् ।
 धर्मदृष्टिर्यतश्चासौसमोमित्रेतथाऽहिते ॥१७
 ततोतियोगेतंयाम्येचकारतिमिरापहः ।
 तस्मैददौपिताविप्रभगवाँल्लोकपालताम् ॥१८
 पितृणामाधिपत्यञ्चपरितुष्टोदिवाकरः ।
 यमुनांचनदींचक्रैर्कलिदान्तरधाहिनीम् ॥१९
 अश्विनीदेवभिषजौकृतौपित्रामहात्मना ।
 गुह्यकाधिपतिस्त्वेचरेवन्तोविनियोजितः ॥२०

संज्ञा के ज्येष्ठ पुत्र वैवस्वत मनु की पदवी पर अधिष्ठित हुए, उनसे छोटे यम धर्म के ज्ञाता होने से धर्मराज बने। वे धर्म और सत्य पर स्थिर रहकर प्रत्येक प्राणी के साथ न्याय युक्त व्यवहार करते थे, इसे उन्हें जीवों के कर्मों का फल देने का कार्य दिया गया। उनको छाया-संज्ञा ने जो शाप दिया था उसके फलस्वरूप उनके पैर का मांस कृमि पृथ्वी तल पर ले गये। सूर्य भगवान् ने उनको लोकपाल और पितरों का अधिकार भी दिया। पुत्री यमुना को कलिन्द देण में बहने वाली नदी बनाया गया। अश्विनी कुमारों को वेवताओं का बँध, रेवन्त को गुह्यकों का शासक नियुक्त किया ॥१५-२०॥

एवमप्याहचततोभगवाँल्लोकभावितः ।
 त्वमप्यशेषलोकस्यपूज्योवत्सभविष्यसि ॥२१
 अरण्यादिमहादाववैरिदस्युभयेषुच ।
 त्वांस्मरिष्यन्तियेमर्त्यामोक्ष्यन्तेतेमहापदः ॥२२
 क्षेमंबुद्धिसुखंराज्यमारोग्यंकीर्तिमुन्नतिम् ।
 नराणांपरितुष्टस्त्वंपूजितःसंप्रदास्यसि ॥२३
 छायासंज्ञासुतश्चापिसावर्णिःसुमहायशाः ।
 भाव्यःसोऽनागतेकालेमनुःसावर्णिकोऽष्टमः ॥२४
 मेरुपृष्ठेतपोघोरमद्यापिचरतिप्रभुः ।
 भ्राताशनैश्चरस्तस्यग्रहोऽभूच्छासनाद्रवेः ॥२५

यवीयसीतुयाकन्याऽदित्यस्याभूद्विद्वजोत्तम ।

अभवत्सासरिच्छ्रेष्ठातपतो लोकपावनी ॥२६॥

यस्तु ज्येष्ठो महाभाग सर्गो यस्येह साम्प्रतम् ।

विस्तरतस्य वक्ष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य ह ॥२७॥

इदं योजन्मदेवानां शृणु यादृापठेत वा ।

विवस्वतस्तूनां नारवेर्माहात्म्यमेव च ॥२८॥

आपदप्राप्य मुच्येत प्राप्नुयाच्च महायशः ।

अहोरात्रं नृत्तपापमेतच्छ्रमयते श्रुतम् ।

माहात्म्यमादिदेवस्य मार्तण्डस्य महात्मनः ॥२९॥

भगवान् सूर्यं नारायण ने देवन्त से कहा कि तुम सब लोकों में पूजनार्थ होंगे और जो कोई अग्नि, वायु, जोर आदि के भय से भ्रान्त होकर तुम्हारा स्मरण करेगा तो तुम विपत्ति में उनकी रक्षा करने में समर्थ होंगे । छाया सज्ञा के पुत्र सावर्णं मेरु पर्वत पर तपस्या में निरत हैं और वे भ्रामाभी 'सावर्णिक' नाम के मन्वन्तर में मनु होकर महान् यज्ञस्वी होंगे । उनके भ्राता शर्नवधर को प्रमुख ग्रह नियत किया । यमुना जी को भी नदियों में श्रेष्ठ स्थान दिया गया और वे लोकपावनी प्रसिद्ध हुई । वैवस्वत मनु का मन्वन्तर समय में चल रहा है । उनके वध का विस्तार और वर्णन मन्वन्तर किया जायगा । इस प्रकार जो व्यक्ति सूर्य भगवान् का माहात्म्य और उनकी संगानों की कथा अच्छा पूर्ववत् ध्यान करते हैं वे सब प्रकार की आपत्तियों से छुटकारा पाकर सुख सोभाग्य के अधिशारी बनते हैं और उनके समस्त पाप दूर हो जाते हैं ॥२१-२९॥

१११—राज्य वर्द्धन की आयुवृद्धि

भगवन् नयित मय्यग्मानो मन्ततिसम्भव ।

माहात्म्यमादिदेवस्य स्वरूपज्ञातिविस्तरात् ॥१॥

भूयोऽपि भगवन्तं सम्यग्माहात्म्यमुनिसत्तम ।

श्रोतुमिच्छाम्यहन्मेषप्रसन्नो वक्नुमर्हसि ॥२॥

श्रूयतामादिदेवस्यमाहात्म्यंकथयामिते ।
 विवस्वतोयज्ञकारपूर्वभाराधितोजनैः ॥३॥
 दमस्यपुत्रोविख्यातोराजाभूद्राज्यवर्द्धनः ।
 ससम्यक्पालनंचक्रेपृथिव्याःपृथिवीपतिः ॥४॥
 धर्मतःपाल्यमानंतुतेनराष्ट्रंमहात्मना ।
 वधृधेऽनुदिनंविप्रजनेनचघनेनच ॥५॥
 हृष्टपुष्टमतीवासीत्तस्मिन्नाजन्यशेषतः ।
 निर्भयःसकलश्रोव्यापौरजानयदोजनः ॥६॥
 नोपसर्गोनचव्याधिर्नचव्यालोद्धवंभयम् ।
 नचावृष्टिभयन्तत्रदमपुत्रमहीपतौ ॥७॥

कौण्डिकि बोले—हे भगवन् ! सूर्य के माहात्म्य को मैं पुनः श्रवण करना चाहता हूँ, आप मुझ पर प्रसन्न होकर उसे मुझे सुनाइये ॥१-२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—आदि देव भगवान् सूर्य ने पुराकाल में आराधित होकर जो कुछ किया, वह सब तुम्हारे प्रति वर्णन करता हूँ ॥३॥ दम के पुत्र राज्यवर्द्धन नाम से प्रसिद्ध हुए और उन्होंने भले प्रकार से पृथ्वी का पालन किया ॥४॥ हे ब्रह्मन् ! उन्होंने अपने धर्म का पालन करते हुए प्रजा की रक्षा की, इसलिये उनके शासन काल में घन, जन से राष्ट्र की निरन्तर वृद्धि होने लगी ॥५॥ उनके राज्यास्तित्व होने पर अन्य राजा पुरजन और सम्पूर्ण पृथिवी अत्यन्त पुष्ट हुई ॥६॥ उन राजा राज्यवर्द्धन के राज्य में कोई उपसर्ग, रोग हिंसक जीवों का तथा अनावृष्टि का भय आदि नहीं था ॥७॥

सईजेचमहायज्ञैर्ददौदानानिचार्थिनाम् ।
 सुधर्मस्याविरोधेनबुभुजेविषयानपि ॥८॥
 तस्यैवंकुर्वतोराज्यंसम्यक्पालयतःप्रजाः ।
 सप्तवर्षसहस्राणिजग्मुरेकमहर्षयथा ॥९॥
 निदूरथस्यतनयादाक्षिणात्यस्यभूमृतः ।
 तस्यपत्नीवभूवाथमानिनीनाममानिनी ॥१०॥

कदाचित्तस्यसासुभ्रू शिरसोऽप्यञ्जनादृता ।
 पश्यतोराजनोकस्यमुमोचाश्रूणिमानिनी ॥११॥
 तदश्रु बिन्दवोगात्रेयदातस्यमहीपते ।
 तदावीक्ष्याथ बुदनातामपृच्छतमाननीम् ॥१२॥
 किमेतदितिपप्रच्छमाननीराज्यवधनः ॥१३॥
 पृष्टासातुततस्तेनभर्त्राप्राहमनस्विनी ।
 नकिंचिदितितभूय पप्रच्छस्यमहीपति ॥१४॥

वह महापशु का अनुग्रह करने अर्थात् वियो की दान देते और विपरीत का भोग भी घम महित करते थे ॥१५॥ इस प्रकार राज्य शासन चलाते और भले प्रकार प्रजा पालन करते हुए उनका बात सहज वर्ष का समय एक दिन के समान व्यतीत होगया ॥१६॥ उनका विवाह दक्षिण देश के राजा विदूरथ की पुत्री मानिनी से हुआ था ॥१७॥ एक समय राजपुत्रों के समक्ष रानी मानिनी राजा के शिर पर तल मल रही थी, तभी उसके नेत्र ने अमी टपक पड़ा ॥११॥ जब वह अमी राजा के शरीर पर पड़ा, तब उन्होंने उसके मधु पूर्ण नेत्र देखकर उमका कारण पूछा ॥१२॥ परन्तु,उमने कोई उत्तर नहीं दिया और वह दिना छद्म किय रदन करने लगी, यह देखकर राजा न पूछा—तुम क्यों रो रही हो ? ॥१३॥ रानी ने राजा क प्रश्न का उत्तर 'कोई बात नहीं' कहकर दिया ॥१४॥

बहुदा पृच्छतस्तस्यभूभृत सासुमध्यमा ।
 नकिंचिदितिहोवाचसामूयोराज्यवधनम् ।
 किमेतदितिपप्रच्छमानिनीपार्यिवःपुन ।
 बहुदा प्रेरितातेनसाभर्त्रातित्रभानिनी ।)
 दशयामासपलितवेशमारान्तरोद्भवम् ॥१५॥
 पांगराचमहीपालकिमन्यन्मन्युकारणम् ।
 ममातिमन्दमाग्यायाजहामायनृपस्तत ॥१६॥
 मधिगम्याहतापत्नीशृण्वतासर्वभूभृताम् ।
 पौराणाचमहीपालायेतश्रामन्ममावृता ॥१७॥

शोकेनालंविशालाक्षिरोदितव्यंनतेशुभे ।
जन्मद्विपरिणामाद्याविकाराःसर्वजन्तुषु ॥१८॥
अधीताःसकलावेदाइष्टायज्ञाःसहस्रशः ।
दत्ताद्विजानांपुत्राश्चसमुत्पन्नावरानने ॥१९॥
भुक्ताभोगास्त्वयासाद्धयेमर्त्यैरतिदुर्लभाः ।
सम्यक्चपालितापृथ्वीशौर्ययुद्धेष्वनुष्ठितम् ॥२०॥
मित्रैःसहेष्टैर्हंसितंविहृतंचवनान्तरे ।
किमन्यन्नकृतंभद्रेपलितेम्योविभेषियत् ॥२१॥

राजा के पुनः अनेक बार प्रश्न करने पर भी जब रानी ने कोई उत्तर नहीं दिया, तो राजा का आग्रह बढ़ा और उनके बारम्बार पूछने पर रानी ने उनके बालों के बीच में एक स्वेत बाल दिखाया ॥१५॥ और बोली—हे महाराज ! क्रोधित होने का कोई कारण नहीं है, आप इसे देखिये, यह मेरा मन्द भाग्य ही है, रानी की यह बात सुनकर राजा बड़े जोर से हँस पड़े ॥१६॥ उन्होंने हँसते-हँसते ही राजपुरुषों और पुरजनों के समक्ष ही रानी मानिनी से कहा ॥१७॥ हे कल्याणी ! हे विशाल नेश वाली ! तुम रोओ मत, क्योंकि सभी जीवों में जन्म, वृद्धि और परिणामादि विकार उत्पन्न होते रहते हैं, इसलिये इस विषय में शोक नहीं करना चाहिये ॥१८॥ मैंने सभी वेदों का अध्ययन, हजारों यज्ञों का अनुष्ठान, ब्राह्मणों को दान और पुत्रोत्पादन ॥१९॥ मनुष्यों के लिये दुर्लभ सुखों का तुम्हारे साथ उपभोग, भले प्रकार पृथिवी-पालन, न्याय पूर्वक सगान ॥२०॥ तथा मित्रों के साथ हास-परिहास और वन-विहार आदि सभी कार्य किये हैं, ऐसा कौन-सा कार्य मेरे द्वारा होने से रह गया है, जिसके लिये तुम मेरा पका हुआ बाल देखकर डर रही हो ॥२१॥

भवन्तुकेशाःपलितावलयःसन्तुमेशुभे ।
शैथिल्यमेतुमेकायःकृतकृत्योऽस्मिमानिनि ॥२२॥
मूर्ध्न्यदृशितंभद्रेभवत्यापलितंमम ।
चिकित्साभेदतस्याहंकरोमिवनसंश्रयात् ॥२३॥

बाल्येवालक्रियापूर्वतद्वत्कीमारकेचया ।
 यौवनेचापियायोग्यावाद्धं केचनसश्रया ॥२४॥
 एवमत्पूर्वजैर्मद्रे वृत्तस्त्वत्पूर्वजैश्चयत् ।
 अतोनेतेश्च पातस्यैकचित्पद्याभिकारणम् ॥२५॥
 अतन्तेमन्युना मद्रे नन्वभ्युदयवारिमे ।
 दधानपलितस्यास्यमारोक्षीनिष्प्रयोजनम् ॥२६॥
 ततः प्रणम्यतभूषा पौराश्र्वैषमभीषणा ।
 साम्नाप्रोचुर्महीपालामहर्षैराज्यवधनम् ॥२७॥
 नरोदितव्यमनयातवपत्न्यानराधिप ।
 रोदिनव्यमिहास्माभिरयवासवञ्जन्तुभि ॥२८॥

हे शुभे ! चाहे मेरे बाल एक गये हों, चाह रेह मिथिल हो जाय, इस
 अय में कोई हानि नहीं समझना, क्योंकि मैं अब धन्य हो गया हूँ ॥२२॥ तुमने
 मेरे सिर में जो पत्रा हुआ धान देखा है, उसकी चिकित्सा बन कर आश्रय
 लेकर बहूँगा ॥२३॥ आत्यपाल में बाल क्रीडा, कीमारावस्था में उसके प्रमुख
 कार्य और युवावस्था में भोगादि तथा वृद्धावस्था के प्राप्त होने पर बन का ही
 आश्रय लेना चाहिये ॥२४॥ मेरे पूर्व पुत्रों ने तथा उनके भी पूर्व पुरषों ने इसी
 प्रकार किया है, इसलिये मैं तुम्हारे रुदन को व्यर्थ ही समझता हूँ, इसलिये
 शोक को छोड़ दो ॥२५॥ मेरे इन दश वंश का दिनायी देना, मेरा भाग्योदय
 होता ही है, इसलिये रुदन नहीं करना चाहिये ॥२६॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—
 हे महर्षे ! फिर पास में बैठे हुए राज पुत्रों और पुरवामियों ने महाराज राज्य-
 वर्द्धन को प्रणाम करके विनय पूर्वक कहा ॥२७॥ हे राजर्ष ! आपकी भाषा
 का रुदन व्यर्थ है, परन्तु अब हमारे अथवा अन्य सब प्राणियों के रोने का
 समय आ गया है ॥२८॥

त्वश्र्वीगिययानायवनवासाश्रितवच ।
 पतन्तिनेनन प्राणान्नानितानात्त्रयानृप ॥२९॥
 सज्ज्यास्यामहेभूषयदियातिभवान्वनम् ।
 ततोऽपक्रियाहानि सर्वपृथ्वीनिवासिनाम् ॥३०॥

भविष्यतिनसन्देहस्त्वथिनाथवनाश्रये ।
 साचधर्मोपधाताययदितत्प्रविमुच्यताम् ॥३१॥
 सप्तवर्षसहस्राणित्वयेयंपालितामही ।
 तत्समुत्थंमहापुण्यमालोकयनराधिप ॥३२॥
 वनेवसन्महाराजत्वंकरिष्यसियत्तपः ।
 तन्महीपालनस्यास्यकलानार्हतिषोडशीम् ॥३३॥
 सप्तवर्षसहस्राणिमयेयंपालितामही ।
 इदानींवनवासस्थममकालोयमागतः ॥३४॥
 ममापत्यानिजातानिदृष्ट्वामेऽपत्यसन्ततीः ।
 स्वल्पैरेवमहोभिर्मह्यन्तकोनसहिष्यति ॥३५॥

हे नाथ ! आप हमारा प्रति पालन करने वाले हैं, आपके मुख से वन का आश्रय ग्रहण करने की बात सुनकर हमारे प्राण ही निकले जा रहे हैं ॥३६॥ यदि आप वन को जाते है, तो हम सभी आपके साथ चलेंगे, क्योंकि आपके वनवासी होने पर मनुष्यों की सभी क्रिया नष्ट हो जायगी ॥३७॥ यदि आप इससे धर्म की हानि समझें तो अपने वनाश्रयी होने के विचार को छोड़ दीजिये ॥३१॥ हे राजन् ! आपको इस पृथिवी का पालन करते हुए सात सहस्र वर्ष हुए हैं, इतने काल में कितने महा-पुण्य की उपलब्धि हुई है, इस पर विचार कीजिये ॥३२॥ हे राजन् ! वन में निवास करके वहाँ आप जितनी तपस्या करेंगे, उसका फल इस पृथिवी पालन रूप कर्म के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं होगा ॥३३॥ राजा बोले—मैं सात सहस्र वर्ष से इस पृथिवी का पालन कर रहा हूँ, अब वनवास करने का उपयुक्त अवसर मेरे समक्ष उपस्थित है ॥३४॥ मेरे पुत्र उत्पन्न हो चुके हैं, उन पुत्रों की जो सन्तान होगी, उसे देखकर यमराज अब कुछ समय के लिये भी मेरा जीवित रहना सहन नहीं करेंगे ॥३५॥

यदेतत्पलितंमूर्ध्नितद्विजानीतनागराः ।

दूतभूतभनार्यस्यमृत्योरत्युग्रकर्मणः ॥३६॥

सोऽह राज्ये सुतकृत्वा भोगास्त्यक्त्वा वनाश्रय ।

तपस्तप्ये सभायान्तिनया वलमसैनिका ॥३७॥

ततो विद्यामु मवनदेवज्ञानवनीपति ।

पुत्रराज्याऽभिषेकाय दिनलभान्यपृच्छत ॥३८॥

श्रुत्वा च ते तु नृपतेर्वचो व्याकुलचेतस ।

दिनलग्नचहोराश्रनचिदु शास्त्रदृष्टय ॥३९॥

ऊचुश्च तमहीपालदेवज्ञावाष्पगदगदम् ।

ज्ञानानि न प्रणष्टानि श्रुत्वा ततो वचो नृप ॥४०॥

ततोऽभ्यनगरेभ्यश्च भृत्यैराष्ट्रेभ्य एव च ।

ततस्तस्माच्च नगरात्प्रोचुर्येणाभ्युपागमन् ॥४१॥

समुत्पत्य महीपालतयियासु मुने वनम् ।

प्रमम्पिशिरसो भूत्वा प्रोचुर्ग्राहणमत्तमा ॥४२॥

हे नागर्षिको ! मरे शिर म जा श्वेत वेश देखा गया है, उसी वेश को उग्र कर्म वाली मृत्यु का दूत समझो ॥३६॥ इसलिये मैं पुत्र का राज्याभिषेक करके घोर सम्पूर्ण भोगों को छोड़ कर वन में निवास करता हुआ यम सैनिकों को आने तक तप करूँगा ॥३७॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—फिर राजा ने वन में जाने का दृढ निश्चय कर ज्योतिषियों से पुत्र के राज्याभिषेक दिन और लग्न दिखवाया ॥३८॥ राजा के वचन को सुनकर वे शास्त्रदर्शी ज्योतिषी भी व्याकुल हृदय होगये और इस कारण लग्नादि देखने में अमर्षय रहकर ॥३९॥ गदगद स्वर में राजा के प्रति बोले—हे राजन् ! आपकी बात सुनकर हमारा सभी ज्ञान लुप्त होगया है ॥४०॥ हे मुन ! इससे पश्चात् जो अन्यान्य राज्य उन महाराज के आधीन हुए थे, उनमें तथा उन्हीं राजधानी के अन्य नगरों से मनेवानेय वृद्ध ब्राह्मण वहाँ ॥४१॥ आये और उन्होंने अपने शिर को कम्पित करते हुए राजा में इस प्रकार कहा ॥४२॥

प्रमोदपाहिनी राजन्यालिता मयथापुरा ।

सीदिप्यत्यस्ति नोलोक्स्त्वयि भूपवनाश्रये ॥४३॥

त्वकुक्ष्यतयाराज्ययथानोसीदनेजगत् ।

यावज्जीवामहेवीरस्वल्पकालमिमेवयम् ।

नेच्छामश्चभवन्त्यद्रष्टुं सिंहासनंविभो ॥४४॥

इत्येवंतैस्तथान्यैश्चद्विजैःपौरपुरःसरैः ।

भूपैर्भृत्यैरमात्यैश्चराजाप्रोक्तःपुनःपुनः ॥४५॥

वत्तवासविनिबन्धनोपसंहरतेयदा ।

क्षमिष्यत्यन्तकोनेतिददौसचतदोत्तरम् ॥४६॥

ततोऽमात्याश्चभूपाश्चपौरवृद्धास्तथाद्विजाः ।

समेत्यमन्त्रयामासुःकिमत्रक्रियतामिति ॥४७॥

तेषामन्त्रयतांविप्रनिश्चयोऽयमजायत ।

अनुरागवतांतत्रमहीपालेऽतिधार्मिके ॥४८॥

सम्यग्ध्यानपराभूत्वाप्रार्थयामःसमाहिताः ।

तपसाराध्यभास्वन्तमायुरस्यमहीपतेः ॥४९॥

हे राजन् ! प्रसन्न होइये, हम पर अनुग्रह करते हुए पहिले के समान ही हमारा पालन कीजिये, हे महाराज ! आपके वन में जाने से सभी जीव अत्यन्त दुःखित होंगे ॥४६॥ इसलिये, जिस प्रकार यह विश्व दुःखी न हो वैसे ही कार्य करिये, हमारा जीवन अल्पकाल का ही रह गया है, इतने समय में हम इस सिंहासन को सूना नहीं देखना चाहते ॥४४॥ मार्कण्डेयजी ने कहा— उन विप्रगण, राजागण, प्रजाजन, मन्त्रिगण और भृत्यों के द्वारा बारंबार अनुरोध किये जाने पर भी ॥४५॥ उन्होंने वनवास की इच्छा को नहीं छोड़ा और उन सबको यही उत्तर दिया कि 'यम मुझे क्षमा नहीं करेंगे' ॥४६॥ तब, ब्राह्मणों, वृद्ध पुरवासियों, मन्त्रियों और भृत्यों ने परस्पर विचार करना प्रारंभ किया कि 'अब क्या करें ?' ॥४७॥ हे ब्रह्मन् ! राजा के प्रति स्नेह रखने वाले उन विप्रादि ने यही निश्चय किया कि ॥४८॥ हम भले प्रकार ध्यान पूर्वक तप के द्वारा भगवान् सूर्य का आराधन करें और इन राजा की आयु के लिये प्रार्थना करें ॥४९॥

तत्रैकनिश्चयाःकार्यैकेचिद्गेहेचभास्करम् ।

सम्यग्घोषपचाराद्यैरुपहारैरपूजयन् ॥५०॥

अपरेमौनिनोभूत्वाऋग्जापेनतथाऽपरे ।
 यजुषामथसाम्नाचतोपर्याश्वकिरेर वम् ॥५१॥
 अपरेचनिराहारानदीपुलिनशायिन ।
 तपासिचक्रुरिच्छन्तोभास्कराराधनद्विजाः ॥५२॥
 अग्निहोत्रपराश्रान्येरविसूक्तान्यहर्निशम् ।
 जैपुस्तनापरेतस्युर्भास्करेन्यस्तदृष्टय ॥५३॥
 इत्येवमतिनिर्ग्रन्थभास्कराराधनप्रति ।
 बहुप्रकारचक्रुस्तेततविधिमुपाश्रिता ॥५४॥
 तथातुयततातेषामास्कराराधनप्रति ।
 सुदामानामागन्धर्वंउपगम्येदमब्रवीत् ॥५५॥
 यद्याराधनमिष्ट वोभास्करस्यद्विजातय ।
 तदेतत्क्रियतायेनभानु प्रीतिमुपैष्यति ॥५६॥

ऐसा निश्चय करके सब सूर्य की पूजा करने लगे, किसी ने अर्घ्य देकर
 और किसी ने अन्य विधि से सूर्य भगवान् का पूजन किया ॥५०॥ किसी ने
 मौनावलम्बन कर ऋक् मन्त्र से, किसी ने सामवेद के मन्त्रों से और किसी ने
 यजुर्वेद के विधान से भगवान् भास्कर को सन्तुष्ट किया ॥५१॥ कोई नदी तट
 पर निराहार रह कर और कोई बठिन तप करके सूर्य को प्रसन्न करने लग
 ॥५२॥ किसी ने अग्निहोत्र परायण होकर दिन राति निरन्तर रविमूक्त का
 जप किया और कोई भगवान् सूर्य की ओर देखत हुए ही खड़े रहे ॥५३॥ इस
 प्रकार वे सब अपनी अपनी विधि से भास्कर की आराधना में निश्चय पूर्वक
 लग गये ॥५४॥ उन्हें इस प्रकार सूर्य के आराधन में दृढ़ता से लगे हुए देखकर
 एक मुदामा नामक गन्धर्व वहाँ आया और उन आराधकों से कहने लगा ॥५५॥
 हे विप्रगण ! यदि सूर्य की ही आराधना आपका लक्ष्य है तो, इस प्रकार से
 आराधना करो जिससे वह प्रसन्न हो गये ॥५६॥

तस्माद्गुह्यविशालाह्वयनसिद्धनिपेवितम् ।

कामरूपमहाशंतेगम्यतातत्रवैलधु ॥५७॥

तस्मिन्नाराधनंभानोःक्रियतांसुसमाहितैः ।
 सिद्धक्षेत्रंहितंतत्रसर्वकामानवाप्स्यथ ॥५८॥
 इतितेतद्वचश्च त्वागत्वातत्काननंद्विजाः ।
 ददृशुर्भास्वितस्तत्रपुण्यमायतनंशुभम् ॥५९॥
 तत्रतेनियताहारावर्णाविप्रादयोद्विज ।
 धूपपुष्पोपहाराढ्यांपूजांचक्रुरतन्द्रिताः ॥६०॥
 पुष्पानुलेपनाद्यैश्चधूपगन्धादिकैस्तथा ।
 जपहोमार्घदानाद्यैःपूजनंतेसमाहिताः ।
 कुर्वन्तस्तुष्टुबुध्न्यहान्विवस्वन्तंद्विजातयः ॥६१॥

कायरूप महापर्वत में एक गुह विशाल नामक वन है, जो सिद्धों द्वारा सेवित है, तुम उसी वन में जाकर ॥५७॥ सावधान चित्त से सूर्य का आराधन करो, इससे आपके इच्छित कार्य की सिद्धि होती है, क्योंकि ऐसे कार्यों के अनुष्ठान में सिद्ध क्षेत्र ही अधिक फल देने वाला होता है ॥५८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे द्विज श्रेष्ठ ! गन्धर्व की यह बात सुनकर सब आराधक ब्राह्मण उस वन में पहुँचे, वहाँ उन्हें भगवान् सूर्य का पवित्र मन्दिर दिखायी दिया ॥५९॥ ब्राह्मणादि सभी वर्गों ने वहाँ नियत आहार का अवलम्बन करके, प्रसाद रहित हो गन्ध-पुष्पादि के द्वारा सूर्य का पूजन किया ॥६०॥ हे विप्र ! गन्ध, पुष्प, अनुलेप, धूप, दीप, नैवेद्य पूर्वक जप, होमादि करते हुए सावधान चित्त से सभी आराधक ब्राह्मण सूर्य की स्तुति करने लगे ॥६१॥

देवदानवयक्षाणां ब्रह्माणां ज्योतिषामपि ।
 तेजसाभ्यधिकं देवं ब्रजामशरणं रविम् ॥६२॥
 दिवि स्थितं च देवेशं द्योतयन्तं समन्ततः ।
 वसुधामन्तरिक्षं च व्याप्नुवन्तं मरीचिभिः ॥६३॥
 आदित्यं भास्करं भानुसवितारं दिवाकरम् ।
 पूषणमर्यमाणं च स्वर्भानुं दीप्तदीधितिम् ॥६४॥

चतुर्गुणान्तवाताग्निदुष्प्रेक्ष्यप्रलयान्तगम् ।
 योगीश्वरमनन्तचरक्त पीतसितासितम् ॥६५॥
 ऋषीणामग्निहोत्रेणुयज्ञदेवेष्ववस्थितम् ।
 व्रजामरारण्यदेवतेजोराशितमच्युतम् ।
 अक्षरपरमगुह्य मोक्षद्वारमनुत्तमम् ॥६६॥
 छन्दोभिस्त्र्यम्पैश्चमकृत्तुर्विहङ्गमम् ।
 उदयास्तमनेयुक्त सदामेरो प्रदक्षिणे ॥६७॥
 अनृतचरुतचैवपुण्यतीर्थपृथग्विधम् ।
 विश्वस्थितिमचिन्त्यचप्रपन्ना स्मप्रभाकरम् ॥६८॥

ब्राह्मणों ने कहा—देवता दैत्य, यक्ष और ज्योतिष-ग्रहों में अत्यधिक तेज सम्पन्न भगवान् भास्कर की शरण में हम आये हैं ॥६१॥ जो देवेश्वर आकाश में रह कर सभी दिशाओं को प्रशशित तथा अपनी रश्मियों से सम्पूर्ण पृथिवी और अग्निरिक्ष को व्याप्त कर रहे हैं ॥६२॥ जो आदित्य, भास्कर, भानु, मविनादेव, दिवाकर, पूषा, अर्यमा, स्वर्भानु, दीप्त, दीधिति ॥६४॥ और योगीश्वर कहे जाते हैं और चतुर्गुणों के अन्त में दुष्प्रेक्ष्य कालाग्नि के समान होते हैं अथवा जो अनन्त, सात, पील, श्वेत और वृष्णा हैं ॥६५॥ जो ऋषियों के अग्निहोत्र के समय यज्ञदेव के रूप में अवस्थित होते हैं, जो अक्षर, परमगुह्य, अन्तर्ध्वंश मुक्तिद्वार रूप ब्रह्मा हैं, जो एक बार युक्त हुए छन्द रूप अश्व पर आरुढ़ होकर आकाश में स्थित हैं, उदय और अस्त तक समतलील और सुमेख की प्रदक्षिणा में गदा तत्पर रहते हैं ॥६६-६७॥ जो अमरत्व, सत्य, पुण्यतीर्थ तथा पृथक् रूप से विश्व में अवस्थित हैं, उन अदिनि-पुत्र अचिन्त्य स्वरूप आदिदेव भास्कर प्रभाकर की हमने शरण ग्रहण की है ॥६८॥

योग्यह्यायोमहादेवोयात्रिपुण्यं प्रजापति ।
 वायुगवाशमापन्नपृथिवीगिरिसगरा ॥६९॥
 अरुणक्षत्रचन्द्राद्यावानरपत्यद्रुमौपधम् ।
 व्यक्ताश्रयते पुभूनेपुधर्माधर्मप्रवर्तक ॥७०॥

ब्राह्मीमाहेश्वरीचैववैष्णवीचैवतेतनुः ।

त्रिधायस्यस्वरूपन्तुभानोर्भास्वान्प्रसीदतु ॥७१

यस्यसर्वमयस्येदमङ्गभूतजगत्प्रभोः ।

सनःप्रसीदतांभास्वाञ्जगतांयश्चजीवनम् ॥७२

यस्यैकमक्षरंरूपंप्रभामण्डलदुर्दृशम् ।

द्वितीयमैन्दवंसौम्यसनोभास्वान्प्रसीदतु ॥७३

ताभ्यांचतस्यरूपाभ्यामिदंविश्वंविनिमितम् ।

अग्नीषोममयंभास्वान्सनोदेवःप्रसीदतु ॥७४

इत्थंस्तुत्यातदाभक्त्यासम्यक्पूजाविधानतः ।

तुतोषभगवान्भास्वांस्त्रिभिर्मासैर्द्विजोत्तम ॥७५

ततःसमण्डलादुद्यन्निजबिंबसमप्रभः ।

अवतीर्यददौतेभ्योदुर्दृशोदर्शनंरविः ॥७६

ततस्तेस्पष्टरूपंतंसवितारमजजनाः ॥

पुलकोत्कम्पिनोविप्राभक्तिनम्राःप्रणमिरे ॥७७

नमोनमस्तेस्तुलहस्तरश्मेसर्वस्यहेतुस्त्वमशेषकेतुः ।

पातात्वमीडघोऽखिलयज्ञधामध्येयस्तथायोगविदांप्रसीद ॥७८

जो ब्रह्मा, महादेव, विष्णु प्रजापति, वायु, आकाश, जल, पृथिवी, पर्वत और सागर हैं ॥६९॥ जो ग्रह, नक्षत्र, चन्द्रमा, वृक्ष, वनस्पति, औषधि स्वरूप है तथा जो व्यक्त और अव्यक्त भूतों के धर्म और अधर्म का प्रवर्तन करने वाले हैं ॥७०॥ तथा ब्राह्मी, माहेश्वरी और वैष्णवी के भेदसे जिनका स्वरूप तीन प्रकार का हुआ है, वह सूर्यनारायण हम पर प्रसन्न हों ॥७१॥ जिन अनादि जगदीश्वर के अंक में विश्व के सभी पदार्थ स्थित हैं और जो विश्व के प्राणरूप हैं वह भगवान् भास्कर हम पर प्रसन्न हों ॥७२॥ जिनका प्रकाशमान प्रभामण्डल दुर्दृशा एवं अद्वितीय है और जिन के दिवा कर तथा सुश्राकर दो रूप हैं, वह भास्कर हम पर प्रसन्न हों ॥७३॥ जिनके उन्हीं विव्याप्त दो स्वरूपों से इस अग्निसोममय संसार की रचना हुई है, वही भगवान् प्रसन्न हों ॥७४॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! इस प्रकार स्तोत्र-पाठ पूर्वक

जब उन्होंने तीन महीने तक पूजन किया, तब भगवान् प्रसन्न हुए ॥७५॥
 तथा स्वयं दुर्दश होकर भी उन्होंने आकाश मण्डल में प्रवृत्त होकर अपनी उदय-
 वालीन प्रभा सहित उन्हें दर्शन दिया ॥७६॥ उनके प्रत्यक्ष स्वरूप का दर्शन
 करके पुलकायमान हुए उन मनुष्यों ने भक्ति से विनम्र होकर उन भनादि
 सवितादेव को प्रणाम करते हुए कहा ॥७७॥ हे सहस्ररश्मे ! आपको नमस्कार
 है, आप सभी भूतो के कारण और अखिल विश्व के पताकारूप हो, हे अखिल
 यज्ञधाम ! आप ही सब यज्ञा के आश्रय और योगियों के ध्यान योग्य हो,
 आप हम पर प्रसन्न हों ॥७८॥

६२—राजा और प्रजा की आपु वृद्धि

ततःप्रसन्नोभगवान्भानुराहाखिलाञ्जनान् ।
 प्रियतायदभिप्रेतमत्त प्राप्तु द्विजादय ॥१॥
 ततस्नेप्रणिपत्योर्बुविप्रक्षत्रादयोजना. ।
 समाध्वसमशीतानुमवलोक्यपुरःस्थितम् ॥२॥
 भगवन्यदिनोभक्त्याप्रमन्तस्तिमिरापह ॥३॥
 दशवर्षमहन्प्राणिततानोजीवतानृप ।
 निरामयोजिताराति सुकोश स्थिरमीवन ॥४॥
 तथेत्युक्त्वाजनान्भास्वानदृश्योऽभून्महामुने ।
 तेऽपिलब्धवरादृष्टा सभाजम्भुर्जनेश्वरम् ॥५॥
 यथावृत्त चेतस्मैनरेन्द्रायन्यवेदयन् ।
 वग्लच्छ्वासह्मशाशो सवाशादग्निद्विज ॥६॥
 तच्छ्रुत्वाजत्तृपेनस्यमापत्नीमानिनीद्विजा ।
 (प्रहर्षनरमयाताहर्षोद्गतननूरुहा)
 गचराजाचिरदध्योनाहन्निचिञ्चनजनम् ॥७॥

मार्कण्डेय जी ने कहा—फिर भगवान् गुरंग ने प्रसन्न होकर उन सब

से कहा—हे ब्राह्मणों ! तुम मुझ से जो प्राप्त करना चाहते हो, वह मुझ से माँगो ॥१॥ तब उन ब्राह्मणों ने उनको अपने सामने देख कर उन्हें प्रणाम किया और उन वरदायक भगवान् से बोले ॥२॥ विप्र प्रजागण ने कहा—हे भगवान् हे अन्धकार का नाश करने वाले प्रभो ! यदि आप हमारी भक्ति के कारण हम पर प्रसन्न हुए हैं ॥३॥ हमारे महाराज राज्यवर्द्धन रोग-रहित, शत्रुओं के विजेता और स्थिर यौवन वाले होकर दश सहस्र वर्ष तक जीवित रहें ॥४॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे महा मुने ! भगवान् सूर्य ने उनसे 'ऐसा ही होगा' कहा और अन्तर्धान होगये तब वे सभी ब्राह्मण वर प्राप्ति से प्रसन्नचित्त होकर राजा के पास पहुँचे ॥५॥ हे ब्रह्मन् ! सहस्र रश्मि वाले भगवान् सूर्य से वर प्राप्त होने इत्यादि का सम्पूर्ण वृत्तान्त उन ब्राह्मणों ने राजा को बताया ॥६॥ उस वृत्तान्त को सुन कर राजमहिषी मानिनी अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त हुई, जिससे उसका देह पुलकित हो गया, परन्तु राजा मीन रह कर बहुत समय तक विचार करते रहे ॥७॥

ततःसामानिनीभूपहर्षापूरितमानसा ।

दिष्ट्याऽऽयुषामहीपालवद्धस्वेत्याहृतंपतिम् ॥८॥

तथातयामुदाभर्त्तामानिन्याथसभाजितः ।

नाहकिचिन्महीपालचिन्ताजडमनाद्विज ॥९॥

सापुनःप्राहभर्त्तारचिन्तयानमधोमुखम् ।

कस्मान्नहर्षमभ्येपिपरमाभ्युदयेनृप ॥१०॥

दशवर्षसहस्राणिनीरुजःस्थयीवनः ।

भावीत्वमद्यप्रभृतिर्कितथापिनत्तृष्यसे ॥११॥

किन्तुतत्कारणं ब्रूहि यच्चिन्ताकृष्टमानसः ।

परमाभ्युदयेऽपित्वंसंप्राप्तेपृथिवीपते ॥१२॥

कथमभ्युदयोभद्रे किंसभाजयसेचमाम् ।

प्राप्तोदुःखसहस्राणां किंसभाजनमिष्यते ॥

दशवर्षसहस्राणिजीविष्याम्यहमेककः ।

न त्वंतवविपत्तीमेकिन्तुः दुःखमविष्यति ॥१४॥

फिर मानिनो ने प्रमत्तचित्त होकर अपने स्वामी से कहा—हे महाराज !
 इस बड़ी हुई आयु के द्वारा आप वृद्धि को प्राप्त हो ॥५॥ प्रसन्न चित्त वाली
 मानिनो के सत्कृत चर्चन सुनकर भी राजा ने चिन्तित चित्त के कारण कुछ
 उत्तर नहीं दिया ॥६॥ चिन्ता से नतमस्तक किये हुए राजा को देखकर
 मानिनी ने उनसे कहा—हे महाराज ! ऐसे आनन्द के समय भी आप प्रमत्त
 क्यों नहीं हैं ? ॥१०॥ अब आप निरामय और स्थिर ध्यान हो कर दण
 महम वषं नर और जीवित रहेंगे फिर आप प्रमत्त क्यों नहीं हैं ? ॥११॥
 हे राजन् ! ऐसे आनन्द का समय आ गया है, तो भी आप चिन्ता में गलत
 हैं, इसका क्या कारण है यह मुझे बताइये ॥१२॥ राजा ने कहा—हे भद्रे !
 मेरा जीवन-मा भग्योदय हुआ है ? तुम मेरा सत्कार सत्कार किस लिये कर
 रही हो ? सत्कृत दोषों को प्राप्त होकर भी मैं किम आनन्द का उपभोग
 करूँगा ? ॥१३॥ मैं एकाकी ही दण महम वषं जीवित रहूँगा, परन्तु तुम
 जीवित नहीं रहोगी, फिर क्या तुम्हारे न रहने का मुझे दुःख नहीं होगा ॥१४॥

पुत्रा-पीत्रान्प्रपीत्राश्चनथान्यान्तिष्ठवान्धयान् ।

पश्यतोमेमृतान्दुःखकिमरपहिभविष्यति ॥१५॥

भृत्येषुचातिभक्तेषुमित्रवर्गैश्चामृतैः ।

भद्रेदुःखमपारमंभविष्यतितुसन्ततम् ॥१६॥

यममर्त्यतपस्तप्तकृशार्धमनिसन्ततम् ।

तैर्मरिष्यन्त्यहभोगीजीविष्यामीतिधिववरम् ॥१७॥

मेवमापद्वगाराहेप्राप्तानाम्युदयामम ।

वययामन्यसेनत्वयत्सभाजयसेऽद्यमाम् ॥१८॥

महाराजयथात्यत्वतयैतन्नाशसदाय ।

मयापीरैश्चद्रापोऽयप्रोत्थानालोकिस्तव ॥१९॥

एवगतेऽत्रविचार्यनरनायविविन्त्यताम् ।

नान्ययामावियत्प्राहप्रमन्नोभगवाद्यवि ॥२०॥

उपसारःशृत पीरैः प्रोत्थानभृत्यैश्चयोमम ।

वयमोऽयाम्यहभोगान्वातेषामनिष्ठितिम् ॥२१॥

पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, तथा प्रिय बान्धवादि को मरते हुए देख कर क्या मुझे कुछ कम दुःख होगा ? ॥१५॥ हे भद्रे ! अत्यन्त भक्ति वाले भृत्यों और मित्रों की मृत्यु होने पर मुझे सदा ही महान् दुःख भोगना पड़ेगा ॥१६॥ जिन्होंने मेरी आयु के निमित्त अपने तन को सुखा कर तप किया है, वे भी मर जायेंगे, परन्तु मैं जीवित रह कर सुख भोगूँगा, क्या मेरे ऐसे जीवन को धिक्कार नहीं है ? ॥१७॥ मेरी यह दश सहस्र वर्ष की परमायु वृद्धि क्या हुई, यह तो मेरे लिये विपत्ति बन गयी है, यह भाग्योदय नहीं हुआ, सब बातों का विचार किये बिना ही तुम मुझे हर्षित करना चाहती हो ॥१८॥ मनिनी ने कहा—हे महाराज ! यथार्थ ही यह इतना दुःख कर होगा, इस बात पर मैंने पुरवासियों ने आपकी प्रीति के कारण ध्यान नहीं दिया था ॥१९॥ अब, ऐसा हो गया है, तो क्या करना चाहिये, इस पर विचार कीजिये, भगवान् सूर्य ने जो कुछ कहा है, वह कदापि मिथ्या नहीं हो सकता ॥२०॥ राजा ने कहा—पुरवासियों और भृत्यों ने मेरा जो उपकार किया है, उसके विपरीत परिणाम को रोक कर किस प्रकार सुख को भोगूँ ? ॥२१॥

सोऽहमद्यप्रभृत्यद्रिगत्वानियतमानसः ।

(पौरलोकहितार्थचतोषयिष्यामिभास्करम् ।

यथापौराममकृतेवान्धवाश्चसमन्ततः ।

अराधनायदेवेशतथाहमपिसंप्रतम्) ।

तपस्तप्स्येनिराहारोभानोराराधनोद्यतः ॥२२

दशवर्षसहस्राणि यथाहं स्थिरयौवनः ।

तस्य प्रसादाद्देवस्य जीविष्यामि निरामयः ॥२३

तथा यदि प्रजाः सर्वा भृत्यास्त्वं वसुताश्रमे ।

पुत्राः पौत्राः प्रपौत्राश्च सुहृदश्च वरानने ॥२४

जीवन्त्येतं प्रसादं च करोति भगवान् भविः ।

ततोऽहं भवितारज्ये भोक्ष्ये भोगांस्तथामुदा ॥२५

न चेदेवं करोत्यर्कस्तदा द्रौतत्र मानिनि ।

तपस्तप्स्ये निराहारा वावज्जीवितसंचयः ॥२६

इत्युक्त्वासातदातेनतयेत्याहनराधिपम् ।

जगामतेनचसमसाऽपितघरणीघरम् ॥२७॥

सतदायतनगत्वाभार्ययासहपार्थिवः ।

भानोराधाधनचक्रेशुथूपानिस्तोद्विज ॥२८॥

इससे तो यही उचित है कि मैं अब प्रभृति पर्वत पर जाकर पुरवासिगो के लिये धोर तप करूँ, जिस प्रकार उन्होंने मेरे हितार्थ धाराधन किया है, उसी प्रकार मैं भी उनके हितार्थ भगवान् सूर्य की धाराधना के उद्देश्य से निराहार रह कर तपस्या करूँगा ॥२७॥ जैसे उनकी कृपा से मैं स्थिर जीवन और रोग रहित होकर दस सहस्र वर्ष तक जीवित रहूँगा, वैसे ही मेरी सम्पूर्ण प्रजा, भृत्य, तुम पृथ्वी, पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और सभी सुहृदगणादि जीवित रह, यदि भगवान् भास्कर मुझ पर कृपा करेंगे तभी मैं प्रमत्त चित्त पूर्ववत् राज्य का भार वहन करता हुआ सुख भोग करूँगा ॥२३-२५॥ परन्तु, यदि भगवान् सूर्य ने ऐसी कृपा नहीं की तो, जब तक मेरा यह जीवन रहेगा, तब तक निराहार कर उभी पर्वत में तप करना रहूँगा ॥२६॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—महाराज की बात सुन कर राजमहिषी भामिनी ने उनका अनुमोदन किया और वह अपने पति के साथ उभी पर्वत में चली गई ॥२७॥ हे ब्रह्मन् ! अपनी पत्नी सहित राजा उसी मंदिर में पहुँचे और तपस्या पूर्वक भगवान् सूर्य की उदरुत धाराधना में तत्पर हुए ॥२८॥

निराहाराशुशासाचयथासीपृथिवीपतिः ।

तैपेनपन्तथैवोप्र भीतवातातपक्षमा ॥२९॥

तत्पूजयतीभानु तप्यन्ध्रनपोमहत् ।

माध्वेसवत्सरेयात्तनत प्रीतोदिवारः ॥३०॥

समस्तभृत्यपौरादिपुत्राणाचतृर्तद्विज ।

ददौययानिनपिनवर्गद्विजवरोत्तम ॥३१॥

सध्व्वावरमनृपति ममम्येत्यात्मन पुरम् ।

चवारमुदितोराज्यप्रजाधर्ममपानयन् ॥३२॥

ईज्येयज्ञान्सचबहुन्ददौदानान्यहर्निशम् ।

मानिन्यासहितोभोगान्बुभुजेचसधर्मवित् ॥३३

दशवर्षसहस्राणिपुत्रपौत्रादिभिःसह ।

भृत्यैःपौत्रैःप्रमुदितःसोऽभवत्स्थिरयौवनः ॥३४

तस्येतिचरितं दृष्ट्वाप्रमतिर्नामभार्गवः ।

विस्मयाकृष्टदृढयोगाथामेतामगायत् ॥ ५

जैसे निराहार रहने के कारण राजा दिनों दिन कृश होते जा रहे थे, वैसे ही रानी भी शीत, वायु, उष्णतादि के कष्टों को सहती हुई क्षीण देह होने लगी और तपस्या में लगी रही ॥२९॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जब उन्होंने इस प्रकार भगवान् सूर्य की उपासना में एक वर्ष से अधिक काल व्यतीत कर दिया, तब भगवान् ने प्रसन्न होकर ॥३०॥ समस्त भृत्य, पुरजन और पुत्रादि के सहित वाला मनोवांछित वर उन्हें प्रदान किया ॥३१॥ वर प्राप्त करके राजा पत्नी के सहित अपने घर को लौटे और प्रसन्नचित्त से धर्मपूर्वक प्रजा का पालनादि करते हुए राज्य करने लगे ॥३२॥ वह धर्मिमा महाराज अपनी राजमहिषी के सहित अनेक यज्ञानुष्ठान करते और सत्पात्रों को दान देते हुए सुख भोगने लगे ॥३३॥ इस प्रकार उन्होंने अपने पुत्र, पौत्र, भृत्य, पुरवासी आदि के सहित स्थिर यौवन और प्रसन्न चित्तता लाभ करके दश सहस्र वर्ष व्यतीत किये ॥३४॥ उस समय भृगुवंशी महर्षि प्रमति ने उनका ऐसा चरित्र देख कर विस्मय युक्त होकर इस प्रकार गाथा कीर्तन की थी ॥३५॥

भानुभक्तं रहोशक्तिर्यद्राजाराज्यवर्द्धनः ।

आयुषोवर्द्धनेजातःस्वजनस्यतथात्मनः ॥३६

इतितेकथितंविप्रयत्पृष्टोऽहंत्वयोदितः ।

आदिदेवस्यमाहात्म्यमादित्यस्यविवस्वतः ॥३७

विप्रं तदखिलं श्रुत्वाभानोर्माहात्म्यमुत्तमम् ।

पठश्चमुच्यतेपापैःसप्तरात्रकृत्तनरैः ॥३८

अरोगीवनानाढ्यःकुलेमहतिघीमताम् ।

जायतेचमहाप्राज्ञोयश्च तद्वारयेद्वृषः ॥३९

(यजतेचमहायज्ञःसमाप्तवरदक्षिणं ।
 श्रुत्वाचरितमेतद्विसमानलभतेफलम् ॥)
 मन्त्राश्चयेऽत्राभिहिताभास्वतोमुनिसत्तम ।
 जपःप्रत्येकमेतेपात्रिसध्यपातकापहः ॥४०॥
 समस्तमेतन्माहात्म्ययत्रचायतनेरवेः ।
 पठयतेतत्रभगवान्साक्षिध्यनविमुच्यति ॥४१॥
 तस्मादेतत्त्वयाग्रहान्भानोर्माहात्म्यमुत्तमम् ।
 धार्यमनसिजाप्यचमहत्पुण्यमभीप्सता ॥४२॥
 सुवर्णंशृङ्गीमतिशोभनाङ्गीपयस्विनीगाप्रददातियोहि ।
 शृणोतिचैतज्यहमात्मवाघ्नर समतयाःपुण्यफलद्विजग्न्य ॥४३॥

भगवान् भास्वर की वित्ती आश्चर्यमय शक्ति है, जिसके प्रभाव से राजा राज्यतर्द्धन ने अपनी श्रीर भवने आत्मीयजनो की घायु वृद्धि की ॥३६॥ हे ब्रह्मन् ! तुमने आदि देव सूर्य के जिस माहात्म्य के विषय में प्रश्न किया था वह तुम्हारे प्रति कहा गया ॥३७॥ सूर्य के इस उत्तम माहात्म्य को ब्राह्मण के मुख से सुनने और पाठ करने वाले मनुष्य सप्तरात्र के किये हुए पापों से मुक्त होते हैं ॥३८॥ उन सूर्य के माहात्म्य को जो बुद्धि पूर्वक रखने हैं, वह धनी, नीरोग और महान् विद्वान् होकर जन्म लेते हैं ॥३९॥ तथा महान् दक्षिणा वाले यज्ञो के अनुश्रुता होते और इस चरित्र को सुन कर समान फल को प्राप्त करते हैं, भूख व्यक्ति, पाप कर्म करने भी यदि सूर्य के इस माहात्म्य का जप करते हैं, उनके पाप नष्ट हो जाते हैं ॥४०॥ जिस देव-मन्दिर में सूर्य के इस माहात्म्य का पाठ होता है, उनके सामीप्य से भगवान् नहीं हटते ॥४१॥ इमनिधे, हे ब्रह्मन् ! तुम भी महान् पुण्य की कामना में सूर्य के इस माहात्म्य को हृदय में धारण कर जप करो ॥४२॥ जो मनुष्य तीन में गीणो की मझाकर दूध वाली गी का दान करते और जो सयन वित्त में तीन दिन तब इस माहात्म्य को गुह्य है उन दोनों को समान फल की प्राप्ति होती है ॥४३॥

६६—सूर्य वंशानुक्रम

एवंप्रभावोभगवाननादिनिघनोरविः ।
यस्यत्वंक्रीष्टुकेभक्त्यामाहात्यंपरिपृच्छसि ॥१॥
परमात्मासयोगिनांयुजतांचितसांलयम् ।
क्षेत्रज्ञःसांख्ययोगानांयज्ञेशोयज्विनामपि ॥२॥
सूर्याधिकारंवहतोविष्णोरीशस्यवेवसः ।
मनुस्तस्याभवत्पुत्रश्चित्रसर्वार्थसंशयः ॥३॥
मन्वन्तराधिपोविप्रयस्यसप्तममन्तरम् ।
इक्ष्वाकुर्नाभगोरिष्टोमहाबलपराक्रमः ॥४॥
नरिष्यस्तोऽथनाभागःपृषध्रोघृष्टएवच ।
एतेपुत्रामनोस्तस्यपृथग्राज्यस्यपालकाः ॥५॥
विख्यातकीर्त्तयःसर्वेसर्वेशस्त्रास्त्रपारगाः ।
विशिष्टतरमन्विच्छन्मनुःपुत्रंतथापुनः ॥६॥
मित्रावरुणयोरिष्टिचकारकृतिनांवरः ।
यत्रचापहुतेहोतुरपचागन्महामुने ॥७॥

मार्कण्डेय जी ने कहा—हे क्रीष्टुकि ! तुमने जिन भगवान् भास्कर का माहात्म्य भक्ति सहित पूछा था, वह भगवान् ऐसे प्रभाव वाले हैं ॥१॥ वह सदैवचित्त योगियों के ईश्वर, सांख्य योग वालों के क्षेत्रज्ञ और याज्ञिकों के यज्ञेश्वर हैं ॥२॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव स्वरूप सूर्याधिकार के बहन करने वाले जन भगवान् भास्कर के संशय रहित एक पुत्र 'मनु' नाम से हुआ ॥३॥ जिस मनु का सातवाँ मन्वन्तर इस समय चल रहा है, महाबली एवं पराक्रमी इक्ष्वाकु, नाभाग, रिष्ट ॥४॥ नरिष्यन्त, नाभाग, पृषध और घृष्ट नामक यह सभी मनु-पुत्र पृथक् पृथक् राज्यों के परिपालन करने ॥५॥ सभी प्रसिद्ध यज्ञ वाले, शास्त्रों में पारंगत और अस्त्र-विद्या के ज्ञाता हुए, उन मनु ने उसके पदचात् अत्यन्त विशिष्ट पुत्र की अभिलाषा से ॥६॥ मित्रावरुण का यजन किया, परन्तु वह यज्ञ होता के अपचार से अशुद्ध हो गया ॥७॥

इलानामसमुत्पन्नामनो कन्यासुमध्यमा ।
 तादृष्टाकन्यकातत्रसमुत्पन्नाततोमनु ॥८॥
 तुष्टावमित्रावरुणोवाक्यचेदमुवाचह ।
 भवत्प्रमादात्तनयोविशिष्टोभवेदिति ॥९॥
 कृतेमतेतमुत्पन्नातनयाममघोमता ।
 यदिप्रसन्नोवरदौतदिमतनयामम ॥१०॥
 प्रसादाद्भवतो पुत्रोभवत्वतिगुणान्वितः ।
 तथेतिचाम्यामुक्तेतुदेवाम्यासंबकन्यका ॥११॥
 इलासमभवत्सद्य सुद्युम्नइतिविश्रुतः ।
 पुनश्च श्वरकोपनमृगयामटतावने ॥१२॥

इस कारण इला नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई, उस यज्ञ से उत्पन्न हुई कन्या को देव कर ॥८॥ मनु ने मित्रावरुण की स्तुति की और उनसे निवेदन किया कि आपकी कृपा से मुझे एक असाधारण पुत्र की प्राप्ति ॥९॥ इसी कामना से मैंने यह यज्ञ किया, जिससे इन कन्या की प्राप्ति हुई है, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हुए हैं, तो आपकी कृपा से मेरी यह कन्या ही ॥१०॥ अत्यन्त गुण सम्पन्न पुत्र हो जाय, इस पर दोनों देवताओं ने 'ऐसा ही हो' कहा और वह कन्या ॥११॥ उसी समय पुत्र होगई, जिसका नाम सुद्युम्न हुआ, यह मेधावी मनु पुत्र एक दिन वन में आसिद्ध के लिये गये और ईश्वर के क्रोधित होने से यह पुत्र स्त्री हो गया ॥१२॥

स्त्रीरवमासादिततेनमनुपुत्रेणघोमता ।

पुरुषत्वमनामानचक्रवतिनमूजिम् ॥१३॥

जनयामासतनययत्रसोमसुनावुधः ।

॥१४॥

।

सुद्युम्नस्यत्रय.पुत्रास्तत्त्वलोविनियोगय ॥१५॥

पुरुषत्वेमहावीर्यायज्विन पृथुलोजस ।

पुरुषत्वेतुयेजातास्तस्यराज्ञस्त्रय मुता ॥१६॥

बुभुजुस्तेमहीमेतांघर्मेनियतचेतसः ।
 स्त्रीभूतस्यतुयोजातस्यराज्ञःपुरुषवाः ॥१७॥
 नसलेभेमहीभाग्यतोबुधसुतोहिसः ।
 सतोवसिष्ठवचनात्प्रतिष्ठानंपुरोत्तमम् ।
 तस्मैदत्तं सराजाभूत्तत्रातीवमनोहरे ॥१८॥

ऐसा होते ही चन्द्रमा के पुत्र बुध ने उसके गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न किया जो पुरुषवा नामक चक्रवर्ती राजा हुआ, उस पुत्र के उत्पन्न होने के पश्चात् अश्वमेध का अनुष्ठान करने से ॥१३-१४॥ उन सुक्षुम्भ को पुरुषत्व की प्राप्ति हुई, जब वे पुरुष राजा हुए तब उनके उत्कल, विनय और गध नामक ॥१५॥ तीन अत्यन्त धीर, यज्ञ करने वाले और विपुल तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए, वे तीनों पुत्र ॥१६॥ राज्य को प्राप्त करके धर्म पूर्वक पृथिवी का पालन करने लगे और राजा जब स्त्री हुए थे, तब उनके जो पुरुषवा नामक पुत्र हुए थे ॥१७॥ वह बुध के पुत्र होने के कारण भू भाग प्राप्त नहीं कर सके, परन्तु वसिष्ठ ऋषि की आज्ञा से उन्हें प्रतिष्ठान नामक एक श्रेष्ठ नगर दिया गया, जहाँ के वह राजा हुए ॥१८॥

१००—पृषध्रोपाख्यान

पृषध्राख्योमनोःपुत्रोमृगयामगमद्वनम् ।
 तत्रचक्रममाणोऽसीविपिनेनिर्जनेवने ॥१॥
 नाससादमृगंकच्चिद्भानुदीर्घितितापितः ।
 क्षुत्तृप्तापपरीताङ्गइतश्चेतश्चक्रमन् ॥२॥
 सददर्शतदातत्रहोमधेनुंमनोहराम् ।
 लतान्तर्देहच्छिन्नार्धाब्राह्मणस्याग्निहोत्रिणः ॥३॥
 समन्यमानोगवयमिषुणातामताडयत् ।
 पपातसापितद्वाणविभिन्नदृढयाभुवि ॥४॥

ततोऽग्निहोत्रिण पुत्रो ब्रह्मचारी तपोरतिः ।
 शप्तवान्सपितुर्दं द्वाहो मधेनु निपातिताम् ॥१॥
 गोपाल प्रेषित पुत्रो वा भ्रव्यो नामनामतः ।
 कोपामर्षपराधीनचित्तवृत्तिस्ततो मुने ॥२॥
 चुकोपविशत्स्वेदजललोलाविलेक्षणः ।
 तक्रद्ध प्रेक्ष्य स नृप पृथग्धो मुनिदारकम् ॥३॥
 प्रसीदेति जगो वस्माच्छूद्रवत्कुरूपे रूपम् ।
 नक्षत्रियो न वा वैश्य एव को धर्मुर्पति वै ।
 यथा त्वगूद्रवज्जातो विशिष्टे ब्रह्मण कुले ॥४॥

मार्कण्डेय जी ने बरुण विद्या कि किसी समय मनु के पुत्र राजा पृथग्र शिकार के लिये जंगल में गये । वहाँ उनको शिकार योग्य पशु नहीं मिला और वे चलते-चलते भूख प्यास से अत्यन्त व्याकुल होगये ॥१-२॥ वहाँ उन्होंने किसी अग्निहोत्री ऋषि की छोटी गाय पेड़ों के भीतर छिपी देखी । राजा ने उसे जंगली गवय समझ कर बाण चला दिया जिससे गाय का प्राणान्त होगया ॥३-४॥ जब उस अग्निहोत्री के पुत्र 'वाभ्रव्य' ने गौ को इस प्रकार मरकर पृथ्वी पर गिरते देखा तो वह अत्यन्त क्रोधित हुआ और दारीर ने पसीना तथा मूत्रा से श्मश्रु बहाता हुआ राजा की दाप देने लगा ॥५-६॥ राजा ने उसकी ऐसी दसा देख कर कहा—क्रोध को छोड़ कर प्रसन्न होइये । इस प्रकार क्रोध करना तो गूढ़ का लक्षण है । आप उत्तम ब्राह्मण कुलोत्पन्न होकर ऐसा गूढ़ सदृश आचरण क्यों करते हैं ? इस प्रकार तो कोई क्षत्रिय या वैश्य भी क्रोध के बशीभूत नहीं होते ? ॥७-८॥

इति निर्मसितस्तेन मराज्ञा मीलिन मुनः ।
 शशापतदुरात्मानं गूद्र एव भविष्यसि ॥९॥
 प्रयास्यति क्षयं ब्रह्मन्यत्तेऽभीतगुरोर्मुंसात् ।
 होमधेनुर्मम गुरोर्यदियद्विहिंसिता त्वया ॥१०॥
 एवशासनृप ऋद्धस्तच्छापपरिपोहितः ।
 प्रतिशप परो विप्रतो यजग्राहपाणिना ॥११॥

सोऽपिराज्ञोविनाशायकोपंचक्रे द्विजौत्तमः ।
 तमभ्येत्यत्वरायुक्तो वारयामास वैपिता ॥१२॥
 वत्सालमलमत्यर्थं कोपेनातीव वैरिणा ।
 ऐहिकामुष्मिकहितः शमएव द्विजन्मनाम् ॥१३॥
 कोपस्तपोनाशयति क्रुद्धो भ्रश्यत्यथायुधः ।
 क्रुद्धस्य गलते ज्ञानं क्रुद्धश्चार्थाञ्जिहीयते ॥१४॥
 न धर्मः क्रोधशीलस्य नार्थं चाप्नोति रोषणः ।
 नालं सुखाय कामाप्तिः कोपेनाविष्टचेतसाम् ॥१५॥

राजा के मुख से अपने लिये ऐसे भर्त्सनायुक्त वाक्य सुनकर वे 'मौलि' नायक ऋषि के पुत्र रोप में आगये और शाप दिया कि तुम 'शूद्र ही हो जाओगे और गाय का वध करने के कारण तुम्हारी पढ़ी हुई समस्त विद्या नष्ट हो जायगी ॥१६-१०॥ इस शाप को सुनकर राजा भी बड़ा दुःखी और कोपित हुआ और ऋषि-बालक को प्रतिशाप देने के उद्देश्य से हाथ में जल लिया ॥११॥ इस पर 'वाभ्रव्य' और भी क्रोध में आ गया और राजा को नष्ट करने के लिये दूसरा शाप देने को उद्यत हुआ । पर उसी समय उसके पिता वहाँ आ पहुँचे और उसे रोकते हुए समझाने लगे—पुत्र ! इस प्रकार का क्रोध अन्त में अपने लिये ही अहितकारी होता है । ब्राह्मण का धर्म तो शान्ति ही है और उसी से लोक तथा परलोक में उसका कल्याण होता है ॥१२-१३॥ यह क्रोध हर प्रकार से अनुचित है । इससे तपस्या का नाश, आयु का क्षय, ज्ञान का लोप, श्री धन का नाश होता है । क्रोध के वशीभूत होने वाला धर्म, अर्थ, काम सबसे वंचित हो जाता है और बहुत दुःख पाता है ॥१४-१५॥

यदिराज्ञाहताधेनुरियं विज्ञानिनासता ।
 युक्तमत्र दयां कर्तुं मात्मनो हितवोधिना ॥१६॥
 अथवाऽजानताधेनुरियं व्यापादितामम ।
 कत्कथं शापयोग्योऽयं दुष्टनास्य मनोयतः ॥१७॥
 आत्मनो हितमन्विच्छन्वाधते योऽपरं नरः ।
 कर्तव्यामूढविज्ञाने दयातत्र दयालुभिः ॥१८॥

अज्ञानत कृतेदण्डपातयन्तिबुधायदि ।
 बुधेभ्यस्तमहमन्येवरमज्ञानिनोनरा ॥१६॥
 नाद्यशापस्त्वयादेय पार्थिवस्यास्यपुत्रक ।
 स्वकर्मणोवपतितागोरेपादु खमृत्युना ॥२०॥
 पृथध्रोऽपिमुने पुत्रप्रणम्यानम्रकृन्वर ।
 प्रसीदेतिजगादोच्चैरज्ञानाद्वातितेतिच ॥२१॥
 भयागवयबुद्ध्यागोरवध्याधातितामुने ।
 अज्ञानाद्धोमधेनुस्तेप्रसीदत्वचनोमुने ॥२२॥

ऋषि ने फिर कहा—ह पुत्र अगर राजा ने गाय का वध जान कर किया है अपना हित चाहन वाले को इन पर दया ही करनी चाहिये । यदि यह कार्य अनजान में भूलवश हो गया तो शाप देने का कोई कारण हो ही नहीं सकता, क्योंकि मन में किसी प्रकार पाप की भावना नहीं होती ॥१६-१७॥ दयालु पुरुष तो उन ध्यक्तियों का भी अहित नहीं करते जो जान बूझकर उनके दुःख का कारण होत हैं, फिर भूल से हाने वाले अपराध पर दण्ड देना तो अज्ञानिया के नियम भी अनुचित है ॥१८-१९॥ मैं जानता हूँ कि अपने भ्रातृ-वश ही इस दुर्घटना में अस्व हुई है, उसके नियम राजा को शाप देना उचित नहीं ॥२०॥ राजा ने भी ऋषि पुत्र के सम्मुख मस्तक झुका कर प्रार्थना की—हे मुनि, श्रेष्ठ ! प्रगल्भ हाइये, मैंने भूल से ही इस धेनु पर बाण चलाया था । मैं ने उसे जगती गवय ही अनुमान किया था, अतएव आप क्रोध को त्याग कर मुझे क्षमा करें ॥२१-२२॥

आजन्मनोमहोपालनभयाय्याहृतमृषा ।
 क्रोधश्चाद्यमहाभागनान्ययामेकदाचन ॥२३॥
 तन्नाहंमनशवनोमिशापवतुं नृपान्यथा ।
 यस्तेममुद्यत शापोद्वितीय सनिवर्तित ॥२४॥
 इदुक्तवन्ततयालमादायमपिनातत ।
 जगामस्वाश्रममोऽपिपृथग्नूदतामगात् ॥२५॥

ऋषि ने कहा—राजन् ! मैंने आज तक कभी मिथ्याभाषण नहीं किया इसलिये मेरे मुख से जो वचन निकल चुका वह अब मिट नहीं सकता । पर मैं आपको जो दूसरा आप देने वाला था उससे अब विरत होता हूँ । ऋषि पुत्र का यह कथन सुनकर मुनि उसे आश्रम के भीतर लिवा ले गये और पृषध भी शूद्रत्व को प्राप्त हो गया ॥२३-२४॥

१~१—नाभागोपाख्यान (१)

कारुषाःक्षत्रियाःशूराःकरुषस्याभवन्सुताः ।
 तेतुसप्तशतवीरास्तेभ्यश्चान्येसहस्रशः ॥१॥
 दिष्टपुत्रस्तुनाभागःस्थितःप्रथमयौवने ।
 ददर्शवैश्यतनयामतीवसुमनोहराम् ॥२॥
 तस्यांसंहृष्टमात्रायांमदनाक्षिप्तमानसः ।
 बभूवभूपतनयोनिःश्वासाक्षेपतत्परः ॥३॥
 तस्याःसगत्वाजनकंवव्रतेवैश्यकन्यकाम् ।
 ततोऽनङ्गपराधीनमनोवृत्तिनृपात्मजम् ॥४॥
 तंचाहसपितातस्याराजपुत्रं कृतांजलिः ।
 बिभ्यत्तस्यपितुर्विप्रप्रश्रयावनतंवचः ॥५॥
 भवन्तोभूभुजोभृत्यावर्यवःकरदायकाः ।
 कथंसम्बन्धमसमैरस्माभिरभिवाञ्छसि ॥६॥

मार्कण्डेयजी ने वर्णन किया कि करुष नामक राजा के वंशज कारुष क्षत्रिय हुए जिनकी संख्या पहले सात सौ थी फिर उनसे अन्य हजारों कीर उत्पन्न हुए । इसी वंश में दिष्ट नामक राजा के पुत्र 'नाभाग' ने युवावस्था में किसी समय एक परम सुन्दरी वैश्य कन्या को देखा । वह उसे देखते ही मोहा-सक्त होगया और वैश्य से कन्या का विवाह अपने साथ कर देने की प्रार्थना

करने लगा । इस पर वैश्य ने राजभय में भयभीत होकर हाथ जोड़ कर कहा कि आप राजा हैं और हम सबको भी आपकी प्रजा है, इसलिये आप ऐसे प्रेममान सम्बन्ध का प्रस्ताव क्यों करते हैं ? ॥१-६॥

साम्यमानुपदेहम्यकाममोहादिभिः कृतम् ।

तथापि काले तीरेव योज्यते मानुषवपुः ॥७॥

तथैव चोपकागयजायन्ते तस्मैतान्यपि ।

अन्यानि चान्ये जीवन्ति भिन्नजातिमतामताम् ॥८॥

तथान्यान्यप्ययोग्यानि योग्यतायान्ति कालतः ।

योग्यान्ययोग्यतायान्ति कालवक्ष्यामि योग्यता ॥९॥

आप्याप्यते यच्छरीरमाहागर्दिभिरीप्सितं ।

यान्न ज्ञात्वा न चाभुक्त तदेव परिशिष्यते ॥१०॥

इत्थममेषां भिमता तनयादीयतान्वयाः ।

अन्यथा मन्दरीरस्य विपत्तिरूपलक्ष्यते ॥११॥

परतन्त्रावयत्वनपरतन्त्रो महीभुजः ।

पित्रा तेनाभ्यनुज्ञातस्त्वगृहाण ददाम्यहम् ॥१२॥

राजपुत्र 'नाभाग' ने कहा कि सभी मनुष्यों के भीतर काम, क्रोध आदि प्रज्ञाजी के ही उत्पन्न क्रिया हैं । पर ये काम, क्रोध सबके बने रहने हों ऐसी बात नहीं है, किसी समय मयागवश वे उत्पन्न हो जाते हैं । ये काम, क्रोध विभिन्न जाति के व्यक्तियों में विभिन्न प्रकार के भावों में प्रकट होते हैं, पर उनका अभाव किसी में नहीं होता और वे किसी परिस्थिति में उचित और किसी में अनुचित बन जाते हैं । उनका बुरा या अच्छा कहा जाना काल के ही अधीन है । जिस प्रकार मोहन द्वारा शरीर की वृष्टि होती है, पर यदि उसको प्रेमभय में ग्रहण किया जाता है तो वह उन्हा हानिकारक हो जाता है ॥७-१०॥ इसलिये मयागवश तुम्हारे कन्या के लिये मेरी अभिनाया हुई है तो तुम उसे मुझे दे दो, अन्यथा मेरा अन्न हो जायगा । इस पर वैश्य ने कहा कि मुझे गश्य के अधीन रहना पड़ता है और आपको भी महाराज के अनुकूल रहना है, इसलिये आप उसकी आज्ञा से तैं, मैं कन्या का विवाह कर दूँगा ॥११-१२॥

प्रष्टव्याः सर्वकार्येषु गुरवो गुरुवृत्तिभिः ।
 नत्वीदृशेष्वकार्येषु गुरुणां वाक्यगोचरः ॥१३॥
 वचनमन्त्रकथालापोगुरुणां श्रवणं वच ।
 विरुद्धमेतदन्यत्र प्रष्टव्या गुरवो नृभिः ॥१४॥
 एवमेतत्स्मरालापस्तवायं पृच्छमा गुरुम् ।
 अहंपृच्छामि नालापममकामकथाश्रयः ॥१५॥
 इत्युक्तः सोऽभवन्मीनी राजपुत्रः सचापितत् ।
 तत्पित्रे सर्वमाचष्ट राजपुत्रस्य यन्मतम् ॥१६॥
 ततस्तस्य पिता विप्रानृचीकादीन् द्विजोत्तमान् ।
 प्रवेश्य राजपुत्रं च यथाख्यानं न्यवेदयत् ॥१७॥
 निवेद्य च तत् प्राह मुनीनेवं व्यवस्थिते ।
 यत्कतं व्यतदा देष्टुं महन्ति द्विजसत्तमाः ॥१८॥
 राजपुत्रानुरागस्ते यद्यस्यां वैश्यसन्तती ।
 तदस्तु धर्म एवैष किन्तु न्यायक्रमेण सः ॥१९॥
 मूर्धाभिषिक्ततनया पाणिग्रहात्सवः पुरा ।
 भवत्वनन्तरं चैयं तव भार्या भविष्यति ॥२०॥
 एवं न दोषो भवति तथेमा मुपभुञ्जतः ।
 अन्यथाऽभ्येतिते जातिरुत्कृष्टा वालकानयात् ॥२१॥

राजपुत्र ने कहा कि यद्यपि मनुष्यों को गुरुजनों की इच्छानुसार चलना चाहिये और सभी विषयों में उनकी आज्ञा लेनी चाहिये, पर यह विषय ऐसा है जिसे उनके सम्मुख प्रकट नहीं किया जा सकता । कहाँ तो गुरुजनों का पद और महत्त्व और कहाँ यह काम कथा का वर्णन, इन दोनों बातों में कोई मेल नहीं, इसलिये इस बात को उनके सामने नहीं कह सकता । वैश्य ने कहा— ठीक है, इस सम्बन्ध में गुरुजनों की आज्ञा लेना काम कथा होगी, पर यदि मैं इस सम्बन्ध में चर्चा करूँ तो वह काम-कथा नहीं मानी जायगी ॥१३-१५॥ इस बात पर राजकुमार निरुत्तर होगया और वैश्य ने सब वृत्तान्त राजा के समक्ष जाकर निवेदन किया । राजा ने अपने पुत्र तथा ऋचीक आदि धर्मतत्व

वेत्ताओं को सामने बुलाकर समस्त हात कह सुनाया और पूछा कि इस विषय में आप क्या निष्पत्ति करते हैं ? श्रुतियों ने कहा—राजकुमार ! यदि आप वैश्य कन्या पर आसक्त होगये हैं तो इसमें कोई बड़ा अघम नहीं है, पर इसका न्यायोचित मार्ग यह है कि पहले आप किसी स्वजातीय कन्या का पाणिग्रहण करें, जो राजमहिषी के पद पर अभिषिक्त हो सके, उसके पश्चात् इस वैश्य कन्या को भी अपनी पत्नी बनावें । इस प्रकार वैश्य-कन्या से विवाह करने से किसी प्रकार का दोष नहीं होगा । अन्यथा होन वर्ग की कन्या में सम्बन्ध हो जाने पर आपका भी उमरी हीन जाति का होजाना पड़ेगा ॥१६-२१॥

इत्युक्तस्तदपास्यैववचस्तेषामहात्मनाम् ।

विनिष्क्रम्यगृहीत्वातामुद्यतासिरथाग्रवीत् ॥२२

राक्षसेनविवाहेनमयावैश्यसुताहता ।

यस्यसामर्थ्यमत्रास्तिसएतामोचयत्विति ॥२३

तत सर्वैश्यस्तादृशगृहीतातनयाद्रुतम् ।

ग्राहीतिपितरतस्यप्रययीशरणद्विज ॥२४

ततस्तस्यनिताक्रुद्धम्रादिदेशवलमहत् ।

हन्यताहन्यतादुष्टानामागोधर्मदूषक ॥२५

ततस्तद्युधेसंन्यतेनभूभृत्सुतेनवे ।

कृताश्रेणतदाश्रेणतत्प्राचुर्येणपातितम् ॥२६

सश्रुत्वानिहतसंन्यराजपुत्रेणभूपति ।

स्वयमेवययीमोद्धु स्वसंन्यपरिवारित ॥२७

ततोयुद्धमभूत्तस्यभूभुज स्वसुतेनयत् ।

राजपुत्रेणशस्त्राश्रं स्नत्रातिशयित पिता ॥२८

ततोऽन्तरिक्षादागत्यपरिग्राट्सहसामुनि ।

प्रत्युवाचमहीपालविरमस्वेतिमयुगात् ॥२९

स्वत्पुत्रस्यमहाभागविधर्मोऽयमहात्मनः ।

तवापिवैश्येनमहनयुद्ध धर्मवन्नृप ॥३०

यद्यपि इस प्रकार ऋषियों ने राजपुत्र को बहुत समझाया, पर यह मार्ग उसे पसन्द न आया और उसने बाहर आकर वैश्य-कन्या को पकड़ लिया और तलवार निकाल कर कहा कि—मैं इसके साथ बल पूर्वक राक्षस-विवाह करता हूँ जिसकी सामर्थ्य हो वह इसे भुक्तसे छुड़ाले ॥२२-२३॥ वैश्य यह देखकर भागा हुआ राजा के पास गया और 'रक्षा करो' यह कहकर पुकारने लगा । इस पर क्रोधित होकर राजा ने आज्ञा दी कि 'दस अघर्षी 'नाभाग' को शीघ्र ही मारो ।' राजा की आज्ञा पाकर सेना 'नाभाग' के साथ लड़ने लगी, पर उसने अस्त्र-शास्त्रों का प्रयोग करके शीघ्र ही उसे हरा दिया । सेना के पराभव का वृत्तान्त सुन कर राजा स्वयं उससे लड़ने आया और संघर्ष होने पर 'नाभाग' को दवा दिया । पर उसी समय आकाश मार्ग से नारद मुनि का वहाँ पर आगमन हुआ और उन्होंने राजा द्विष्ट से कहा—महाराज ! अब आप युद्ध बन्द कर दीजिये । आपका यह पुत्र अपने वर्ण से पतित होकर वैश्य होगया है, इस-लिये उसके साथ आपका युद्ध करना घर्म संगत नहीं है ॥२४-३०॥

ब्राह्मण्याब्राह्मणःपूर्वकुर्वन्दारपरिग्रहम् ।

ब्राह्मण्यात्सर्ववर्णेषुनहानिमुपगच्छति ॥३१

तथैवक्षत्रियसुतांक्षत्रियःपूर्वमुद्वहन् ।

इतरेच्चततोराजश्च्यवतेनस्वधर्मतः ॥३२

पूर्वं वैश्यस्तथावैश्यापश्चाच्छूद्रकुलोद्भूताम् ।

नहीयतेवैश्यकुलादयन्यायःक्रमोदितः ॥३३

ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःसवर्णापाणिसंग्रहम् ।

अकृत्वाज्यभवापाणेपतन्तिनृपसंग्रहात् ॥३४

यस्यायस्याहिहीनायाःकुरुतेपाणिसंग्रहम् ।

अकृत्वावर्णसयोगंसोऽपितद्वर्णभागभवेत् ॥३५

सोऽयंवैश्यत्वमापन्नस्तवपुत्रःसुमन्दघीः ।

नास्याधिकारोयुद्धायक्षत्रियेणत्वयासह ॥३६

वयमेतन्नजानीमःकारणंनृपनन्दन ।

यथाभविष्यतीदंचनिवर्त्तरणकर्मतः ॥३७

भारद्वी ने कहा—शास्त्र का यह विधान है कि यदि ब्राह्मण पहले ब्राह्मण-स्त्री से विवाह करके उसके पश्चात् तीनों वर्णों में से किसी भी वर्ण की स्त्री को ग्रहण करे तो उसका ब्राह्मणत्व नष्ट नहीं होता । इसी प्रकार क्षत्रिय अगर पहले अपने वर्ण की कन्या का पाणिग्रहण करके फिर वैश्य-शूद्र आदि की कन्या से विवाह करे तो वह पत्नि नहीं होता । वैश्य भी अपने वर्ण की कन्या से विवाह करने के पश्चात् शूद्र कन्या से विवाह करते तो अपने वैश्य कुल से भ्रष्ट नहीं होता । पर किसी भी वर्ण का व्यक्ति यदि प्रथम अपने वर्ण की कन्या से विवाह किये बिना दूसरे वर्ण की कन्या से विवाह कर लेता है तो वह उसी हीन वर्ण का हो जाता है जिस वर्ण की वह कन्या होती है । सर्व प्रथम सबर्ण कन्या से विवाह न करने के कारण वह पिता के उत्तराधिकार का पात्र भी नहीं माना जाता । इस नियम के अनुसार आपका यह मन्द-बुद्धि पुत्र वैश्यत्व को प्राप्त होगया और आप क्षत्रिय हैं, इसने आप दोनों का युद्ध उपयुक्त नहीं । आगे इसका क्या परिणाम होगा यह तो नहीं कहा जा सकता । पर अब आप युद्ध बन्द कर दें ॥३१-३७॥

१०२--नाभागोपाख्यान (२)

निवृत्तोऽसौ न तो भूप सग्रामात्स्वसुतेन वै ।
 उपयमेन्यतावदप्यतनयामाऽपितत्सुत ॥१॥
 तन सर्वैश्वर्याप्राप्त ममुपेत्याहृषार्थिनम् ।
 भूपालयन्मयाकार्थ्यतत्समादिश्यतामम ॥२॥
 धर्माधिकरणेयुक्तावाभ्रव्यद्यास्तपस्विन ।
 यदस्य न मंधर्माय न ददतु तथाचर ॥३॥
 तनस्तमुनयस्तस्य पाशुपात्यतयावृष्टिम् ।
 वाणिज्यत्रपरधर्ममाचक्षुः शभामदः ॥४॥
 तर्पवचक्रे समुनस्तस्य राज्ञो यथोदितम् ।
 तर्पमंवादिमिधर्मं च्युनस्य निजधर्मतः ॥५॥

तस्यपुत्रस्ततोजातोनाम्नाख्यातोभलन्दनः ।

समात्राप्रहितोगच्छद्गोपालोभवपुत्रक ॥६॥

मात्रातथानियुक्तोऽथप्रणिपत्यस्वमातरम् ।

राजर्षिमगमन्नीपंहिमवत्पर्वताश्रयम् ॥७॥

इस प्रकार नारदजी के समझाने पर राजा ने युद्ध बन्द कर दिया और नाभाग भी वैश्य-कन्या से विवाह करके वैश्यत्व को प्राप्त होगया । फिर वह राजा के पास गया और पूछा—“महाराज ! अब मैं क्या काम करके जीवन-निवाह करूँ उसका आदेश दें ।” राजा ने कहा कि वाघ्रव्य आदि जो ऋषिगण धर्माधिकरण का निर्णय करते हैं, उनसे पूछ कर जैसा वह बतलावें तदनुसार आचरण करो । तब उन धर्माधिकारी मुनियों ने कहा कि—जेती, पशु-पालन और व्यापार ही वैश्य के लिये निहित धर्म है । राजपुत्र नाभाग ने इस निर्णय को स्वीकार किया और वैश्य कर्मों का आचरण करके निर्वाह करने लगा ॥१-५॥ यथा समय उसके भलन्दन नामक पुत्र हुआ । उसके बड़े होने पर माता ने आदेश दिया ‘पुत्र ! गोपाल होओ’ अर्थात् गौ पालने का कार्य करो । पर ‘गौ’ का अर्थ पृथ्वी भी होता है और भलन्दन ने उसी अर्थ को ग्रहण किया । वह हिमालय निवासी नीप नाम राजर्षि की सेवा में उपस्थित हुआ ॥६-७॥

तंसमेत्यचजग्राहतस्यपादौयथाविधि ।

प्रणिपत्याहचैत्रैर्नराजर्षिसभलन्दनः ॥८॥

आदिष्टोभगवन्मात्रागोपालस्त्वंभवेतिवै ।

मयाचपालनीयाक्षमातस्याःस्वीकरांकथम् ॥९॥

मयाहिगौःपालनीयासायदास्वीकृताभवेत् ।

आक्रान्ताबलवद्भिःसादायादःपृथिवीमम ॥१०॥

तांयथाप्राप्तुर्यापृथ्वीत्वत्प्रसादादहंविभो ।

तथादिशकरिष्यामितवाज्ञांप्रणतोऽस्मिते ॥११॥

ततःसनोपोराजर्षिस्तस्मैनिरवशेषतः ।

भलन्दायददौत्रह्यन्नस्त्रग्रामंमहात्मने ॥१२॥

प्राप्ताम्नविद्य सयथोपितृव्यतनयान्निज ।

वसुरातादिकान्पुत्रानादिष्ट समहात्मना ॥१३

अयाचतसराज्यार्घ्यपितृपैतामहोचितम् ।

नेचाचुर्वैश्यपुनस्त्वकथभोदस्यसिमेदिनीम् ॥१४

भलनन्दन ने राजपि नीप की यथा विधि बन्धना की और कहा कि मेरी माता ने मुझे 'गोपाल' होने का आदेश दिया है, इसलिये पृथ्वी पालन मेरा कर्तव्य है । पर इस समय पृथ्वी पर मेरे अन्य कुटुम्बियों ने अधिकार कर रखा है । इसलिये आप मेरा इस प्रकार भाग दान करे जिससे मैं पृथ्वी को प्राप्त करके उस कर्तव्य को पूर्ण कर सकूँ । राजपि नीप उसकी शालीनता से सन्तुष्ट हुए और उन्होंने उस सम्पूर्ण अस्त्र विद्या की शिक्षा दी । इन प्रकार अस्त्र-विद्या द्वारा शक्तिशाली बन कर अपने पितृव्य-पुत्र वसुरान् के पास गये और उनसे राज्य का आधा भाग देने को कहा । उन्होंने उत्तर दिया कि 'तुम वैश्य सन्तान हो इससे राज्य शासन का अधिकार नहीं है।' ॥८-१४॥

ततस्तैर्युद्धमभवद्भूलन्दस्यात्मवशजै ।

वसुरातादिभिऋद्धं कृतास्त्रस्यास्त्रवर्षिभिः ॥१५

सजित्वातानमेपास्तुगस्त्रविक्षतसैनिकान् ।

जहारपृथिवीतेपावमंयुद्धेनघर्मवित् ॥१६

सर्निजितारि मकलापृथ्वीराज्यतथापितु ।

निवेदयामामतनस्तत्पिताजागृहेनच ।

प्रत्युवाचसतपुनभार्यायाःपुरतस्तदा ॥१७

भलन्दराज्यमेतत्तत्रियतापूर्वजं वृत्तम् ॥१८

अहतकृतवाग्राज्यनामामध्यंयुत पुरा ।

वैश्यतातुपुरस्कृत्यनर्थवाज्ञाकर पितु ॥१९

वृत्वाऽप्रार्तिपितुरह्वैश्यकन्यापरिग्रहात् ।

नपुण्यलोकमर्भाग्राजायावदाभूतसप्लवम् ॥२०

उरनध्याज्ञामपुनस्तम्यपालयामिमहीवदि ।

नास्तिमोक्षस्तनोनूनममरल्पशतैरपि ॥२१

नचापियुक्तं त्वद्बाहुनिर्जितं मम मानिनः ।

राज्यं भोक्तुमनीहस्य दुर्बलस्येव कस्यचित् ॥२२

राज्यं कुरुस्वयं पुत्रदायादेभ्यो विमुञ्चवा ।

ममाज्ञापालनं शस्तं पितुर्न क्षितिपालनम् ॥२३

इस पर भलन्दन ने उनकी युद्ध के लिये आह्वान किया और अस्त्रों के प्रयोग से उनकी सब सेना को घायल करके राज्य पर अधिकार कर लिया । इस प्रकार भलन्दन के समस्त राज्य जीत कर पिता के चरणों में अर्पण किया, पर पिता उसे ग्रहण करने को तत्पर नहीं हुए । उन्होंने कहा—हे पुत्र ! पूर्वजों द्वारा शासित इस राज्य का उपभोग तुम्हीं करो । मैं राज्य नहीं कर सकता ऐसी बात नहीं है, पर मैंने पिता की आज्ञा को अस्वीकार करके वैश्य कन्या से विवाह किया और इसके लिये राज्य अधिकार को त्याग दिया । अगर अब मैं उस राज्य का पुनः अधिकार ग्रहण करूँगा तो यह पिता की आज्ञा का उल्लंघन होगा । इस मिथ्या व्यवहार के कारण मैं और मेरे पिता प्रलय काल पर्यन्त भुक्ति लाभ नहीं कर सकेंगे ॥१५-२१॥ वैसे भी मेरे जैसे निराकांक्षी व्यक्ति को तुम्हारे बाहुबल से जीता राज्य उपभोग करना उचित नहीं है । इसे तुम्हीं भोगो या कुटुम्बियों को ही वापस कर दो । मेरे लिये पिता की आज्ञा पालन करना ही हितकारी है ॥२२-२३॥

ततः प्रहस्य तद्बाह्यासुप्रभानामभामिनी ।

प्रत्युवाच पतिभूपगृह्यतां राज्यमूर्जितम् ॥२४

न त्वं वैश्यो न च बाहं जात वैश्यकुले नृप ।

क्षत्रियस्त्वं तथैवाहं क्षत्रियाणां कुलोद्भवा ॥२५

पूर्वमासीन्महीपालः सुदेव इति विश्रुतः ।

तस्याभूत्सखाराज्ञो धूम्राश्वस्य सुतो नलः ॥२६

स तेन सख्या सहितो जगामा म्रवन्वनम् ।

पत्नीभिः ससमरन्तु माधवे मासि पार्थिव ॥२७

ततः पानान्यनेकानि भक्ष्याणि वृभुजेतदा ।

भार्याभिः सहितस्ताभिस्तेन सख्या समन्वितः ॥२८

तत पुष्करिणीतीरंददर्शतिमनोरमाम् ।

पत्नीच्यवनपुत्रस्यप्रमते पार्थिवात्मजाम् ॥२६॥

सखातस्यनलोमतोजगृहेताचदुर्मति ।

पश्यतस्तस्यराज्ञश्चताततातेतिवादिनीम् ॥३०॥

इम वार्तान्नाप को सुनकर नामाग की पत्नी भुप्रभा ने हँमते हुए कहा कि वास्तव मे आप वंश्य नहीं हैं और मैं भी वंश्य नहीं हूँ, मेरा जन्म क्षत्रिय वंश मे ही हुआ है । इसलिये आप खुशी से इस राज्य को ग्रहण कर सकते हैं । इसका रहस्य यह है कि मेरे पिता पूर्वकाल मे सुदेव नाम के राजा थे और उनके मित्र राजा धूम्राश्व के पुत्र नल नाम के राजा थे । एक दिन राजा और उनके मित्र अपनी पत्नियो सहित आमों के वन मे विहार करने गये । वहाँ वे भौंति भौंति के खान पीने की वस्तुएँ उपभोग करने लगे । इसके पश्चात् नल ने सरोवर के किनारे च्यवन पुत्र प्रमति की सुन्दरी पत्नी को देखा, जो किसी राजा की पुत्री थी । दुष्टमति नल ने उस रमणी को जाबर पकड़ लिया । इस पर वह 'रक्षा करो' 'रक्षा करो' कहकर राजा के सम्मुख रोने लगी ॥२४-३०॥

आक्रन्दितनिजस्यैवमतस्या प्रमति पतिः ।

आजगामत्वरायुक्त किमतदितिर्वैवदन् ॥३१॥

ततोददर्श राजानमुदेवतनसस्थितम् ।

गुहीताचतयापत्नीनतेनमुदुरात्मना ॥३२॥

तत सुदेवप्रमति प्राहायशास्यतामिति ।

त्वचशास्ताभवद्राज्येदुष्टश्रायनलोनृप ॥३३॥

तत्पार्तस्यवचःश्रुत्वासुदेवोनलगोरवात् ।

प्राह्वंश्योऽस्मिगच्छान्यक्ष त्रयन्नाणकागृणात् ॥३४॥

तत मप्रमति क्रुद्धोऽमीतेजमानिदं हन्निव ।

प्रत्युताचायराजानवंश्योऽस्मीत्यभिमापिराम् ॥३५॥

एवमम्बुभवान्वीक्ष्य क्षत्रिय क्षतरक्षणात् ।

क्षत्रिगोर्वाग्यतेनमग्रनात्तंशब्दोभवेदिति ।

सत्यनक्षत्रियोभायोवीक्ष्यएवमुत्तापम ॥३६॥

उपर से महर्षि प्रमति भी 'क्या हुआ ?' कहते हुए खीघ्रता पूर्वक वहाँ आये । प्रमति ने सुदेव से कहा कि आप इसे रोकिये क्योंकि आप ही यहाँ के शासक हैं और ऐसे कार्य को रोकना आपका कर्तव्य है । प्रमति के इस प्रकार के विनीत वचन सुनकर राजा सुदेव अपने मित्र की सम्मान रक्षा के विचार से बोले—'मैं तो वैश्य हूँ आप किसी क्षत्रिय के सम्मुख जाकर रक्षा की प्रार्थना कीजिये ।' सुदेव की इस तरह की बात सुनकर प्रमति को बड़ा क्रोध आया और उन्होंने कहा—'तथास्तु, तुम सचमुच वैश्य हो जाओगे, क्योंकि क्षत्रियों की उत्पत्ति तो अन्याय-पीड़ितों की रक्षा के लिये ही की गई है । क्षत्रिय इसी लिये वास्त्र धारण करते हैं कि कोई व्यक्ति अन्याय से पीड़ित न हो । इस धर्म का पालन न करने से तुम क्षत्रिय नहीं रह सकते और वैश्य ही होगये ।'

॥३१-३६॥

१०३ कृपावती उपाख्यान

तस्मैदत्त्वाततःशापंनलंक्रुद्धोऽन्नवीद्विज ।
 प्रमतिर्भागवःकोपात्त्रैलोक्यनिर्दहन्निव ॥१
 मदीन्मत्तोयतोभाय्याभवानत्रममाश्रमे ।
 बलाद्गृह्णातिभस्मत्वतस्माद्ब्रजतुमाचिरम् ॥२
 तेनोदात्तमात्रेचवाक्येतिस्मिस्तदानलः ॥
 देहजेनाग्निनासद्योभस्मपुञ्जस्तदाऽभवत् ॥३
 दृष्ट्वाप्रभावतंतस्यसुदेवोविमदस्ततः ।
 प्रणामनम्राप्राहेदक्षम्यताक्षम्यतामिति ॥४
 यदुक्तवांस्त्वाभगवन्पुरापानमदाकुलम् ।
 तत्क्षम्यतांप्रसीदत्वंज्ञापोऽयंविनिवर्त्यताम् ॥५
 एवंप्रसादितस्तेनप्रमतिःप्राहभागवः ।
 गतकोपानलेदग्धेनानीतेनचेतसा ॥६

नान्यथाभावितद्वावययन्मयासमुदीरितम् ।
तथापितेकरिप्यामिप्रसन्नोऽनुग्रहपरम् ॥७

इस प्रकार मुदेव की श्राप देकर प्रमति ने अत्यन्त क्रोधित होकर नल से कहा—कि “जब तूने उन्मत्त होकर मेरे आश्रम में ही मेरी पत्नी को जड़ दंस्तो पकड़ लिया तो तू तुरन्त भस्म होजा । यह वचन सुँह स निकलने ही नल के देह में भयकर ज्वाला प्रकट हुई और वह तुरन्त भस्म हो गया । प्रमति का ऐसा प्रभाव देख कर मुदेव की मत्तना दूर भाग गई और वह बार बार प्रणाम करके कहने लगे ‘भगवान् ! क्षमा करा । मद्यपान के दूषित प्रभाव के कारण मैंने जो बक-भ्रम की उमके लिये क्षमा प्रदान करें और शाप से मुझे मुक्त करें । राजा के इस प्रकार विनय करने और नल के नष्ट हो जाने से प्रमति का क्रोध दान्त हुआ और उन्होंने कहा—जो वाक्य मेरे मुख से निकल चुके वे अब मिट नहीं सकते, ता श्रापकी प्रार्थना पर कुछ अनुग्रह कर सकता हूँ ॥१-७॥

भवितावैश्यजातीयोभवानास्त्यत्रसद्यः ।
भविताक्षत्रियोवैश्यस्तस्मिन्नेवाशुजन्मनि ॥८
ग्रहीप्यतिबलात्वन्यायदातेक्षत्रमम्भवः ।
तदात्वक्षत्रियोवैश्यस्त्रगृहीतोभविष्यति ॥९
एवमवैश्योभूपालमुदेवोऽम्मत्पिताभवत् ।
अहवयामहामागतत्सर्वंभूयता त्वया ॥१०
मुरतीनामराजपि प्रागासीगद्वन्वमादने ।
तपस्वीनियताहारस्थव्रतमङ्गोवनाश्रयः ॥११
ततश्चेनमुखभ्रष्टादृष्टंवाजारिवाभुवि ।
कृपाञ्जुजनितामूच्छतिथामम्यमहात्मनः ॥१२
ततोमूच्छविगानेऽहतेस्योत्पन्नाशरीरतः ।
समाहृष्टाचजग्राहस्निह्यमानेनचेतसा ॥१३

यस्मात्कृपाभिभूतस्यममजातेयमात्मजा ।

तस्मात्कृपावतीनाम्नाभविष्यत्याहसप्रभो ॥१४॥

प्रमति ने कहा—आपको कुछ काल के लिये वैश्य तो अवश्य होना पड़ेगा पर जब कोई क्षत्रिय राजकुमार आपकी कन्या को बल पूर्वक पत्नी बना-
येगा तो आप इसी जन्म में पुनः क्षत्रिय हो जायेंगे । इस प्रकार घटनावश मेरे
पिता को वैश्य होना पड़ा था । मैं भी ऐसी ही अन्य घटना वश वैश्य के घर
उत्पन्न हुई थी । कुछ काल पूर्व गन्धमादन पर्वत के समीप सुरथ नाम के राज-
वन में रह कर तपस्या करते थे । एक दिन उन्होंने बाज के भुज पर पृथ्वी पर
गिरी सारिका छटपटाते देखा तो वे दुःख के मारे मूर्छित हो गये । मूर्छा दूर
होने पर मैं उन्हीं के शरीर से उत्पन्न हुई । उन्होंने मुझे देख कर बड़ा स्नेह
किया और कहा कि—इस कन्या का आर्वाभिव मेरे कृपाभिभूत होने से हुआ
है, इस कारण इसका नाम ' कृपावती ' ही होगा ॥८-१४॥

ततोऽहमाश्रमे तस्यवर्धमानेदिवानिशम् ।

सखीभिः सह तुल्याभिर्विचरामिव नानिच ॥१५॥

ततो मुने रगस्त्यस्य भ्राता गस्त्य इति श्रुतः ।

सचिन्वन्कानने वन्यं सखीभिकोपितोऽशपत् ॥१६॥

यस्मान्मां वैश्य इत्याह भवती तेन तेषां ।

वैश्याभविष्यसीत्युक्ते प्रसाद्योक्तो मया मुनिः ।

नापराधं कृतवती तवाहं द्विजसत्तम ।

अन्यासामपराधेन किमर्थं शप्तवानसि ॥१७॥

दुष्टतां दुष्टसंसर्गाद्दुष्टत्वं मपि गच्छति ।

सुराविदुनिपातेन पञ्चगव्यघटो यथा ॥१८॥

प्रणिपत्य ह्यनिष्टोऽपि यत्त्वया हं प्रसादितः ।

तस्मादनुग्रहं बाले शृणुष्व च करोम्यहम् ॥१९॥

वैश्ययो नौ यदा जाता त्वं पुत्रं बोधयिष्यसि ।

राज्याय जातिस्मरतां तदा त्वं समवाप्स्यसि ॥२०॥

ततोभूय क्षत्रजातिप्राप्तात्वपतिनासह ।
 दिव्यानवाप्स्यसेभोगान्गच्छभीतिरपंतुते ॥२१॥
 एवशप्तास्मिराजेन्द्रतेनपूर्वमहर्षिणा ।
 पिताचमेपूर्वमेवशाप्तःप्रमतिनाऽभवत् ॥२२॥
 एववंश्योनराजस्त्वनचवंद्य पितामम ।
 नत्वहिमयिससगदिदुष्टोदुष्यसेकथम् ॥२३॥

सुप्रभा ने कहा—' मैं उन्हीं राजर्षि के आश्रम में रह कर पत्ने लगी थीर बड़ी होने पर समान वय की सखियों के साथ विचरण करने लगी । यहाँ एक दिन ब्रह्मन्व मुनि के भ्राता पुष्प बोन रहे थे । उन्हें देख कर मेरी सखियों ने उन्हें चिढ़ाया, जिस पर खोचिन होकर उन्होंने मुझे शाप दिया है कि "तुझे मुझको वंद्य कह कर चिढ़ाया है, इस लिये तू, वंद्य की ही कन्या हो जायगी । " इस शाप को मुन कर व्यपित होकर मैंने कहा—" हे महा-मुने ! मैंने तो आपसे कुछ भी बुरा नहीं कहा, अन्य सखियों के दोष के कारण मुझे शाप क्यों दते हैं । " ऋषि ने कहा—जिस प्रकार पचगव्य से पूर्ण पवित्र घट में एक बूँद मुरा के पड़ जाने से दूषित हो जाता है उसी प्रकार निर्दोष व्यक्ति भी दुष्टों के संग में रहने से दूषित हो जाता है । पर अब तेरी शिर मुन कर मैं तुझ पर यह अनुग्रह करता हूँ कि वंद्य वरुण में उत्पन्न होने के पश्चात् जब तू अपने पुत्र को राज्य ग्रहण करने का उपदेश देगी तो तुझे अपने ही पूर्व जाति का स्मरण हो जायगा और पति के संग क्षत्रियत्व को प्राप्त कर के दिव्य भोगों की अधिकारिणी होगी । इसलिये अब तू भय त्याग कर अपने आश्रम में निवास कर ॥१५॥२१॥ हे राजेन्द्र ! इस प्रकार ऋषि के शाप के कारण मैं वंद्य योनि को प्राप्त हुई थी और मेरे पिता भी महर्षि प्रमति के शाप वश वंद्य हो गये थे । यस्तुत आप व मेरे बिना कोई वंद्य नहीं है । इस कारण मेरे साथ सम्पर्क होने से आपका वंद्य होना भी निराधार है ॥१५-२३॥

१०३.—भलन्दन वत्सप्रीति चरित्र

इतितस्यावचःश्रुत्वापुत्रस्यसचपार्थिवः ।
 पुनःप्रोवाचघमंजस्तांपत्नीं तमयंतथा ॥१
 यन्मयापितुरादेशात्पुत्रं राज्यं न तत्पुनः ।
 ग्रहीष्यामिवृथो वतेन किमात्मविलश्येत्वया ॥२
 अहं ते सम्प्रदास्यामि करवैश्यव्रते स्थितः ।
 भुङ्क्ष्वराज्यं न शेपत्वं मिच्छया वापरित्यज ॥३
 इत्युक्तः स तदा पित्रा राजपुत्रो भलन्दनः ।
 चकार राज्यं धर्मैर्जतद्वद्द्वारपरिग्रहम् ॥४
 अव्याहृतं तस्य चक्रं पृथिव्यामभवद्विज ।
 न चाधर्ममनोभूपास्तस्य सर्वेऽभवन्वशे ॥५
 तेनैष्टो विधिवद्यज्ञः सम्यक्शास्तिवसुन्धराम् ।
 स एवैकैर्भूतैर्भूतार्तापृथिव्यामरिशासनः ॥६

पत्नी और पुत्र की बात सुन कर नाभाग ने उत्तर दिया कि चाहे जो कुछ हो, पर जिस राज्य को मैंने पिता की आज्ञानुसार एक बार त्याग दिया, तो अब उसे फिर ग्रहण करके अपनी प्रतिष्ठा को भंग नहीं कर सकता । अब तुम्हीं इस राज्य के अधिकारी बनो और चाहो तो दूसरों के लिये छोड़ दो, मैं तो वैश्य वृत्ति में रहकर राजा का कर देता रहूंगा । इस प्रकार पिता की आज्ञा पाकर भलन्दन राज्य शासन करने लगे और यथा समय विवाह करके गृहस्थ बने । राजा भलन्दन बड़े प्रतापी थे और उनका रथ पृथ्वी पर सर्वत्र भ्रमण करता था, वे कभी अवधर्ममार्ग पर अग्रसर नहीं हुए, इसलिये सब राजा उनके अनुगामी बन गये । वे राज्य धर्मानुसार यजानुष्ठान करते और प्रजा का पूर्ण कर्तव्य परायणता से पालन करते थे और उन्हें सर्वत्र एक अद्वितीय शासक माना गया ॥१-६॥

अजायत सुतस्तस्य वत्सप्रीतिस्तु नामतः ।
 पितातिशयितो येन गुणैर्वेन महात्मना ॥७

तस्यापि भार्यासौनन्दाविदूरथसुताऽभवत् ।
 पतिव्रतामहाभागाताप्राप्तातेनशोभ्यन्त ।
 हत्वापुरन्दरस्त्रिपु कुजृभदितिजेश्वरम् ॥८॥
 भगवस्तेनसप्राप्ताकुजृ भनिघनात्कथम् ॥
 एतदाह्वयानमाख्याहिप्रसन्नेनान्तरात्मना ॥९॥
 विदूरथोनामनृप स्यात्तकीर्तिरभूदभुवि ।
 तस्यपुनद्वयजातमुनीति मुमतिस्तथा ॥१०॥
 एवदातुवनयातोमृगयामविदूरथ ।
 ददर्शगर्तमुमहद्रू मेमुं एमिवोद्गतम् ॥११॥
 तदृष्ट्वाचिन्तयामामकिमेतदितिभरवम् ।
 पातालविवरमन्येनंतद्रू मेश्चिरन्तनम् ॥१२॥
 चिन्तयन्नितित नासौददर्शं विजनेवने ।
 ब्राह्मणमुव्रतनामतपस्विनमुपागतम् ॥१३॥

मार्कण्डेयजी कहन लगे—महाराज भलन्दन के पुत्र वत्सप्रीति हुए जिन्होंने अपने गुणों से पिता की कीर्ति को और भी बढ़ाया। वत्सप्रीति का दिवाह विदूरथ की कन्या 'सौनका' से हुआ था और उन्होंने इन्द्र के शत्रु 'कुजृन्म' नामक दैत्य पति को मार कर उसे प्राप्त किया था। यह सुन कर कौटिली ने पूछा—“भगवन्! वत्सप्रीति का आश्रयान वतलाइये कि उसके किस प्रकार कुजृन्म से सौनका को छुड़ाया।” मार्कण्डेय जी ने कहा—विदूरथ एक बड़े प्रतापशाली और प्रसिद्ध नरेश थे। उनके मुनीति और मुमति नामक दो पुत्र थे। एक दिन राजा ने वन में शिकार के लिये प्रस्थान करते हुए एक घमाह गम देखा। उन्होंने शिचार किया कि यह कैसे उत्पन्न हो गया। सम्भवतः यह पाताल सोच का मार्ग है। उसी समय यही उनके मुखत नाम के एक तपस्वी ब्राह्मण दिगार्द दिव्य ॥७-१३॥

सतपप्रच्यवनृप विमेतदिति विस्मित ।
 प्रतिभोरमवनेर्दाज्ञतातगंतदरम् ॥१४॥

किञ्चवेत्तिमहीपालवागर्थस्त्वंहिमेमतः ।

ज्ञेयंसर्वनरेन्द्रेणवर्ततेयन्महीतले ॥१४

दानवःसुमहावीर्योवसत्युग्रोरसातले ।

सजृम्भयतित्पुत्रींकुजृम्भःप्रोच्यतेततः ॥१५

क्रियतेतेनयत्किञ्चिद्रत्नभूतंमहीतले ।

त्रिदिवेवानरपपेत्कथंवेत्तिनोभवान् ॥१७

सुनन्दनाममुशलंत्वष्ट्रायन्निमित्तंपुरा ।

तज्जहारसदुष्टात्मातेनहन्तिरगोरिपून् ॥१८

पातालान्तर्गतस्तेनभिनत्तिवसुधामिमाम् ।

ततोऽसुराणांसर्वेषांद्वाराणिकुरुतेऽमुरः ॥१९

तेनभिघ्रात्रवसुधासुनन्दमुशलेनतु ।

भोक्ष्यतेवसुधामेतातमजित्वकथंभवान् ॥२०

यज्ञान्विध्वसयत्युग्रोदेवानामुपरोधकः ।

आप्याययत्तिदैतेयान्सवलीमुशलायुधः ॥२१

राजा ने उनका वह गढ़ा दिखा कर पूछा कि यह क्या है ? तपस्वी ने कहा कि क्या आप इसे नहीं जानते ? राजा को तो ऐसी विशेष बातों का पता अवश्य रखना चाहिये । अब मैं आपको इसका सब वृत्तान्त बतलाता हूँ । रसातल में एक बहुत बलवान् दैत्य रहता है । जिसको 'कुजृम्भ' कहते हैं, क्योंकि वह समस्त पृथ्वी को जंभाई लिवाता है । पृथ्वी और स्वर्ग के प्राणी-मात्र, जंभाई लेना उसी के कारण होता है । प्राचीन समय में विश्वकर्मा ने 'सुनन्द' नाम का जो 'मूसल' (अस्त्र) बनाया था यह दुष्ट राक्षस उसी को लेकर युद्ध में शत्रुओं को मारता है और पृथ्वी को गेव कर रसातल का मार्ग भी बना देता है । जिससे अन्य दानव भीतर जा सकें । उस सुनन्द मूसल से ही उसने यह विवर बना दिया है । वह अक्तिशाली दैत्य उस 'मूसल' के द्वारा अजेय बन कर यज्ञ और देवताओं को नष्ट कर रहा है और दैत्यों की मनोवांछा पूर्ण करता है ॥१४-२१॥

यद्यर्घ्यात्तयस्येनपातालान्तरगोचरम् ।
 तत नमस्तवमुद्यामतिस्त्रपरमेश्वर ॥२२
 मुदालन्तस्यवलिन सौनन्द प्रोच्यतेजनै ।
 तथावलायलञ्चवतवदन्तिविचक्षणा ॥२३
 तत्तु निर्वीर्य्यतायातिस्पृष्ट योपितानृप ।
 तस्मिन्दिनेद्वितीऽह्निवीर्य्यवत्तदुदीर्य्यते ॥२४
 नसवेत्तिदुराचार प्रभायमुशलस्यतम् ।
 योपित्कराग्रमस्पर्शोदोपवीर्य्यविशालनम् ॥२५
 एतत्स्यवलभूपदानवस्यदुरात्मन ।
 मुद्यतस्यचतेप्रोक्त यद्यत्त तत्समाचर ॥२६
 आसत्रमेतद्भुवत पुरस्पृथिवीपते ।
 वृत्ततेनमहारघ्र निश्चिन्त विभवान्मृथा ॥२७
 इत्युक्त्वातुगतेतस्मिन्पुरगत्वामहीपति ।
 मन्त्रयामाममन्त्रजं पुरमध्येतुमन्त्रिभिः ॥२८

अर्पि ने फिर कहा—आप जब रमातल में रहने वाले इस दानव पर
 विजय प्राप्त कर सर्वे में तभी पृथ्वी के सच्चे प्रधीश्वर बन सर्वे में । सर्व
 साधारण में इस मूयन का नाम 'मौनन्द' प्रसिद्ध है और जानकार व्यक्ति
 उगव गम्बध में कहते हैं कि जिस दिन वह मूसल स्त्री के हाथ से छू निपा
 जाय उस दिन उसकी शक्ति जाती रहती है, पर दूसरे दिन वह पूर्ववत् हो
 जाता है । वह दानव मूसल की यह विशेषता और स्त्री के हाथ से छू जाने पर
 उसकी शक्ति नष्ट हो जाने की बात गहरी जानता । अब मैं ने उस दुष्ट दानव
 का और भोगन का सब रहस्य आपको बतला दिया । आपका वर्तन यह है कि
 इस विषय में निश्चित न रह कर दीत्य को नष्ट करने का उपाय करें क्योंकि
 उगने यह जानन मार्ग आपको नगर व समीप ही बनाया है ॥२२-२८॥

यथाश्रुत्तमनोपन्तत्ययामाममन्त्रिणाम् ।
 मुद्यनन्यप्रभावाच्चवीर्य्यशाननमेवच ॥२९

तमन्त्रं क्रियमाणन्तुमन्त्रिभिस्तेनभूमृता ।
तत्पाद्वर्षवतिनीकन्याशुश्रावाथमुदावती ॥३०
ततःकतिपयाहेतुतंकन्यांवयसान्विताम् ।
जहारोपवनाद्दृत्यःकुजृम्भःससखीवृताम् ॥३१
तच्छ्रुत्वासमहीपालःक्रोधपथ्याकुलेक्षणाः ।
पुत्रावुयाचत्वरितंगच्छतंवनकोविदौ ॥३२
निर्विन्ध्याद्यास्तटेगर्तस्तेनगत्वारसातलम् ।
सहन्यतांयोऽपहर्तामुदावत्याःसुदुर्मतिः ॥३३
ततस्तौतत्सुतौप्राप्यतंगर्तं तत्पदानुगौ ।
युयुधातेकुजृम्भेणस्वसैन्येनातिकोपितौ ॥३४
ततःपरिघनिस्त्रिशशक्तिशूलपरश्वधैः ।
बाणैश्चाविरतंयुद्धंतेषामासीत्सुदारुणम् ॥३५
ततोमायाबलवतातेनवैत्येनतावुभौ ।
राजपुत्रौरणोबद्धौनिहताशेषसैनिकी ॥३६

जब ऋषि इस प्रकार राजा को सब बातें बतलाकर चले गये तो राजा अपने नगप में वापस आये और वहाँ अपने मन्त्रियों से इस विषय में सलाह करने लगे । उन्होंने मूसल के प्रभाव तथा उसकी शक्ति नष्ट होने की बात मन्त्रियों को बतलाई । उस समय उनकी कन्या मुदावती भी वहीं पर बैठी सब बातें सुन रही थी । इस घटना से कुछ ही समय पीछे शीघ्र ही एक दिन जब मुदावती अपनी सखियों के साथ उपवन में गई थी कुजृम्भ दानव वहाँ आकर उसे पकड़ कर ले गया । जब यह खबर राजा को मिली तो वे बड़े क्रोधित हुए और अपने दोनों पुत्रों को बुला कर कहा कि तुम दोनों वन-प्रदेश का हाल जानते ही हो इसलिए वहाँ जाकर निर्विन्धा नदी के तटवर्ती पाताल विवर में होकर कुजृम्भ दानव को मारो, क्योंकि वह तुम्हारी बहिन को हर कर ले गया है । राजा के आदेशानुसार दोनों राजपुत्र उस विवर पर पहुँचे और वहाँ दानव के पैरों के चिन्ह देखते हुए कुजृम्भ के निवास स्थान पर आ गये । सब राजपुत्रों की सेना का दानव की सेना के साथ घोर

युद्ध हुआ जिसमें पन्धि, निस्त्रिंशं, शक्ति, शूल, परमा घोर बाणों से आघात किये जाने लगे । पर दैत्य सेना ने माया बल से दोनों राजपुत्रों और उनकी सेना को बाँव लिया ॥२६-३६॥

तन्मुखासमहीपाल प्राहेद सर्वसैनिकान् ।
 वद्धपुत्र परामातिमुपेतोमुनिसत्तम ॥३७
 यस्तनिहत्यर्द तेयमोचयिष्यतिमेसुताम् ।
 तस्याहसप्रदास्यामितामेवायतलीचनाम् ॥३८
 इत्येवधोपयाचक्रे सराज्ञास्वपुरेतदा ।
 निराश पुत्रतनयाबन्धमोक्षायवैभुने ॥३९
 तत शुश्राववत्सप्रीभलन्दनसुतोद्भितत् ।
 आधोष्यमाणबलवान्कृतास्त्र शौर्यसंयुतः ॥४०
 सचागम्याभिवाद्य नप्राहपाथिवसत्तमम् ।
 विनयावनतोभूत्वापितुमित्रमनुत्तमम् ॥४१
 आज्ञापयाशुमामेवतनयौमोचयामिते ।
 तर्बवतेजसात्बन्तुर्दैत्यहितनयाश्रते ॥४२

जब राजा विदूरथ ने अपने दोनों पुत्रों के बाधे जाने का समाचार पाया तो वे बड़े दुःखी हुये और अपने सेनाध्यक्षों से उन्होंने कहा कि जो कोई दैत्य को जीत कर मेरे पुत्रों तथा बन्ध्या को लावेगा उसके माथ हो मैं अपनी बन्ध्या का विवाह कर दूँगा । राजा इस विषय में बड़े निराश हो गये थे और इमानिये उन्होंने ठट्ठ घोषणा का ढिंढोरा अपने राज्य में पिटवा दिया । यह समाचार मनन्दन के पुत्र वरतप्री को भी मिला और उसने अपने पिता के मित्र राजा विदूरथ के पास पहुँच कर विनय-पूर्वक कहा कि 'यदि आप आज्ञा दें तो मैं आपके प्रताप में उग दैत्य को मार कर कन्या तथा पुत्रों को छुड़ा कर लाऊँ ॥३७-४२॥

सतमुद्रापरिष्वज्यप्रियसख्ययुरथात्मजम् ।
 गम्भताभितिससिद्धचवत्सेत्याहसपायिव ॥४३

स्थानेस्थास्यतिमेवत्सोयद्ये वंकुस्तेविधिम् ।
 वत्सैतत्क्रियतामाशुयद्युत्साहिमनस्तव ॥४४
 ततःसखङ्गसधनुर्वद्वगोधाङ्ग लित्राणवान् ।
 जगामवीरःपातालंतेनगर्तनसत्वरः ॥४५
 तजोज्यास्वनमंत्युग्रसचक्रे पार्थिवत्मजः ।
 येनपातालमखिलमासीदापूरितान्तरम् ॥४६
 ततोज्यास्वनमाकर्ण्यकुजृम्भोदानवेश्वरः ।
 आजगामातिकोपेनस्वसैन्यपरिवारितः ॥४७
 ततोयुद्धमभूत्तस्यतेनपार्थिवसूनुना ।
 ससैन्यस्यससैन्येनबलिनोबलशालिनः ॥४८
 दिनानित्रीणिसयदाथौघियस्तेनदानव ।
 ततःकोपपरीतात्सामुसलाम्यधावत ॥४९

महाराज विदूरथ ने मिनापुत्र वत्सप्री का हार्दिक स्वागत करते हुए—
 “हे वत्स ! यदि तुम इस कार्य को कर सकोगे तो मैं तुम्हारा मित्र पुत्र होना
 सार्थक समझूँगा । अतएव यदि तुम्हारे मन में इसके लिये पूर्ण उत्साह हो
 तो शीघ्रातिशीघ्र इसे पूरा करने का प्रयत्न करो । तदनन्तर महावीर वत्सप्री
 खड्ग, धनुष, गोधा और अंगुलीत्राण धारण करके शीघ्रतापूर्वक उस विद्वि
 में धुसे और वहाँ पहुँच कर अपने अतिशान्ति धनुष की प्रत्यक्षा की टंकार
 भरी जिससे वह समस्त धिवर महाशब्द से परिपूर्ण हो गया । उस टंकार के
 धोर रव को सुन कर दानव श्रेष्ठ कुजम्भ क्रोध से भर गया और अपनी सेना
 को लेकर लड़ने के लिये तैयार हो गया । राज कुमार वत्सप्री और कुजम्भ का
 युद्ध तीन दिन तक होता रहा, पर तब भी वह वत्सप्री को जीत न सका ।
 तब वह मूसल को लेने के लिए अपने महल में गया ॥४३-४९॥

गन्धर्माल्यैस्तथाधूपैः पूजमानः सतिष्ठति ।

अन्तःपुरे महाभाग प्रजापतिविनिर्मितः ॥५०

ततो विज्ञातमृशालप्रभावासामुदावती ।

पस्पर्शमृशालश्रेष्ठम तेन अशिरोधरा ॥५१

पुनर्पावत्सगृह्णातिमुशलतमहासुर ।

तावरसावन्दनव्याजात्पस्पशनिकश शुभा ॥५२

तत मगत्वायुयुधेमुशलेनासुरेश्वरः ।

व्यर्थामुशलपातास्तेसजम्मुस्तेपुशत्रुषु ॥५३

परमास्त्रे तुनिर्वीर्येसौनन्देमुशलेमुने ।

अस्त्रं शस्त्रं श्रद्धां तेय सोयुध्यतरणऽरिणा ॥५४

शस्त्रास्त्रं नंसमस्तस्परराजपुत्रस्यसोऽसुरः ।

मुशलेनवलन्तस्यतच्चतन्द्यानिराकृतम् ॥५५

राजाविदूरथ की बन्धा मुदावती जो दानव के महल में बँद थी इस भूमल के विषय में सब रहस्य अपने पिता से भुन चुकी थी । इसलिये, उसने उस भूमल को प्रणाम करके उसे छू लिया । जब कृष्ण उस भूमल को ले जाने लगा तब तब मुदावती ने पूजा के बहाने उसे बार-बार छुआ जब दानव-पति उस भूमल को लेफर मुद्र क्षेत्र में लड़ने लगा तो उसका प्रहार बार-बार असफल होने लगा, क्योंकि उसकी शक्ति स्त्री के स्पर्श के कारण नष्ट हो चुकी थी । यह देख कर दानव अस्त्र-शस्त्र द्वारा मुद्र करने लगा । पर अस्त्र मुद्र में वरमयी दानव की अपेक्षा अधिक निपुण था । उसको जिस भूमल का भरोसा था वह सब चतुराई से व्यर्थ कर दिया गया था ॥५०-५५॥

तत पराजित्यमभूपमूनुरस्त्राणिशस्त्राणिचदानवस्य ।

चकारमद्योविरयतनश्चमचर्म्मपङ्क पुनरप्यधावत् ॥५६

तमापन्तरभसाऽभ्युदीर्णविस्पष्टकोषत्रिदशेन्द्रशत्रुम् ।

शस्त्रेणवह्नेर्भुविराजपुत्रोजधानालालानलसप्रभेण ॥५७

सपावकास्त्रेणतृदिक्षतोभृशतत्याजदेहत्रिदशारिरात्मानः ।

वभूवमद्यश्चमहोरगागारमातलान्तेषुमहानयोत्मव ॥५८

ततोपतत्पुणवृष्टिमहोपासमृतोपरि ।

जगुगन्धर्वपतयादेववाद्यानिमस्वनु ॥५९

मचापिराजपुत्रस्तहन्वातोभृपतेमुनी ।

मोक्षयामासन्तद्वीर्येणान्दन्त्यामुदावतीम् ॥६०

तच्चापिमुशलंतस्मिन्कुजृम्भेविनिपातिते ।
जग्राहनागाधिपतिरनन्तःशेषसंज्ञितः ॥६१॥
तस्याश्चपरितुष्टोऽसौशेषःसर्वोरगेश्वरः ।
मुदावत्यामुदाध्यातमनोवृत्तिस्तपोवनः ॥६२॥
सुनन्दमुशलस्पर्शयच्चकारपुनःपुनः ।
योषित्करतलस्पर्शप्रभावज्ञातिशोभना ॥६३॥
मुदावत्यास्ततोनामनागराजस्तदाकरोत् ।
सुनन्दाभितिसानन्दं सौनन्दगुणजं द्विज ॥६४॥

जब वत्सप्री ने दामवराज के सब अस्त्र-शस्त्र व्यर्थ करके उसके रथ को भी नष्ट कर दिया तो वह तलवार, छाल लेकर वत्सप्री से युद्ध करने के लिये बड़े वेग से दौड़ा । पर वत्सप्री ने उसे बीच में ही कालाग्नि के समान सुप्रकाशित आग्नेयास्त्र से मार दिया ॥५६-५७॥ यह कुजृम्भ देवताओं तथा पातालवासी नागों के लिये बड़ा कष्टकारक थी, इससे उसके मरते ही नागगण महाद् उत्सव करने लगे । उस समय चारों ओर से राजपुत्र वत्सप्री पर पुष्पवर्षा होने लगी, गन्धर्व गायन करने लगे और देवगण तरह तरह के बाद्य बजाने लगे । वत्सप्री ने दामव की कैद से राजा विदूरथ के दोनों पुत्र सुनीति तथा सुमति और कन्या मुदावती को छुड़ाया । कुजृम्भ का अन्त हो जाने पर उसके मूसल नागराज अनन्त ने ग्रहण किया और वे राजकन्या मुदावती की चतुराई को जान कर बड़े प्रसन्न हुए । उसी मूसल को बार-बार छूकर उसकी शक्ति को मिटा दिया था और इस प्रकार कुजृम्भ का नाश कराया था । उस मूसल का नाम सौनन्द होने से नागगण ने मुदावती का नाम 'सुनन्दा' रख दिया ॥५८-६४॥

सचापिगजपुत्रस्तांभृतृभ्यांसहितांपितुः ।
समीपमानिनायाशुप्रणिपत्याहचैवतम् ॥६५॥
आनीतौतनयौताततथैवेयंमुदावती ।
तवाश्यामयान्यद्यत्कर्तव्यंतत्समादिश ॥६६॥

तत प्रहर्षसपूर्णं हृदयं समहीपति ।
 साधुसाध्वित्यथाहोच्चैर्वत्सवत्सेति शोभनम् ॥६७॥
 सभाजितोऽस्मिन्निदर्शवत्साह्वारणस्यिमि ।
 त्वजामाताचयत्प्राप्तोयच्चारिर्विनिपातित ।
 आगता यक्षता यत्र यच्चापत्यानि मे पुन ।
 तद्गृहाणाद्यश्मनेऽह्निपाणिमस्यामयोदितम् ॥६८॥
 त्वराजपुत्रचावंङ्गया कन्यायादुहितुर्मम ।
 मुदावत्यामुदायुक्तः सत्यवाक्यकुरुष्वमाम् ॥६९॥

तत्पश्चात् राजकुमार वत्सप्री ने दोनों राजकुमारों तथा कन्या को अपने साथ लाकर राजा विदूरथ की सेवा में उपस्थित किया और उनको प्रणाम करके निवेदन किया—'महाराज, आपकी आज्ञानुसार आपके दोनों पुत्रों तथा कन्या मुदावती को कुजुम्भ को मार कर छुड़ा लाया हूँ। अब जो धन्य कोई कार्य हो तो वैसी आज्ञा दें ॥६५-६६॥ यह सुन कर राजा बड़े प्रसन्न और सन्तुष्ट हुए और बारम्बार वत्सप्री की सराहना करके उसे धन्यवाद देने लगे। उन्होंने कहा—आज मर लिय बड़ी प्रसन्नता का दिन है क्योंकि तीन बारणा स मैं देवताओं द्वारा भी प्रशंसा का अधिकारी बन गया हूँ। प्रथम तो तुम को जमाता के रूप में प्राप्त किया, दूसरे ऐसा दुर्घटन शत्रु मारा गया और तीसरे मेरे पुत्र और कन्या सकुशल मुझे प्राप्त हो गये। इसलिये अब मैं अपनी प्रतिज्ञानुसार अपनी कन्या का तुम्हें देता हूँ। तुम उनका पाणिग्रहण करो ॥६७-७०॥

तत्तम्याज्ञामयाकार्यायिद्वर्षीपिकरोमिऽत् ।
 त्वमेव तातजानीपेनंवाजाधिकृतावयम् ॥७१॥
 ततस्तयो मराजेन्द्रश्चक्रैर्ववाहिकक्रमम् ।
 मुदावत्याश्चदुहितुर्भतन्दनसुतस्यैव ॥७२॥
 तत महतयारमेवत्सप्रीनं वयो वन ।
 रमणीयपुद्गेषु प्रासादशिखरेषु च ॥७३॥
 कालेन गच्छन्तां वृद्धपिता तस्य भवन्दन ।
 वनजगाम वृत्सप्री सवभूवमर्हापति ॥७४॥

इयाजयक्षान्सततंप्रजाधर्मेणपालयन् ।
 पुत्रवत्पाल्यमानास्तुप्रजास्तेनमहात्मना ॥७५
 ववृधुर्विषयेतस्यनचाभूद्वर्णसङ्करः ।
 नदस्युव्यालदुर्वृत्तभयमासीच्चकस्यचित् ।
 नोपसर्गभयञ्चैवतस्मिञ्छासतिभूपती ॥७६

राजपुत्र वत्सप्री ने कहा—महाराज ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है । आप जानते ही हैं कि मैं गुरुजनों की आज्ञा पालन की सदैव तत्पर रहा हूँ । तब राजा बिह्वरथ ने वत्सप्री तथा मुदावती का विवाह-संस्कार बड़ी धूमधाम से सम्पन्न किया । ये दोनों नवयुवा पति-पत्नी रसस्वीय स्थानों और महलों में प्रेमपूर्वक विहार करने लगे । कुछ समय पश्चात् वत्सप्री के पिता भलन्दन अधिक वृद्ध हो जाने से पुत्र को राज्य देकर वन को चले गये । वत्सप्री ने राज्य का संचालन और प्रजा का पालन बड़ी योग्यता से किया जिससे समस्त प्रजाजन निरन्तर समृद्धिशाली और सुखी होने लगे । उनके राज्य में कोई वर्णसंकर नहीं होते थे और हिंसक जन्तु, दुष्ट लोगों, ठग, धूर्त आदि का भय जाता रहा ॥७१-७६॥

१०४—खनित्र चरित्र (१)

तस्यतस्यांसुनन्दायांपूत्राद्वादजज्ञिरे ।
 प्रांशुःप्रवीरःशूरश्चसुचक्रोविक्रमःक्रमः ॥१
 वलीवलाकश्चण्डश्चप्रचण्डश्चसुविक्रमः ।
 सुनयश्चमहाभागाःसर्वसंग्रामजित्ताः ॥२
 तेषांज्येष्ठोमहावीर्यःप्रांशुरासीन्नराधिपः ।
 इतरेभृत्यवत्तस्यवभूवुर्वशवर्त्तिनः ॥३
 तस्ययजेद्विजत्यक्तंरनेकैर्द्रव्यराशिभिः ।
 न्यूनवर्गविसृष्टैश्चसत्यनामावसुन्धरा ॥४

सम्यक्पालयतस्तस्यप्रजा पुनानिवोरसान् ।

योऽभूद्धनचय कोशेतेननिष्पादितास्तुये ॥५॥

क्रतव्यं तत्सहस्रास्तेतेपासम्यानिविद्यते ।

अमुताद्येनकाटीभिनचपद्यादिभिर्मुने ॥६॥

माकण्डेय जी न ब्रह्मा—सूयवशात्पक्ष महाराज वल्लभी के वारह पुत्र हुए थे, जिनके नाम प्राशु प्रवीर दूर, सुचक्र, विजय, क्रम, बलाक, चाण्ड, प्रवण्ड, सुविक्रम और मुनय हुए यह सब अत्यन्त भाग्यशाली और युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले थे ॥१-२॥ उनमें सबसे प्राशु राजा हुए और अन्य ग्यारह भाई उनके अधीन भूय व समान रहने लगे ॥३॥ उनके यज्ञ करने के समय में ब्राह्मणा तथा अन्य जालि व मनुष्यों ने भी धन का त्याग किया था, इसीलिये पृथिवी का नाम वसुधरा पड़ा ॥४॥ उन्होंने अपने पुत्र के समान ही प्रजा का पालन किया तथा उनका राज-कोष में जो धन एकत्र होता था, उसी धन के द्वारा सभी जमरप यज्ञानुष्ठान सम्पन्न हुए थे । उन यज्ञों की प्रशंसा कराई अथवा पक्ष आदि सभ्यता में गणना सम्भव नहीं है ॥५-६॥

प्रजानिन्मम्यपुत्राऽभूश्चम्ययज्ञसतक्रतु ।

अजाप्यतृप्तिमतुनायज्ञभागे सुरैर्मह ॥७॥

दानवानामुर्वीध्रिमाजधाननवतीनंव ।

वलचवतिनाश्रद्धोजम्भचामुग्मस्तमम् ॥८॥

अन्याश्चसुमहावीर्यानाजधानामरद्विप ।

प्रजानिन्स्तथा पचयनित्रप्रमुषामुने ॥९॥

तेपापनित्रोराजामूत्रस्यातानिजविक्रमे ।

मगान्त सत्यरावद्धूर मवग्राणिहितरत्न ॥१०॥

श्वघर्माभिरतो नित्यं युद्धसेवोवदृश्रुत ।

वाग्मीविनयमपन्न वृत्तास्त्रोऽप्यविवक्ष्यन् ॥११॥

सर्वानोत्रप्रियो नित्यमुत्रार्चतद्रत्नैश्च ॥

नन्दन्नुमर्षभूतानिन्निहान्नुत्रिजनेऽपि ॥१२॥

स्वस्त्यस्तुसर्वभूतेषुनिरातङ्कानिसन्तुच ।

माव्याधिरस्तुभूतानामाघयोनभवन्तुच ॥१३

उन राजा प्रांशु के प्रजाति नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई, उनके यज्ञ में देवताओं के सहित इन्द्र यज्ञ भाग प्राप्त कर तृप्त हुए थे और उन्होंने अत्यन्त पराक्रमी बल और जम्भ नामक दैत्यों तथा अन्य देव-शत्रु असुरों का वध किया था, उस राजा प्रजाति के खनित्र इत्यादि नाम वाले पाँच पुत्र हुए थे ॥७-९॥ उन पाँचों में खनित्र ही अपने बल, वीर्य से प्रसिद्ध राजा हुए, यह शान्त सत्य-वक्ता, वीर, सब जीवों का हित चिन्तन करने वाले ॥१०॥ अपने धर्म में परायण, वृद्धजनों की सेवा करने वाले, अनेक शास्त्रों के देखने वाले, वाग्मी, अस्त्र-शस्त्र के ज्ञाता, विनयशील, अहङ्कार-हीन ॥११॥ तथा सर्व लोकप्रिय थे, वह सदैव कहते रहते—सभी जीव आनन्दित रहें, विजय स्थान में स्नेह युक्त हों, सभी जीवों का कल्याण हो, सब निर्भय हों, सब की पीड़ा नष्ट हो और मनोव्यथा किसी की भी न हो ॥१२-१३॥

मैत्रीमशेषभूतानिपुष्यन्तुसकलेजने ।

शिवमस्तुद्विजातीनांप्रीतिरस्तुपरस्परम् ॥१४

समृद्धिःसर्ववर्णानांसिद्धिरस्तुचकर्मणाम् ।

भोलोकाःसर्वभूतेषुशिवावोऽस्तुसदामतिः ॥१५

यथात्मनियथापुत्रेहितमिच्छथसर्वदा ।

तथासमस्तभूतेषुवर्त्सध्वंहितवुद्धयः ॥१६

एतद्वोहितमत्यन्तंकोवाकस्यापराध्यते ।

यत्करोत्यहितंकिंचित्कस्यचिन्मूढमानसः ॥१७

तंसमभ्येतितन्यूनंकर्तृगामिफलयत्तः ।

इतिमत्वासमस्तेषुभोलोकाहितवुद्धयः ॥१८

सन्तुमालौकिकपापलोकाःप्राप्स्यथगैवुधाः ।

योमेऽद्यस्निह्यतेतस्यशिवमस्तुसदामुवि ॥१९

सभी प्राणी सबसे मित्रता प्रकट करें, ब्राह्मणों का कल्याण, पारस्परिक स्नेह ॥१४॥ सभी वर्णों की समृद्धि और सभी कर्मों की सिद्धि हो,

हे मनुष्यो ! तुम्हारी मङ्गलमयी बुद्धि सदैव सब प्राणियों के हित में लगी रहे ॥१५॥ जैसे तुम अपनी और अपने पुत्र की शुभ कामना सदा किया करते हो, वैसे ही समस्त प्राणियों के हित की कामना करो ॥१६॥ इसी में तुम्हारा अत्यन्त हित निहित है, वीन किमके प्रति अपराधी है ? जो मन्द बुद्धि मनुष्य किसी का अहित करता है ॥१७॥ उसमें उमी दा अहित होता है क्योंकि कर्म के फल का भोगने वाला कर्मकर्त्ता ही है, ऐसा विचार करके सभी प्राणियों के हित में अपनी बुद्धि को रखो ॥१८॥ हे ज्ञानियो ! लौकिक पाप में प्रवृत्त मत होना, इसीमें तुम्हें पुण्यनोन प्राप्त हो सकते हैं, मुझमें स्नेह रखने वाले मनुष्य का भूमण्डल में सर्वत्र ही ब्रह्माण हो और जो मेरे प्रति द्वेष करे, उसका भी ब्रह्माण हो ॥१९॥

यश्चमाद्वेष्टिलोकेऽस्मिन्सोऽपिभद्राणिपश्यतु ।

एवस्वरूप पुनोऽभूत्सनिवस्तुस्यभूपते ॥२०॥

समस्तगुणसम्पन्नःश्रीमानब्जदलेक्षणः ।

तैततेभ्रातर प्रीत्यापृथग्ग्राज्येपुयोजिताः ॥२१॥

स्वयचपृथिवीमतायभुजेसागराम्बराम् ।

प्राच्यातनवृत्त क्षौरिदक्षिणस्यामुदावसु ॥२२॥

दिशिप्रतीच्यामुनयउत्तरम्यामहाग्या ।

तेपातस्यचभूपस्यपृथग्गोत्रा पुनोहिता ॥२३॥

यभूवुमुनयश्चैवमन्त्रियसक्रमागताः ।

क्षौरिःत्रिकुलोद्भूत सुहोत्रोनामवेद्विज ॥२४॥

उदावसो बुदावर्तोऽगौनमान्वयजोऽमवत् ।

वाश्यप प्रमतिर्नाभिमुनयस्यपुरोहितः ॥२५॥

महारथस्यगामिष्ट पुरोधाऽभून्महीभृत ।

वुभुजुस्तेऽप्यरोज्यानिचत्वारोऽर्षिर्नगाधिपाः ॥२६॥

गनित्रश्चाधिपुन्तेपामशेषयमुधाधिप ।

तेपुभ्रातृशेषेऽप्यगनित्र नमहापनिः ॥२७॥

प्रजामुचसमस्तासुपुत्रेष्विवसदाहितः ।

एकदामन्त्रिणाशौरिःसप्रोक्तोविश्ववेदिना ॥२८

वे राजपुत्र खनित्र इस प्रकार की कामना वाले थे, उन्होंने अपने सब भाइयों को पृथक्-पृथक् राज्य देकर ॥२०-२१॥ स्वयं भी समुद्र तक इस पृथिवी का पालन करते रहे, शौरि को पूर्व प्रदेश में, उदावसु को दक्षिण में ॥२२॥ सुनय को पश्चिम में और महारथ को उत्तर प्रदेश में बसाया और पृथक् राजा के पृथक् गोत्र के पुरोहित हुए ॥२३॥ खनित्र और उनके भाइयों के मन्त्रिवंश के क्रम से उपलब्ध पृथक् गोत्र वाले जो पुरोहित थे, उसी के अनुसार शौरि के अग्नि-वंशोत्पन्न सुहोत्र ऋषि, उदावसु के गौतम वंशोत्पन्न कुशावर्त, सुनय के कश्यप गोत्रीय प्रमति तथा महारथ के वसिष्ठजी पुरोहित थे, इस प्रकार चारों भाई राजा होकर राज्य करते थे ॥२४-२६॥ सम्पूर्ण पृथिवी के स्वामी खनित्र उनके अधीश्वर हुए, राजा खनित्र सभी भाइयों और प्रजा के प्रति पुत्र के समान व्यवहार करते थे, एक दिन राजा शौरि से उनके मन्त्री विश्ववेदी ने कहा ॥२७-२८॥

विविक्तेपृथिवीपालकिञ्चिद्वक्तव्यमस्तिनः ।

यस्येयंपृथिवीकृत्स्नायस्यभूपावशानुगाः ॥२९

सराजातस्यपुत्रश्चतत्पौत्राश्चान्वयस्ततः ।

इतरेभ्रातरस्तस्यप्राक्स्वल्पविषयाधिपाः ॥३०

तत्पुत्राश्चाल्पकास्तस्मात्तत्पौत्राश्चाल्पकाल्पकाः ।

कालेनह्लासमासाद्यपुरुषात्पुरुषान्तरम् ॥३१

कृष्योपजीविनोभूपभवन्तीतितदन्वयाः ।

नोद्वारंकुस्तेभ्राताभ्रातृस्नेहवलाप्येणः ॥३२

स्नेहःकःपृथिवीपालपरयोभ्रातृपुत्रयोः ।

तत्पुत्रयोःपरतरामतिर्भवतिपाथिव ॥३३

तत्पुत्रःकेनेकाव्येणप्रीतियुक्तोभविष्यति ।

अथवायेनतेनैवसतोपंकुस्तेनृपः ॥३४

क्रियतेनक्तिमयन्तुभूपैर्मन्त्रिपरिग्रह ।

भुज्यतेसबलराज्यमयातेमन्त्रिणासता ॥३५॥

हे राजन् ! मुझे इस एकांत के समय में कुछ निवेदन करना है, यह सब पृथिवी और राजागण जिनके अधीन हैं ॥३६॥ वह तथा उन्हीं के वतपर राजा होते हैं उनके धन्य भाई पहिले थोड़े से राज्य के अधिकारी होते हैं ॥३७॥ फिर उनके पुत्र उनसे भी थोड़े और पौत्र तो पुत्रों की अपेक्षा भी अश्वत्थ राज्य के अधिकारी होते हैं, समय पाकर क्रमांतर से पीढ़ी प्रति पीढ़ी राज्य के धनै-धनते धनत म ॥३८॥ उस वध के लोग कृषि कर्म से जीविका चलाते हैं हे राजन् ! भाई न स्नेह म बंधा हुआ भाई कभी भी अपने भाई का उद्धार नहीं करता ॥३९॥ फिर दाना माहियों की सन्तान भी एक दूसरे को पराया ही मानने लगती है उनके भी जब मत्तान होती है, तो वे और भी दूर होती जाती हैं ॥४०॥ उनके मन में अपनी सन्तति के मुख की ही विन्ता रहती है, यदि राजागण सतोष का ही भवलम्बन करें ॥४१॥ तो मन्त्रियों की निमुक्ति क्यों पड़े ? मेरे जैसे मन्त्री के हाते हुए आप सम्पूर्ण राज्य का सुख भोग करते हैं ॥४२॥

तर्किमुपाधारयसेसतोऽनुकुरुतेयदि ।

कार्यनिष्पादयराज्यकरणकर्तुं रिप्यते ॥४३॥

राज्यसद्व्युत्थतवार्यत्यकर्त्ताकरणवयम् ।

सोऽस्माभिः करणीराज्यपितृपतामहकुर ।

पुनप्रदामविप्याम परलोकेनतेवयम् ॥४४॥

ज्येष्ठोऽध्यातामहीपालोवयतस्यानुजायत ।

तत समु क्तेपृथिवीवयत्वात्पवमु धराम् ॥४५॥

यपन्तुध्यातः पचपृथ्वीवैकामहामते ।

अतोऽस्या पृथगंश्वर्यंयकृत्स्नमविप्यति ॥४६॥

एवमेतद्भूतस्त्वयमशेषावमुपातृष ।

तात्वमेवाभिपद्यस्वज्येष्ठ शास्तुययामवान् ॥४७॥

सर्वाधिपत्यः सर्वेभ्यो भवत्वमखिलेश्वरः ।

यतन्ते च यथाहं ते तेषामपि हिमन्त्रिणः ॥४१॥

मैं चेष्टा करने को प्रस्तुत हूँ तो आप संतोष को व्यर्थ ही क्यों धारण किये हुए हैं ? राज्य को निष्पादन कर देना मन्त्री का कर्तव्य है ॥३६॥ परन्तु उस राज्य प्राप्ति के कार्य में मैं कारण हूँगा और आप कर्ता होंगे, इसलिये कारण के द्वारा अपने पैतृक राज्य पर अधिकार करिये, हम तो इसी लोक में आपके लिये फल देने वाले हैं, परलोक में नहीं ॥३७॥ राजा बोले—पृथिवी का पालन करने वाले राजा हमारे बड़े भाई हैं, इसीलिये वे समस्त पृथिवी का राज्य करते हैं और हम थोड़ी पृथिवी को भोगते हैं ॥३८॥ हम पाँच भाई हैं और पृथिवी एक ही है, इसलिए पृथिवी के सम्पूर्ण ऐश्वर्य को हम सब पृथक् रूप से किस प्रकार भोग सकते हैं ? ॥३९॥ इस पर विश्ववेदी ने कहा—हे राजन् ! आपका वचन सत्य है परन्तु यदि पृथिवी एक ही है तो इस पर आप ही अधिकार करिये और सबके अधीश्वर होकर इस पृथिवी को भोगिये ॥४०॥ सम्पूर्ण आधिपत्य को प्राप्त होकर सब भाइयों में आप ही सबके स्वामी बनिये, मेरे द्वारा नियुक्त अन्य मन्त्रिण भी ऐसी ही चेष्टा कर रहे हैं ॥४१॥

ज्येष्ठो राजायथाप्रीत्या भजतेऽस्मान्मुतानिव ।

कथं तस्य करिष्यामि मम त्वं जगतीं गतम् ॥४२॥

राज्ये स्थितः पूजयेथा ज्येष्ठं भूपार्हणैर्धनैः ।

कनिष्ठज्येष्ठता केयं राज्यं प्राथयतां नृणाम् ॥४३॥

तथेति च प्रतिज्ञाते भूभुजातेन सत्तम ।

विश्ववेदी ततो मन्त्री तद्भ्रातृनयद्वशम् ॥४४॥

तेषां पुरोहितांश्चैव आत्मनः शान्तिकादिषु ।

नियोजयामास ततः खनित्रस्याभिचारके ॥४५॥

विभेदतस्य निभृतान् सामदानादिभिस्तथा ।

चक्रं च परमोद्योगं निजदंडप्रभावने ॥४६॥

राजा बोले—बड़े भाई पुत्र के समान सबका परिपालन कर रहे हैं, फिर उनके राज्याधिकार में मुझे ममत्व क्यों करना चाहिये ? ॥४२॥ विश्ववेदी

ने कहा—फिर तो आप राज्याधिकार पूर्वक विभिन्न प्रकार के सत्कारों द्वारा उनका पूजन करिये, वैसे राज्य की कामना वाले पुरुष के लिए छोटे बड़े का विचार करना व्यर्थ ही है ॥४३॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—राजा द्वारा विश्व-वेदी के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने पर विश्ववेदी ने उनके अन्य भाइयों को अपने वश में किया ॥४४॥ तथा उनके पुरोहितों को अपने लिये शान्ति कर्म और छनित्र के प्रति आभिचारिक कर्म करने के लिये नियुक्त किया ॥४५॥ तथा छनित्र के विश्वामपात्र भृत्यों को भी सामधानादि की नीति से अपने वश में करने का यत्न करन लगा ॥४६॥

आभिचारिकमत्युग्रमहन्यहनिधुर्वताम् ।
 पुरेऽथमाचनुर्णाचजजेकृत्याचतुष्टयम् ॥४७॥
 विक्कालमहाववशमतिभीषणदर्शनम् ।
 समुद्यतमहाक्षूलप्रभूनमतिदारुणम् ॥४८॥
 तयस्तदागतन्तत्रमन्त्रिभ्योयत्रपाशिवः ।
 निरस्तचाप्यदुष्टम्यतस्यपुण्यचयेनतत् ॥४९॥
 कृत्याचतुष्टयन्तपुनिपपातदुर्गात्मसु ।
 पुरोहितपुभूपानातयाभैविश्ववेदिनि ॥५०॥
 ततानिहन्त्यानिर्दग्धा कृत्ययातेपुरोहिता ।
 विश्ववेदीतयामन्त्रीसशोरेदुष्टमन्यद् ॥५१॥

जब पुरोहितों ने अत्यन्त उग्र अभिचार कर्म किया, तब चार कृत्याच उत्पन्न होगई ॥४७॥ वह सभी विक्काल शरीर वाली अत्यन्त भयानक प्रतीत होती थीं, उनके हाथों में महागूल स्थित थे और वे अत्यन्त विराल तथा दारुण थीं ॥४८॥ इनके पदवात् वे चारों कृत्याचें राजा समित्र के पास पहुँचीं, परन्तु पाप-रहित राजा ने पुण्य प्रमान से तेजहीन होकर ॥४९॥ उन दुरात्मा पुरो-हितों और विश्ववेदी के पास हा लौटकर आगई ॥५०॥ देने वाला वह दुष्ट मन्त्री विश्ववेदी, यह सभी उन लोटी कृत्याचों के द्वारा मारे जाकर भस्मीभूत होगये ॥५१॥

१०५—खनित्र चरित्र (२)

ततःसमस्तलोकस्यविस्मयःसोऽभवन्महान् ।
यदेककालंनेशुस्तेपृथक्पुरनिवासिनः ॥१॥
ततःशुश्रावनिधनंयातान्भ्रातृपुरोहितान् ।
मन्त्रिणञ्चतथाभ्रातुर्दग्धतंविश्वेदिनम् ॥२॥
किमेतदितिसोऽतीवविस्मितोभुनिसत्तम ।
खनित्रोऽभून्महाराजोनाजानात्तच्चकारणम् ॥३॥
ततोवसिष्ठं पप्रच्छसराजागृहमागतम् ।
यत्कारणविनेशुस्तेभ्रातृमन्त्रिपुरोहिताः ॥४॥
तेनपृष्ठस्तदाप्राहयथावृत्तंमहामुनिः ।
यच्छौरिमन्त्रिणाप्रोक्तंयच्चशौरिस्त्वाचतम् ॥५॥
यथाचानुष्ठितन्तेनभ्रातृणांभेदकारिणौ ।
मन्त्रिणातेनदुष्टेनयच्चक्रुश्चपुरोहिताः ॥६॥
यन्निमित्तंविनेशुस्तेअपापस्यापकारिणः ।
पुरोहितास्तस्यराज्ञःशत्रावपिदयावतः ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—उस समय सभी को यह विस्मय हुआ कि यह पृथक्-पृथक् नगर में निवास करने वाले होकर भी एक ही समय में किस प्रकार मष्ट होगये ? ॥१॥ हे मुनिवर ! तदुपरान्त राजा खनित्र ने अपने भाई के पुरोहित और मन्त्री विश्ववेदी का मृष्टु समाचार सुना तो ॥२॥ इसका कारण न समझ कर 'ऐसा क्यों हुआ' इस प्रकार विस्मय युक्त विचार करने लगे ॥३॥ फिर जब वसिष्ठजी घर पर आये तब उनसे राजा ने अपने भाई के मन्त्री और पुरोहितों के इस प्रकार मरने का कारण पूछा ॥४॥ महामुनि वसिष्ठ से पूछने पर उन्होंने शौरि और उनके मन्त्री के मध्य जो वार्ता हुई थी ॥५॥ तथा उस दुष्ट मन्त्री ने भाइयों में फूट डालने के लिए जो कार्य किये थे और पुरोहितों ने जिस कर्म का अनुष्ठान किया था ॥६॥ तथा शत्रुओं पर भी दया करने वाले

वह पुरोहित निरपराध के अपकार से तत्पर होकर स्वयं ही नाश को प्राप्त होगये थे, वह सब वृत्तान्त ब्राह्मणान्त राजा मन्त्रिण को सुना दिया ॥७॥

सतच्छ्रुत्वा न तो राजा हाहानोऽस्मीति वेदम् ।

निनिन्दात्मानमत्यर्थवसिष्ठस्याग्रतो द्विज ॥८॥

धिङ्मामपुण्यसंस्थानमरपभाग्यमशोभनम् ।

दैवदोषकृतपापसर्वालोकाविगर्हितम् ॥९॥

मत्तिमित्तविनष्ट तत्तद्ब्राह्मणचतुष्टयम् ।

मत्त बोधेन पापतरो भविष्यति पुमान्भुवि ॥१०॥

ना भविष्यदपि पुमानहमनमहीतले ।

तनस्तेन विनश्यदुममभ्रातृपुरोहिता ॥११॥

धिप्राज्यधिक्त्वमेजन्मभूभुजामहताकुले ।

कारणत्वे गतायां हविनाशम्यद्विजन्मनाम् ।

कुर्वन्त स्वामिनां श्रमात्तृणाममयाजका ।

नाशयन्तु न दुष्टान्ते दुष्टोऽहनाशकारणे ॥१२॥

विवरो भवत्तद्व्यामिना न्योमतो हि पापकृत् ।

पृथिव्यामस्ति हेतुर्द्विजनाशस्य योगत ॥१३॥

वह वृत्तान्त सुनकर राजा भरपन्त दुःखित होकर बगिछड़ी के समस्त ही अपन को धिक्कारन लग ॥८॥ राजा ने कहा—मैं कितना बड़ भाग्य समझिन् पुण्य वाचा तथा आभा रहित है कि दैव भी मेरे अनुकूल नहीं है, मैं लोक में निन्दा का पाप और पापी हूँ, इसलिये मुझे धिक्कार है ॥९॥ क्योंकि मेरे ही कारण चार ब्राह्मणों की मृत्यु हुई है, इसलिये इस पृथिवी पर मुझे बर्बर अन्य बौन पापी हो सकता है ? ॥१०॥ यदि मैं इस पृथिवी पर पुरा के शरीर में उत्पन्न न हुआ होता तो मेरे ब्राह्मणों के पुरोहित नाश को प्राप्त न हुए होते ॥११॥ उन ब्राह्मणों के नाश का कारण मैं ही हूँ, इसलिये मेरे इस राज्य की घोर महान् राज-वश में जन्म लेने को धिक्कार है ॥१२॥ मेरे भाइयों की प्रशोकन मिट्टि में लिये कर्म करके जो याज्ञक्य नाश को प्राप्त हुए हैं, उनमें वे स्वयं दोषी नहीं थे, उनको नष्ट होने का कारण मैं ही था, इसलिये

दोषी भी मैं ही हुआ ॥१३॥ अब मेरा क्या कर्त्तव्य है, मुझे कहाँ जाना चाहिये? ब्रह्महत्या का कारण होने से मेरे समान पापी इस भूमण्डल पर अन्य कोई नहीं है ॥१४॥

इत्थमुद्विग्नहृदयःखनित्रःपृथिवीपतिः ।

वनंयियासुःपुत्रस्यकृतवानभिषेचनम् ॥१५॥

अभिषिच्यसुतंराज्येक्षुपसंज्ञमहीपतिः ।

भार्याभिस्तिष्ठतिःसार्धतपसेसवनंययौ ॥१६॥

तत्रागत्वातपस्तेपेवानप्रस्थविधानवित् ।

शतानित्रीणावर्षाणांसाध्वानिनृपसत्तमः ॥१७॥

तपसाक्षीणदेहस्तुराजवर्योद्विजोत्तम ।

निगृह्यसर्वस्वोतांसितत्याजासून्वनेचरः ॥१८॥

ततःपुरयान्ययौलोकान्सर्वकामदुहोक्षयान् ।

अश्वमेधादिभिर्यज्ञैरवाप्यायेनराधिवैः ॥१९॥

भार्याश्चित्तस्यतास्तिष्ठःसमन्तेनैवतत्पुजुः ।

प्राशानवापुःसालोक्यतेनैवसुमहात्मना ॥२०॥

एतत्खनित्रचरितंश्रुतंकल्मषनाशनम् ।

पठतांश्चमहाभागक्षुपस्यातोनिशामय ॥२१॥

राजा खनित्र ने इस प्रकार उद्विग्न चित्त से वनवासी होने की इच्छा करके अपने पुत्र का राज्याभिषेक किया ॥१५॥ क्षुप नामक पुत्र को राज्य देकर स्वयं अपनी तीन पत्नियों को साथ लेकर तप करने के लिये वन में गये ॥१६॥ और वन में वास करते हुए वानप्रस्थी रहकर साढ़े तीन सौ वर्ष तक उन्होंने तप किया ॥१७॥ फिर हे द्विज श्रेष्ठ ! उन वनवासी राजा ने तप के द्वारा कृश शरीर होने पर सब स्रोतों के निरोध पूर्वक प्राण का परित्याग कर दिया ॥१८॥ अन्त्यान्ध राजागण सैकड़ों अश्वमेव यज्ञों को करके भी जिस लोक को नहीं पा सकते उस सर्व अभीष्ट देने वाले अक्षय पुण्य लोक को राजा खनित्र ने प्राप्त किया ॥१९॥ उनकी तीनों पत्नियाँ भी उनका अनुगमन करके उन्हीं के साथ समान गति को प्राप्त हुईं हे महाभाग ! इस प्रकार खनित्र के चरित्र को

सुम्हारे प्रति कहा है, हमने पहले या मुने से पापों का नाश होता है, अब धुप का चरित्र कहना है उस अत्रण बरा ॥२१॥

१०६—त्रिंश चरित्र

धुप चरित्रपुत्रस्तुपाप्यराज्ययथापिता ।
 तथैवपालयामासप्रजाधर्मैरञ्जयन् ॥१॥
 सदानशीलोपष्टाचयज्ञानामवनीपति ।
 सप्तःसत्रीचमित्रेचव्यवहाररादिवर्त्मनि ॥२॥
 एकदासमहीपालानिजस्यानगतोमुने ।
 सूतंरुक्तीयथापूर्वधुपाराजातथाऽभवत् ॥३॥
 ब्रह्मणस्तनय पूर्वधुपोऽभूत्पृथिवीपतिः ।
 यादृक्चरितमस्यासीत्तादृक्तस्यैवचेष्टिनम् ॥४॥
 आतुमिच्छामिचरितधुपम्यमुमहात्मन ।
 यदितादृक्भयाद्यक्य चेष्टितु तत्कराम्यहम् ॥५॥
 सचकाराकरान्भूषणराजागात्राह्यणास्पुरा ।
 पञ्चाशेनवृत्ताचोर्व्यामिष्टिस्तेनमहात्मना ॥६॥
 तेषामहात् नाराज्ञातोऽनुमाम्यनिमद्विध ।
 तयाप्युत्कृष्टचेतानाचेष्टामूद्यमवान्भवत् ॥७॥

मार्कण्डेय जी ने कहा—राज्य में अमिषिक्त हुए चरित्र पुत्र धुप प्रजा की प्रशंसा करते हुए अपने पिता के समान ही प्रजा का पालन धर्म पूरे करने लगे ॥१॥ यह राजा धुप भी अपने पिता के समान यज्ञवर्त्ति, दाता और शत्रु-मित्र सभी के साथ समान व्यवहार करने वाले हुए ॥२॥ इस समय की बात है कि मुनी ने राज्य मिहामन से प्रतिश्रुति राजा धुप से कहा—आप अपने पूर्व-वर्ती धुप राजा की प्रति मूर्ति जैसे ही हैं ॥३॥ पुराकाव में प्रह्लाद के पुत्र धुप ने गृध्री पर राज्य किया था, उसका जैसा चरित्र तथा जैसी चेष्टा थी, वैसे

ही सब बातें आपमें हैं ॥४॥ राजा बोले—मैं उन महात्मा का धुप का चरित्र सुनना चाहता हूं यदि मैं भी उनके जैसा ही आचरण कर सकूँ तो वैसा ही प्रयत्न करूँगा ॥५॥ सूत बोले—हे महाराज ! वह राजा धुप गौ-ब्राह्मण से कर प्राप्त नहीं करते थे तथा छटे अंश से यज्ञों का अनुष्ठान करते थे ॥६॥ राजा बोले—मेरा जैसा मनुष्य उनके कार्यों का अनुकरण कैसे कर सकता है ? फिर भी ऐसे महात्माओं के उत्कृष्ट आचरण पर चलने का प्रयत्न करना चाहिये ॥७॥

तच्छ्रूयतांप्रतिज्ञायासाम्प्रतंक्रियतेमया ।

क्षुपस्यानुकरिष्यामिमहाराजस्यचेष्टिनम् ॥८॥

त्रींस्त्रीन्यज्ञान्करिष्यामिसस्यापातेगतागते ।

पृथिव्यांचतुरन्तायांप्रतिज्ञेयंकृतामया ॥९॥

यज्ञगोब्राह्मणाःपूर्वमददन्भूभृतेकरम् ।

तमेवप्रतिदास्यामिब्राह्मणानांतथागवाम् ॥१०॥

इतिप्रतिज्ञायवचःक्षुपस्तत्कृतवास्तथा ।

सस्यापातेसयज्ञांस्त्रीनयजद्यजतांवरः ॥११॥

गोब्राह्मणाःपुराराज्ञामददद्यंचवैकरम् ।

तावत्संख्यमदाद्वित्तमन्यद्गोब्राह्मणायसः ॥१२॥

तस्यपुत्रोऽभवद्वीरःप्रमथायामनिन्दितः ।

यस्यप्रतापगौर्याभ्यांकृतावश्यामहीभृतः ॥१३॥

तस्यापिनन्दिनीनामवैदर्भीदयिताऽभवत् ।

विविशंतनयंतस्यांजनयामाससप्रभुः ॥१४॥

इसलिये मैं इस समय प्रण करता हूं उसे श्रवण करो, मैं उन महाराज धुप के कार्य का आज से अनुकरण करूँगा ॥८॥ मैं चारों दूरों और पृथिवी के प्रति यह प्रतिज्ञा करता हूं कि कृपि आने वाले, वर्तमान और व्यतीत होने वाले समय में तीन-तीन यज्ञों का अनुष्ठान करूँगा ॥९॥ तथा पहिले जिस-जिस समय में राजाओं ने ब्राह्मणों से जो कर लिया है, उसे मैं उनको लौटा दूँगा ॥१०॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—यज्ञकर्त्ताओं में श्रेष्ठ राजा धुप ने ऐसी प्रतिज्ञा करके उसकी रक्षा की अर्थात् कृपि की उपस्थिति के समय तीन यज्ञानुष्ठान

विय ॥११॥ तथा पहिले राजाओं को गो और ब्राह्मणों ने जितना वर दिया था, उतना धन उनको दे दिया ॥१२॥ उनकी प्रमथा नाम की भार्या हुई, उसके गर्भ में एक अत्यन्त सुन्दर और बलवान् पुत्र की उत्पत्ति हुई, उस पुत्र ने अपनी शूरता और पराक्रम से सभी राजाओं को अपने अधीन कर लिया था ॥१३॥ उनकी भार्या विदभं देश के राजा की पुत्री नन्दिनी हुई, उसके गर्भ से विविश नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१४॥

विविधेशासतिमहीमहीपालेमहीजसि ।

महीतलमभूच्छाप्तनिरन्तरतयानर् ॥१५॥

ववपेवालेपजन्मोमहीसस्यवतीतथा ।

सुफनानिचमस्यानिरसवन्तिफलानिच ॥१६॥

तत्प्रतापेनग्निबोभयमापुर्महामुने ।

स्वास्थ्य जन मुहुर्द्वर्गोमुदमापमुपूजितः ॥१७॥

इष्टानयज्ञान्मुवहू-सम्यक्मम्पात्यमेदिनीम् ।

सग्रामेनिघनप्राप्यशत्रूलोभितोगत ॥१८॥

राजा विविश के राज्यकाल में पृथिवी पर इतनी प्रजा थी कि वहाँ भी स्थान दीप्त नहीं था ॥१५॥ उस काल में मेघ यथा समय वृष्टि करते थे और पृथिवी भी अन्न में परिपूर्ण रहती थी, सभी अनाज फल से युक्त और सभी फल रस से युक्त थे ॥१६॥ रस में पोषक तत्व होते थे, उनसे होने वाली पुष्टि से मनुष्य उन्नत नहीं होता था, बहुत धनवान् होकर भी मनुष्यों में मिष्टानद नहीं था ॥१७॥ जानू उनके बल से सदा अथर्भीत तथा अस्वस्थ रहते थे, मुहुर्द्वर्गो गन्ध मन्तोप रहता था ॥१८॥ इस प्रकार उस राजा विविश ने अनेकानेक यज्ञ किये और अनेक प्रकार प्रजा का परिपालन किया, अन्न में पुष्ट करते हुए मृग्यु की प्राप्ति होकर स्वर्गलोक की गये थे ॥१९॥

१०७—खनित्र चरित्र (३)

तस्यपुत्रःखनीनेत्रोमहाबलपराक्रमः ।
यस्ययज्ञेष्वगायन्तगन्धर्वाविस्मयान्विताः ॥१॥
खनीनेत्रसमोनान्योभुवियज्वाभविष्यति ।
तेनयज्ञायुतेपूर्णेदत्तापृथ्वीससागरा ॥२॥
दत्त्वाचसकलांपृथ्वीं ब्राह्मणानांमहात्मनाम् ।
तपसाद्रव्यमासाद्यमोदयन्साधितेनयः ॥३॥
यतश्चप्राप्यवित्तिद्विमतुलांदातृसत्तमात् ।
जगृहुर्ब्राह्मणाविप्रनान्यराज्ञःप्रतिग्रहम् ॥४॥
सप्तषष्टिसहस्राणिसप्तषष्टिशतानिच ।
सप्तषष्टिचयोयज्ञानयजद्भूरिदक्षिणान् ॥५॥
अपुत्रःसमहीपालोमृगयामुपचक्रमे ।
पुत्रार्थपितृयज्ञायमांसकामोमहामुने ॥६॥
अश्वारूढोविनासंन्यमेकएवमहावने ।
ददृगोधाङ्गुलित्राणोवाणखङ्गधनुर्धरः ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—राजा विविश के पुत्र खनी नेत्र हुए, वे महाबली और पराक्रमी थे, उनके यज्ञानुष्ठान को देखकर विस्मय को प्राप्त हुए गन्धर्वों ने उनकी गाथा का इस प्रकार कीर्तन किया था ॥१॥ इस पृथिवी पर खनी नेत्र के समान कोई यज्ञकर्त्ता नहीं होगा, क्योंकि उन्होंने दश सहस्र यज्ञों का अनुष्ठान किया और समुद्र पर्यंत सम्पूर्ण पृथिवी का दान कर दिया ॥२॥ उन राजा खनीनेत्र ने ब्राह्मणों को सब पृथ्वी दे दी थी और फिर तप के द्वारा धन लाभ करके उस पृथ्वी को छुड़ा लिया था ॥३॥ हे ब्रह्मन् ! उन दानियों में श्रेष्ठ राजा खनीनेत्र ने ब्राह्मणों ने विपुल द्रव्य प्राप्त करके, पुनः अन्य किसी से दान ग्रहण नहीं किया था ॥४॥ उन्होंने तिहत्तर हजार सरसठ यज्ञों का अनुष्ठान किया और सभी यज्ञों में विपुल धन की दक्षिणा दी ॥५॥ एक समय की बात है कि खनी नेत्र ने पुत्र की कामना से पितृ-यज्ञ के अनुष्ठान की इच्छा की, उस

समय अनुष्ठान के निमित्त मृग के निय धनुष बाण आदि धारण कर और प्रभा-
रुड होकर वन में आसुष्ट के लिये गये ॥६७॥

यथाह्यन्ततुरगमन्यतो गहनाद्वनान् ।

विनिष्क्रम्य मृगं प्राहसाहृत्वा भिमतकुरु ॥८॥

अन्ये मृगा पलायन्ते महाभीत्या विनोदय माम् ।

कथमात्मप्रदानं त्वमृत्यवे कर्तुं मिच्छसि ॥९॥

अपुत्राऽहमहाराज वृथा जन्मप्रयोजनम् ।

विचार्य त्रपस्यामि प्राणानामिह धारणम् ॥१०॥

अथाभ्येत्य मृगं प्राह तमन्यावसुधाधिपम् ।

मृगस्य तस्य प्रत्यक्षमलमतनपार्थिव ॥११॥

घातयस्व तिमामासं मम कमममाचर ।

यथावृत्ताय तातस्यान्मम चाप्सु पकारितम् ॥१२॥

पुत्राय त्वमहाराज स्वपितृन्याटुमिच्छसि ।

अपुनस्यास्य मामेन नप्यस वाच्छिन्नरथम् ॥१३॥

यादृक् कमविनिष्पाद्य तादृग्द्रव्यमुपाहरेत् ।

दुर्यन्धो न युगन्धानागन्धजानविनिर्णय ॥१४॥

जब उन्होंने एक वन में दूधर वन में जाने के लिये अपने साथ बा-
दीबाया, तभी एक मृग ने एक आर्य से निबल कर उनसे कहा—हे राजन् !
मेरा वध करके अपना इच्छित काम करिय ॥८॥ राजा बोले—और तभी मृग
ता मुझे देखते ही भाग जात है परन्तु तुम मर्त्य के लिये क्यों रुद्धा कर रहे
हो ? ॥९॥ मृग ने कहा—हे राजन् ! मैं पुत्रहीन हूँ, इसलिये जीवित रहता
हूँ मम समभया हूँ ॥१०॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तभी एक अन्य मृग वहाँ
आकर पहिले मृग के ही साथ वन गया से बोला—हे राजन् ! इस मृग का वध
करके ? ॥११॥ वध करके अपने काम का सम्पादन करते तो
आपका अभीष्ट मित्र होगा और मर्त्य भी उपरार होगा ॥१२॥ हे राजन् !
आप पुत्र की कामना से जो पितृ यज्ञ करता चाहते हैं उसकी निधि इस पृथ-
्वीन के मांस से कैसे हासल होगी ? ॥१३॥ जो यज्ञ जिस प्रकार का हो, उसका

लिये बैसा ही द्रव्य ग्रहण करना चाहिये, भला कभी दुर्गन्ध से सुगन्ध की पूर्ति हो सकती है ? ॥१४॥

वैराग्यकारणंप्रोक्तमनेनापुत्रतामम ।

कथ्यतांप्राणसत्यागेयत्तेवैराग्यकारणम् ॥१५॥

बहवोमेसुताभूपबह्वचोदुहितरस्तथा ।

यच्चिन्तादुःखदावाग्निज्वालामध्येवसाम्यहम् ॥१६॥

सर्वसाध्यानरेन्द्रैर्यमृगजातिःसुकातरा ।

तेष्वपत्येषुमेवातिममत्वंतेनदुःखितः ॥१७॥

मनुष्यसिंहशार्दूलवृकादिभ्योबिभेम्यहम् ।

विहीनात्सर्वसत्त्वेभ्यःश्वशृगालादपिप्रभो ॥१८॥

सोऽहंनिमित्तब्रधूनामिमांशून्धांवसुन्धराम् ।

नृसिहादिभयात्सर्वमिच्छामिसुनृशंसकृत् ॥१९॥

तृणान्यन्येऽपिखादन्तिगोऽजावितुरगादिकाः ।

तांस्तेषांपोषणायाहमिच्छामिनिधनंगतान् ॥२०॥

निष्क्रान्तेषुतत्स्तेषुममापत्येषुवैपृथक् ।

भवन्तिचिन्ताःशतशोममत्वादृतचेतसः ॥२१॥

राजा बोले—इस प्रथम मृग ने पुत्रहीनता को ही अपने वैराग्य का कारण बताया है, परन्तु तुमको वैराग्य किसलिये हुआ है, जो अपना प्राण देने को तत्पर हुए हो ? ॥१५॥ मृग ने कहा—हे राजन् ! मेरे पुत्र पुत्रियों की अधिकता है, उन्हीं की चिन्ता से मैं दुःखरूपी अग्नि में जलता रहता हूँ ॥१६॥ यह मृग जाति सभी के वक्ष में हो जाती है, मुझे अपनी संतान के प्रति अत्यन्त मोह है, इसीलिये मैं सदा ही दुःखित रहता हूँ ॥१७॥ हे राजन् ! मनुष्य, सिंह, व्याध्र, वृक तथा सभी प्राणियों में अत्यन्त हीन श्वान और गोदड़ आदि से भी भयभीत रहता हूँ ॥१८॥ मैं सदा यही कामना करता हूँ कि इन मनुष्य सिंहादि के डर से यह पृथिवी मुक्त हो जाय और मैं भी विघ्न रहित हो जाऊँ ॥१९॥ गौ, बकरी, अश्व आदि पशु जब इस पृथिवी के सम्पूर्ण तृण को खा जायेंगे तब मेरे पुत्र-पुत्री आदि क्या खाकर जीवन धारण करेंगे, इसीलिये मुझे अपनी

सतान के पोषणार्थ मैं तृण खाने वाले जीवों के मरने की कामना करता रहता हूँ ॥२०॥ जब मेरे पुन-पुनो पृथक् पृथक् रूप से गमन करते हैं, तब उनके मनेह के कारण मेरे हृदय में संकटों बिन्ताएँ उपस्थित हो जाती हैं ॥२१॥

विकूटपाशकिञ्च वरागुराविमुतोमम ।

प्राप्तश्चरन्वनेकिवानृसिहादिवशगतः ॥२२

प्राप्तोऽयमेकःसप्राप्तास्तेवत्याकीदृशीमम ।

साम्प्रततेविरायतेयेगता सुमहावनम् ॥२३

दृष्ट्वाप्राप्तान्ममाम्याशमहन्तानात्मजान्पुन ।

ईषदुच्छ्रमिति क्षेममिच्छामिरजनोपुन ॥२४

प्रभातेदिवमक्षेममस्तगेज्जनिशामपि ।

वाछाम्यहव दाक्षेमसर्वंवातमविष्यति ॥२५

एतत्तेनयितभूपमहोद्वेगस्यकारणम् ।

अतःप्रमादकुम्भेवाणोऽप्यपात्यतामपि ॥२६

इतिदुःखशताविष्टप्राणान्रहंत्यजामियत ।

तत्कारणमुनिबोधत्वमुक्तोममपायिव ॥२७

अमूर्धानामतेलावायान्गच्छन्त्यात्मघातकाः ।

यज्ञोपयुक्तापशवमम्प्रयान्त्युच्छिन्नीप्रभो ॥२८

कभी-कभी तगता है कि कोई पुन बिगी कठोर पाप में बँगा है अथवा

कथमा गिहादि के द्वारा मारा गया है ॥२२॥ यदि एक आजाता है तो दूसरे

की चिन्ता रहती है, जो वन में चने के लिये गये हैं, वह वहाँ पेड़ों दशा में

होंगे यह मुझे ज्ञात नहीं है ॥२३॥ हे गजन् ! जब वह मय मेरे पास आये

हैं, तब उन्हें देखकर कुछ गनाप होता है, परन्तु उस समय भी समझ नहीं

मगन पूर्वक व्यतीत हो, यही चिन्ता करता रहता हूँ ॥२४॥ प्रातःकाल ही

पर दिन भर की मगन कामना और मूर्खान्त होने पर रात्रि के मगन पूर्वक

व्यतीत होने की चिन्ता करता हुआ यही सोचता रहता हूँ कि यह हर मन्त्र

निरापद अवस्था में रहे ॥२५॥ हे गजन् ! मेरे उद्वेग का यही कारण है जो

मैंने प्रायमे कहा है अब पाप कृपा करने मुझ पर वाण चलाइये ॥२६॥

राजन् ! मैं जिस लिये सैकड़ों दुःखों से दुःखित हृदय हुआ अपने प्राण त्याग की कामना कर रहा हूँ उसे आप यथार्थ समझिये ॥२७॥ हे प्रभो ! आत्मघात करने वालों को असूर्य नामक नरक की प्राप्ति होती है और यज्ञ के लिये प्रयुक्त हुए पशुओं को सद्गति की प्राप्ति होती है ॥२८॥

अग्निःपशुरभत्पूर्वपशुरासीज्जलाधिपः ।

भास्वानथोच्छ्रिताःप्राप्तायज्ञेनिष्पामुपागताः ॥२९॥

तन्ममैतांकृपांकृतवानयमामुच्छ्रितिनृप ।

अत्मनश्चेप्सितंकामपुत्रलाभादवाप्त्यसि ॥३०॥

राजेन्द्रनैषहन्तव्योधन्योऽयंसुकृतीमृगः ।

बहवस्तनयाह्यस्यहन्तव्योऽहमसन्ततिः ॥३१॥

एकदेहभवंयस्यदुःखंघन्यःसर्वेभवान् ।

बहूनि यस्य देहानि तस्य दुःखान्यनेकधा ॥३२॥

एकोयदाहमासंतुप्रावतदादेहजंमम ।

दुःखमासीन्ममत्वेतुभाढ्यायास्तदभूदद्विधा ॥३३॥

यदाजातान्यपत्यानितदायादन्तितानिव ।

तावच्छरीरभूमीनिममदुःखान्यथाभवन् ॥३४॥

नकृतार्थोभवाम्यस्यनातिदुःखायसम्भवः ।

इहदुःखायमत्सूतिपरत्रचत्रिरोधिनी ॥३५॥

यतोरक्षणपोषार्थमपत्यानां करोमितत् ।

चिन्तयामिचसंभूतिस्तेनमेनरकेध्रुवम् ॥३६॥

पुराकाल में अग्नि, वरुण और सूर्य भी पशु होकर यज्ञार्थ वियुक्त हुए थे, इसीलिये उनको सद्गति की प्राप्ति हुई थी ॥२९॥ हे राजन् ! इसीलिये मुझ पर कृपा करके आप मुझे सद्गति को प्राप्त कराइये, ऐसा करके आप अपने इच्छित पुत्र को प्राप्त करेंगे ॥३०॥ प्रथम मृग ने कहा—हे राजन् ! यह मृग अधिक संतान वाला तो स्वयं ही सुकर्मवान् होता है, इसलिये मुझ पुत्रहीन का ही वध करिये ॥३१॥ इस पर दूसरे मृग ने कहा—एक शरीर वाले को एक ही दुःख होता है, वह तुम्हारे समान घन्य ही है, परन्तु अधिक देह वाले को

अनेकानेक दुःखों की प्राप्ति होती है ॥२२॥ जब मैं भी एक था, तब मुझे भी एक देह का ही दुःख था, परन्तु जब पत्नी हुई, तब स्नेह के कारण इसकी दो भागों में विभक्ति हुई ॥२३॥ फिर जितनी मनान हाती गई, उतने ही भागों में दुःख बढ़ता गया, इस प्रकार मुझे अनन्त देहों के कारण अनेक दुःखों की प्राप्ति हुई है ॥२४॥ जब तुम्हें अधिक दुःख नहीं है तब क्या तुम धन्य नहीं हो ? मुझे तो मेरी यह मनान इस लोक में दुःख का कारण और परलोक में भी ग्रहितकर है ॥२५॥ मैं अपनी वसति व पोषण और रक्षार्थ जो प्रयत्न अपना बिन्ता करता हूँ, वह सभी मेरी नरक प्राप्ति का वाचन रूप ही है ॥२६॥

नवेधिविसन्ततिमान्जन्योऽपुत्रोऽनविमृग ।

पुत्रार्थं श्रायमारम्भो मम दालायते मनः ॥२७॥

दुःखाय मन्तति सत्यमेहिकामुष्मिकाय तत् ।

तथाप्यतनयान्त्रान्तिष्ठणानीनिश्रुतमया ॥२८॥

सोऽह्यतिप्यपुत्रार्थं मृते प्राणिवध मृग ।

तपसं च प्रचण्डेन यथा पूर्णमहीपति ॥२९॥

राजा बाले—ह मृग ! पुत्रहीन और पुत्रवान् इन दोनों में किसका जीवन सपन है यह मुझे ज्ञान नहीं है, मैं पुत्र प्राप्ति के कार्य में प्रयत्नवान् हूँ, परन्तु मेरा मन अत्यन्त चञ्चलता को प्राप्त हो रहा है ॥३०॥ यद्यपि इहलोक और परलोक में मनान के कारण ही दुःखों की प्राप्ति होती है, परन्तु ऐसा सुना जाता है कि पुत्रहीन पुण्य श्रृंग-मुक्त नहीं होता ॥३१॥ इसलिये ह मृग ! मैं जीवहत्या विषय विना ही, पूषवालीन भूषालों के समान धीरे तप करके ही पुत्र लाभ का प्रयत्न करूँगा ॥ ३१॥

१०८—करन्धम चरित्र

तत मनुजतिर्गन्ता शोभती पापनाशिनीम् ।

तत्र तदाव नियतो भवेत्वा देवपुण्ड्रम् ॥१॥

तप्यमानस्तपश्चोद्यतवाक्कायमानसः ।
 तुष्टावप्रयतःशक्रमपत्यार्थमहीपतिः ॥२॥
 तस्यस्तोत्रेणतपसाभक्त्याचापिसुरेश्वरः ।
 तुतोषभगवानिन्द्रःप्राहचैनमंहामुने ॥३॥
 अनेनतपसाभक्त्यास्तोत्रेणोच्चारितेनच ।
 परितुष्टोऽस्मितेभूपप्रियतांभवेतांवरः ॥४॥
 अपुत्रस्यसुतोमेऽस्तुसर्वशस्त्रभृतांवरः ।
 सदाचाव्याहृतैश्वर्योधर्मकृद्धंमेवित्कृती ॥५॥
 तथेतिचोक्तःशक्रेणराजाप्राप्तमनोरथः ।
 प्रजाःपालयितुंभूपम्राजंगामनिजंपुरम् ॥६॥
 तत्रास्यकुर्वतोयज्ञसंम्यक्पालयंतःप्रजाः ।
 अजायतसुतोविप्रतदाशक्रंप्रसादतः ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—तदनन्तर राजा खनीनेत्र ने पापों को नष्ट करने वाली गोमती के किनारे पहुँच कर जितेन्द्रिय रहते हुए पुरन्दरदेव का स्तवत किया ॥१॥ हे मुने ! राजा ने जब देह, मन और वचन से संयत होकर पुत्र की इच्छा से देवेन्द्र की स्तुति की, तब भगवान् पुरन्दर ने उनकी भक्ति और स्तुति से प्रसन्न होकर कहा ॥२-३॥ हे राजन् ! तुम्हारी तपस्या, भक्ति और स्तुति से मैं अत्यन्त संतुष्ट हुआ हूँ, इसलिये तुम मुझसे वर माँगो ॥४॥ राजा बोले— हे प्रभो ! मैं पुत्रहीन हूँ, मेरे सभी शस्त्रधारियों से बढ़कर, बाधा रहित और ऐश्वर्यवान् धर्म के जानने वाला एक पुत्र हो ॥५॥ मार्कण्डेयजी ने कहा— इन्द्र ने ऐसा ही हो कहकर जब राजा की प्रार्थना स्वीकार की, तब राजा अपने नगर में लौट आये ॥६॥ वहाँ प्रजा पालन में तत्परता पूर्वक यज्ञ का अनुष्ठान करने पर इन्द्र की कृपा से उन्हें एक पुत्र की प्राप्ति हुई ॥७॥

तस्यनामपिताचक्रैवलाश्वइतिभूपतिः ।

अस्त्रग्राममशेषंचग्राहयामासतंसुतम् ॥८॥

पितर्युपरतेविप्रसोऽधिराज्येस्थितोनृपः ।

सबलाश्वोवशनिन्येभुविसर्वमहीक्षितः ॥९॥

वरचदापयामासमारगहगपूर्वकम् ।

ससर्वभूमिपाञ्चाजापालयामासचक्रजा ॥१०॥

अयास्तिलनरेन्द्रास्तेदायादास्तस्मदुर्मदा ।

नचाम्युत्थायमततेचास्मैप्रददु करान् ॥११॥

व्युत्थिता स्वंपुराष्ट्रेपुनसन्तोपपरास्तत ।

भुवतस्पनरेन्द्रस्यजगृहृस्तेनराधिपा ॥१२॥

सगृहीत्वास्ववराज्यपृथिवीशावलान्मुने ।

तस्योभ्यनगरेभूर्पविरोधोवहुमि कृत ॥१३॥

समेत्यसुगहावीर्या समाघनघनास्तत ।

रघुमुत्तमहीपालपुरेतन्नरेश्वरा ॥१४॥

पिता ने उसका नाम बलाद्वज रखा और उसे सम्पूर्ण अस्त्र दत्त की शिक्षा दी ॥१०॥ हे महान् ! वह बलाद्वज अपने पिता के मरणापराध, पृथिवी के सब राजाओं को जीतकर सम्राट बन गये ॥११॥ वह उन राजाओं से सार रूप वर को लेकर अपने प्रकार प्रजा का पालन करने लगे ॥१०॥ फिर समय प्राप्त कर उन राजाओं और जाति धारा ने राजा का अभ्युत्थान न होत देने के निमित्त वर दत्त रोक दिया ॥११॥ तब वह राजागण बलाद्वज के अधीनता से मुक्त होकर ही सगृह न हूय वग्न उहाने राजा बलाद्वज की भूमि भी छोड़ ली ॥१२॥ राजा बलाद्वज अपने शत्रुओं से युद्ध करते करते इतने घनहीन होगये कि उनके पास अपना राज्य मात्र ही रह गया और वह अपनी राजधानी में ही रहने लगे ॥१३॥ इसके पश्चात् उन घन साधन सम्पन्न राजाओं ने इन राजा बलाद्वज को उनके नगर में ही घेर दिया ॥१४॥

पुररोयेनतेनायकुपितममहीपति ।

स्वल्पतोत्पदण्डश्रवैकनव्यपरमगत ॥१५॥

अपश्यमान शरणमयनाद्विजसत्तम ।

वरोमुगाग्रवृत्त्वानिगन्धामातमानस ॥१६॥

तनोऽप्यदृष्टजिरवान्मुगानितसमाहता ।

निजंभुगततोयाधारधनागतुरङ्गमा ॥१७॥

ततःक्षणेनतत्सर्वनगरंतस्यभूपतेः ।

व्याप्तमासीद्वलौघेनसारेणातिबलान्मुने ॥१८

अथसोऽतिबलौघेनमहतातेनसंवृतः ।

निर्मथ्यनगरात्तस्मात्तान्विजिग्येनराधिपः ॥१९

जित्वाचबशमानीयचकारकरदान्पुनः ।

यथापूर्वमहाभागमहाभाग्योनरेश्वरः ॥२०

धुतयोःकरयोर्जज्ञेयतस्तस्यारिदाहृदम् ।

बलंकरन्धमस्तस्मात्सबलाश्चोऽभिधीयते ॥२१

सधर्मात्मामहात्माचसमैत्रःसर्वजन्तुषु ।

करन्धमोऽभवद्भूपस्त्रिषुलोकेषुविश्रुतः ॥२२

सम्प्राप्तस्यपरामार्तिददावरिविनाशनम् ।

बलन्धर्मेशाक्षिप्तमभ्युपेत्यस्वयंनृपम् ॥२३

नगर के घिर जाने से बलाश्व को बड़ा क्रोध हुआ, परन्तु वह उत्पन्न और उत्पन्न वण्ड व्यवस्था वाले होने के कारण ॥१५॥ रक्षा का कोई अन्य उपाय न देखकर अत्यन्त व्याकुलता पूर्वक मुख को दोनों हाथों से ढक कर दीर्घ निःश्वास छोड़ने लगे ॥१६॥ ऐसा करने से उनके मुख की वायु के साथ ही सैकड़ों योद्धा, रथ, हाथी और अस्त्र निकल पड़े ॥१७॥ हे मुने ! क्षण भर में ही इस प्रकार अत्यन्त बल युक्त सेनाओं के द्वारा राजा बलाश्व का सम्पूर्ण नगर व्याप्त हो गया ॥१८॥ तब उन राजा बलाश्व ने अपनी उस महान् सेना के सहित नगर से बाहर आकर युद्ध किया और शत्रुओं पर विजय प्राप्त की ॥१९॥ और उन सबको अपने अधीन करके उन्हें पुनः करदाता बनाया, इस प्रकार वह पुनः सीमाव्यवशाली हुए ॥२०॥ बलाश्व के कांपते हाथों से जो सेना उत्पन्न हुई उसके कारण राजा बलाश्व की प्रसिद्धि 'करन्धम' नाम से हुई ॥२१॥ करन्धम त्रैलोक्य में प्रसिद्ध, धर्मात्मा तथा सब प्राणियों के प्रति सख्य भाव वाले थे ॥२२॥ वह राजा स्वयं बल प्राप्त करके परम प्राप्ति हुए प्राणियों के शत्रुओं या दुःखों का नाश करने वाले हुए ॥२३॥

१०६—अशीचित् चरित्र (१)

वीर्यचन्द्रसुतामुभ्रवीरानामनुमवता ।
 स्वयवरेसाजगृहेमहाराजकरन्धमम् ॥१॥
 तस्यापुत्रसराजेन्द्रोजनयामासवीर्यवान् ।
 अविक्षितमिति स्यातिमुपेतजगतोतले ॥२॥
 जातेतस्मिन्मुतेराजासर्द्वज्ञानपृच्छन् ।
 कश्चित्प्रशस्तनदात्रेदास्तलग्नेमुतोमम ॥३॥
 कश्चिच्चालोवितजन्मममपुत्रस्यशोभनं ।
 ग्रहे कश्चिन्नदुष्टानाग्रहाणादृक्पथगतम् ॥४॥
 इत्युक्तास्तेन देवज्ञास्तमूचुर्नृपतितत ।
 दास्तेमूहूतनेक्षत्रलग्नेचैवमुतस्तव ॥५॥
 समुत्पन्नामहावीर्योमहाभागामहाबल ।
 भविष्यतिमहाराजमहाराजस्तवात्मज ॥६॥
 अर्बक्षतेमदेवानागुरुशुक्रश्चममम ।
 सोमश्चतुषस्तनयतर्वनममवक्षत ॥७॥
 उपान्तसस्थिनश्चैवसोमपुत्राप्यवक्षत ।
 नावक्षतेममविनानभौमोनशनश्चर ॥८॥
 मार्कण्डेय जी ने कहा—महाराज करन्धम ने स्वयवर में वीर्यचन्द्र नरैश

की कन्या सुभद्रा वीरा का पालिशुद्ध किया था । वीरा के गर्भ में महाराज
 करन्धम के एक पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ जिसका अवक्षित नाम सोम में प्रतिष्ठ
 है । उसके जन्म लेने पर राजा ने ज्योतिषियों को बुलाकर कहा कि मेरे पुत्र ने
 प्रसन्न सन् और सुम नयन में तो जन्म लिया है ? इसके सन् स्यात् में सुभ
 ग्रहों की दृष्टि है ? किमी दुष्ट ग्रह की दृष्टि तो नहीं पड़ी ? राजा के प्रश्न सुनकर
 ज्योतिषियों ने गुरुना बग्वे बतलाया कि 'महाराज उत्तम भूतर्त, सुभ नयन
 और श्रेष्ठ सन् न उत्पन्न हुआ है । इसलिये बड़े भाग्यशाली, बड़े पराक्रमी,
 समीप शक्तिशाली वृत्ति होंगे । इनकी वृत्तली में वृहस्पति तथा शुक सप्तम

है और सप्तम घर पर देखते हैं । चौथे घर को चन्द्रमा देख रहा है और म्या-
रहवें पर बुध की दृष्टि है । रवि मंगल तथा शनिश्चर जैसे क्रूर ग्रहों की दृष्टि
नहीं है ॥१-८॥

तवपुत्रं महाराजघन्योऽयंतनयस्तव ।
सर्वकल्याणसम्पत्तिसमवेतो भविष्यति ॥६॥
इति देवज्ञवचनं निशम्य वसुधाधिपः ।
हर्षपूर्णा मनाः प्राह निजस्थानगतस्तदा ॥१०॥
अवैक्षते मदेवानां गुरुः सोमः सितो बुधः ।
नावैक्षते नमादित्यो नाकं सूनुरं भूमिजः ॥११॥
अवैक्षते तितिरप्रोक्तं भवद्भिर्बहुशो वचः ।
अविक्षिते तितेनास्य ख्यातं नाम भविष्यति ॥१२॥
अविक्षितः सुतस्तस्य वेदवेदाङ्गपारगः ।
अस्त्रग्राममशेषं सकण्वपुत्रादथाग्रहीत् ॥१३॥
सरूपेणातिभिपजौ देवानां पाथिवात्मजः ।
बुद्ध्या वाचस्पतिकान्त्या शशाङ्कतेजसारविम् ॥१४॥
धैर्येणाब्धितथोर्वीचसहिष्णुत्वेन वीर्यवान् ।
शौर्येण समस्तस्य कश्चिदासीन्महात्मनः ॥१५॥

इसलिये महाराज ! आपके पुत्र बड़े मान्य, भाग्यवान् और वैभवशाली
होंगे । यह सुनकर राजा प्रसन्न होकर कहने लगे कि आपके कथनानुसार 'बृह-
स्पति और बुध पुत्र को अवलोकन करते हैं, पर रवि, मंगल, शनि की इन पर
दृष्टि नहीं है ।' आपने बार-बार 'अवैक्षत' शब्द कहा है, इसलिये इसका नाम
अवीक्षित रख दिया जाय । मार्कण्डेय जी बोले—बड़ा होने पर राजकुमार
अवीक्षित ने वेद-वेदांग की शिक्षा प्राप्त करके कण्वपुत्र से अस्त्र विद्या का पूर्ण
रूप से अभ्यास किया । यह राजपुर परम रूपवान्, बुद्धिमान्, कान्तियान् और
तेजस्वी था । वह समुद्र के समान धैर्यशाली और पृथ्वी के समान सहिष्णु भी
था । उस समय उसकी तुलना का कोई और व्यक्ति नहीं मिलता था ॥६-१५॥

स्वयंवरेतजगृहेहेमधर्मात्मजावरा ।

मुदेवतनयागौरीसुभद्रावलिन सुता ॥१६॥

सीतावती गेरमुतावीरभद्रमुतानिभा ।

भोमात्मजामान्यवतीदम्भपुत्रीकुमुदवती ॥१७॥

याश्च ननाभिनन्दन्तिस्वयंररुतक्षणा ।

ताश्चापिसवलाद्वीरोजग्राहनृपते सुत ॥१८॥

निराश्रुत्यनृपान्मर्वास्तासापितृकुलानिच ।

स्वयद्विबीर्यमाश्रित्यबलवान्स्वबलोद्धतः ॥१९॥

एकदानुविशालस्यविशालाघपते सुताम् ।

वशानिनीसमुदतीस्वयवररुतक्षणां ॥२०॥

परिभूयात्तिलान्मृपान्स्वच्छयान्नृतम्तया ।

बलाज्जग्राह्निप्रपययान्यावलगीवत ॥२१॥

धर्म की कन्या वरा मुदेव की कन्या गौरी, बनि की पुत्री सुभद्रा, धीरभद्र की निभा धीर-पुत्री सीतावती भीम पुत्री मायवती ने उन्हें स्वयंवर में वरण दिया था । और भी अनेक कन्याओं को जिन्होंने उनको वरण नहीं दिया था वह शक्ति से वरण करके ल साथ में । एकबार विशाल राजा की कन्या मुदनी ने स्वयंवर में उनका वरण नहीं किया । इस पर उन्होंने बल के धर्म से सब राजाओं को पराजित कर उम नी अन्य कन्याओं की भीति बढ़ा-पूर्वक दहण किया ॥१६-२१॥

ततस्तभूभृत सर्वैरुदस्तैनमानिना ।

निराश्रुता मुनिर्विषया प्राचुरन्योन्यमाकुत्रा ॥२२॥

धमतावचनामतामवम्माद्वनशानिनाम् ।

यहूनामेववर्णनाजन्मनिम्नामहोभृताम् ॥२३॥

धर्मियोप दातात्प्राप्त्यवध्यमानस्यदुमर्द ।

वरातितस्यतन्नामवृथंवान्येहिविभ्रति ॥२४॥

मात्मनोपिधतन्नामदुष्टादस्मादबुवंताम् ।

मरनाशप्रियकुलंजातानाकीदशीमति ॥२५॥

उच्चार्यतेस्तुतिर्यावःसूतमागधवन्दिभिः ।
 सासत्यामावृथावीरामवत्वरिविनाशनात् ॥२६
 चरतांसातथैवैषाभूपाश्वारैर्दिगन्तरे ।
 पौरुषाश्रयिणःसर्वेविशिष्टकुलसम्भवाः ॥२७
 बिभेतिकोनमरणात्कोयुद्धेनविनाऽमरः ।
 विचिन्त्यैतन्नहातव्यंपौरुषंशस्त्रवृत्तिभिः ॥२८
 एतन्निशम्यतेभूपाविस्पष्टामर्षपूरिताः ।
 उन्नुःपरस्परंसर्वसमुत्तस्थुश्चसायुधाः ॥२९
 केचिद्रथानारुरुहुःकेचिन्नागांस्तथाह्वान् ।
 अन्येऽमर्षपराधीनास्तमुपेताःपदातयः ॥३०

इस पर वे राजा बारम्बार पराजय होने से दुखी होकर परस्पर कहने लगे कि इतने राजाओं के इस स्थान पर एकत्रित होने पर भी इस अकेले ने बलपूर्वक इस कन्या को ग्रहण कर लिया और तुम सब देखते रह गये यह धिक्कारने योग्य बात है । बुर्जद मनुष्य के भ्रातृत्व करने पर भी अन्य की रक्षा-रूप कर्तव्य-पालन में तत्पर रहता है वही वास्तविक सत्रिय है अन्यथा अत्रिय का नाम धारण करना व्यर्थ है । २२-२४॥ पर तुमको दूसरे की क्या अपनी रक्षा का उद्योग भी नहीं कर पाते । अत्रिय कहलाने पर भी यह तुम्हारी कैसी खुश्रि है ? सूत, मागध, वन्दीयण तुम्हारी शूर वीरता की जो प्रशंसा करते हैं उसे असत्य सिद्ध मत करो वरन् शत्रु का पराभव करके उसे यथार्थ सिद्ध करके विश्वलापी । तुम संसार में 'भूष' के नाम से प्रसिद्ध हो इसे वृथा मत होने दो । तुम सबने श्रेष्ठ कुलों में जन्म लिया है और तुम सभी वीरता और पशुक्रम में प्रसिद्ध हो ॥२५-२७॥ वीर पुरुष मृत्यु का भय कब करते हैं और युद्ध से विमुक्त होने वाला कौन अमर होता है ? इन सब बातों पर विचार कर सत्रिय नाम-धारी को कभी पौष्प का त्याग नहीं करना चाहिये । ऐसे उत्तेजना पूर्ण वचनों को सुनकर राजागण क्रोध से भर गये और आपस में उत्साहपूर्ण बातलाप करके हथियार लेकर तैयार होपये । कोई रथ पर, कोई हाथी पर, कोई घोड़े पर खबार होगये और कोई पैदल ही अवीक्षित के समीप गये ॥२८-३०॥

११०—अवीक्षित चरित्र (२)

इतिसग्राममज्जास्ते भूषाभूषणस्तथा ।
 निराकृता सुबहुनास्तत्कालश्चाप्यविक्षिता ॥१॥
 ततोवभूवसग्रामस्तस्यतं सहदारुण ।
 एवस्यबहुभिर्भूषणपुत्रवरैर्मुने ॥२॥
 तेषिसिद्धिगदाबाणपाणयस्तमुदुर्म्बा ।
 भ्रमिधन्तोयुयुधिरेतं समस्तरसावपि ॥३॥
 सतान्छरदातैर्ह्यविभेदनृपनन्दन ।
 कृताश्चोवलवान्बाणैस्तेचतविभिदुक्षितं ॥४॥
 यस्यसिद्धिचिद्देवाहुर्मन्यस्यचशिरोधराम् ।
 तृदिविव्यायचैवान्यवक्षस्यताडयत् ॥५॥
 परञ्चिच्छेदेव निरास्तुरगस्यतयागिर ।
 गन्धेपान्तघंवाभ्राघवस्यान्यस्यसारथिम् ॥६॥
 बाणानापततश्चक्रेद्विधाबाणंस्तथाद्विपाम् ।
 चिच्छेदान्यस्मरत्तद्वचनुरन्यस्यलापवात् ॥७॥
 तनुनेरहतेतेनननाशान्योनृपात्मज ।
 अविदिताहन्श्चान्य पदाति प्रजहीरणम् ॥८॥

मार्कण्डेय जी कहने लगे—उस अवसर पर अवीक्षित द्वारा पराजित
 हुए व क्षित्त हो राजा एक साथ मिल कर भयकर सग्राम करने लगे । वे
 गद्ग, शक्ति, गदा, बाण आदि से आघात करने लगे और अवीक्षित भी घरेला
 हो उनसे गाय मुड़ करने लगा । भ्रमिधरीर नन्दन ने सैकड़ा बाणों से अवीक्षित
 पर आघात किया और उसने तोरण बाणों से उनको विद्ध दिया । अवीक्षित
 न किसी की भुला, किसी का मस्तक काट दिया और किसी का हृदय छेदकर
 छाती पर आघात किया । किसी के हाथी की सूँठ काट डाली, किसी का
 घोड़ा मार दिया किसी के रथ के सारथी को मार दिया । ऊर्ध्वने शत्रुओं के

शत-शत वारों को बीच में ही दो खरब करके मिरा दिया, किसी के खड्ग और किसी का घनुष काट डाला कोई वीर कवच के कट जाने से मारा गया और कोई पैदल युद्ध करने वाला घायल होकर युद्ध क्षेत्र से हट गया ॥१-८॥

इत्याकुलीकृतेतस्मिन्समग्रे राजमण्डले ।

तस्थुःसप्तशतंवीरामररोकृतनिश्चयाः ॥९॥

आभिजात्यवयःशौर्य्यलज्जाभारसमन्विताः ।

निर्जितेसकलेसैन्यपलायनपरायणे ॥१०॥

तैःसमेत्यमहोपालैःसंतुपुत्रोमहीभूतः ।

युयुधेधर्मयुद्धेनतेनतनातिकोपितः ॥११॥

विच्छिन्नयन्त्रकवचान्सतानपिमहाबलः ।

कत्तुं व्यवस्थितस्तेचततःक्रुद्धा महामुने ॥१२॥

धर्ममुत्सृज्ययुयुधुर्ध्वमानेनधर्मतः ।

नरेन्द्रपुत्राःप्रस्वेदजलविलग्नाननाःसमम् ॥१३॥

विव्याधकश्चिद्वाणौघैःकश्चिच्छेदकामुकम् ।

ध्वजमस्यापरोबाणैरिच्छत्वाभूमावपातयत् ॥१४॥

जघ्नुरन्येतथैवास्वान्बभञ्जुश्चापरेरथम् ।

गदापातेनाथचान्येवाणौपृष्ठमताडयन् ॥१५॥

जब अवीक्षित ने इस तरह समस्त राजाओं को व्याकुल कर दिया और उनकी सेना भाग ने लगी तो सात सौ वीर अपने वंश, कीर्ति और धीरता का विचार करके मरने का भय त्याग कर युद्ध में तत्पर हुए । अवीक्षित भी अत्यन्त क्रोधित हो उनके साथ धर्म-युद्ध करने लगा । जब वह उनके अस्त्रों और कवच आदि काटने लगा, तब, वे पसीने से लथपथ राजा गया धर्म विरुद्ध साथ मिलकर उन पर अस्त्रों का आघात करने लगे । किसी ने दारोर में वार मारे, किसी ने घनुष को तोड़ दिया, किसी ने ध्वजा को काट डाला, किसी ने घोड़ों को मार दिया, किसी के रथ को तोड़ा किसी ने पीछे से दारु का आघात किया ॥९-१५॥

छिन्नेधनुपि स क्रोध सतदानृपते सुत ।
 जग्राहामितथा चर्मतदप्यन्योन्यपातयत् ॥१६॥
 च्छिन्नासि चर्मजग्राहमगदागदिनावर ।
 तामप्यन्य क्षुरप्रेण चिच्छेद दृढतवत् ॥१७॥
 अन्येनरमहर्षेण सतेनान्येन राघिषा ।
 विव्यधु कोष्ठनीकृत्य धर्मयुद्धपराङ्मुखा ॥१८॥
 सारह्वन पपातो व्यभिवाहूभिरदित ।
 राजपुत्रामहाभागावबन्धुस्ते च ततः ॥१९॥
 तमयमंगतेन वेंगुहोत्वा नृपते सुतम् ।
 विदालेन समराज्जार्जं दिसा विवधु पुरम् ॥२०॥
 दृष्ट्वा प्रमुदिताद्यद्द समादाय नृपात्मजम् ।
 स्वयमराचमान्यान्यस्तातनतत पुर ॥२१॥

धनुष व बट जान पर काचित हावर श्रीशिव दास सलवार लेजर
 युद्ध करन लगा पर मर म-य कीर न उस भी काट गिराया । इम पर गदा
 लवर ताशाम म प्रकृत हुमा ता एक अन्य न गदा वा भी काट दिया । इसवे
 परचात् उन धम विमुख राजाओ न उन शस्त्रहीन को घेर कर हजारो और
 लैरडा बा म मार । उनस विद्ध होवर जब वह ध्याकुल होवर गिर गया तब
 राव न मिल कर उन बाय तिया और उन लवर विनास राजा के नगर
 वंशितपुर म उपस्थित हुए और ब-धनयुक्त राजकुमार श्रीशिव को विनास
 नृप व सामने राखा किया ॥१६-२१॥

पुन पुनश्चापशोकातयापि च पुरोधसा ।
 शालमन्त्रता मनिवरापस्ते गजमुराचते ॥२२॥
 यदा क्षामा निगीक्षन् न जग्राह गुरमुने ।
 तदापप्रच्छदं वज्रं विराहाय न रेदर ॥२३॥
 विनिष्टनग्नेन म्याविवाहाय दिनवद ।
 अर्घ्यं तदीह मजात युद्धं विज्यापपादयम् ॥२४॥

इतिपृष्ठेनरेन्द्रेणसदैवज्ञोविमृश्यतत् ।
 दुर्मनाःप्राहविज्ञातपरमार्थोमहीपतिम् ॥२५॥
 भविष्यन्त्यपराणीहदिनानिपृथिवीपते ।
 प्रशस्तलभनयुक्तानिशोभनान्यचिरेणवै ॥२६॥
 करिष्यसिविवाहंत्वंतेषुप्राप्तेषुमानद ।
 अलमेतेनयत्रायमहाविघ्नउपस्थितः ॥२७॥

तत्पश्चात् राजा और पुरोहितों ने उस स्वयंवर कन्या से कहा विवाह इन राजाओं में से जिसे उचित समझे वरण करे पर उसने किसी को भी वर रूप में स्वीकार नहीं किया । तब राजा ने इस सम्बन्ध में ज्योतिषियों की सम्मति मांगी । उन्होंने कहा कि आज तो स्वयंवर पर यह विघ्नकारी युद्ध उपस्थित होगया, इससे अब आप विवाह का कोई अन्य शुभ मुहूर्त बतलावें । राजा के इस प्रकार पूछने पर ज्योतिषी उस सम्बन्ध में विचार करने लगे और कुछ देर बाद उन्होंने कहा—हे महाराज आपकी कन्या के विवाह के उपयुक्त अच्छी लग्न वाला और शुभ दिन शीघ्र ही आयेगा । उसी दिन आप विवाह की समुचित व्यवस्था करें आज तो इसमें जो यह महाविघ्न पड़ गया इसलिये इस कार्य को स्थगित कर देना ही उचित है ॥२२-२७॥

१११—अवीक्षित चरित्र (३)

ततःशुश्रावतंबद्धतनयंसकरन्धमः ।
 तस्यपत्नीतथावीराअन्येचापिमहीभृतः ॥१॥
 तमधर्मेणतनयंबद्धश्चत्वामहीपतिः ।
 सामन्तैःपृथिवीपालैश्चिरन्दध्यौमहामुने । २
 केचिद्दुर्महीपालावध्याःसर्वेमहीभृतः ।
 यैरेकःसंयुगेबद्धःसमस्तैस्तैरघर्मतः ॥३॥
 युज्यतांदाहिनीशीघ्रमूचुरन्येकिमास्यते ।
 विशालोदध्यतांदुष्टस्तत्रयेऽन्येसमागताः ॥४॥

अन्येनयोबुधर्मोऽप्रत्यक्त पूर्वमहीक्षिता ।

अन्यायेनप्रलाघेनगृहीतातमवाह्यती ॥५॥

स्वयवरेणशेषेपुतेनराजमुतास्तदा ।

तिनीकृतास्तत सर्वमभित्यसवशीकृत ॥६॥

मार्कण्डेयजी कहने लगे—जब राजकुमार अहीक्षित के बाँध लिये जाने का समाचार महाराज कर-धम और राजमहिषी वीरा धो मिला तो वे बहुत विग्नित होकर अपने सामन्त और मन्त्रियों से सलाह करने लगे । किसी ने कहा कि जिन बहूत से राजाघो ने मित्रवर अकेले वीर को अघर्म युद्ध में पराजित करके बाँध लिया है व सय मार देने योग्य हैं । दूसरे न सम्मति दी कि अब निश्चिन्त क्यों बैठे हा, अब तुरन्त विद्याल राज और वहाँ एकत्रित अग्य राजाघो पर आक्रमण करके उन सब को बाँध लेना चाहिये । किसी किसी ने यह भी कहा कि इस अवसर पर राजकुमार न भी बरण करने को अनिच्छुत राज-कन्या को बलपूर्वक ग्रहण करके धम विरुद्ध काय किया है । उन्होंने पत्रों भी कई स्वयवरा म ऐसा ही कार्य करके अन्ध राजकुमारों से सन्तुना मोन ले ली है और इसी कारण उन सब ने मित्र कर वह पराजित किया है ॥१-६॥

तेपामेतद्वच श्रुत्वावीरावीरप्रजावती ।

वीरगोत्रसमुद्रू तावीरपत्नीप्रहृषिता ॥७॥

उवाचभर्तु प्रत्यक्षमन्येपानमहीक्षिताम् ।

भद्र कृतभद्रभुजाममपुत्रेणपाथिवा ॥८॥

गृहीतायद्वलात्कन्याजित्वासर्वमहीक्षित ।

तदयंयुध्यमानोऽपबद्धएकोनघमतः ॥९॥

तदप्यस्मत्सुतस्याजोमन्येनापचयदप्रदम् ।

एतदयंविपौरप्ययदमप्यवशान्नर ॥१०॥

नीतिनगणयत्येवजिघामुरिवकेसरी ।

स्वयवरायविन्यस्ताममपुत्रेणकन्यका ॥११॥

वद्वभोगृहीताभूपानापस्यतामतिमानिनाम् ।

वद्वभोगृहीताभूपानापस्यतामतिमानिनाम् ॥१२॥

बलादेवसमादत्ते क्षत्रियो बलिनां पुरः ।

लोहशृङ्गखलबद्धावानवशं यान्तिकातराः ॥१३

प्रसह्य कारिणो यान्ति राजानो धर्मशालिनः ।

तदलन्दीर्मनस्येन श्लाघ्यमेवास्य वन्धनम् ॥१४

इस प्रकार की बात सुन कर अवीक्षित की माता वीर वशीय वीरा देवी बहुत प्रसन्न हो कर महाराज करन्धम तथा अन्य सामन्तों के सामने कहने लगी कि मेरे पुत्र ने यदि सब राजाओं को हरा कर कन्या को बल पूर्वक ग्रहण किया तो यह कार्य प्रशंसा योग्य ही है । इसके फलस्वरूप वह अधर्मयुद्ध में बाँध लिया गया तो इसमें भी मेरी सम्मति में उसकी कोई हानि नहीं हुई । पुरुषार्थी का तो यही कर्त्तव्य है कि वह अधर्म से मारने की इच्छा रखने वालों से भी भयभीत न हो और सिंह के समान सब का मुकाबला करता रहे । अगर मेरे पुत्र ने अनेक स्वयंवरों में सम्मानित राजापरों के सम्मुख कन्याओं को बलपूर्वक ग्रहण किया तो इसे भी मैं क्षत्रियोचित कार्य ही मानती हूँ । सुष्ठु व्यक्तियों के समान किसी वस्तु को भाँगने की अपेक्षा उसे और शक्ति प्रकट करके ग्रहण करना श्लाघनीय ही है । क्षत्रियों की शोभा तो इसी में है कि वह बलवानों के सम्मुख भी अपना पराक्रम दिखलाकर बलपूर्वक ग्रहण करे इस प्रकार के कार्य में अगर जंजीर से बाँध भी लिया जाय, तो भी वह भयभीत होकर किसी की वश्यता स्वीकार नहीं करता । यदि मनुष्य निडर हो कर पूर्ण दिखलाने के बाद बन्धन ग्रस्त भी हो जाय तो मैं इसमें कोई दुःख नहीं समझती, वरन् मैं तो ऐसी पराजय को भी प्रशंसा का कारण मानती हूँ ॥७-१४॥

युष्माकमपिथे पूर्वकृत्वा रीणानि पातनम् ।

तृत्वैव पृथिवीशानां पृथ्वीपुत्रादिकं वसु ॥१५

भार्यावीर्यनिमित्तानि तोयातातिगौरवम् ॥

तत्स्वर्यतां रणायाशुस्यन्दनान्यधिरोहत् ॥१६

सज्जीकुरुत नागास्वमचिरेण ससारथिम् ।

मन्यध्वं किमहीपालैर्बहुभिः सह विग्रहम् ॥१७

प्रभूताएवतोपायसू-स्याल्ल-शेकिना ।
 कस्यनालपेपुसामर्थ्यनरेन्द्रादिपुजामते ॥१८
 येभ्योनविद्यतेभीतिविक्कतस्यापिज्ञत्रुपु ।
 वधरोचतेनिशूर सतमासीवदिवाकर ॥१९
 दूताभुद्धपिनोराजाऽनयापत्न्याकरन्धम ।
 नकारसबलोयोगहन्तु पुत्राहिवाङ्मुने ॥२०
 सनप्नस्यसमभूपेविशालेनचसङ्गर ।
 वभूवयद्धपुत्रस्यतैरशेषमंहामुने ॥२१

बीश ने कहा कि आपकें पूवजो ने भी इसी प्रकार शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर उनके राज्ञ, कोप और पुत्र आदि पर अधिकार किया था । राजा लोग पृथ्वी, धन, माया आदि समानता वालों में ही धीन कर डबट्टी करते हैं और उनके लिये आपात महना भी इलायनोय मानते हैं । इसलिये आप क्षीघ्र रथ, हाथी, घोडों को सजाकर युद्ध के लिये तैयार हो । बीरगण छोटे युद्ध में भी अपनी पूरी बीरता दिखला कर गौरव प्राप्त करते हैं । तो फिर ऐसे स मान्य राजाओं पर आक्रमण करने में आप लोगों को क्या भय हो सकता है ? सूर्य जिन प्रकार गमस्त दिशाओं के अन्धकार को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार जो घूरबीर हर प्रकार के शत्रु को पराजित करने के लिये तैयार रहता है, वही सच्चा बहादुर है । मावण्डेय जी ने कहा कि राज मण्डी द्वाग इम प्रकार उत्साह और प्रेरणा दिलाये जाने पर महाराज करन्धम कुरन्त पुत्र के शत्रुओं पर आक्रमण करने को रवाना हो गये और क्षीघ्र ही विशाल राजा नगर के समीप पहुंच कर वही एतदिव सब राजाओं से युद्ध करने लगे ॥१५-२१॥

दिनत्रयमभूच्छुद्ध तेनराजासमतदा ।
 परन्धमेनभूपानीविश सस्यानुकुर्वताम् ॥२२
 यदापराजितप्रायनत्सर्वभूगमण्डलम् ।
 तदाविशालोऽर्ध्यकर करन्धममुपस्थित । ॥२३

करन्धमोऽपिसंप्रीत्यातेनराज्ञाभिपूजितः ।
 विमुक्ते तनयेतन्ननिशांतांसुखमावसत् ॥२४
 तांचकन्यामुपादायविशालसमुपस्थितम् ।
 अविक्षितप्राह्विप्रर्षेविवाहार्थंपितुःपुरः ॥२५
 नाहमेतांग्रहीष्यामिनचान्यायोषितंनृप ।
 परैर्यस्यानिरीक्षन्त्याःसंग्रामेऽहंपराजितः ॥२६
 अन्यस्मैसंप्रयच्छेमामियञ्चान्यंवृणोतुतम् ।
 अखण्डितयशोवीर्योयःपरैर्नापिमानितः ॥२७

विशाल राजा तथा उसके साथी राजाओं से करन्धम का युद्ध तीन दिन तक चलता रहा और अन्त में वे सब पूर्णतः पराजित होगये । तब विशालराज पूजा सामग्री लेकर करन्धम के सामने उपस्थित हुए । करन्धम ने इस पर शत्रु-भाव त्याग दिया और राजा द्वारा पूजित होकर तथा पुत्र को छुड़ा कर उस दिन वहीं ठहरे । जब विशालराज अपनी कन्या का विवाह अवीक्षित से करने को प्रस्तुत हुए तो उसने इसे अस्वीकार कर दिया और पिता के सामने ही कहा कि—हे महाराज ! जिस कन्या के सामने मैं शत्रुओं से परास्त होगया उसको तो कभी ग्रहण कर ही नहीं सकता, साथ ही अब किसी अन्य कन्या से भी विवाह नहीं करूँगा । आप इसका विवाह किसी ऐसे वीर-से कीजिये जो कभी शत्रुओं से पराजित न हुआ हो और जिसका यश अखंडित बना हो ॥२२-२७॥

परैःपराजितोऽह्यत्कातरेययथाऽबला ।

किमत्रमानुषत्वंमेनैतस्याममचान्तरम् ॥२८

स्वतन्त्रतामनुष्याणांपरतन्त्रासदाऽबला ।

नरोऽपिपरतन्त्रोयस्तस्यकीदृङ्मनुष्यता ॥२९

सोऽहमस्यामुखभूयोदृष्टंदर्शयिताकथम् ।

योऽहमस्याःपुरोभूमोपरैर्भूपैःखिलीकृतः ॥३०

इत्युक्ते तेनतनयामुवाचजयतीपतिः ।

श्रुततेवचनंवत्सेवदतोऽस्यमहात्मनः ॥३१

वयवासंप्रयच्छामोयस्मिस्तस्मिस्तवावृति ।
 एतयोर्ह्येकमातिष्ठमार्गयो रुचिरानने ॥३२
 पराजितोऽयवहुभिर्नसम्भवसम्भवाचरन् ।
 सग्रामेतद्यदोवीर्यं हानिकारिणपायिव ॥३३
 एकोवहूनायुद्धाय गजानामिव कैसरी ।
 यत्संस्थित परशोऽर्थतेनास्यप्रकटीकृतम् ॥३४
 न केवलमयत्तम्योयुद्धे तेऽप्यखिलाजिताः ।
 बहुशोऽनेनयत्नेन विप्रमोऽपि प्रकाशितः ॥३५
 शीर्यं विक्रमममुक्तमिमसुखं महीक्षितः ।
 धर्मयुद्धमधर्मैराजितव्रन्तोऽप्रकाशना ॥३६

प्रवीक्षित ने कहा— हे राजन् ! जब मैं हमके सामने एक बात पर प्रबला के सामने दानुओं द्वारा बन्धन प्रस्त होगया तो मेरा पुरुषत्व ही क्या रहा ? अतएव अब मुझ में और इस कन्या में कोई गेद नहीं रहा । पुरुष का मुख्य लक्षण तो स्वाधीन होना है और नारियाँ सर्वद पराधीन मानी गई हैं । इस-लिये पुरुष होकर जो पराधीन होगया उसका बोध कहाँ रहा ? जिसके सामने मैं समस्त राजाओं से पराजित होगया हूँ उसकी भयना मुँह किम साहस तो दिखाऊँगा ? महीपान विधान ने प्रवीक्षित ने वचन सुनकर कन्या से कहा कि तुमने राजकुमार की बात सुनी । अब तुम्हारी इच्छा ही तो किसी भी राजा की स्वेच्छा पूर्वक वरदा करना अन्यथा पिता के कर्तव्य का ध्यान रखता हुआ मैं जिसके योग्य समझूँ उसके साथ तुम्हारा पालिशहूँ संस्कार कर हूँ । इन दोनों बातों में से तुमने जो स्वीकार ही वह कहो ॥३२-३३॥ कन्या ने कहा— पिताजी ! इन राजकुमार ने बहुत से वीरों के साथ मर्यादा किया और फिर भी पूर्णत पराजित नहीं हो सके । इन्होंने जो प्रकट ही इन राजाओं के साथ घोर युद्ध किया इसमें ही इनका सर्वोत्कृष्ट शीर्यं प्रकट होगया । केवल युद्ध में निर्भीक भय न स्थित ही नहीं रहे वरन् समस्त राजाओं की इन्होंने अनेक बार हराया भी । फिर इन धर्म युद्ध के नियम का पालन करने वाले की अनेक

राजाओं ने मिलकर अवध में युद्ध में हारणा, इसमें मुझे लज्जा की कोई बात नहीं जान पड़ती ॥३३-३६॥

नचाप्रिरूपमग्रेऽहंलोभमस्यगतापितः ।
 दौर्घ्यविक्रमघैर्यासिहृस्त्यस्यमनोमम ॥३७
 तत्किमुक्तं नबहुनस्याचक्ष्णामत्कृतं नृपः ।
 त्वयामहानुभावोऽयं नान्यो मे भविता पतिः ॥३८
 राजपुत्रसुताप्राहममैतच्छोभनं वचः ।
 एवं च वत्त्वया तुल्यः कुमारो न मदीतले ॥३९
 अविसंवादितेशौर्यमतीव च पराक्रमः ।
 पावयास्मत्कुलं वीरदुहितुर्मपरिग्रहात् ॥४०
 नाहमेताग्रहीष्यामि न चान्यां योषितं नृप ।
 आत्मन्येव हि मे बुद्धिः स्त्रीमयी मनुजेश्वर ॥४१
 ततः करन्धमः प्राह पुत्रेयं गृह्णातां त्वया ।
 विशालतनया सुभ्रूस्त्वयि हादं वती दृढम् ॥४२
 नाज्ञा भङ्गः कदाचित्तेकृतः पूर्वमया प्रभो ।
 तथाऽऽज्ञापय मां तां तयथाज्ञां करवार्णिते ॥४३

कन्या ने कहा—“मैं इनके रूप को देखकर ही विवश हो पत नहीं हुई है चरन् इनके शौर्य तथा पराक्रम ने मेरे मन में घर कर लिया है । इसलिये पिताजी ! अब मैं निश्चय कर चुकी हूँ कि इनके अतिरिक्त मैं कभी प्रत्य किसी को धरण नहीं करूँगी । आप इनको ही मेरे लिये समझाइये । इस पर राजा विशाल ने अवीक्षित से कहा—“राजकुमार ! मेरी कन्या ने जो कुछ कहा वह बिल्कुल ठीक ही है । तुम्हारे समान राजकुमार भुके कहीं भी दृष्टिपोचर नहीं होता । तुम्हारी वीरता में कुछ भी सन्देह नहीं और तुम्हारा पराक्रम भी प्रत्यक्ष ही है, इसलिये तुम्हारे द्वारा मेरी कन्या का पाणिग्रहण किये जाने से मेरा कुल पवित्र होगा । यह सुनकर अवीक्षित ने कहा—“राजन् ! अब मैं इसे श्रयवा किसी भी अन्य स्त्री को ग्रहण नहीं करूँगा क्योंकि मैं अब अपने को स्त्री ही समझता हूँ ।” तब महाराज करन्धम ने भी अपने पुत्र को समझाया कि तुम

इस वन्द्या का पाणिग्रहण करो, क्योंकि इसकी तुम्हारे प्रति हार्दिक अनुगम उत्पन्न होगया है । प्रबोधित मे उत्तर दिया—पिताजी ! मैंने आज तक कभी आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया । इसलिये आप मुझे ऐसी कोई आज्ञा न दें जिसे पालन करने मे समय न होऊँ ॥३७-४३॥

अस्त्यन्तनिश्चितमतीनस्मिन्नाजसुतेमुताम् ।
 तामुवाचविशामोऽपिव्याकुलोऽनुमानसः ॥४४॥
 निवर्त्यतामन पुत्रिएनस्मात्प्रयोजनात् ।
 अन्यवरयभर्तारिसन्तयनकेनृपात्मजा ॥४५॥
 वरवृणांमहतातमामपयदिनच्छति ।
 तपसाऽन्योनमेमताजन्मन्यस्मिन्भविव्यनि ॥४६॥
 तत वरन्धमोराजाविशालेनसममुदा ।
 स्थिरवादिनत्रयलत्रनिजमभ्याययोपुरम् ॥४७॥
 अविदितोपितनैवपित्रान्यंश्चनराधिर्य ।
 निदशनेपुगावृत्ते सात्विजनाऽभ्यागमत्पुरम् ॥४८॥

अब विशाल राजा ने देखा कि प्रबोधित ने विवाह न करने का दृढ निश्चय कर लिया है तो उसने धनकी पुत्री से कहा कि जब इस राजपुत्र को ऐसी आज्ञा होगई है तो अब तू इस विचार को त्याग कर किसी अन्य राजपुत्र का वरदा कर ले । वन्द्या ने उत्तर दिया—पिताजी ! यदि ये राजपुत्र विवाहार्थी नहीं होते तो भग्न निश्चय भी बही है कि इस जन्म मे मर्यादा पति 'तपस्या' के अतिरिक्त और कोई न होगा । माकंडेय जी कहने लगे—राजा वरन्धम तीन दिन तक विनास राजा व यही अनिधि मत्कार करता करके अपनी राजरानी को धापम देने लगे और उनका तथा आप सम्पत्ति के समभाने से प्रबोधित भी उनके साथ चला गया ॥४८-४९॥

माभिवन्माननगत्वानिमृष्टानिजवान्धवे ।
 तपस्तपनिःहानावैगम्यपरमास्थिता ॥४९॥
 निराहारायदाभातुमागधयमवस्थिता ।
 सप्रापपरमामार्तिकुशापमनिसन्तता ॥५०॥

मन्दोत्साहाति नन्वङ्गीमुमूषुं रपिबालिका ।
 देहत्यागायसाचक्रे तदा बुद्धिभृपात्मजा ॥५१॥
 आत्मत्यागायतांजात्वा कृतबुद्धिसुरास्ततः ।
 समेत्यप्रेषयामासु देवदूतान्तदन्तिकम् ॥५२॥
 समुपेत्य सतां प्राङ्मूढतोऽहंपार्थिवात्मजे ।
 प्रेषितस्त्रिदशैस्तुभ्यं यत्कार्यं तन्निशामय ॥५३॥
 न भवत्यापरित्याज्यशरीरमनिदुर्लभम् ।
 त्वं भविष्यसि कल्याणि जननी चक्रवर्तिनः ॥५४॥
 पुत्रेण न महाभागे भोक्तव्यानि हतारिणा ।
 अव्याहताङ्गे न चिरं समद्वीपवती मही ॥५५॥
 हन्तव्यस्तेन तरुजिह्वानां पुरतो रिपुः ।
 अयं शंकुस्तथा क्रूरो घर्मस्थाप्यास्ततः प्रजाः ॥५६॥
 प रपालनीयमखिलं चातुर्वर्ण्यं स्वधर्मतः ।
 हन्तव्यादस्य वोम्लेच्छाये चान्ये गुष्ठचेष्टिताः ॥५७॥
 यष्टव्यं विविधैर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः ।
 वाजिमेघादिभिर्भद्रैषट्सहस्रं श्रसंख्यया ॥५८॥

उधर वह विशाल राजा की कन्या भी परिवार वालों से विदा ले वन में निवास करती हुई बड़े संगम-नियम के साथ तपस्या करने लगी । इस प्रकार तीन महीने तक निराहार रहने से वह अत्यन्त दुर्बल हो गई और उसके शरीर की नसें दिखलाई पड़ने लगीं । अपने शरीर की ऐसी दशा देखकर उस कन्या ने निराश हो प्राण त्याग का निश्चय किया । जब देवताओं ने उसको ऐसा कार्य करते देखा तो उन्होंने एक देवदूत उसके पास भेजा, जिसने उम सपोवन में आकर कहा—हे राजकुमारी ! मैं देवताओं का दूत हूँ । उन्होंने कहलाया है कि यह दुर्लभ शरीर महज में नहीं मिलता तुम प्राण त्याग मत करो, तुम आगे चलकर एक चक्रवर्ती राजा की जननी बनोगी । हे महाभागे ! तुम्हारा पुत्र अपने बाहुबल से समस्त शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके अनेक वर्षों तक समस्त पृथ्वी का अधीश्वर बना रहेगा । वह देवगणों के शत्रु तरुजित् और

अप शत्रु को जो मारकर उनका हितकारी होगा । वह प्रजा को धर्मविरण के लिए प्रेरित करेगा, चानुबंशय धर्म को प्रतिष्ठित करेगा और म्लेच्छ, दस्यु आदि दुष्टों को नष्ट करके प्रजा को सुखी करेगा । वह बड़ी दक्षिणा वाले धर्ममेध और अन्य प्रकार के छह हजार यज्ञ करेगा ॥४६-४८॥

तद्वृष्टासाक्षीरक्षस्यदिव्यस्त्रगनुत्पेपनम् ।

देवदूतमुवाचेदराजपुत्रीततोमृदु ॥४६॥

सत्यत्वमागत स्वर्गाद्देवदूतोनसशय ।

किन्तुभर्याविनापुत्र सवयममविष्यति ॥४७॥

अक्षितमृतेभर्ताममनान्योऽत्रजन्मनि ।

भवितेतिप्रतिज्ञातमरोतत्सन्निधौपितु ॥४८॥

सद्यनेच्छतिमाप्रोक्तोर्मणित्राजनेनच ।

वरन्धमेनाथसम्यग्याचिनश्चमयागया ॥४९॥

विमनेनमहाभागेबहूनोक्तेननेमुत ।

समुत्पत्स्यनिमात्याक्षीम्बमात्मानमधर्मन ॥५०॥

अथैवकाननेतिष्ठननु क्षीणावपोपय ।

तप प्रभावादेतत्तमवमाधुभविष्यति ॥५१॥

इत्युक्त्वादेवदूतोऽप्रीयथागनमगच्छत ।

चकारानुदिनमुभ्रमात्पात्तननुपोषणम् ॥५२॥

मार्कण्डेय जी कहते मग—यह राज्य कन्या उम दिव्य दिहूर्ति है युक्त देवदूत को आकाश ॥ देवदूत भीठा आगो से बत्रने लगी—आप स्वर्ग के देवदूत हैं और इस वाग्गु आगो वाले प्रमत्त नहीं हो सकतीं पर पति के बिना मेरे पुत्र किस प्रकार होगा ? मेने यह प्रतिज्ञा की है कि अवीक्षण के प्रतिरिक्त मैं किसी भीरु को धरण नहीं करूँगी और उन्होंने मेरे पिता, अपने पिता तथा मेरे अनुगीय की भी स्पष्ट समीक्षा करके विवाह न करने का हृदय निश्चय प्रकट किया है । देवदूत ने कहा—देवदूत का कथन श्रव्य नहीं हो सकता, निःसन्देह तुमको पुत्र उत्पन्न होगा । इसलिये तुम इस आत्म-हत्या स्त्री पाप के विचार को त्याग कर इस वन में रहकर ही धरती देह की रक्षा करो । तत्पश्चात्

के प्रभाव से तुम्हारे सभी मनोरथ अवश्य पूर्ण होंगे । इस प्रकार विशाल राजा की कन्या को समझा कर देवदूत अपने स्थान को चला गया और वह भी आहार ग्रहण करके शरीर का पोषण करने लगी ॥५६-६१॥

११२—अवीक्षित चरित्र (४)

अथसाविक्षितोमातावीरावीरप्रजावती ।
 पुण्येऽह्निसमाहूयप्राहपुत्रमविक्षितम् ॥१॥
 पुत्राहमम्यनुज्ञातातत्त्वपित्रामहात्मना ।
 उपवासकरिष्यामिदुष्करोऽप्यंकिमिच्छकः ॥२॥
 सचायत्तस्तवपितुस्त्वयासाध्योमयापिच ।
 प्रतिज्ञातेत्वयापुत्रतस्तत्रयताम्यहम् ॥३॥
 द्रव्यस्याद्धंमहाकोशात्तवदास्याम्यहंपितुः ।
 धनतेपितुरायत्तमनुज्ञाताऽस्मिन्नेनच ॥४॥
 क्लेशसाध्योमदायत्तःसहिश्रेयोभविष्यति ।
 साध्योभवेद्वायदितेकश्चिद्रबलपराक्रमैः ॥५॥
 सतेऽसाध्योह्यन्यथावादुःखसाध्योभविष्यति ।
 तत्त्वंप्रतिज्ञांकुरुष्वेयदिपुत्रात्रचैवते ।
 तदैतदहमावाप्स्येकथ्यतांयन्मतंतव ॥६॥

मार्कण्डेय जी कहने लगे—किसी समय अवीक्षित-क्रीष्णाता वीरादेवी ने अपने पुत्र को बुला कर कहा—बेटा ! मैं 'किमिच्छित' नाम का दुष्कर व्रत करना चाहती हूँ और तुम्हारे पिताने उसकी आज्ञा देदी है । यह व्रत तुम्हारे पिता, मेरे और तुम्हारे सहयोग से पूर्ण हो सकता है, इसलिए जब तुम उसकी प्रतिज्ञा कर लोगे तभी मैं उसे आरम्भ करूँगी । इस व्रत में मुझे राज्यकोष का आधा धन दान करना है और इसके लिये तुम्हारे पिता ने स्वीकृति देदी है । शरीर के कष्ट का सहन करना मेरा काम है, उसे मैं भली प्रकार सम्पन्न करूँगी

धीर धन तथा पराक्रम मे होने वाला जितना कार्य है वह तुम्हारे अधीन है । वह कार्य सुवाध्य, दुःखमाध्य और भ्रमाध्य भी हो सकता । इसलिये तुम समस्त कार्यों की पूर्ण करने की प्रतिज्ञा करो तो मैं इस व्रत को आरम्भ करूँ । इस लिये तुम्हारा जैसा विचार हो वह स्पष्ट कहो ॥१-६॥

वित्तमेपितु गयत्तमत्स्वामित्वननयवै ।

यन्मच्छरोरनिष्पाद्य तत्स्वरिप्येत्वयादितम् ॥७

किमिच्छवत्तमातनिश्चिन्ताभवनिर्व्यथा ।

राज्ञापिद्राग्यनुज्ञातयदिविन्मन्त्रेणमे ॥८

सत साराजमहिषीतद्व्रतममुपोषिता ।

यथोक्त साऽकरात्पूजाराजराजम्यमयता ॥९

निधीनामप्यशेषागानिधिपालगम्यच ।

महत्पाश्रपरयाभवन्यायतवावकायमानसा ॥१०

विविक्तं तु गृहस्थोऽयमथ गजाकर्ण्यम ।

आसीन उक्त मविवेनीति शास्त्रविद्यारदं ॥११

राजन्यय परिगन्तव्यं तच्छ्रामनामहोम् ।

एवमेतन्नयोऽविक्षित्यक्तदाग्परिग्रह ॥१२

अपुत्रसन्ततिप्रायदाभूषणमिष्यति ।

तदारिष्यपृथिवीनिश्चिन्तनवयाम्यति ॥१३

वराक्षयमेनविनापितृपिण्यादवक्ष्य ।

एतन्महत् त्रिभयत्रियाहान्याभविष्यति ॥१४

तस्मात्फुरन्तथाभूषयधातनय पुन ।

परातिमननबुद्धिपितृणाभुषकारिणीम् ॥१५

मवीक्षित ने कहा— गय मदार का धन तो निताजी का ही है, उसके लिये कुछ भी कहना नहीं है भरे गरीर से हाने वाले काशों के लिये मैं आपकी आज्ञा की हर तरह से पालन करने का प्रस्तुत हूँ । यदि पिताजी, धन व्यय करने की प्रस्तुत हैं तो आज निदिधन्त होकर प्रत्यक्षापूर्वक 'किमिच्छक' व्रत का प्रवृत्त करिये । पावलेद्वयजी कहने लग—तत्पश्चात् अजमहिषी धीरा देवी ने

बड़े उत्साह पूर्वक उस व्रत को आरम्भ किया और उपवास रखकर काम, मन, वचन से पूर्ण संयम करते हुए शास्त्र विधि से निधि समूह, निधिपालगण और लक्ष्मी देवी का पूजन करने लगी । इस अवसर पर महाराज करन्धम अपने सुयोग्य मन्त्रियों के साथ मंत्रणामूह में बैठ कर सब ध्यवस्था करते रहते थे । उस समय मंत्रियों ने राजा से कहा—हे महाराज ! राज्य का पालन करते हुए आपकी अवस्था पूर्ण हो चली है और आपके एकमात्र पुत्र ने स्त्री-सम्पर्क त्याग कर कोई सन्तान उत्पन्न नहीं की है । यदि वे आजन्म इसी प्रकार ब्रह्मचारी बने रहे तो अन्त में आपका यह राज्य शत्रुओं के अधिकार में चला जायगा । इस प्रकार आपका वंश क्षय होकर पितरों का श्राद्ध और तर्पण बन्द हो जायगा । इस प्रकार सब क्रियाओं के रुक जाने पर शत्रुओं का भय उपस्थित होगा । इसलिये जैसे भी सम्भव हो आप ऐसा उपाय कीजिये जिससे आपका पुत्र गृहस्थ आश्रम स्वीकार करके पितरों के श्राद्ध और तर्पण को स्थिर रख सके ॥७-१५॥

एतस्मिन्नन्तरेऽब्दं शुश्रावजगतीपतिः ।

पुरोहितस्य वीरायागदतो ह्यर्धिनं प्रति ॥१६

कः किमिच्छति दुःसाध्यं कस्य कसिाध्यतामिति ।

करन्धमस्य महिषी किमिच्छि कमुपोषिता ॥१७

राजपुत्रोऽप्यविक्षिप्तु श्रुत्वा पुरोहितं वचः ।

प्रत्युवाचार्धिनः भर्त्वा प्राजद्वारमुपागतान् ॥१८

मया साध्यं शरीरेण यस्य किञ्चिद्ब्रवीतु सः ।

मम माता महाभागा किमिच्छि कमुपोषिता ॥१९

शृणु वन्तु मेऽर्थिनः सर्वे प्रतिज्ञातं मया तदा ।

किमिच्छथ ददाम्येष क्रियमाणे किमिच्छके ॥२०

ततो राजानि शर्म्यैतद्वाक्यं पुत्रमुखाच्छ्रुतम् ।

तमुत्पत्या ब्रवीत्पुत्रमहमर्थी प्रयच्छमे ॥२१

दातव्यं यन्मया तात भवते तद्ब्रवीहि माम् ।

कर्तव्यं दुष्करं वा ते साध्यं दुःसाध्यं मे ववा ॥२२

मार्कण्डेयजी कहने लगे—उगी समय राजा के बानों के पुरोहितों के ये शब्द पाये कि “वत्सम्भ की राजमहिषी ‘त्रिमिच्छक’ ब्रत बरती है—तुम क्या इच्छा करते हो ? जिसका जो बठिन कार्य पूरा किया जाने को हो वह उसके सम्मुख कहो ।” राजपुत्र अवीक्षित ने भी पुरोहितों के इन वचनों का सुना और तब वह भी द्वार पर आकर कहने लगे—“हे अर्थांगणो ! मेरी प्रतिज्ञा है कि मेरी भाग्यवती माता जो ‘त्रिमिच्छक’ व्रत बर रही है, उसके सम्बन्ध में मैं भी प्रत्येक कार्य, जो कुछ मेरे शरीर से सम्भव है, पूरा करने की प्रस्तुत हूँ । जब राजा वत्सम्भ ने अवीक्षित की इस प्रकार कहते सुना तो उसने अवीक्षित के मामने जाकर कहा—“पुत्र ! मैं भी अर्थी हूँ, मेरी अभिलाषा की भी पूर्ण करो ।” अवीक्षित ने कहा—पिताजी ! मैं आपको क्या दूँ ? आप जो चाहते हों उनकी आज्ञा दें वह कार्य कौन भी दुर्गाध्य या असाध्य भी क्यों न हो मैं उसे पूरा करूँगा ॥१६-२९॥

यदिसत्यप्रतिज्ञस्त्वददासिचत्रिमिच्छकम् ।

पौत्रस्यदर्शयमुत्तममोत्सङ्गतस्यतत् ॥२३॥

अहन्तवैरुस्तनयोत्रह्यचव्यंचमेनृप ।

नमेपुत्रोःस्तिपौत्रश्चदशयामिकथमुखम् ॥२४॥

पापायब्रह्मचर्य्यन्तेयदिद धार्य्यंतेत्त्वया ।

तस्मात्त्वमोचयार्मानममपौत्रचदर्शय ॥२५॥

त्रिपमस्याग्नमहाराजयदग्न्यत्तत्तमादिश ।

पैराग्येणमयात्यक्त म्श्रीसभोगस्तथास्तुमः ॥२६॥

बहुभिर्पुंध्यमानानादृष्टोर्वैर्वरिणाजय ।

तत्रापियदिवंगायमुपैपितदपण्डित ॥२७॥

त्रिवानोऽहुनोक्तंनब्रह्मचर्य्यंपरित्यज ।

मातुस्त्वमिच्छयावव्रतपौत्रस्यममदर्शय ॥२८॥

राजा ने कहा—“अगर तुमने त्रिमिच्छक व्रत में दान करने की प्रतिज्ञा भवमुख की है तो मुझे पौत्र का भुक्त दिखानो ।” अवीक्षित ने उत्तर दिया—पिताजी ! आपका एवमात्र पुत्र ही मैं ही हूँ और मैंने सर्वत्र के लिये ब्रह्मचर्य

पालन का निश्चय किया है और मेरे कोई पुत्र नहीं है। इस कारण आपको पौत्र का मुख कैसे दिखा सकता हूँ ?” महाराज करन्धम ने कहा—“तुमने जो ब्रह्मचर्य धारण किया है वह नीति विरुद्ध पाप कार्य है। इसलिये उसे त्याग कर मुझे पौत्र का मुख दिखाओ।” अवीक्षित ने कहा कि इस प्रकार ब्रह्मचर्य व्रत का त्याग मेरे मन के बहुत विरुद्ध है। मैंने वैराग्य भावना से स्त्री-सम्पर्क का त्याग किया है, अतएव आप मुझे ऐसी आज्ञा दे जिससे मेरा व्रत खंडित न हो। राजा ने कहा—“तुमने बड़ी-बड़ी सेनाओं सहित प्रबल वैरियों को हराया है, इस पर भी तुम वैराग्य धारण करते हो तो कोई तुमको बुद्धिमान् नहीं कह सकता। कुछ भी हो, इस विषय में अधिक विवाद न करके अपनी माता के व्रत का पालन करने के लिये मुझे पौत्र का मुख दिखाओ ॥२३॥२८॥

यदासबहुशस्तेनप्रोक्तःपुत्रेणपार्थिवः ।

नान्यत्प्रार्थयतैकिंचित्तदापुत्रोऽब्रवीत्पुनः ॥२६॥

दत्त्वाकिमिच्छकतुभ्यंप्राप्तोऽर्हतातसङ्कटम् ।

तत्करिष्यामिनिर्लज्जोभूयोदरपरिग्रहम् ॥३०॥

स्त्रियाःसमक्षविजितःपतितोदरणीतले ।

स्त्रीपतिर्भविताभूयस्ताततदतिदुष्करम् ॥३१॥

तथापिकिकरोम्येषसत्यपाशवङ्गतः ।

करिष्यामियथाऽऽत्यत्वंभुज्यतानिजशासनम् ॥३२॥

मार्कण्डेय जी कहते लगे—यद्यपि अवीक्षित ने बार-बार अपनी कठिनाई बतलाई और राजा से कोई दूसरी बात माँग लेने को कहा—पर जब वे न माने तो उसने कहा—“पिताजी ! मैं ‘किमिच्छक’ व्रत के लिये इच्छानुसार दान देने की प्रतिज्ञा करके सङ्कट में पड़ गया हूँ इसलिए निर्लज्ज होकर फिर गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट होना ही पड़ेगा। अन्यथा सच्ची बात तो यह है कि जब मैं स्त्री के सामने पराजित होकर पृथिवी में गिर गया तो अब मैं स्त्री और वह पति के समान होंगे, वास्तव में यह मेरे लिये बड़ा कठिन कार्य है। तोभी जब मैं आपसे प्रतीज्ञा-बन्धन में बँध गया हूँ, तो आपने जो कहा है उसे अवश्य

करेंगे । चाप धनु दण्ड विषय में निश्चित हो जायें और अपना राज्य-नायें
यथापूर्व चरते रहें ॥२६-३२॥

११३—असीद्धित चरित्र (५)

कदाचिद्राजपुत्रोऽभीमृगयामचरद्वने ।
मृगान्विष्मन्वराहाश्रयादूर्वादीश्रद्धं प्रिया ॥१॥
सुभावसहसाशब्द आहिग्राहीतियोपित ।
विक्रोशन्त्या मुखहृशोभयगदगदमुच्चकं ॥२॥
भार्भर्मा भैरितिवदप्राजपुत्र सवेणित ।
चीदयामासतुरगयत दण्ड समागत ॥३॥
ततश्चमापिचुक्रोशन्न्यवाविजनेवने ।
गृहीताधनूपुत्रेण दृढकेनेनमानिनी ॥४॥
करन्धममुतस्याहभार्याचाहमविक्षित ।
हरतयनार्थोविपिनेपृथिवीशस्मधीमतः ॥५॥
यस्यमर्वेमहीपालास्तयागन्धर्वंगुह्यका ।
नममर्था पुर स्थातु तस्यभार्याद्वितास्महम् ॥६॥
यस्यमृत्पौरिवक्रोध शक्रस्येवपराक्रम ।
वरन्धममुतस्योपातस्यभार्याद्वितास्महम् ॥७॥

मार्कण्डेय जी कहने लगे—कुछ समय पश्चात् राजकुमार अभीक्षित वन
में निकार के लिये गये थे और मृग, बरछ, सिंह आदि को बाणों द्वारा मार
रहे थे । एकस्मिन् उन्होंने किसी उच्च स्वर से रोती हुई स्त्री का 'ग्राहि-ग्राहि'
काष्ठ सुना । उसे सुनते ही अभीक्षित ने 'मय नहीं' 'मय नहीं' कहते हुये उसी
घोर धौंका धौंकाया । उन्होंने सुना कि दानव द्वारा प्रस्त वह युवती बन्धा कह
रही है कि 'मैं महाराज करन्धम के पुत्र धवोक्षित को पत्नी हूँ, यह पापी दानव
मुझे बनपूर्वक पकड़ रहा है । जिनके सामन कोई भी राजा और गुह्यक, गन्धर्व

आदि देवगण भी शत्रुभाव से नहीं ठहरते हैं, मैं उनकी ही पत्नी होकर हरण की जा रहा हूँ। जिनके क्रोध में पड़कर कोई बचकर नहीं जा सकता और जो इन्द्रतुल्य पराक्रमी हैं, उन महाराज करन्धम के पुत्र की भार्या को यह पापी हरण कर रहा है ॥१-७॥

इत्याकर्ण्यमहीपालतनयःसशरासनी ।
 चिन्तयामासकिमिदंममभार्यात्रिकानने ॥८
 मायेयरक्षसानूनन्दुष्टानांकाननौकसाम् ।
 अथवागतएवाहंसर्व वेत्स्यामिकारणम् ॥९
 त्वरितःसततोगत्वाहृदशक्तिमनोरमाम् ।
 कान्तैकन्यकामेकांसर्वालङ्कारभूषिताम् ॥१०
 गृहीतादनृपुत्रेणदृढकेशेनदंडिना ।
 त्राहित्राहीतिकरुणविक्रोशन्तीपुनःपुनः ॥११
 माभैरितिसतामाहहतोऽसीतिचतंवदन् ।
 शासतीमामहीदुष्टःकोदूयेतकरंधमे ॥१२
 यस्यप्रतापावनताभुविसर्वमहीक्षितः ।
 ततस्तमागतदृष्ट्वागृहीतवरकामुकम् ॥१३
 मांत्राहीत्याहतन्वज्जीहृतास्म्येषेतिचासकृत् ।
 राज्ञःकरन्धमस्याहंस्नुषाभार्याप्यिविक्षितः ।
 हुतास्म्येतेनदुष्टेनसनाथाज्जायवदने ॥१४

मार्कण्डेयजी कहने लगे—अधीक्षित इन शब्दों को सुनकर विचार करने लगा कि इस वन में मेरी पत्नी कहाँ से आयी। हो न हो यह राजसों की माया है। तोभी जब आगे बढ़ कर उन्होंने देखा कि दृढकेश नामक दानव अनेक आभूषणों से युक्त एक अत्यन्त मनोहर कन्या को पकड़ रहा है और वह बार-बार 'त्राहि-त्राहि' कहकर रो रही है तो उन्होंने कन्या से कहा—'डरो मत।' फिर वे उस दानव से बोले—अब तेरी मृत्यु आ चुकी है, महाराज करन्धम के शासन-काल में कौन इस प्रकार अत्याचार कर सकता है। जिन महाराज करन्धम के सम्मुख पृथ्वी के समस्त नृपतिगण मस्तक झुकाते हैं, उनके शासन

मे कोई दुष्ट जीवित नहीं रह सकता । उस समय उन प्रचण्ड धनुष धारण किये हुये राजकुमारों को वहाँ आया देखकर वह कुमारी बार बार कहने लगी—
‘मेरी रक्षा करो—यह दुष्ट मुझे अपहरण कर रहा है । मैं करग्रथ पुत्र प्रदी-
क्षित की भार्या हूँ और सनाथ होकर भी इस समय सनाथ के समान हरण की
जा रही हूँ ॥८—१४॥

ततो विममृदो वाक्यमविक्षिप्ततथोदितम् ।

कथमेवाहिमेभाय्यास्नुपातातस्य वाक्यम् ॥१५॥

अथ वामोचयाम्येतातन्वीवेत्स्यामितत्पुन ।

क्षत्रियैर्घात्यं तेषां त्रमात्तानां प्राणकारणात् ॥१६॥

तत क्रुद्धोऽत्र बोद्धीरो दानवतमुदुमंतिम् ।

जीवन्मच्छ विमुच्ये नामन्यथानमविष्मसि ॥१७॥

तत सताविहायो ह्वं दंष्ट्रमुत्क्षिप्य दानव ।

तमप्यधावत्सोऽप्येन शरवर्षैरवाक्रियत् ॥१८॥

स वायं माणो वाणोर्ध्वानवोऽतिमदान्वितः ।

राजपुत्राय चिक्षेप दण्डशकुशतावृतम् ॥१९॥

तमापतन्तश्चिच्छेद शरैर्भूषमुत्ततः ।

सोऽप्यासन्न गृहोत्बोद्धं द्रुममाजीव्यवस्थितः ॥२०॥

सृजत शरवर्षाणि तच्चिक्षेप ततो द्रुमम् ।

स च ततिलशश्चक्रं भल्लं वापुं कमोचितैः ॥२१॥

ततश्चिक्षेप च शिलाराजपुत्राय दानव ।

सापि मोघापपातो व्यामुज्जन्ता तेन ताघवाद् ॥२२॥

राजपुत्राय बुपितो मच्चिक्षेप दानवः ।

ततश्चिच्छेद वाणोर्ध्वं भृत्सूनु सलीलया ॥२३॥

मार्कण्डेयजी कहने लगे—राजकुमार भवीशित वन्या के इन वचनों को सुनकर विचार करने लगे कि यह वन्या अपने को मेरी पत्नी और महाराज करग्रथ की पुत्र कष्ट किस प्रकार कहती है ? जो कुछ भी हो पहले इसकी रक्षा करो, फिर सब बात माझम हो जायगी, क्योंकि दुष्टों और अत्याचार पीड़ित

व्यक्तियों की रक्षा के लिए ही क्षत्रीगण शस्त्र धारण करते हैं। तत्पश्चात् उन्होंने अत्यन्त क्रोध पूर्वक उस दुष्ट दानव से कहा यदि तुझे अपनी जान बचानी हो तो यहाँ से शीघ्र भाग कर चला जा, अन्यथा मैं तुझे अभी यमालय पहुँचाता हूँ। राजपुत्र की बात सुनकर वह उस कन्या को छोड़ दण्ड हाथ में ले उन्हें मारने दौड़ा। अवीक्षित ने उसे बीच में ही बाणों से रोक दिया। दानव ने उन बाणों को रोक कर बड़े अहङ्कार के साथ राजपुत्र पर दण्ड को फेंक कर मारा, पर उन्होंने उसे बाणों से काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया। तब दानव एक बड़ा वृक्ष उखाड़ कर मारने को चला, पर अवीक्षित ने बाणों द्वारा उसे भी झगड़-झगड़ कर डाला। तत्पश्चात् वह बड़े-बड़े शिखाखण्ड लेकर उनके ऊपर फेंकने लगा, पर राजकुमार ने उन सबको बाणों द्वारा व्यर्थ कर दिया। उसने मारने के लिये जो कुछ चलाया उसे अवीक्षित ने सहज में काट डाला ।।१५-२३।।

ततोविच्छिन्नदंडौसाविच्छिन्नसकलायुधः ।

मुष्टिमुद्यम्यसक्रोघोराजपुत्रमधावत ॥२४

तस्यापततएवासौकरन्ध्रमसुतःशिरः ।

छित्त्वावेतसपत्रेणपातयामासवैभुवि ॥२५

तस्मिन्विनिहतेदेवैर्दानवेदुष्टचेष्टिते ।

करन्ध्रमसुतःसर्वैःसाधुसाध्वितिभाषितः ॥२६

वरंवृणीष्वेतितदादेवैरुक्तोनृपात्मजः ।

वव्रेपुत्रमहावीर्यपितुःप्रियचिकीर्षया ॥२७

भविष्यतिहितेपुत्रश्चक्रवर्तीमहाबलः ।

अस्यामेवहिकन्यायांमोक्षितायांत्वयानघ ॥२८

पित्राहंसत्यपाशेनबद्धइच्छाम्यहंसुतम् ।

राजभिर्निर्जितेनाजौत्यक्तोमेदारसंग्रहः ॥२९

साचमेयावतात्यक्ताविशालनृपतेःसुता ।

तयाचमत्कृतेत्यक्तोमामृतेनरसङ्गमः ॥३०

तत्त्वथतामपास्याद्यविशालतनयामहम् ।

नृदमात्मावरिष्यामिन्नन्यनारीपरिग्रहम् ॥३१॥

इस पर ब्रह्म कोष ने भर गया और धूँसा उठा कर भवण्ड वेग से राजपुत्र पर कपटा पर उन्होंने एक बरस वाला ऐसा छोटा कि उसका मस्तक बट कर पृथ्वी पर गिर गया । उस महादुष्ट दानव को इस प्रकार भया हुआ देख कर देवगण 'साधु-साधु' कह उसकी प्रशंसा करने लगे और कहने लगे कि तुम्हारी जो अभिलाषा हो वही कर माँगो । अवीक्षित ने अपने पिता द्वारा दत्त पुत्र माँग का स्मरण करके अब पराक्रमी पुत्र की प्राप्ति की । देवगण बोले—ह निष्पाप ! जिस कन्या की तुमने दानव से रक्षा की है उसी का गम मे तुम का एक महावीर चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न होगा । राजपुत्र ने कहा— मैं पिता के सम्मुख प्रतिज्ञा करने के कारण ही पुत्र की कामना कर रहा हूँ अन्यथा स्वयंवर के अवसर पर युद्ध में हार कर मैंने स्त्री का विचार संवधा त्याग कर दिया था । जब मैंने विशाल राजा की कन्या के साथ विवाह करना प्रस्वीकार कर दिया था तब से उस कन्या ने भी मेरे प्रतिरिक्त और किसी को बगल न करने की प्रतिज्ञा कर्णी थी । अब मैं उस कन्या को छोड़ कर अन्य नारी को किस प्रकार ग्रहण कर सकना हूँ ॥३४-३१॥

इयमेवहितेभार्यास्नाध्यतेमात्वयारादा ।

विशालस्यमुतामुभ्रस्त्वत्कृतेयाऽऽधितातप ॥३२॥

अस्ममुत्पत्स्यतवीरममद्वीपप्रसाधक ।

मष्टापनमहभ्राणाचक्रवर्तीमुतस्तव ॥३३॥

इत्युत्तार्यययुर्देवा वरन्धममुतद्विज ।

सोऽप्याहताऽदापत्नीकयतामीरुक्त्विन्दम् ॥३४॥

माचस्मिंश्चययामामत्यक्ताहभत्रतायदा ।

त्यक्तन्युजनाऽऽप्यनिर्वेदात्ममुपायता ॥३५॥

अप्राह्नपमावीरक्षीणप्रग्नसेवरम् ।

त्यक्तुसामामम्येत्यदेददूनेनवारिता ॥३६॥

भविष्यतिचपुत्रस्तेचक्रवर्त्तिमहाबलः ।

प्रीणयिष्यतियोदेवानसुरांश्चहनिष्यति ॥३७ ।

इतिदेवाजयातेनदेवदूतेनवारिता ।

नसंत्यक्तवतीदेहंत्वत्सङ्गममनोरथा ॥३८

देवों ने कहा—“यह बड़ी विशाल नृप की कन्या है । जिसकी तुम प्रशंसा कर रहे हो और जो तुम्हारे लिए बनवासिनी होकर तपस्या कर रही है । इसी के गर्भ से तुम को एक ऐसा पुत्र जन्म ग्रहण करेगा जो सातों द्वीपों का शासन, सहस्रों यज्ञों का करने वाला होगा ।” जब देवगण यह कह कर अन्तर्धान हो गये तो राजकुमार ने पत्नी से पूछा—“तुम इस विपत्ति में किस प्रकार फँस गईं” वह कहने लगी—“जब आप मेरे पिता के नगर से मुझे छोड़ कर चले आये तब मैं भी दुःखित चित्त से परिवार वालों को त्याग बन में रहने चली आई । यहाँ पर निराहार तपस्या करने से जब मैं अत्यन्त दुर्बल हो गई और निराश होकर देह त्याग का विचार करने लगी तो एक देवदूत ने आकर मुझे ऐसा कहा—“तुम्हारे गर्भ से एक महा पराक्रमी पुत्र जन्म लेगा, जो असुरों को मार कर देवताओं का कृपापात्र बनेगा, इसलिये तुम इस प्रकार आत्मघात मत करो । इस प्रकार आशान्वित हो कर मैंने जीवन त्याग करने का विचार छोड़ दिया ॥३२-३८॥

परश्वश्रमहाभागस्नातुं गङ्गां हृदंगता ।

अवतीर्णाविकृष्टास्मिवृद्धनागेनकेनचित् ॥३९

ततोरसतलं नीतातेन तत्र च मे पुरः ।

नागाः सहस्रशस्तस्थुर्नागपत्न्यः कुमारकाः ॥४०

तुण्डवुर्मासिमन्येत्यमामन्येऽपूजयंस्तथा ।

ययाचिरे सविनयं नागामाङ्गनास्तथा ॥४१

प्रसादं कुरु सर्वेषां त्वमस्माकं सुतस्त्वया ।

अपराधमुपेतानां संनिवार्यो वधोन्मुखः ॥४२

अपराधं करिष्यन्ति त्वत्पुत्रस्यानिलाशनाः ।

तन्निमित्तं निवार्योऽसौ प्रसादः क्रियतामिति ॥४३

१०१ चिममाप्रोक्ते दिव्ये पातातभूः ॥
 मूर्ध्निनाहतयापुण्येनैववासोमिरत्तमं ॥४४॥
 समानीतातयातोवमिमन्नेवानिवाशिना ॥
 पुरामवायान्तिमतीपूर्ववद्द्रूपशालिनी ॥४५॥
 इतिरुपवतीहृष्टासर्वान्द्वारभूषिणाम् ॥
 जग्राहहृदकेताऽयहतुं काममुदुमति ॥४६॥
 भूमहाहृवनेनाहराजपुत्रविमाधिता ॥
 १ प्रसीदमहाहोमाप्रतीक्षस्ववासम ॥
 भूमाकराजपुत्राऽद्योनास्तिसहस्रधीम्यहम् ॥४७॥

अग्री हो दिन पूर्व जब मया ४ निवृत्तवर्ती कुल मे स्नान करने गई
 तो एक ब्राह्मण नाम मुझे श्रीचक्र रसातल मे ल गया, जब मैं वहाँ पहुँची तो
 हजारों तप, नाम रम्यताओं और वाचक मेरे भावने इकट्ठे हो बड़े और बड़े
 पुत्रा, स्तुति करके कहने लग वि आप हमारे ऊपर भूषा करें। दिन समय
 हम किसी अथवाय के वास्तु आपने पुत्र क सम्मुख दर्शनीय हों तो आप
 सत्त्वो रोक कर हमारी रक्षा करना। यदि आयु मरता करने वाले भाषण
 सुन्नाहरे पुत्र का वाड अथवाय कर तो उस समय आप हमारी सहायिका करें,
 यही प्रायना हम करते हैं ॥४६-४७॥ जब मैं उनकी बात स्वीकार करली
 तब उन्होंने आत्म तप क दिव्य आभूषणा मनोहर तप, वस्त्र, पुष्प आदि
 मे मुझे सज्जना और तपनत्व मुझे पुत्रा पर बहुत बड़े और नागों के प्रसाद
 न पूर्वकम् स्पर्शनी और योग्य हुए हो गई। साथ मुझे इस प्रकार आभूषणों
 से विभूषित और स्व सज्जना दया कर बहुत बड़े बड़े नामक पुत्र दान्य हार
 करके तब जा रहा था कि आप का गव और उसके बच्चे मे मुझे छुटा दिया।
 साथ वाचक का कहनाम मे घरी रक्षा का सबी है इस लिए अब आप ही मुझे
 बरदा कर पुत्रा कर। मया अन्न विद्वत्ता है कि हम समय आपने रक्षा
 गुणवान् गवपुत्रा बड़ी भां बड़ी बड़ी है ॥४४-४७॥

११४—मरुत जन्म वर्णन

इतितस्यावचः श्रुत्वास्मृत्वापितृवचःशुभम् ।

किमिच्छकेप्रतिज्ञातेयदुक्तं तेनभूभृता ॥१॥

भृत्युवाचसतांकन्यामविक्षिन्तृपतेःसुतः ।

सानुरागमनाःकन्यात्यक्तभोगान्धतत्कृते ॥

यदाहस्यक्तवांस्तन्वीत्वाभरातिपराजितः ।

विजित्यशङ्कन्सप्राप्तात्वंमयात्रकरोमिकिम् ॥३॥

ममपाणिगृहाणत्वंरमणीयेऽत्रकानने ।

सकामायाःसकामेनसङ्गमोगुणंवांन्भवेत् ॥४॥

एवभवतुभद्रन्तेविधिरेवात्रकारणम् ।

अन्यथाकथमन्यत्रस्वामहस्वसमागतः ॥५॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—राजकुमार भवीक्षित ने जब राजकन्या के मुख से यह सब वृत्तान्त सुना और किमिच्छक व्रत के अवसर पर पिता से की हुई प्रतिज्ञा का स्मरण किया और यह भी देखा कि विशाल राज-कन्या ने मेरे ही लिये सब भोग त्याग रखे हैं तब उसके चित्त में उस मौन्दर्यमयी के प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया उसने कहा—हे सुन्दरी ! अश्रुओं से हार जाने पर ही मैंने तुम्हारा त्याग किया था और आज फिर शत्रु को जीत कर ही तुमको प्राप्त किया है, अतः अब मैं क्या कहूँ ? राजकुमारी ने उत्तर दिया—इस रमणीय वनस्थली में ही आप मेरा पाणिग्रहण करें तो दो सकाम युवक युवती का यह सम्मिलन सुख जगति और सत्परिणाम से सिद्ध होगा । राजकुमार भवीक्षित ने कहा—ऐसा हो ही—तुम्हारा मंगल हो । इस घटना के पीछे स्पष्ट-रूप से देव का हाथ है, अन्यथा तुम और मैं पृथक्-पृथक् स्थान में रहते हुए भी आज इस अवसर पर कैसे इकट्ठे हो सकते थे ॥१-५॥

एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तोगन्धर्वतनयोमुने ।

राप्सरोभिःसहितोगन्धर्वैरपरैर्वृ ॥६॥

राजपुत्रमुतेयस्मेभामिनीनाममानिनी ।
 अमितापादगस्त्यस्यविशाततनयाऽभवत् ॥७
 बालभावेनयोगस्त्य कोपितः क्रीडमानया ।
 तनस्तेनतदाशानामानुषीत्वमविध्यसि ॥८
 प्रसादितमचास्माभिर्ब्रालियमविवेकिनी ।
 तवापराद्धविप्रप्रेषादक्रियतामिति ॥९
 प्रसाद्यमानमोऽस्माभिर्दिदमाहमहामुनिः ।
 बालेतिमत्वाशापोऽन्योदत्तोऽप्यानान्यर्यवनत ॥१०
 इतिशापा गस्त्यस्यविशातभवनेशुभा ।
 जातेषमरमुतामुभ्रमामिनीनामनामत ॥११॥
 तदस्याहवृत्तेप्राप्तोगृहाणेमानृपात्मजाम् ।
 ममान्मजामुतस्तेऽप्रचक्रवर्तीमविध्यति ॥१२

मार्कण्डेयजी कहने लगे—जिम समय बालीक्षित और विशाल राज-
 कन्या का यह बालीपाव हुआ तब या उन्ही समय तनय नामक जबर्दस्त अन्य
 अनेक गन्धर्वों तथा अप्सराओं के साथ वहाँ आया। उसने कहा—यह कन्या
 वास्तव में मेरी ही है और इसका नाम मानिनी है। अगस्त्य ऋषि को इसने
 एक बार कोपित कर दिया था और तब उन्होंने शाप दिया कि तू मनुष्य
 योनि में जन्म ले। मैंने उससे प्रार्थना कि यह एक अवशेष—कन्या है इस के
 ऊपर क्रोडित होना उचित नहीं, आप इस पर कृपा करें। महामुनि अगस्त्य
 जी ने मेरी प्रार्थना से प्रसन्न होकर कहा कि—बालिका समझ कर ही मैंने इसे
 शापान्न शाप दिया है, पर अब वह सर्वथा मिट नहीं सकता मेरी प्रिय कन्या
 न उसी शाप के कारण विशाल राजा के यहाँ जन्म ग्रहण किया था। अब
 मैं इसने निय ही यहाँ आया हूँ कि आप मेरी कन्या का पाणिग्रहण करें,
 हमारे मन में आप को चरकी पुत्र प्राप्त होगा ॥६-१२॥

तथेत्युक्त्वा नितम्याह्वयमाणिपायिवात्मजः ।
 जघाह निधिव्रद्धो ममकेतवचतुम्युः ॥१३

प्रजगुर्देवगन्धर्वाननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
 पुष्पागिससृजुर्मैघादेववाद्यानिसस्वनुः ॥१४
 विवाहे राजपुत्रस्य तया तत्र समेषुषः ।
 समस्तवसुधात्राणकतृ कारणभूतया ॥१५
 ततोगन्धर्वलोकन्ते सह तेन महात्मना ।
 निःशेषेण ययुः सा च स च राजसुतो मृने ॥१६
 भामिन्यामुमुदेसाद्धं मविक्षिन्तृपनन्दनः ।
 सा च तेन समन्तत्र भोगसम्पत्समन्विता ॥१७
 कदाचिदतिरम्येऽसौ गगनोपवने तथा ।
 विक्रीडति समन्तन्व्या कदाचिदुपपर्वते ॥१८
 कदाचित्पुलिनेन द्याहंससारसशोभिते ।
 कदाचिद्ध्वनस्याम्ते प्रासादे चातिशोभने ॥१९
 विहारदेशेष्वन्येषुरमणीयेष्वहर्निशम् ।
 सरेमे सहितस्तन्व्या सा च तेन महात्मना ॥२०

राजकुमार अवीक्षित ने गन्धर्व का बच्चा सुन कर तथास्तु कहा । तब गन्धर्वों के पुरोहित तुम्बुरु ने उन दोनों का पाणिग्रहण संस्कार यथाविधि होम करके सम्पादन कराया । उस अवसर पर देवता तथा गन्धर्व हर्ष से गाने बजाने लगे, अप्सरायें नाचने लगीं, आकाश से पुष्पवर्षा होने लगी और देव-गण अपने बाद्य बजाने लगे । तत्पश्चात् सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल के पालनकर्ता (चक्रवर्ती शासक) की जननी होने वाली कुमारी तथा राजकुमार अवीक्षित के विवाह में आये हुए समस्त गन्धर्व उस प्रमुख गन्धर्व तनय के साथ गन्धर्व लोक को चले गये । राजकन्या और राजकुमार अवीक्षित उन्हीं के साथ गये । वहाँ पर ये दोनों पति-पत्नी एक दूसरे के सहवास और प्रेमयुक्त व्यवहार से अत्यन्त संतोष को प्राप्त हुए । वे अपनी उस मनोहर भार्या सहित कभी नगर के उपवृत्तों में, कभी उपपर्वतों में क्रीड़ा करने लगे । कभी हंस-सारस आदि से शोभायमान नदियों के तट पर कभी भवनों में, कभी ऊँचे महलों और कभी अन्य रमणीक स्थानों में वे दोनों विहार सुख प्राप्त करने लगे ॥१३-२०॥

भक्ष्यानुलेपनवस्त्रं सवपानादिकमुत्तमम् ।
 उराजह्नुस्तयस्तत्रमुनिगन्धर्वकिन्नराः ॥२१॥
 तथाचरमतस्तस्यभामिन्यासहदुर्लभे ।
 गन्धर्वलोकेवोरस्यपुत्रसामुपवेष्टुमा ॥२२॥
 तस्मिञ्जातेमहावीर्येगन्धर्वाणामहोत्सवः ।
 यभूवमनुजव्याघ्रतेनकाव्यमवेक्षतम् ॥२३॥
 जम्बुकेशित्तयवान्येमृदङ्गपटहानकान् ।
 अवाद्यन्तचैवान्येवेणुवीणादिकास्तथा ॥२४॥
 ननृतुश्चतथातत्रबहवोऽप्सरसगिणाः ।
 पुष्पवृष्टिमुचोमेघाजगजुर्मृदुनिस्वना ॥२५॥
 तथाकोलाहलेतस्मिन्वर्तमानेऽप्यनुम्बुदः ।
 प्रणयेनस्मृतोम्येत्यजातकर्माकिरोन्मुनिः ॥२६॥

वहाँ रहने वाला मुनि, गन्धर्व और चित्रर उनके उत्तम भक्ष्य पदार्थ,
 पानीय, वस्त्र, माला और मय आदि भेंट स्वरूप देने लगे औरों से भरपूर
 गन्धर्व लोग ने राजकुमारी भामिनी के इन प्रकार विहार करते हुए राजसभा
 ने एक पुत्र को जन्म दिया । उस महावीर्य वाली पुत्र का जन्म होने पर
 भविष्य में उनका द्वारा महान् कार्यों का मित्र होने की आशा से गन्धर्वों ने महाव
 रसय का आयोजन किया । वहाँ पर कोई गान करने लगा, कोई मृदंग,
 पटह, बोल बैलु, वीणा, आदि बजाने लगे । अप्सरायें मनोहर नृत्य करने
 लगी और मेघ फूलों की वर्षा करत हुए अमुर मन्द शब्द करने लगे । इस
 प्रकार जब वहाँ सर्वत्र मगल शब्द हो रहा था तब वे स्मरण करते ही पुरोहित
 अनुम्बुद ने वहाँ आकर जिशु का जात कर्म पूरा किया ॥२१-२६॥

देवा समाययुर्गर्वतयादेवपंथोऽमला ।
 पातालात्प्रगेन्द्राश्रयेपवामुक्रितलका ॥२७॥
 तथादेवानुराणाचयेप्रधानाद्विजोत्तम ।
 यथाणागुह्यनानावगायवश्चतयाग्निना ॥२८॥

तदाऽऽगतैरशेषपिदेवदानवपन्नगैः ।
 मुनिभिश्चाकुलमभूद्गन्धर्वाणामहत्पुरम् ॥२६॥
 ततःसत्तुम्बुरुःकृत्वाजातकर्मादिकाःक्रियाः ।
 चक्रे स्वस्त्ययनंतस्यबालस्यस्तुतिपूर्वकम् ॥३०॥
 चक्रवर्त्तीमहावीर्य्योमाहाबाहुर्महाबलः ।
 महान्तंकालमीशित्वमशेषायाःक्षितेःकुरु ॥३१॥
 इमेशकादयःसर्वलोकपालास्तथर्षयः ।
 स्वस्तिकुर्वन्तुतेवीरवीर्य्यचारिविनाशनम् ॥३२॥
 मरुतवशिवायास्तुवातिपूर्वेणयोऽरजाः ।
 मरुते विमलोऽक्षीणोऽवैषम्यायास्तुदक्षिणः ॥३३॥
 पश्चिमस्तेमरुद्वीर्य्यमुत्तमंतेप्रयच्छतु ।
 बलयच्छतुचोत्कृष्टं मरुतोचनथोत्तरः ॥३४॥

मार्कण्डेय जी कहने लगे—उस समय वहाँ पर सभी देवपि, पाताल निवासी षोष, वासुकि, सक्षक आदि नागगण, राजा, देव, असुर, यक्ष, गृह्यकों के प्रधान व्यक्ति और समस्त वायुकुल उपस्थित हुए । उस अवसर समस्त ज्ञाने वाले समस्त ऋषि, देव, दानव, पन्नग और मुनिपों ने गन्धर्वों का सम्पूर्ण मगर भर गया । जातकर्म सम्पन्न हो जाने पर उन तुम्बुरु ने बालक का स्वस्त्ययन इस प्रकार किया—हे वीर तुम महाबली, महावीर्य और महाबाहु होकर पृथ्वी सार्वभौम आधिपत्य प्राप्त करके अब अष्ट शासक बनो । समस्त इन्द्रादि लोकपाल और ऋषिगण तुम्हारा मंगलमय और शत्रुओं को विजय करने वाला वीर्य विधान करें । पूर्व दिशा से चलने वाली स्वच्छ वायु तुम्हारा कल्याण करे । अक्षीण और विमल दक्षिण-पवन तुम्हारे अनुकूल रहे । पश्चिम का मरुत तुमको महावीर्य और उत्तर का पवन उत्कृष्ट बल प्रदान करे ॥२७-३४॥

इतिस्वस्त्ययनस्यान्तेवागुवाचाशरीरिणी ।

मरुतवेतिवहुशोयदिदंगुरुरब्रवीत् ॥३५॥

मरुतइतितेनायभुविह्यातोभविष्यति ।
 भुविचाम्यमहीपालायास्यन्त्याज्ञावशायतः ॥३६॥
 एषसर्वंक्षितीशानावीर स्यास्यतिमूर्द्धं नि ।
 ध्रुववर्त्तीमहावीर्य्य समद्वीपवतीमहीम् ॥३७॥
 भाग्यपृथिवीपालानयमोदमत्यवाग्निः ।
 प्रधान पृथिवीशानाभविष्यत्यययाज्वनाम् ।
 प्राधिकयशीर्य्यंवीर्य्येणभविष्यत्यस्यराजसु ॥३८॥
 इत्याकण्यं वच सर्वकेनाप्युक्त दिवौकसाम् ।
 सुतुपुविप्रगन्धर्वाभ्रास्यमातातयापिता ॥३९॥

इम स्वस्थयन का पाठ समाप्त होते पर आकाशवाणी हुई कि गुह ने बार-बार 'महन' शब्द का उच्चारण किया है इसलिये इस बालक का नाम 'महन' ही होगा और समस्त समार किये जात होगा । सम्पूर्ण राजागण इससे आज्ञावर्ती होंगे इस प्रकार सब राजाओं में तिरोभंगि होगा । यह सब राजाओं को हरा कर ध्रुववर्ती पदवी पायेगा मानो द्वीपों में विस्तृत पृथ्वी का भोग करेगा । यह सब नरेणों और यज्ञ करने वालों में श्रेष्ठ होगा और समस्त राजाओं की अपेक्षा बल-वीर्य में प्रधानता प्राप्त करेगा । वेदगण की इन वाणी को सुनकर सब ब्रह्मण, गन्धर्व और बानक के माता पिता धन्यमान प्रसन्न और सतुष्ट हुए ॥३१-३९॥

११५- मरुत चरित्र (१)

सत सराजपुत्रस्तमादायदयितसुतम् ।
 पत्नी-जानुगतोविप्रगन्धर्वैराययोपूरम् ॥१॥
 सपिनुर्भवनप्राप्यवन्देपिनुगदरात् ।
 धरणीसाचतन्वङ्गीह्रीमतीनृपते मुता ॥२॥
 तथाहृगजपुत्रोऽमौगृहीत्वाबालकमुतम् ।
 धर्माभिनगतभूपराजामध्येकरुण्यमम् ॥३॥
 मृगपीत्रस्यपर्यंतदुस्सङ्गस्ययन्मया ।
 किमिच्छेवेप्रतिज्ञातमभ्यमातु वृतेपुरा ॥४॥

इत्युक्त्वापितुस्तस्मै तं कृत्वा तनयं ततः ।

यथावृत्तमशेषसकथयामास तस्य तत् ॥५॥

सपरिष्वज्य तं पौत्रमानन्दास्त्राविलेक्षणः ।

स भाग्योऽस्मीत्यथात्मानं प्रशशंस पुनः पुनः ॥६॥

ततः सोर्घ्यादिना सम्यग्गन्धर्वान्समुपागतान् ।

संमानयामास मुदा विस्मृतान्यप्रयोजनः ॥७॥

मार्कण्डेयजी कहने लगे—तत्पश्चात् राजकुमार अवीक्षित अपने नवजात पुत्र तथा पत्नी के साथ अपने नगर में आये । उस समय अनेक गन्धर्व भी उनके पीछे-पीछे थे । उन्होंने राज भवन में जाकर पिता की वन्दना की, जिसाल राज-कन्या ने भी सलज्जभाव से उनको प्रणाम किया । तदनन्तर अवीक्षित ने पुत्र को लेकर बड़े-बड़े सरदारों के साथ राजसिंहासन पर विराजमान अपने पिता महाराज करन्धम से कहा—“माताजी के किमिच्छक व्रत के अवसर पर मैंने आपसे जो प्रतिज्ञा की थी, तदनुसार पौत्र को गोदी में लेकर इसका मुख देखिये ।” यह कहते हुए उन्होंने पुत्र को पिता की गोदी में दे दिया और विवाह तथा पुत्र-जन्म का पूरा वृत्तान्त उनको सुना दिया । पौत्र को देखकर राजा के नेत्रों में हर्ष से अश्रु आगये और अपने को परम सौभाग्यवान् मानकर स्वयं ही अपनी प्रशंसा करने लगे । इसके पश्चात् उन्होंने साथ में आये गन्धर्वों का सब प्रकार से सम्मान किया ॥१-७॥

ततः पुरे महानासीदानन्दः पौरवैश्वसु ।

अस्माकं सन्ततिर्जातानाथस्येति महामुने ॥८॥

हृष्टपुष्टे पुरे तस्मिन्गीतवाद्यैर्वराङ्गनाः ।

विलासिन्योऽतिचारं ह्यचो नृतुलस्यिमुत्तमम् ॥९॥

राजा च द्विजमुख्येभ्योरत्नानि च वसूनि च ।

गावो वस्त्राण्यलङ्कारान ददाद्घृष्टमानसः ॥१०॥

ततः सबालो ववृधेः शुक्लपक्षे यथाशशी ।

पितृणां प्रीतिजनको जनस्येष्टः प्रसोऽभवत् ॥११॥

आचार्य्याणां सकाशात्स प्राग् वेदाङ्गगृहे मुने ।

ततः शस्त्राण्यशेषाणि धनुर्वेदं ततः परम् ॥१२॥

शृतोद्योगोयदासोऽभूत्सङ्गकामुं वकर्मणि ।

ग्रन्थेषु च तथा वीरः क्षास्त्रेण पुर्विजितश्रम ॥१३

ततोऽस्यालि सजग्राह भागं वाद्भृगुसभवात् ।

विनयाद्यनतो विप्रगुरो प्रीतिपरायण ॥१४

माध्वदेव कहते लगे—उस समय समस्त नगर में भी बहुत बड़े उत्सव होने लगे और लोग यह कह कर खुशी मनाने लगे कि “हमारे रक्षक राजा के मन्तान हुई है।” उस समय नगर के भीतर स्यान्-स्थान पर तर्तकियाँ नृत्य और गायन करने लगीं । महाराज करन्धम गुणवान् ब्राह्मणों को धन, रत्न, धन्य, आभूषण और गोधो का दान देने लगे । इस प्रकार के प्रसन्नतापूर्ण वातावरण में वह बानक क्रमशः बड़ा होता हुआ पिता का प्रीतिपात्र और धन्य सम्पादन मनुष्यों का भी प्यारा बन गया । बड़ा होने पर उसने पाचार्य के समीप रहकर ब्रह्म, शास्त्र और धनुर्वेद की शिक्षा ग्रहण की । जब वह इन सब शास्त्रों का ज्ञाता हो गया तो तब, धनुष-याण और अश्वान्य शास्त्रों का प्रयोग सीखने के लिए भृगुवशीय भागव के निरुद्ध जाकर उनका रहस्य सीखन लगा ॥८-१४॥

गृहीतास्त्रं वृत्तीवेदे धनुर्वेदस्य पारग ।

निष्णात सवविद्यामुनयभूवतत पर ॥१५

विशालाभिसुतावार्त्तामुपलभ्या गितामिमाम् ।

हर्षनिर्भरचित्तोऽभूद्दीहित्रस्य च याग्यताम् ॥१६

अथ राजा सुतमुत्तदृष्ट्वा प्राप्तमनोरथ ।

यज्ञाननेकाभिष्पाद्यदस्त्रादानानि चायिनाम् ॥१७

शृतमेपत्रियोक्तं सवर्णौघमतो महीम् ।

परिपालयारिविजयोऽलबुद्धिसमन्वित ॥१८

मयियामुर्वनपुत्रमविदितमभापत ।

पुत्रवृद्धोऽस्मि गच्छामि वनराज्यगृहाण मे ॥१९

शृतं त्वोऽस्मिनास्वयन्विरिञ्चिस्त्वदमिषेचनात् ।

मुनिपुत्रमतो राज्यत्वगृहाण मया पितम् ॥२०

इस प्रकार सुयोग्य गुरुओं से परिश्रम पूर्वक शिक्षा ग्रहण करके वह धनुर्वेद में पारंगत बन गया और युद्ध सम्बन्धी सब कलाओं में पूर्ण निष्णात होगया । उस समय इन विद्याओं में उसने बढ़कर कोई अन्य दिखाई नहीं पड़ता था । अपनी कन्या के मनोरथ की सिद्धि दौहित्र की विशेष योग्यता को जानकर विशाल राजा को भी अत्यन्त हर्ष हुआ । शत्रु पर सदा विजय प्राप्त करने वाले और परम बुद्धिमान् महाराज करम्भम ने पौत्र का प्राप्त करने की खुशी में अनेक यज्ञ करके अर्घियों बहुत-सा दान दिया और बहुत से सत्कार्य करके प्रजा का हित साधन किया । तदनन्तर कुछ समय पीछे वन जाने की इच्छा से उन्होंने अपने पुत्र अधीक्षित से कहा—' पुत्र ! अब मेरी वृद्धावस्था है और मेरी अभिलाषा वन में रहकर भगवद् भजन करने की है, अतएव अब तुम इस राज्य को ग्रहण करो । मैं सभी दृष्टियों से अपने जीवन को सफल हुआ देख रहा हूँ, अब तुम्हारा राज्याभिषेक करने के अतिरिक्त मेरे लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं रह गया है, इस कारण मैं तुमसे इस भाँति से सम्पन्न राज्य का शासक भार ग्रहण करने का आग्रह करता हूँ' ॥१४-२०॥

इत्युक्तःपितरंप्राहसोऽविक्षिन्नूपनन्दनः ।
 प्रश्रयावनतोभूत्वाग्रियासुस्तपसेवतम् ॥२१
 नाहंतातकरिध्यामिपृथिव्याःपरिपालनम् ।
 नापैतिहोर्ममनसिराज्येऽन्यत्क्वनियोजय ॥२२
 तातेनमोक्षितोब्रह्मोन्स्ववीर्यदिह्यतः ।
 ततःकियत्पौरुषमेपुरुषैःपाल्यतेमहीम् ॥२३
 योऽहंनपालनायालमात्मनोऽपिवसुन्धराम् ।
 सकथंपालयिष्यामिराज्यमन्यत्रविक्षिप ॥२४
 सस्त्रीसघर्मापुरुषोयश्चान्येनावद्रुह्यते ।
 आत्माऽमोहायभवताबन्धनाद्येनमोर्क्षितः ॥२५
 रोऽहंकथमविज्यामिस्त्रीसघर्मामहीपतिः ।
 स्त्रियःपुमान्भवेद्भर्तायिःशूरःसमहीपतिः ॥२६

पर राजकुमार धवीक्षित स्वयं वन में जाकर तप करने के इच्छुक थे । उन्होंने कहा—' पिताश्री ! मैं राज्य का भार ले सकने में असमर्थ हूँ, अभी तब मेरी पहली लज्जा की भावना दूर नहीं हुई है, इसलिये आप इस उत्तरदायित्व को अन्य किसी को दे । जब मैं हार कर वन्धन ग्रस्त होगया और पिता के द्वारा छुड़ाया गया तो मेरे पुण्याय और धीरता का महत्व ही क्या रह गया ? जब मैं स्वयं अपनी रक्षा करने में असमर्थ न हो सका तो पृथ्वी का पालन किस तरह कर सकता हूँ ? बुद्धिमान् और धर्माचरण वाला होने पर भी जो मनुष्य पाशुओं से पराजित होगया, जो अपनी आत्मा का भी उद्धार न कर सका और पिता की सहायता से ही आ वन्धन मुक्त हो सका, वह पुण्य कहे जाने के योग्य नहीं, वह तो एक प्रकार से स्त्री ही है और कदापि राज्य करने में समर्थ नहीं हो सकता ॥२१-२६॥

नभिस्तएवपुत्रस्यपितापुत्रस्तथापितुः ।

नान्येनमोक्षितोवीर्यस्त्वपित्रामाक्षितः ।

हृदयनाम्यथानेतु मयाशक्यनरेश्वर ॥२७॥

हृदयेह्यैर्ममातीव्यस्त्वहमाक्षितस्त्वया ॥२८॥

पित्रापात्ताश्रियभुङ्क्तेपित्राकृच्छ्रात्ममुद्धृतः ।

विजायतेचयःपित्रामानवःसोस्तुनोकुले ॥२९॥

स्वयमर्जितवित्तानास्यातिस्त्रयमुपेयुषाम् ।

स्वयनिम्नीर्णकृच्छ्राणायागति सास्तुमेगतिः ॥३०॥

वरधम ने कहा—हे वीर श्रेष्ठ, पिता और पुत्र में कोई अन्तर नहीं होता, अतएव मेरे द्वारा छुड़ाये जाने से पराये का कोई प्रयत्न नहीं और न लज्जा का कोई कारण हो सकता है । धवीक्षित ने उत्तर दिया—महाराज ! आपका कथन सच है, पर मेरे हृदय में वह हीन भावना अब दूर नहीं हो पाती और मैंने उन पराक्रम तथा धरमान का स्मरण ही आता है । जो व्यक्ति पिता की पराजित गणति के भरोसे मुझ पास करता है, आश्रित से पड़ जाने पर पिता द्वारा छुड़ाया जाना ही और पिता की कीर्ति के आधार पर ही प्रसिद्ध होना है, उनका कुछ भी महत्त्व समझना व्यर्थ है । जो स्वयं अपने पुरुषार्थ द्वारा

वैभव प्राप्त करता है, स्वयं नाम कमाता है और स्वयं ही आपत्तियों से छुटकारा पाने में समर्थ है वही सच्चा पुरुष है ॥२७—३८॥

इत्याहबहुशःपित्रायदाप्युक्त्वोऽप्यसौमुने ।

तदातस्यसुतंराज्येमरुतमकरोन्मृपः ॥३१

सपित्रासमनुज्ञातंराज्यंप्राप्यपितामहात् ।

चकारसम्यक्सुहृदामानन्दमुपपादयन् ॥३२

राजाकरन्धमश्चापिवीरामादायतान्तथा ।

वनंजगामतपसेयतवाक्कायमानसः ॥३३

तत्रवर्षसहस्रंसतपस्तप्त्वासुदुश्चरम् ।

विहायदेहंनृपतिःशक्रस्यापसलोकताम् ॥३४

सास्यपत्नीतदावीरावर्षाणामपरंशत्म् ।

तपश्चचारविप्रर्वेजटिलामलपंकिनी ॥३५

सालोक्यमिच्छतीभर्तुःस्वर्गतस्यमहारमनः ।

फलमूलकृताहाराभार्गवाश्रमसंश्रया ।

द्विजातिपत्नीमध्यस्थाद्विजशुश्रूषणादृता ॥३६

भार्गवदेवजी ने कहा—जब अभीक्षित ने पिता के वारम्बार कहने पर भी राज्य भार ग्रहण करने में अपनी असमर्थता प्रकट की तो महाराज करन्धम ने उसके पुत्र मरुत को राज्य भार दे दिया । मरुत ने पिता की अनुमति पाकर पितामह द्वारा प्रदत्त राज्य भार को स्वीकार किया और ऐसे सुचारु रूप से संभालन करने लगे जिससे उनके समस्त निकटवर्तियों को परम संतोष और आनंद हुआ । तब महाराज करन्धम भी अपनी पत्नी बीरा को साथ लेकर मन, वचन, काया से तपस्या में निरत होने के लिये वन में चले गये वहाँ पर करन्धम के एक हजार वर्ष तक कठिन तप करके देह त्याग करने पर वह इंद्रलोक को प्राप्त हुए । उनकी पत्नी बीरा देवी इसके पश्चात् भी सौ वर्ष तक तपस्या में निरत रही । वह सदैव पल्लोक में भी पति का सांगीत्य प्राप्त करने की इच्छा करती रहती

भीर केवल पान, भूल का आहार वगैरे आर्गेय के आश्रम में दिन पत्निमौ क
ताम सेवा और सम्मान पाती हुई समय व्यतीत करती थी ॥३१-३६॥

११६—मरुत चरित्र (२)

भगवन्विस्तरात्मवर्ममंतस्कथितव्या ।
वरुणमरुतचरितमविशिष्टरितवयत ॥१॥
आविक्षितस्यनुपनेर्मरुतस्यमहात्मन ।
श्रोतुमिच्छामिचरितश्रूयतेसांस्तेवेष्टित ॥२॥
अत्रवर्त्तीमहाभाग दूरवन्तोमहामति ।
धर्मविद्धमंकुञ्चवसम्पत्पालयिताभुव ॥३॥
सपिपासमनुज्ञातराज्यप्राप्यपितामहाव ।
धर्मत पालयामासपितापुत्रानिवीरसन् ॥४॥
इमाजसुबहून्यज्ञान्यथावत्स्वाप्तवक्षिषाव ।
श्रुतिवक्त्रोहितादेनादतिविशालोमहीपति ॥५॥
तस्याप्रतिहतचक्रमासौदद्रीवेषुसप्तसु ।
गतिश्चाप्यनवच्छिन्नास्व पातालजलादिषु ॥६॥
तत्र प्राप्यधनुविप्रयथावत्स्वक्षिपापर ।
अपजरसमहामर्ज देवानिन्द्रपुरागमान् ॥७॥

श्रीकृष्ण बोले—हे भगवन् ! अब मैं सूर्यवश के राजा मरुत के चरित्र
को सुनना चाहता हूँ, सुना जाय है कि वह अत्यन्त उद्यमी, प्रतिष्ठावान् ॥१॥
अत्रवर्त्ती, महाभाग, दूर, वान्त, वीर्य बुद्धि, धर्मज्ञ, धर्मचारी तथा भवे प्रवीर,
से पृथिवी का पालन करने वाले थे ॥३॥ माकण्डेयजी ने कहा—पिता की
भाणा में मरुत ने अपने पितामह से राज्य को प्राप्त किया और प्रजा का पालन
अपने पुत्र के समान करने लग ॥४॥ शक्तिवी और परीक्षितो को धनका दूर

उन महाराज ने अत्यन्त दक्षिणा वाले अनेकानेक यज्ञों का अनुष्ठान किया था ॥१॥ उनके रथ के पहिये सार्तों द्वीप में न रुकने वाले थे, आकाश, पाताल और जल में भी उनकी गति का अवरोध नहीं होता था ॥६॥ अपने कर्म में तत्पर हुए उन मरुत ने धन पाकर सब महायज्ञों के द्वारा इन्द्र आदि देवताओं का यजन किया था ॥७॥

इतरेचयथावर्णाःस्वेस्वेकर्मण्यतन्द्रिताः । -

तदुपासघनाश्चक्रुरिष्टापूर्त्तादिकाःक्रियाः ॥८॥

पात्यमानामहीतेनमरुत्तेनमहात्मना ।

योस्पृद्धेत्त्रिदशावासवासिभिर्द्विजसत्तम ॥९॥

तेनातिषयिताःसर्वकेवलंनमहीक्षितः ।

यज्विनादेवराजोऽपिशतयज्ञाभिसन्धिना ॥१०॥

ऋत्विक्तस्यत्तुसंवत्सोर्बभूवाङ्गिरसःसुतः ।

भ्रातावृहस्पतेर्विप्रमहात्मातपसानिधिः ॥११॥

सौवर्गोमुञ्जवाभ्रामपर्वतःसुरसेवितः ।

पातितंतेनतच्छङ्गं कृतेतस्यमहीपतेः ॥१२॥

तेनयस्याखिलयंज्ञेभूमिभागादिकद्विज ।

प्रासादाश्चकृताःशुभ्रास्तपसासर्वकाञ्चनाः ॥१३॥

गाथाश्चाप्यत्रगायन्तिमरुतचरिताश्रयाः ।

सातत्येनर्षयःसर्वेकुर्वन्तोऽध्ययनंयथा ॥१४॥

सभी वर्ण अपने-अपने कर्म में तत्पर रहकर उनसे प्राप्त धन के द्वारा दृष्टापूर्त इत्यादि कर्म को करते थे ॥८॥ महात्मा मरुत के द्वारा पालन की जाती हुई पृथिवी देवताओं से भी स्पृद्धा करती थी ॥९॥ वह मरुत राजाओं में ही प्रमुख नहीं होगये थे, वरन् सैकड़ों यज्ञों को करने के कारण वह इन्द्र से भी श्रेष्ठ होगये थे ॥१०॥ हे ब्रह्मन् ! अंगिरा सुवन, वृहस्पतिजी के भाई तपोनिधि महात्मा संवत्स उनके ऋत्विक् हुए ॥११॥ देवताओं द्वारा सेवित स्वर्गमय एक पर्वत मुंजवान् नाम से प्रसिद्ध है, ऋत्विक् अपने तपोबल से उसका शृंग उखाड़ कर राजा के निमित्त ले आये थे ॥१२॥ इसी शृंग के द्वारा राजा का

समस्त यज्ञ-स्थान और स्वर्णमय उज्ज्वल भवनो का निर्माण हुआ था ॥१३॥
इन मस्त के चरित्र को आचार बना कर ऋषिगण सदा इनका वृत्तान्त कीर्तन
करते और इनके चरित्र का अध्ययन करते थे ॥१४॥

मरुत्तं न समो नामूद्यजमानो महीतले ।

सद समस्तयज्ञं प्राप्ताः दाश्चैव वाचना ॥१५॥

अमाद्यदिन्द्र सोमेन दक्षिणाभिद्विजातयः ।

विप्राणां परिवेष्टारं शक्राद्यास्त्रिदशोत्तमाः ॥१६॥

यथायज्ञं मरुत्तस्य तृप्ता सर्वे महीपते ।

सुवर्णं मखिलस्य क्त्वा रत्नपूर्णं गृहे द्विजं ॥१७॥

प्रासादादिममस्तच सोवर्णं तस्य यत्कृतौ ।

धर्मो वरुणाह्यतम्यन्ततस्मात्केचित्तयादु ॥१८॥

(तेन तस्य क्तेन शिष्टाये जना पूर्णं मनोरथा ।

तेऽपि यज्ञान्यजते स्म देशे देशेऽप्यवपृथक् ।)

यम्यं वदुः ततो राज्ञ्यम्यवपालयतः प्रजा ।

तपस्वीर्वाश्च दम्येत्यतमाह मुनिस्ततम ॥१९॥

पितुर्माता तवाहं ददृष्टुं नापसमं दलम् ।

विपाभिभूतमुरगैर्मोन्मत्तं न रेखर ॥२०॥

पितामहस्ते स्वर्णानिःसम्यक् मपास्य मेदिनीम् ।

पिनातवतया शस्तो हित्वा प्राग्वनगतः ।

(तपश्चरणशक्ताः हिमिह चोर्वाश्रमे स्थिताः) ॥२१॥

जिनके यज्ञ में समस्त सभा भवन एवं प्रासाद स्वर्णमय बनाये गये थे,
इन्द्र सोमपान करके और ब्राह्मण दक्षिणा को प्राप्त करके मस्त हो उठे थे, सब
प्रधान देवताओं ने ब्राह्मणों को घेर रखा था, उन मस्त के समान यज्ञ करते
याना कोई पुरुष पृथिवी पर उत्पन्न नहीं हुआ ॥१५-१६॥ ब्राह्मणों ने जितनी
रत्नमय गृह और स्वर्ण राशि उन मस्त के यज्ञ में प्राप्त की थी उनकी प्रशंसा
रिग्वेद यज्ञ में की ? उनकी के समय में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों वर्णों स्वर्ण-
मय भवन आदि को पा न सके थे, उनकी अनिरिक्त ऐसा दान और जिस पुरुष ने

किया है ? ॥१८॥ उनके धन को प्राप्त कर जो मनुष्य पूर्ण काम हुए, उन्होंने भी अपने द्वारा समस्त वस्तुओं का सम्पादन किया था) हे मुनिवर ! उनके इस प्रकार के श्रेष्ठ राज्य शासन, एवं प्रजा पालन काल में एक दिन एक तपस्वी उनके पास आकर बोला ॥१९॥ हे राजन् ! तुम्हारे पितामही ने तापस मंडली को पदोन्मत्त सर्पों के विष से पीड़ित होता हुआ देखा और यह संदेश भेजा है ॥२०॥ तुम्हारे पितामह भले प्रकार से पृथिवी का पालन करने के कारण स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं और तुम्हारे पिता ने भी धन का आश्रय लिया है (मैं भी तप में प्राप्त होकर और्वाश्रम में स्थित हूँ) ॥२१॥

साऽहंप्रयामिचैकल्यंतवराज्यप्रशासतः ।

पितामहस्यतेनाभूच्चत्पूर्वेषांचतेनृप ॥२२

नूनंप्रमत्तोभोगेषुसक्तोवाऽतिजितेन्द्रियः ।

चारान्धतायतोस्तीयंदुष्टादुष्टंनवेत्सियत् ॥२३

पातालादभ्युपेतेस्तुभुजयंदशक्षालिभिः ।

दष्टामुनिसुताःसप्तदूषिताश्रजलाशयाः ॥२४

स्वेदमूत्रपुरीषेणदूषितंसुभृतंहविः ।

अपराधंसमुद्दिश्यदत्तोनागबलिश्चिरात् ॥२५

एतैसमयामुनयोभस्मीकर्तुंभुजंगमान् ।

किन्त्वेषानाधिकारोऽत्रत्वमेवात्राधिकारवान् ॥२६

सावत्सुखंभूपतिर्भोगजप्राप्यतेनृप ।

अभिषेकजलयावन्नमूर्च्छिन्विनिपात्यते ॥२७

हे राजन् ! जो घटनाएँ तुम्हारे अन्धान्य पूर्व पुरुषों के शासन काल में घटीं, उन्हें तुम्हारे शासन काल में घटती हुई देख रहा हूँ ॥२२॥ तुम या तो प्रमत्त हो अथवा अजितेन्द्रिय रहकर भोगों के प्रति अनुरक्त हुए हो, तुम दूतों को न रखने के कारण अन्ध-बुरी घटनाओं को जानने में समर्थ नहीं हो ॥२३॥ दंशनशील नागों ने पाताल से आकर सात मुनि कुमारों को डस लिया है तथा स्वेद, मूत्र और पुरीष से सब जलाशय और यज्ञ-हवि को दूषित कर दिया है, इसलिये अपराध हुआ जानकर मुनिगण सर्पों को बलि दे रहे हैं ॥२४-२५॥

यद्यपि यह श्रुतिगण सभी को स्वयं ही भस्म कर सकते हैं, परन्तु उस कार्य के लुप्ती अधिकारी हो ॥२६॥ हे राजन् ! राजपुत्रों को भोग जनित सुख के भोगते वा व्यवहार सभी तक है, जब तक उनके शीश पर अश्रुके का जल नहीं मोंवा जाता ॥२७॥

यानिमित्राणिकशत्रुर्ममज्ञात्रोवसकियत् ।

— — — — —

— — — — —) ।

विरक्तोवापरंभिन्नपरेषामपिकीदृश ।

कम्यममनरेविषयेवाजनोमम ॥२८॥

यमं कर्माश्रयोभूढ कस्यपि वसंते ।

योदण्डयपरिपात्य ककेषोपेक्ष्यानरामया ॥२९॥

सामभेदतयादम्यादेककालमवेक्षता ।

सामश्चचारयेदम्यैरजाताभूवतिअरं ॥३०॥

राधियादिपुमर्बपुचरान्दद्यान्महीपतिः ।

इत्यादीभूपतिः त्यक्तमस्यासक्तमानसः ॥३१॥

नयेद्दिनतयागतिनतुभोगपरायणः ।

राजाशरीरग्रहणभोगायमहीपते ॥३२॥

मित्र कौन है ? शत्रु कौन है ? शत्रु के पास कितनी शक्ति है ? कौन सभी जैता है ? कौन राजा अपने पक्ष का है ? ॥२८॥ (मेरे पास कितना शक्ति है ? कितनी शक्ति है ? कौन मुझसे प्रीति करता है ?) शत्रु के द्वारा भेद को बिगाने या लिये है ? कौन शत्रु किस प्रकार का है ? अपने नगर प्रथवा राज्य में धर्म-धर्म का प्राथम्य मेरे वाता कौन है ? ॥२९॥ कौन मुझे रहता है ? कौन दहती है ? कौन जानगी और कौन उपेक्षणीय है ? ॥३०॥ छिद्र भेद के मय मे जिसके प्रति दृष्टि रखनी चाहिये ? इस सखना ज्ञान करने के निवे दून के प्राग्विक पुत्रचर को नियुक्त करना उचित है ॥३१॥ सब मन्त्रियों पर दृष्टि रखने व निवे भी दून की नियुक्ति करे, इस प्रकार राज्य-काज के प्रति राजा को दक्षिण होना चाहिए ॥३२॥ इसी मे दिन-राति व्यतीत करे और

भोग-परायण न हो, हे राजन् ! राजाओं का जन्म भोग के लिये नहीं होता है ३३

क्लेशायमहतेपृथ्वीस्वधर्मपरिपालने ।
सम्यक्पालयतःपृथ्वीस्वधर्मचमहीपतेः ॥३४॥
इहक्लेशोमहान्स्वर्गोपरमंसुखमक्षयम् ।
तदेतदबबुध्यस्वहित्वाभोगान्नरेश्वर ॥३५॥
पालनायक्षितेक्लेशमङ्गोक्तुंमिहार्हसि ।
इतिवृत्तमृषीणांयद्वधसनंत्वयिशासति ॥३६॥
भुजङ्गहेतुकंभूषचारान्धोनापिवेत्सितत् ।
बहुनात्रकिमुक्तेनदुष्टेदण्डोत्तिपात्यताम् ॥३७॥
शिष्टान्पालयराजस्त्वंधर्मवड्भागमाप्स्यसि ।
अरक्षणपारमखिलदुष्टेरविनयात्कृतम् ॥३८॥
समवाप्स्यस्यसन्दिग्धयदिच्छसिकुरुष्वतत् ।
एतन्मयोक्तंसकलयत्तवाहंपितामही ।
कुरुष्वेवंस्थितेयत्तरोचतेवसुधाधिप ॥३९॥

पृथिवी का पालन और अपने धर्म का पालन करने के लिये उन्हें तो महाकष्ट ही भोगने होते हैं, उन्हें अपने धर्म और पृथिवी के पालन से ॥३४॥ इस जन्म में अत्यन्त क्लेश भोग लेने पर परलोक में उन्हें अक्षय सुख की प्राप्ति होती है, हे राजन् ! इस पर विचार करके और भोग का परित्याग करके ॥३५॥ तुम्हें पृथिवी का पालन करने के लिये क्लेश को अंगीकार करना चाहिये, तुम्हारे शासनकाल में श्रवियों को सपों से जो भय उपस्थित हुआ है ॥३६॥ उस भय को दूतों के न होने के कारण ही जानने में समर्थ नहीं हुए, हे राजन् ! तुम दुष्टों को दंडित करो ॥३७॥ और शिष्टजनों का पालन करो, इससे धर्म के प्रष्ट भाग की प्राप्ति होगी, दुष्करण जिस उद्दण्डता को करते हैं, उससे सज्जनों की रक्षा न करोगे तो ॥३८॥ तुम अवश्य ही पाप के भागी होगे, अब जो कर्तव्य समझो, बह करो, हे राजन् ! मैं तुम्हारी पितामही हूँ, इसीलिये ऐसा कहा है, अब तुम्हें जो उचित प्रतीत हो, वही करो ॥३९॥

११७ — मरुत चरित्र (३)

इतितापसवाक्यसमृत्त्वालज्जापरोनृपः ।
 पिङ्माचारान्धमित्युक्तत्वानि श्रस्यजगृहेधनुः ॥१॥
 ततः सत्वरितगत्वाखत्वीर्वस्याथमप्रति ।
 दधन्देशिरसावीरामातरपितुरात्मनः ॥२॥
 तापसाश्चययान्यायतश्चाशीमिरमिष्टुत ।
 दृष्ट्वाचतापसान्सप्तनागैर्दष्टान्मृतान्भुवि ॥३॥
 निनिन्दात्मानमसकृत्पुरस्तेषामहीषति ।
 उवाचचैनदद्याहमद्वीप्यमवमन्यताम् ॥४॥
 यत्करोमिभुजङ्गानादुष्टानाग्राहणद्विषाम् ।
 तत्पश्यतुजगत्सर्वसदेवासुरमानुषम् ॥५॥
 इत्युक्त्वाजगृहेवोशदस्त्रसवर्तनृप ।
 नाशायशेषनाशानापातालीर्बोधिचारिणाम् ॥६॥
 ततो जज्वात्सहस्रानागलोकः समन्ततः ।
 महास्त्रतैजसाविप्रदह्यमानो निवारितः ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—तापस की बात सुनकर राजा सन्निवृत्त हुए और
 'मुझ माचारान्ध को विचार है' ऐसा कहते हुए हाथ में धनुष उठाया ॥१॥
 और धारणा की प्रतीतिपूर्वक बोधायन से जाकर नतमस्तक हो अपनी पितामही
 बीरा ॥२॥ और तपस्वियों की प्रणाम किया, उन्होंने भी राजा को धार्मिक
 दिष्टि, फिर राजा ने मर्षणा से भरे हुए सात तपस्वियों की पृथिवी में पड़े देना
 ॥३॥ राजा ने मुनियों के समस्त बारम्बार अपनी निन्दा की और बोले—यह
 दुष्ट नाग मेरे बल के निरस्कार पूर्वक ॥४॥ ग्राहणों से द्वेष करते हैं, इमलिये
 धन में उनकी जो दत्ता करता है, उसका देवता, दत्त और सम्पूर्ण विश्व धन-
 सोत्तन करे ॥५॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—ऐसा बहुराज राजा ने पातास और
 पृथिवी ने रहने वाले सब नागों की नष्ट करने के उद्देश्य से सर्वत्र आत्म को

हाथ में उठाया ॥६॥ उस समय उस महा अस्त्र के तेज से समस्त नागलोक प्रकाशमान हो उठा और भस्म होने लगा ॥७॥

हाहातातेतिहामातहाहावत्सेतिसंभ्रमे ।
तस्मिन्नस्त्रकृतेवाचं पन्नगानामथाभवन् ॥८॥
केचिज्ज्वलद्भिः पुच्छाग्रैः फणैरन्येभुजङ्गमाः ।
गृहीतपुत्रदाराश्चत्यक्ताभरणवाससः ॥९॥
पातालमुत्सृज्यययुः शरणांभामिनीं तदा ।
मरुतमातरं पूर्वययादत्तं तदा भयम् ॥१०॥
तामुपेत्योरगा सर्वे संप्रभारं भयातुराः ।
सगद्गदमिदमोचुः स्मर्यतां नः पुरोदितम् ॥११॥
प्रणम्याभ्यर्थात् पूर्वयदस्माभीरसातले ।
तस्य काऽलोज्यमाया तस्त्राहिवीरप्रजायिनि ॥१२॥
पुत्रो निवार्यतां राज्ञि प्राणैः संयोज्यमस्तु नः ।
दह्यते सकल लोको नागानामस्त्रवह्निना ॥१३॥
एवं सदह्यमानानामस्माकं तनयेन ते ।
त्वामृते शरणं नान्यत्कृपां कुर्यशस्विनि ॥१४॥

इस अस्त्र के भय से भीत हुए नागगण माता, तात, वत्स आदि पुकारते हुए चीत्कार करने लगे ॥८॥ किसी की पूछ और किसी का फण दग्ध होने लगा, किसी ने वस्त्राभरणों को परित्याग कर स्त्री पुत्र सहित ॥९॥ पाताल-लोक को छोड़ राजा मरुत की माता भामिनी की शरण ग्रहण की, क्योंकि उसने इनको कभी अभय दान दिया था ॥१०॥ सभी नाम उसके समक्ष उपस्थित होकर गद्गद वचनों से कहने लगे—आप रसातल में हमारे द्वारा की हुई प्रार्थना का स्मरण करिये, उसके निर्वाह का यही समय है, आप हमारी रक्षा करिये ॥११-१२॥ हे राजमाता ! अपने पुत्र को रोक कर हमारे प्राणों की रक्षा करिये, समस्त नागलोक उनके अश्रुओं से उत्पन्न अग्नि से भस्म हुआ जाता है ॥१३॥ हे यशस्विनी ! आपका पुत्र इस विधि से हमें जलाता है, इस-

निए आपने अनि-रिक्त धन्य किसी की शरण हम नहीं ले सकते, आप हम पर दया करे ॥१४॥

इतिश्रुत्वावचस्तेपासुस्मृत्यादीनभाषितम् ।
 भर्तारमाहमासाध्वीसमभ्रममिदवच ॥१५॥
 पूर्वमेवतवाख्यातपातालेयद्भुजङ्गमम् ।
 प्रोक्तमभ्यसंनपूर्वममासीत्तनयप्रति ॥१६॥
 तदमेऽभ्यागताभीतादह्यन्तेतस्यतेजसा ।
 मामेतेदारणपूर्वदत्तमेभ्योमयाभयम् ॥१७॥
 येमादारणमापन्नास्तेत्वादारणमागता ।
 अपृथग्धर्मचरणपाप्माहशरणतव ॥१८॥
 तन्निवारयपुत्रत्वमरुत वचनात्तव ।
 मयाचाम्ययितोऽवश्यशममभ्युपयास्यति ॥१९॥
 महापराधेनियतमरुत क्रोधमागत ।
 दुर्निवर्तयमहमन्येतस्यत्रोधसुतस्यते ॥२०॥

मार्कण्डेयजी न कहा—तपों के कष्टणापूर्ण वचन सुन कर उठा साध्वी स्त्री की तपों की दिशा अपना अभय वचन स्मरण हो आया तो वह सधन-सहिन अपने स्वामी से जाती ॥१५॥ यानिजी न कहा—‘‘तानाम न्यत सपण्णो ने विनय-पूर्वक जो कुछ मेरे पुत्र के सम्बन्ध में कहा वह पूर्व ही मैंने मागते वर्णन किया ॥१६॥ वही मरगण इस काल मेरे पुत्र के तेज के कारण दाय हुए जाते हैं मैंने पहले ही इन्हें समय-वर दिया था इतलिए भयभीत होकर वे मेरी शरण में आये हैं ॥१७॥ जो मेरी शरण में आये हैं, वे आपके भी शरणागत हैं क्योंकि अब धर्मावरण के कारण मैं अपनी शरणागत हुई हूँ ॥१८॥ इसलिए आप पुत्र मरुत को रोहिये । आपके आदेश और मेरे धारण से वह निर्दिष्ट हो जाना हो जायगा ॥१९॥ धवीक्षित बोले—‘‘इनकी सर्व धरणी प्रकृति के कारणवश ही मरुत कीधन हुआ है इस कारण तुम्हारे पुत्र का शेष सम्पत्ति से प्राप्त हो जायगा, ऐसा प्रतीत नहीं होगा ॥२०॥

शरणागतास्तववयंप्रसादक्रियतानृप ।
 क्षत्रस्यार्तपरित्राणनिमित्तशस्त्रधारणम् ॥२१॥
 नागानांतद्वचःश्रुत्वाभूतानांशरणांषिणाम् ।
 तयाचाभ्यर्चितःपत्न्याप्राहावीक्षिन्महायशः ॥२२॥
 गत्वाद्रवीमितंभद्रेतनयंत्वरयातव ।
 परित्राणायनागानांनत्याज्याःशरणागताः ॥२३॥
 नोपसंहरतेसोस्त्रंयदिमद्वचनानृपः ।
 तदास्त्रैर्वारयिष्यामितस्यास्त्रंतनयस्यते ॥२४॥
 ततोऽगृहीत्वासधनुरविक्षिप्तत्रियोत्तमः ।
 भार्यायासहितःप्रायात्त्वरवान्भार्गवाश्रमम् ॥२५॥

सर्प बोले—हे राजा ! हम आपके शरणागत है, आप हम पर कृपा
 करिये, क्षत्रिय मनुष्य सदैव वसित मनुष्यों की रक्षार्थ ही अस्त्र ग्रहण करते हैं
 ॥२१॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—यक्षम्बी अवीक्षित ने पत्नी का निवेदन और
 शरण में आये सर्वों के वचन सुनकर कहा—॥२२॥ हे भद्रे ! मैं तुरन्त ही
 तुम्हारे पुत्र मरुत के निकट जाकर नागों की रक्षा हेतु, उससे कहता हूँ, शरण
 में आये को शरण न देना कभी उचित नहीं है ॥२३॥ यदि तुम्हारा पुत्र राजा
 मरुत मेरे कहने पर ही अस्त्र त्याग नहीं करेगा तो मैं उसके विरुद्ध अस्त्र का
 प्रयोग करूँगा ॥२४॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इसके पश्चात् नरश्रेष्ठ अवीक्षित
 धनुष धारण करके भार्या को संग लेकर भार्गवाश्रम गये ॥२५॥

११८—मरुत चरित्र (४)

सनुतत्रमुतंहृष्टागृहीतवरकामुकम् ।
 धनुःशस्त्रंचतस्योग्रज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥१॥
 उद्गिरन्तमहाबह्विदीपिताखिलभूतलम् ।
 पातालान्तर्गतंप्राप्तममहाघोरभीषणम् ॥२॥

सतदृष्ट्यामहीपालभृनुटीनुटिलाननम् ।
 माक्रुधस्त्वमरुत्तास्यमुपसह्लियतामिति ॥३॥
 प्राहासदृच्चानुलुप्तवणक्कममुदाग्धी ।
 सनिशम्यगुरार्वाक्यदृष्टातचपुन पुन ॥४॥
 गृहीतकामुं व पित्रो प्रणिपत्यसगौरवम् ।
 प्रत्युवाचापराद्धामेसुभृत्तपन्नगा पिता ॥५॥
 शासतोमामयिमहीपरिभूयबलमम ।
 समाश्रममुपागम्यदष्टामुनिकुमारका ॥६॥
 श्रयोणामाश्रमस्थानाममीषामवनीपते ।
 मयिशासतिदुर्वृत्तदूषितानिहवीपिच ॥७॥

मानण्डय जी ने कहा—प्रवीक्षित ने वहाँ आकर देखा कि मरुत धनुष
 पर गहन चढ़ाये हुए हैं जिस की तीव्र ज्वाला से समस्त दिग्गमएकत्र प्रकाशित
 है ॥१॥ उस उग्र दस्त में से तीव्र अग्नि उत्पन्न होकर पृथ्वी को प्रदीप्त कर
 रही है जो कि अत्यन्त भीषण व अपहनीय है एवं पाताल तक पहुँच रही
 है ॥२॥ यह देख कर विमहीप मरुत की मुखावृत्ति व भ्रुकुटि कुटिल हैं तो
 व वाते—हे मरुत ! अत्य त्याग दो और क्रोध समाप्त करो ॥३॥ बार बार
 इन प्रकार कह कर जब चुप हो गये तो उस बुद्धिमान् मरुत ने उनकी ओर
 दल कर ॥४॥ पिता व माता दोनों को प्रणाम सहित आदर पूर्वक बोला—
 हे पिता ! यह सपणल मेरे भार अपराधी हैं ॥५॥ मेरे वराक्रम की अवहेलना
 करके इन्होंने मेरे राज्य काल में आश्रम में आकर पात मुनिकुमारों को काटा
 है ॥६॥ एवं हे महाराज ! मेरे राज्य काल में इन दुर्वृत्ति मार्गों ने इन सम्पूर्ण
 आश्रम निवासियों के हृदि अनेक शर्मों को दूषित कर डाला है ॥७॥

जलाशयास्तयाप्यने सर्वेएवहिदूषिता ।

मदत्तारणविक्षिप्तवत्तव्यत्वयापित ।

ननिवारयिनव्याऽहृद्ब्रह्मघ्नान्प्रतिपन्नान् ॥८॥

मघेभिर्निह्नाविप्रापास्यन्तिनरकमृता ।

ममेतत्क्रियतावापयविरमास्त्रप्रयागत ॥९॥

नाहमेषांक्षमिष्यामिदुष्टानामपराधिनाम् ।

अहमेवगमिष्यामिनरकंयदिपापिनाम् ।

ननिग्रहेयताम्येषांमांनिवारयमापितः ॥१०॥

मामेतेशरणांप्राप्ताःपन्नगाभमगीवात् ।

उपसंह्रियतामश्चमलंकोपेनतेनृप ॥११॥

नाहमेषांक्षमिष्यामिदुष्टानामपराधिनाम् ।

स्वधर्ममुल्लंघ्यकथंकरिष्यामिवचस्तव ॥१२॥

दण्डघेनिपातयन्दण्डभूपःक्षिष्टांश्चपालयन् ।

पुण्यलोकानवाप्नोतिनरकाश्चाप्युपेक्षणात् ॥१३॥

इसलिए आप इन सर्पगणों के विषय में कुछ भी न कहें और ब्रह्म-
हत्यारेतगों के संहार-कार्य से मुझे न रोके ॥१०॥ अभीक्षित बोले—यदि
उन्होंने ब्रह्म-हत्या की है तो मरने के पश्चात् नरक को जायेंगे किन्तु तुम 'अस्त्र'
का प्रयोग न करके मेरे वचन की रक्षा करो ॥११॥ मरुत बोले—यदि इन
पापियों पर नियन्त्रण का यत्न छोड़ दूँ तो मुझे ही नर्क की प्राप्ति होगी, इस-
लिए हे पिता जी आप मुझे उनके संहार से मत रोकिये, मैं इन दुष्टों को क्षमा
सही करना चाहता ॥१०॥ अभीक्षित बोले—यह नाम मेरी शरण को प्राप्त
हुए हैं, इसलिए मेरे शीरव की रक्षा के निमित्त क्रोध छोड़ कर अस्त्र त्याग दो
॥११॥ मरुत बोले—इन दुष्टों को मैं क्षमा करके अपने धर्म का उल्लंघन कैसे
करूँ और आपके वचन को कैसे निभाऊँ ॥१२॥ दंड योग्य जीवों क दंड
देकर और शिष्ट पुरुषों का पालन करके ही राजा पुरुष लोक को प्राप्त होते हैं
अन्यथा उन्हें नर्क की प्राप्ति होती है ॥१३॥

एवंसबहुशःपित्राचार्य्यभारणोम्बयासह ।

नोपसंहरतेसोऽस्त्रंततोऽसौपुनरब्रवीत् ॥१४॥

हिंससेपन्नगान्भीतान्ममैताञ्छरणागतान् ।

वार्यभारणोऽपतस्मात्तेकरिष्यामिप्रतिक्रियाम् ॥१५॥

मयाप्यस्त्राण्यवाप्तानिनत्वमेकऽस्त्रविद्भुवि ।

ममाग्रतःसुदुर्बलपीरुवचकियत्तव ॥१६॥

तत कामुं कमारोप्यकोपताप्रविलोचनः ।
 अविक्षिदस्त्रजग्राहकालस्यमुनिपुङ्गवः ॥१७॥
 ततोज्वालापरीवारभनिसघघ्नमुत्तमम् ।
 कालास्त्रमुमहावीर्ययोजयामासकामुंके ॥१८॥
 ततःपुक्षांभजगतीसवर्त्तस्त्रप्रतापिता ।
 साविधर्शलाऽखिलाविप्रकालस्यास्त्रेसमुद्यते ॥१९॥
 कालास्त्रमुद्यतपिशामरुत सोऽपिबीक्ष्यतत् ।
 प्राहोह्वंरस्त्रमेतन्मेदुष्टश्चास्ति सभुद्यतम् ॥२०॥
 नावद्वधायकालास्त्रमपिमु चतकिमवान् ।
 स्वघमंचारिणिसुतेसदेवाज्ञाकरेतय ॥२१॥

मार्कण्डेय भी ने कहा—पिता के द्वारा बारम्बार निषेध दिये जाने पर भी मरुत ने जब अस्त्र का परित्याग नहीं किया तब अवीक्षित ने उनसे पुनः कहा ॥१४॥ ये नाग भयभीत होकर मेरी वारण को प्राप्त हुए मेरे द्वारा निवारण दिये जाने पर भी गुप्त हतभी हिमा ने प्रवृत्त हो, इसलिए मैं इसका प्रतिहार करूँगा ॥१५॥ पृथ्वी पर एकमात्र तुम्हीं अस्त्र बिताता नहीं हो, मैंने भी घनेक अस्त्र प्राप्त किये हैं, मेरे सामने तुम्हारा पीरूप नगण्य है ॥१६॥ हे मुनिर्षेण ! अवीक्षित ने ऐसा कह कर क्रोध से साज्जवर्ण नेत्र कर धनुष उठा कर कालास्त्र ग्रहण किया ॥१७॥ ज्वाला से परिपूर्ण धनुषों के नाद्य करने वाला वह अश्व कालास्त्र धनुष पर बढाया ॥१८॥ हे ब्रह्मा ! मरुत के सवर्षा-कास्त्र से तात हुए पर्वत एक समुद्र से युक्त सम्पूर्ण विश्व कालास्त्र के संपान से क्षोभ को प्राप्त हुआ ॥१९॥ मरुत भी धनुष पर बढाये हुए उन कालास्त्र को देख कर उच्च स्वर में बोले—मेरा सबर्त्तकास्त्र दुर्षों का शमन करने के लिए तैयार हुआ है ॥२०॥ वह आणके हतन के लिए नहीं है, तो फिर सदा सरपथ का आश्रय लेने वाले भीरु शरणी आज्ञा-यामन से सत्पर रहते वाले पुत्र के प्रति आप इस कालास्त्र को क्यों छोड़ते हैं ॥२१॥

मयाकार्यमहाभागप्रजानापरिपालनम् ।

स्वमेवक्रियनेष्टस्मान्मद्वधायस्त्रमुद्यतम् ॥२२॥

शरणागतसंत्राणंकतुर्व्यवसितावयम् ।
 तस्यव्याधातकर्त्तात्वंनमेजीवन्विमोक्ष्यसे ॥२३॥
 मांवाहत्वास्त्रवीर्येणजहिदुष्टानिहोरगान् ।
 त्वांवाहत्वाऽहमस्त्रेणारक्षिष्यामिमहोरगान् ॥२४॥
 धिक्तस्यजीवितंपुंसःशरणाग्निनमागतम् ।
 योनार्तमनुगृह्णसिर्वेरिपक्षमपिध्रुवम् ॥२५॥
 क्षत्रियोऽहमिमेभीताःशरणंमामुपगताः ।
 अपकर्त्तत्विमेवेषांकथंवध्योर्नमेभवान् ॥२६॥
 मित्रंवाबान्धवोवाऽपिपितावायदिवागुरुः ।
 प्रजापालनविघ्नायंयोहन्तव्यःसभूभृता ॥२७॥
 सोऽहन्तेप्रहरिष्यामिनक्रोद्धव्यंत्वयापितः ।
 स्वधर्मःपरिपाल्योमेनास्तिक्रोधस्तवोपरि ॥२८॥

हे महाभाग ! प्रजा-पालन ही मेरा धर्म कर्त्तव्य है, फिर आप मेरे
 संहार के लिए इस प्रकार के अस्त्र को क्यों प्रयुक्त करते हैं ॥२२॥ अवीक्षित
 बोले—मैंने शरणागतों की रक्षा का दृढ़-निश्चय किया है, तुम उस कार्य में
 विघ्न उपस्थित करते हो इसलिए तुम मेरे जीवित रहते रक्षा नहीं प्राप्त कर
 सकते ॥२३॥ इस काल या तो तुम्हीं मुझे अस्त्र-बल से मार-कर दुष्ट नागों
 को मार डालो या मैं ही अस्त्र की सहायता से तुम्हारा वध करके इन सपों
 की रक्षा करूँगा ॥२४॥ जो शत्रु-पक्ष के मनुष्य भी आते होकर शरण ग्रहण
 करें उनकी रक्षा न करने वाले पुरुष के जीवन को धिक्कार है ॥२५॥ मैं
 क्षत्रिय हूँ, भयभीत होकर मेरी शरण में आये हैं और तुम्हीं इनका अपकार
 करते हो, इसलिये तुम मेरे द्वारा मारे जाने योग्य क्यों नहीं हो ॥२६॥ मरुत
 बोले—मित्र, बन्धु, पिता अथवा गुरु भी यदि प्रजा के पालन में विघ्न उपस्थित
 करे तो राजा के द्वारा वध किये जाने के योग्य है ॥२७॥ इसलिए हे पिता !
 मैं आप पर जो प्रहार करूँ, उससे आप क्रोधित न हों, मैं अपने धर्म के पालन
 के लिये ही ऐसा करने को उत्तर हुआ हूँ । यह मेरा क्रोध आपके प्रति
 नहीं है ॥२८॥

तनस्तो नश्चितां दृष्ट्वा परस्परवधप्रति ।
 ममूत्तरत्यान्तरे तस्थुमुं नमो मार्गवादन्य ॥२६॥
 ऊर्ध्वं नमो तत्तव्यत्वयास्त्र पितरप्रति ।
 त्वया च नायहन्तव्य पुत्र प्रख्यातचेष्टित ॥२७॥
 मया दुष्टानि हन्तव्या मन्तोरव्यामहीक्षिता ।
 इमे च दुष्टा भुजगा कोपराधोऽश्रमे द्विजा ॥२८॥
 क्षरणागतमन्त्राणामयाकार्यमयश्च मे ।
 अपराध्यः सुतो विप्रायो हन्ति क्षरणागतान् ॥२९॥
 इमे वदन्ति भुजगास्त्रामलोलविलोचनाः ।
 स जीव्यामस्तान् विप्राभ्येदष्टादुष्टपन्नगैः ॥३०॥
 तदलविग्रहेणो मोराजययौ प्रसीदताम् ।
 उभापि निर्व्यूढप्रतिज्ञे घर्मयोयिदौ ॥३१॥
 मातुर्बीरामममेत्यपुत्रमेतदभाषत ।
 मद्भाषादेपते पुत्रो हन्तु नागाभृतोद्यमः ॥३२॥
 तन्निष्पन्नयद्वा विप्रास्ते जीवन्ति तथामृता ।
 स जीवन्तश्चामुच्यन्ते यद्युत्तमच्छरणा गताः ॥३३॥

मार्कण्डेय जी ने कहा—उन दोनों को परस्पर सहार करने में प्रवृत्त देख कर मार्गवादि मुनि शीघ्र आकर दोनों के मध्य छेडे हो गये ॥२६॥ और मदन ने कहा—पिता व ऊपर मरन जलाना किसी प्रकार भी उचित नहीं है और अशिक्षित से कहा कि आपको भी इस थोड़े कर्मा पुत्र को नष्ट करना अनुचित है ॥२७॥ मदन बोले—हे द्विजो ! मैं राजा हूँ, दुष्टों का वध करना और शिष्ट जनों का पालन करना मेरा परम कर्तव्य है । ये नाग भी दुष्ट हैं, इसलिये इनके विषय में मेरा क्या अपराध है ॥२८॥ अशिक्षित बोले—हे विप्रो ! क्षरणागतों की रक्षा करना मैं अपना कर्तव्य मानता हूँ, जो पुत्र मेरे क्षरणागतों का वध करने को तत्पर है, वह मेरा अपराधी है ॥२९॥ श्रुति बोले—मय में जबल नेत्र हुए भुजगो ने कहा कि जिन आह्वानों को दुष्ट नागों ने इन लिया है, हम उनकी जीवित कर रहे हैं ॥३०॥ इसलिये अब मुझ को

आवश्यकता नहीं रह गई, आप दोनों ही राज-श्रेष्ठ, धर्मज्ञानी और प्रतिज्ञा-पालक हैं, आप प्रसन्न हों ॥३४॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तभी वीरा ने आकर अपने पुत्र अवीक्षित से कहा कि मेरे कहने से ही तुम्हारा पुत्र सपों को नष्ट करने में तत्पर हुआ था ॥३५॥ और अब जब ये मृतक ब्राह्मण जीवित हो रहे हैं, तब उसका कार्य भी सम्पन्न हो गया और तुम्हारे ये शरणागत भी मुक्त हो गये ॥३५॥

सहमस्यथितापूर्वमेभिःपातालसंश्रयैः ।
तन्निमित्तमयंभर्तामियात्रविनियोजितः ॥३७॥
तदेतदार्येनिवृत्तमुभयोरपिशोभनम् ।
ममभर्तुश्चपुत्रस्यत्वत्पौत्रस्यात् जस्यच ॥३८॥
ततःसंजीवयामासुस्तान्विप्रांस्तेभुजङ्गमाः ।
विध्यैरोषधिजातैश्चविषसंहरणेनच ॥३९॥
पित्रौर्ननामचरणीसततोजगतीपतिः ।
मरुतश्चसतंप्रीत्यापरिष्वज्येदमब्रवीत् ॥४०॥
मानहाभवशङ्कणांचिरंपालयमेदिनीम् ।
पुत्रपौत्रैश्चमोदस्वमाचतेसन्तुविद्विषः ॥४१॥
ततोद्विजैरनुज्ञातीवीरयाचनरेश्वरी ।
समारूढौरथंसाचभामिनीस्वपुरङ्गता ॥४२॥

भामिनी बोली—पाताल में रहने वाले इन सभी सपों ने पहले मुझ से अभय-याचना की थी, इसीलिए मैंने अपने स्वामी से तद्-विषयक अनुरोध किया था ॥३७॥ इस समय मेरे स्वामी और पुत्र बधवा तुम्हारे पुत्र और पौत्र का यह श्रेष्ठ रीति से पूर्ण हुआ है ॥३८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—फिर सपों ने उन मरे हुए ब्राह्मणों का विष दिव्य औषधियों के द्वारा दूर करके उन्हें जीवित कर दिया ॥३९॥ फिर राजा मरुत ने भी माता पिता के चरणों में प्रणाम किया और अवीक्षित ने भी मरुत को आलिंगन करके प्रीति-पूर्वक यह आशीर्वाद दिया ॥४०॥ अब मुझे के मान-भंजक होओ, पृथ्वी का सदा

पानन करो, पुत्र-पौत्र सहित सुख-पूर्वक समय व्यतीत करो, तुम्हारे पत्र नष्ट हो ॥४१॥ फिर ब्राह्मणों और वीरों की आज्ञा प्राप्त कर दोनों राजा और भामिनी ग्याहूद होकर अपने नगर को चले गये ॥४२॥

वीराऽपिकृतवानुमहत्तपोधर्मभृतावरा ।

भर्तुं सलोकताप्राप्तमहाभागपतिव्रता ॥४३॥

महत्तोऽपिचकारोव्याधर्मतपरिषामनम् ।

विनिजितारिपङ्क्तगोभोगाश्चबुभुजेनृप ॥४४॥

तस्यपत्नीमहाभागविदर्भतनयातथा ।

प्रभावतीसुवीरस्यसौवीरीचामवत्सुता ॥४५॥

सुकेशीकेतुवीर्यस्यमागधस्यात्मजाऽभवत् ।

सुतावसिन्धुवीर्यस्यमद्रराजस्यकेकयी ॥४६॥

केरयस्यचमन्धीसिन्धुभर्तुं वंपुष्मती ।

चेदिराजसुतानामद्भ्याप्यतिम्यमुशोमना ॥४७॥

तासापुत्रास्तस्यवामन्भूतोऽष्टादशद्विज ।

तेषाप्रधानीज्येष्ठश्चनरिष्यत सुतोऽभवत् ॥४८॥

एवदीर्योमरुतोऽभून्महाराजामहाबल ।

तस्याप्रतिहतचक्रमामोददीपेषुसमम् ॥४९॥

यस्यतुल्योऽपरोगाजानभूतो न भविष्यति ।

मर्यविक्रमयुक्तस्यरार्धरमितोजसः ॥५०॥

तस्यैतच्चरितश्रुत्वामरुतस्यमहात्मनः ।

जन्मचाग्र्यद्विजय्येष्टमुच्यतेसर्वकिल्बिषैः ॥५१॥

फिर धार्मिक-श्रेष्ठ परम भाग्यवती पतिव्रता वीरा देवी और तपस्वी का आचरण करके अपने स्वामी के मानोदय को प्राप्त हुई ॥४३॥ राजा मग्न ने भी छहों पत्र-पुत्रों पर विजय प्राप्त करके धर्मपूर्वक पृथ्वी का पानन और विभिन्न प्रकार के सुख-भोग किये ॥४४॥ विदर्भसुता प्रभावती तथा सुवीर की की पुत्री मौवीरी, मण्डेश्वर केतु-वीर्य की पुत्री सुवेदा, मद्रराज सिन्धुवीर्य की पुत्री केकयी, सिन्धुनरेश की पुत्री संधी, चेदिराज की पुत्री वपुष्मती, ये

सुन्दर स्वरूप वाली ललनाएँ उनकी पत्नियाँ थीं ॥४५-४६-४७॥ हे ब्रह्मन् ! इन सब पत्नियों के गर्भ से अठारह पुत्र जन्मे थे जिनमें नरिष्यन्त नामक पुत्र ही सबसे बड़ा था ॥४८॥ महा पराक्रमी राजा मरुत ऐसे वीर्यवान् थे, सप्त-द्वीपों में उनका रथ-चक्र कहीं नहीं रुकता था ॥४९॥ महाबली, विक्रम सम्पन्न एवं शक्ति तेज वाले इन राजर्षि के समान अन्य कोई राजा उत्पन्न नहीं हुआ और न कोई भविष्य में होगा ॥५०॥ हे द्विजवर ! उन महात्मा मरुत का यह चरित्र सुनने से सभी पापों से मुक्ति और मरणोपरान्त श्रेष्ठ जन्म की प्राप्ति होती है ॥५१॥

११६—नरिष्यन्त चरित्र

मरुतचरितंकृतस्नंभगवान्कथितंत्वया ।
तत्संततिमशेषेणश्रोतुमिच्छाप्रवर्तते ॥१॥
तत्संततीक्ष्णीतीशायेराज्यार्हावीर्यशालिनः ।
तानहंश्रोतुमिच्छामित्वयाख्यातामहामुने ॥२॥
नरिष्यन्तइतिख्यातोमरुतस्याभवत्सुतः ।
अष्टादशानांपुत्राणांसज्येष्ठःश्रेष्ठएवच ॥३॥
वर्षाणांचसहस्राणिसप्ततिदशपंचच ।
बुभुजेपृथिवींकृत्स्नांमरुतःक्षत्रियर्षभः ॥४॥
कृत्वाराज्यंस्वधर्मैर्णईष्टायज्ञाननुत्तमान् ।
नरिष्यन्तसुतंज्येष्ठमभिषिच्यययौवनम् ॥५॥
एकान्नचित्तःसनुषस्तप्त्वातत्रतपोमहत् ।
आरुरोहदिवंविप्रह्वासावृत्यचरोदसी ॥६॥

कौण्डिक बोले—हे भगवन् ! मरुत चरित्र का आपने विस्तार पूर्वक दर्शान किया । अथ मेरी आकांक्षा उनकी संतानों के विषय में समस्त वृत्तान्त श्रवण करने की है ॥१॥ हे महर्षि संततियों में जो महीपति आसन योग्य एवं

पराक्रमी वीर्यवान् भू उन्वा वृत्तान्तं प्रापके मुखारविन्द से श्रवण करना चाहता हू ॥२॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—मर्त्य के घटारह पुत्र हुए जिनमें नरिष्यन्त सबसे बड़ा और श्रेष्ठ पुत्र हुआ ॥३॥ शत्रिय श्रेष्ठ मर्त्य ने सत्तर सहस्र पद्म वष पर्यन्त समस्त भूतल पर राज्य किया ॥४॥ धर्म के अनुसार शासन कर और सर्वश्रेष्ठ यज्ञ एवं अनुष्ठान करके वह घन्त में अपने ज्येष्ठ पुत्र नरिष्यन्त का राज्याभिषेक करके वनवास करने चले गये ॥५॥ हे द्विज ! तदुपरान्त दत्तचित्त से यम ने तपस्या करत हुए पृथ्वी से यज्ञ प्राप्त करके राजा मर्त्य ने स्वर्ग प्राप्त किया ॥६॥

नग्निप्यत मुक्त सोऽस्यचित्तयामामबुद्धिमान् ।

पितुर्वृत्तसमालोकयत्तयान्येषाचभूभृताम् ॥७॥

अश्वधौमहात्मानाराजानाममपूर्वजा ।

यज्जिनोऽधर्मेन पृथ्वीपालयामागुर्जिता ॥८॥

दातारश्चापिचित्तानासप्रामप्यनिवर्तिनः ।

तेषावश्चरितशक्तस्त्वनुमानु महात्मानाम् ॥९॥

किन्तुनैयदृष्टवर्मधर्म्यमाह्वनादिभिः ।

तदहर्तुमिच्छामितञ्चनास्तिवगोमिकिम् ॥१०॥

धर्मात्पालयन् पृथ्वीवोगुणोन्नमहीपते ।

असम्यक्पाननात्पापीनरन्द्रोनरयत्रजेत् ॥११॥

मतिविल्ले महायज्ञा रत्नय्याणवभूभृता ।

दानव्यचात्रकिचित्रसीदतामीश्वरगेगति ॥१२॥

प्राभिजात्पनयानज्जायोपश्चारिजनाश्रयः ।

याऽयनिःश्रमश्चमश्रमादपनायनम् ॥१३॥

एतत्तत्तवैयथ्यामस्यङ्गमत्पूर्व पुन्ये दृतम् ।

पित्राचमेममृत्ते नतयातत्त्वेनशक्यते ॥१४॥

परम विद्वान् पुत्र नरिष्यन्त ने अपने पिता व अन्य दूतों से शत्रिपत्तियों के विचार देखा विचार किया ॥७॥ किं इह कुत्र ये मेरे ममस्त पूर्वज मद्राद् भामा श्रमण यज्ञ व अनुष्ठान करने वाले, महा पराक्रमी, वीर्यवान्, धनदाता

संग्राम में कभी भी भुख न मोड़ने वाले थे एवं सभी ने धर्म के अनुसार भूतल का पोषण किया था, उन महान् आत्माओं के चरित्र का अनुकरण करने की सामर्थ्य किस में होगी ? ॥८-९॥ आह्वानादि से उन्होंने जो धार्मिक कृत्य पूर्ण किये उन्हें करने की भेरी भी आकांक्षा है, परन्तु वह भी तो अकृत नहीं हैं, इसलिए मैं कैसे कहूँ ॥१०॥ यदि नृप धर्म व न्याय पूर्वक भूतल का पालन न करे तो फिर उसमें नृप के क्या गुण हैं ? उसके गुण में वह कोई विशेषता नहीं है, क्योंकि न्यायिक प्रकार से पृथिवी का पालन न करने वाला राजा पाप का भागी बनकर नरक प्राप्त करता है ॥११॥ धन युक्त होने पर नृप को दान और यज्ञ करने चाहिये, इसमें भी कोई अद्भुत बात नहीं है, राजा के लिये तो ईश्वर ही एकमात्र गति है ॥१२॥ अपने धर्म में स्थित रहने से ही राजा अपनी जाति के श्रेष्ठ व और लज्जा के कारण शत्रु के कोप और संग्राम से पीछे नहीं मुड़ता है ॥१३॥ यह सब कार्य मेरे पूर्व पुरुषों और मेरे पिता मरुत ने जिस प्रकार किये हैं, वैसे कार्य ग्रन्थ कौन कर सकता है ? ॥१४॥

तदहंकि करिष्यामियत्तुतै.पूर्वजै.कृतम् ।

येयज्विनोवरादांताःसग्रामाच्चानिवर्तिनः ॥१५॥

महत्संग्रामसंसर्गेष्वविसंवादिपौरुषाः ।

क्रमेणाहंयतिष्यामिकस्मैतानभिसंधितुम् ॥१६॥

अथवातेःस्वयंयज्ञाःकृताःपूर्वजनेश्वरैः ।

अविश्रमद्भिर्नान्यैस्तुकारितास्तत्करोम्यहम् ॥१७॥

इतिसंचित्ययज्ञसचकारैकनरेश्वरः ।

यादृशंनचकारान्योवित्तोत्सर्गोपशोभितम् ॥१८॥

द्विजानांजीवनायालंदस्वात्सुसुमहाधनम् ।

सतःशतगुणैर्तेषांयज्ञार्थमददान्नृपः ॥१९॥

गावोवस्त्राण्यलंकारंघान्यागारादिकंतथा ।

प्रत्येकमददात्तेषांसर्वपृथ्वीनिवासिनाम् ॥२०॥

मेरे सभी पूर्व पुरुष श्रेष्ठ यज्ञों का अनुष्ठान करने वाले, दानशील, दम-गुण युक्त तथा युद्ध से विमुक्त होने वाले न थे ॥१५॥ तथा युद्ध उपस्थित होने

पर शत्रुघ्न को अपना पराक्रम दिनात थे, मैं इस समय ऐसा चीन पायें करूँ,
जिसे उठाने नहीं दिया ? मैं नर्म द्वारा ही निष्काम काम को करूँगा ॥१६॥
मथवा जो यज्ञ घर पूर्व पुरषो न स्वयं क्रियंते, विगी मन्त्र को नहीं कराये,
उही यज्ञ को मैं करूँगा ॥१७॥ मानडेण्यजी ने कहा—राजा न ऐसा विचार
करने विपुल धन द्वारा एक एक यज्ञ का अनुष्ठान किया, जिस पूर्व में कोई भी
नहीं कर सका था ॥१८॥ उस यज्ञ में चढ़ाने ग्राह्यता का अत्यधिक धन प्रदान
किया और उमम जी भी गुण्य अक्षतन किया ॥१९॥ पृथिवी पर जिन भी
ब्राह्मण थे, उमम में प्रत्येक का उद्धार भी, यज्ञ धनदार, घर, भाय आदि
प्रदान किया था ॥२०॥

ततस्तनयदायज्ञ प्रारब्धोभूमुजापन ।
प्रारब्धसमक्षेपेष्टु ततानालभतद्विजान् ॥२१॥
यान्यान्मृणोनिमनृषाविप्रानातिरज्यदमणि ।
ततनमूचुयज्ञायवयमस्यदोक्षिता ॥२२॥
अस्यवरयवद्वित्त स्यात्स्याम्भारिमजितम् ।
तस्यानानान्नियज्ञपुदय स्मरनृपनयम् ॥२३॥
नचापस्तिस्रिजाप्रिग्राम्नदासपक्षिनीश्वर ।
रिषिषेणनदादानमदागुमुपपन्नम् ॥२४॥
तथापिजगृहीतधनमभूणमदिग ।
द्विजापदानु भूयाज्जानिप्रिग्गाइदमत्रवीत् ॥२५॥
अहानिमाभनपृष्ठपायद्विप्रानाधन वसन्ति ।
अमाभनचयत्वापोत्रिफनायमयजिन ॥२६॥
नातिरिजागुस्तनश्चिजमानोमिनाजन ।
द्विजानानननादानददामप्रतीच्छत ॥२७॥

जब राजा न पुन यानुष्ठान किया तब उमम बाई जी ब्राह्मण यज्ञ के
लिए उपाय नहीं हुआ ॥२१॥ उपाय त्रिमन्त्रिम को भी अविश्व रूप में
प्राप्त पता था इच्छा की उमी उमी न कहा कि मैं यज्ञ के पथ अवश्य करण
दिना जा रहा हूँ ॥२२॥ दाय द्विती म य का करण कर लें ह राजन् । दाया

आपने यज्ञ में हमें जितना धन दिया, वह अनेकानेक यज्ञों में भी समाप्त नहीं हो सका ॥२३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—सम्पूर्ण पृथिवी के राजा होकर भी जब उन्हें ऋत्विक् बनने के लिये कोई ब्राह्मण न मिला, तब वह वहिवंदी में दान करने को उद्यत हुए ॥२४॥ फिर भी धन से युक्त घर का दान ब्राह्मणों ने ग्रहण नहीं किया, जब राजा दान करने में सफल नहीं हुए और उनका श्रम व्यर्थ गया तब वे अत्यन्त दुःखित होकर सोचने लगे ॥२५॥ पृथिवी में कहीं कोई भी इस समय धनहीन ब्राह्मण नहीं है यह अत्यन्त संतोष की बात है, परन्तु यज्ञानुष्ठान के बिना मेरा मेरे पास राजकोप का होना सार्थक नहीं है, यही कष्ट का कारण है ॥२६॥ सभी ब्राह्मण इस समय स्वयं ही यज्ञ कार्य में प्रवृत्त हैं, इसलिये ऋत्विक् होने में कोई ब्राह्मण सहमत नहीं है, इस समय वह स्वयं ही दान कर रहे हैं, इसलिये मेरा दान स्वीकार नहीं करते ॥२७॥

ततःकांश्चिद्विजान्भक्त्याप्रणिपत्यपुनःपुनः ।

स्वयज्ञेऋत्विजश्चक्रेतेप्रचक्रुर्महामखम् ॥२८॥

अत्यद्भुतमिदं चासीद्यदातस्यमहीपतेः ।

सयज्ञोभूतदापृथ्व्यांयजमानोऽखिलोजनः ॥२९॥

द्विजन्मनामभूनासीत्सदस्यस्तत्रकश्चन ।

यजमानाद्विजाःकेचित्केचित्तेषांतुयाजकाः ॥३०॥

नरिष्यंतोनरपतिरियाजस्यदातदा ।

तत्प्रदातुर्धनैर्यगिकुर्युःपृथ्व्यामक्षेपतः ॥३१॥

प्राच्यांकोटचस्तुयज्ञानामसप्तष्टादशाधिकाः ।

प्रतीच्यांसप्तवैकोट्योदक्षिणस्यांचतुर्दश ॥३२॥

उत्तरस्यांचपंचाशदेककालंतदाभवन् ।

मुनेब्राह्मणयज्ञानान्नरिष्यंतोयदाऽयजत् ॥३३॥

एवंसराजाधर्मतिमानरिष्यतोऽभवत्पुरा ।

महत्तनयोविप्रविख्यातबलपौरुषः ॥३४॥

मार्कण्डेय जी ने कहा—फिर बारम्बार परम भक्ति और प्रणाम पूर्वक उन्होंने कोई ब्राह्मणों को अपने यज्ञ में ऋत्विक् होने को सहमत कर लिया और

तब उन ब्राह्मणों ने उस महायज्ञ का सम्पादन किया ॥२८॥ यह भत्पन्त विस्मय की बात थी कि राजा द्वारा सम्पादित उस महायज्ञ में सभी ब्राह्मण स्वयं ही यजमान हुए ॥२९॥ उस यज्ञ में कोई समासद नहीं हुआ था, ब्राह्मणों में से ही कोई स्वयं यजमान घोर कोई याजक हुआ ॥३०॥ जब राजा नरिप्यन्त ने यज्ञ किया तब उन्हीं के घन में ब्राह्मणमण अनेक यज्ञों के अनुष्ठान में प्रवृत्त हुए थे तब समय भट्टारह करोड़ से भी अधिक यज्ञ किये गये, पश्चिम में सात करोड़, दक्षिण में चौदह करोड़ ॥३१-३२॥ तथा उत्तर में पचाम करोड़ यज्ञ हुए, ब्राह्मणों के सभी यज्ञ एवं ही घबसर में सम्पन्न हुए ॥३३॥ हे ब्रह्मन् । पुरा-
काल में विद्यमान सभी एव पराक्रमी भरत पुत्र नरिप्यन्त ऐसे धर्मज थे ॥३४॥

१२०—दमश्चित्र (१)

नरिप्यतस्यतनयोदुष्टारिदमनौदमः ।
 राक्स्येववलतस्यदयाशीलमुनेरिव ॥१॥
 वाभ्रवामिन्द्रसेनाया राज्ञो तस्य भूभृत ।
 नववर्षाणि जठरे स्थित्वामातुर्महायथा ॥२॥
 यद्ब्राह्मणमासदममातरजठरेभ्यतः ।
 दमसौ तश्चमवितायनश्रायनृपात्मज ॥३॥
 ततस्त्रिजानविज्ञानः सहितस्य पुरोहितः ।
 दमश्चक्रोन्माभनरिप्यतमुतस्यतु ॥४॥
 गदनां राजपुत्रस्तु पुनर्वेदमशेषतः ।
 जगृहे सुरगजस्य सवासादृषपर्वण ॥५॥
 कुन्दुमेदं त्यक्त्वा मयतपो वननिवाग्निनः ।
 सवासाज्जगृहे तस्मिन्मम्यग्रामश्चनत्यतः ॥६॥
 गते सवासाद्दिवाश्च वेदाङ्गान्मग्निमानि च ।
 तयाष्टिपेणाद्राजर्षेर्जगृहे योगमात्मवान् ॥७॥

मार्कण्डेय जी ने कहा—राजा मरिष्यन्त के पुत्र दम हुए, वे इन्द्र के समान बली, मुनि के समान दयावान् और शीलवान् तथा शत्रुओं का दमन करने में समर्थ थे ॥१॥ बभ्रू की पुत्री इन्द्रसेना के जठर से बभ्रू तरिष्यन्त के वीर्य से उत्पन्न हुए, यह नौ वर्ष पर्यन्त माता के गर्भ में ही रहे ॥२॥ इसके गर्भ में स्थित रहने के समय माता को इन्द्रिय निग्रह पूर्वक रहना पड़ा था और यह राजकुमार भी दमशील हुए ॥३॥ यह देखकर तीनों काल के जानने वाले राज-पुरोहितों ने उनका नाम दम रखा, इस राजकुमार ने राजा वृषपर्वा से सम्पूर्ण धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की ॥४-५॥ तथा तपोवन में रहने वाले दैत्यवर बुधुभि से उन्होंने समस्त अस्त्र-ग्राम के प्रयोगों को संहार सहित प्राप्त किया ॥६॥ क्षत्ति मुनि से सम्पूर्ण वेद-वेदाङ्ग और आष्टिषेण से योग शिक्षा प्राप्त की ॥७॥

तंसुरूपमहात्मानगृहीतास्त्रमहाबलम् ।
 स्वयंवरेकृतापित्राजगृहेसुमनापतिम् ॥८॥
 सुतादशार्णाधिपतेर्वलिनश्चाह्वर्मणः ।
 पश्यतांसर्वभूतानां येतदर्थमुपागताः ॥९॥
 तस्यांचसानुरागोऽभून्मद्राजस्यवसुतः ।
 सुमनायामहानादोमहाबलपराक्रमः ॥१०॥
 तथाविदर्भाधिपतेःपुत्रःसक्रन्दनस्यच ।
 वपुःमात्राजपुत्रश्चमहाधनुर्द्वारधीः ॥११॥
 तैतदातंवृतदृष्ट्वादुष्टारिदमनंदमम् ।
 मन्त्रयामासुरन्योऽभ्यंतत्रानङ्गविमोहिताः ॥१२॥
 एतामस्यबलात्कन्यांगृहीत्वारूपशालिनीम् ।
 गृहंप्रयामस्तस्येयमस्माकंयंग्रहीष्यति ॥१३॥
 भर्तृबुद्ध्यावरारोहास्वयंवरविधानतः ।
 तस्येच्छयानोभवित्रीभाय्यधिमोषपादिता ॥१४॥
 अथनेच्छतिसाकञ्चिदस्माकमदिरेक्षणा ।
 ततस्तस्यभवित्रीसायोदमंवातयिष्यति ॥१५॥

दशार्णधिपति चान्तरमा की बन्धा मुमगा ने अपने पिता के द्वारा स्वयं-
 पर लिये जाने पर, महाबली महात्मा दम की ही धपना पति बनाया ॥८-६॥
 यद्वराज पे पुत्र महाबन्ध, विदभे राज न पुत्र वपुष्मान् तथा महायनु नामव
 राजपुत्र ने उक्त मुमगा की कामना की थी ॥१०-११॥ परन्तु यत्रुषो का दमन
 करने वाले 'दम' को राजन्या ने चरण दिया, यह देगकर वह राजकुमार
 परापर विचार करने लगे ॥१२॥ हम इस रूपयती राजकुमारी को इसते
 बल पूर्वक छोड़ कर ले जायेंगे ॥१३॥ हमारे एवमान् यह राजकुमारी स्वयंवर
 की विधि स हमम स जिग चाहें स्वेच्छापूर्वक चरण बरे, तब यह उसी की धर्म
 में उपलब्ध पनी मानी जायगे ॥१४॥ यदि यह हमम स किसी को भी दृष्ट
 मही करगी तो जो दम का बर कर देगा, यह उसकी पत्नी होगी ॥१५॥

इति तितिश्रयत्वात्रय पार्थिवनन्दनाः ।

जगृह्मन्तासु चार्धज्जीदमपाशर्चानुर्गतिनीम् ॥१६॥

तत केचिन्नुपास्तपायतत्पथाविनुक्नु ।

भृक्नुध्वापरेभूपा केचिन्मध्यस्थतायता ॥१७॥

ततादमस्तान्भूपालानवलोरयसमन्तत ।

अनाकुलमना वाक्प्रभिदमाहमहामुने ॥१८॥

भोभूपाधर्मकृत्प्रेयददन्तिस्वयंवरम् ।

दशार्णपतिनाभूपाः तृतयम्येन्यवरे ।

अथमोवाज्यवायमोयदभिकृत्स्तेवनात् ॥१९॥

यद्यथमोनेनायमन्यभाय्मोभिव्यति ।

धर्मोवानदनप्राण्यैरव्यन्तरिचने ॥२०॥

तनादशार्णधिपतिश्चान्तरमनराधिप ।

नि शब्दवारयित्वा त्वमत्र प्राहमद्भागुने ॥२१॥

मातङ्गेयजी ने कहा—उन तीना राजकुमारों ने ऐसा विचार करने दम के
 पारवे में खेटी हुई उक्त राजकुमारी का दृष्ट कर दिया ॥१६॥ उक्त समय दम
 पक्षीय राजाभा ने उनको निन्दा छोड़ भर्त्ता की, बहुत में राजा पत्न्या कोचिन
 दूर छोड़ बहुत न तटस्थ रहे ॥१७॥ फिर अपने पारो छोड़ राजाधो को पिन

देखकर दम ने व्याकुलता पूर्वक कहा ॥१८॥ दम बोले—हे राजाओ ! जिस स्वयंवर को धर्म कार्य समझा जाता है, वह यथार्थ में धर्म है अथवा अधर्म है ! इन्होंने स्वयंवर द्वारा प्राप्त हुई कन्या का जो हरण बलपूर्वक किया है ॥१९॥ तो यदि स्वयंवर धर्म-कार्य नहीं है तो अवश्य ही यह अन्य की पत्नी बने, परन्तु यदि आप इसे धर्म कहते हो, तो शत्रु से तिरस्कृत हुए इस शरीर को प्राण रखने की क्या आवश्यकता है ? फिर दशार्णाधिपति चारुवर्मा ने सभाभवन को शब्द रहित कराते हुए कहा ॥२१॥

दमेनयदिदं प्रोक्तं धर्माधर्माश्रितं नृपाः ।
तद्वदध्वं यथा धर्मो भमास्य च न लुप्यते ॥२२॥
ततः केचिन्महीपालास्तमू बुवं सुधाधिपम् ।
परस्परानुरागेण गान्धर्वो विहितो विधिः ॥२३॥
क्षत्रियाणां परमयनविट्शूद्रद्विजन्मनाम् ।
दममाश्रित्य निष्पन्नः स चास्या दुहितुस्तव ॥२४॥
इति धर्मादमस्यैषा दुहिता तव पाथिव ।
योऽन्यथा वृत्तं ते मोहात्कामात्मा सम्प्रवृत्तं ते ॥२५॥
तथाऽपरे तदा प्रोचुर्महात्मानो हि भूभृताम् ।
पक्षे ये भूभृतो विप्रदशार्णाधिपतिवचः ॥२६॥
मोहात्किमाहुर्धर्मोऽयं गान्धर्वक्षत्रजन्मतः ।
न ये प्रशास्तानान्यो हिराक्षसः शस्त्रजीविनाम् ॥२७॥
बलादिमां यो हृतं तं हत्वा तु परिपन्थिनः ।
तस्यैषा स्याद्वाक्षसे न विवाहेनावनीश्वराः ॥२८॥

हे राजाओ ! दम ने धर्म-अधर्म विषयक जो बात कही है, उस पर आप अपनी सम्मति दीजिये, जिससे आप धर्म से च्युत न हों ॥२२॥ मर्क-रडेयजी ने कहा—तब अनेक राजा उनसे बोले कि परस्पर की प्रीति से गान्धर्व विवाह-का विधान है ॥२३॥ यह विवाह क्षत्रियों के लिये उत्तम है, ब्राह्मण, वैश्य या शूद्र के लिये नहीं, आपकी इस कन्या का विवाह उक्त विधान से दम के साथ ही सम्पन्न हो गया है ॥२४॥ इसलिये हे राजन् ! आपकी पुत्री दम की

ही पत्नी हुई, परन्तु कामासक्त मनुष्य ही मोह के बलीभूत होकर इसका विरोध करते हैं ॥२५॥ इस परचाण्ड विरोध पक्ष के राजाओं ने दशाणीधिपति से इस प्रकार कहा—॥२६॥ मोह के बलीभूत हुए यह राजावर्ग कंसी बात कर रहे हैं ? क्षत्रियों के हित में यह शायब विवाह तो है ही नहीं, धन्य विवाह भी उनका जिये प्रशस्त नहीं है, परस्परजीवियों के लिये तो केवल राक्षस विवाह ही उचित माना गया है ॥२७॥ हे राजन् ! विपदा को नष्ट करने इस वन्या को जो बलपूर्वक ले लेंगे, राक्षस विवाह के विधान से यह उसी की भार्या होगी ॥२८॥

प्रधानतरणोऽत्रविवाहद्वितयेमत ।

क्षत्रियाणामतोषमोमहानन्दादिभि कृत ॥२९॥

अयप्रोक्षु पुनर्भूषामै पूवमुदितानृष ।

परस्परानुरागेणजातिधर्माश्रितवचः ॥३०॥

सत्यशस्तराक्षसोऽपि क्षत्रियाणापरोर्विधि ।

विश्वसौजनकस्वाम्येकभाष्यानुमतोवर ॥३१॥

हृत्वातुपितृमन्त्रम्वक्षतेनहियतेहिया ।

सराक्षसोर्विधि प्रोक्तोनात्रमर्तुं करेन्विता ॥३२॥

पश्यतासर्वभूषानामनयायद्वृत्तोदम ।

गाम्भयस्येहनिष्प्रसोविवाहोराक्षसोऽत्रक ॥३३॥

विवाहिताया वन्यायायान्यान्वनेवविद्यते ।

वन्यायाश्चविवाहेनसम्प्रत्य पृथिवीश्वरा ॥३४॥

राइमेयेयनादिनादमादादासुमुद्यता ।

यनितम्नेयदिनत कुर्वन्तुनतुमायुतत् ॥३५॥

क्षत्रियों में जब राक्षस विवाह की ही प्रवृत्तता है तब महानन्द आदि राजकुमारों ने धर्म का ही आचरण किया है ॥२९॥ मार्चण्डेय जी ने कहा— किन राजाओं ने पहिले परम्परागत धर्म और जानि धर्म के विषय में कहा था, उन राजाओं ने पुन कहा ॥३०॥ यह भी गम्य है कि क्षत्रियों में राक्षस विवाह को श्रेष्ठ माना गया है, परन्तु इस राजकुमारों ने तो अपने पिता की अधीनता

में 'दम' का वरण किया है ॥३१॥ राक्षस विवाह वही है, जिसमें कन्या पक्ष के पिता आदि को मार कर वा घायल करके कन्या का हरण कर लिया जाय, परन्तु पति को प्राप्त हुई कन्या का हरण करने से उसे राक्षस विवाह नहीं माना जा सकता ॥३२॥ सब नृपालों के सामने ही सुमना ने दम का वरण किया है, इसलिये यह विवाह गांधर्व विवाह ही है, इसमें राक्षस विवाह का विधान कौन-सा हुआ ? ॥३३॥ विवाह होने पर कन्यास्व नहीं रहता, इसलिये विवाह के होने तक ही उसे कन्या समझना चाहिये ॥३४॥ दम के हाथ से इस कन्या का वनपूर्वक हरण करने वाले लोग अपने बल के मद में ऐसा कर सकते हैं, परन्तु यह कोई अच्छा कार्य नहीं है ॥३५॥

तच्छ्रुत्वाऽसौ दमः कोपकषायीकृतलोचनः ।

आरोपयामास धनुर्वचनं चेद्ममव्रवीत् ॥३६॥

ममापि भार्या बलिभिः पश्यतो ह्येत्यदि ।

तत्कुलेन भुजाभ्यां वा को गुणः क्लीबजन्मनः ॥३७॥

धिङ् ममास्त्राणि धिक्छौर्यं धिक्छरान् धिक्छरासनम् ।

धिक्व्यर्थमेकुले जन्ममरुत्तस्य महात्मनः ॥३८॥

यदि भार्यामिममूढाः समादाय बलान्विताः ।

प्रयान्ति जीवतो धिक्ताममव्यर्थमनुष्यताम् ॥३९॥

इत्युक्त्वा तान्महीपालान् महानन्दमुखान्बली ।

अथाव्रवीत्तदा सर्वान्महारिदमनोदमः ॥४०॥

एषातिशोभनावाला चार्वाङ्गीमदिरेक्षणा ।

किन्तु स्य जन्मना भार्या नित्यस्येयं कुलोद्भवा ॥४१॥

इति सञ्चिन्त्य भूपालास्तथायततसंयुगे ।

यथानिर्जित्य मामेतापत्नीं कुरुत्मानिनः ॥४२॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—यह बात सुनकर दम ने क्रोध से लाल नेत्र कर अपने धनुष पर ज्या चढ़ाते हुए कहा—॥३६॥ यह मेरे सामने ही मेरी पत्नी का बलपूर्वक हरण कहते हैं, इसलिए मैं क्लीब ही हुआ समझो, इस प्रकार मेरे वंश के गौरव और दोनों भुजाओं में कोई गुण ही नहीं है ॥३७॥ मेरे जीवित

रहते हुए यह पानी का दुराग बग लेजाय तो मेरे शस्त्रों, बाणों और धनुष की
 चिनार है उसका महात्मा मन्त्र न वन में उत्पन्न होने और मनुष्य वन में
 भी चिनार है ॥३७-३८॥ शत्रुओं का दमन करने वाले महावली दम ने ऐसा
 कहकर महानन्दादि व प्रति कहा ॥४०॥ हे सम्मानित राजागण ! यह सत्कुल
 में उत्पन्न हुई सुन्दरी बालिका जिसकी पत्नी नहीं हुई, उसका जन्म ही कृपा
 हुआ है ॥४१॥ यह सोचकर मुझे पराजित करके इस भयनी पत्नी बना गया,
 भैया ही प्रपन्न सन्नाम भूमि में करो ॥४२॥

द्वेषाभाष्यततस्तत्रशरवपममुचन ।

छादयमृषिबीपालास्तमत्तमहीरहान् ॥४३॥

रागिबीरामहीपाला दारवयष्टिमुद्गगन् ।

मुमुचुस्तत्रयुक्ताश्चदमश्चिच्छेदनीत्या ॥४४॥

तैऽपितत्प्रहिताग्वान्वास्तेपाचासीशरोरुहान् ।

चिच्छेदपृथिवीशानानरिप्यन्तात्मजोमुने ॥४५॥

वर्त्तमानेतदायुद्धेदमस्यक्षितिपात्मजं ।

प्रविवेचमहानन्दः सन्नपाणिमंतोदम ॥४६॥

तमायान्तदमोहप्रासन्नपाणिमहामृधे ।

मुमोचशरवर्षाणिवर्षाणीवपुरन्दर ॥४७॥

तदस्त्रागिततस्तानिशरजालानितत्स्थानात् ।

महानन्दः प्रचिच्छेदसन्नेनान्यानवचयत् ॥४८॥

ततोरोपात्ममास्त्रतदमस्यनदारयम् ।

महानन्दाग्रावीर्मोदमेनयुयुधेयह ॥४९॥

जैसा कहकर दम ने उन राजाओं के आच्छादन पुरंज बाण वृष्टि की
 ॥४३॥ उन राजाओं में भी बाण, शक्ति, सुष्टि, मुगदर आदि इन पर बताया,
 परन्तु उन्होंने उन सब आस्त्रों का तीलापूवक ही यह कर दिया ॥४४॥ हे
 मुन ! उक्त समय सब राजा दम के भस्त्रों की और दम भी उनके शस्त्रों की
 बाटन लगे ॥४५॥ दम और उन राजपुत्रों के मध्य इस प्रकार संग्राम ही ही
 रहा था, तभी हाथ में सन्न घटण त्रिय दृष्ट महानन्द उनके सामने हुआ ॥४६॥

उसे हाथ में खड्ग लिये आता देखकर, इन्द्र द्वारा जल वृष्टि करने के समान, दम ने बाणों की वर्षा शारङ्ग की ॥४७॥ महानन्द ने उनके सब अस्त्रों और बाणों को अपने खड्ग से काट डाला, उसने यह कार्य इस चतुराई से किया कि अन्य राजागण उसे देख भी न सके ॥४८॥ फिर क्रोध में भरा हुआ वह महानन्द दम के रथ पर चढ़कर उसके साथ लड़ने लगा ॥४९॥

वहृथायुध्यमानस्यमहानन्दस्यलाघवात् ।

दमोमुमोचहृदयेशरंकालानलप्रभम् ॥५०॥

तलंगनमात्मनोत्कृष्यविभिन्नेनततोहृदा ।

दमप्रतिविचिक्षेपमहानन्दोऽसिमुज्ज्वलम् ॥५१॥

पतन्तंचैनमुल्काभंशवत्याचिक्षेपतंदमः ।

शिरोवेतसपत्रेणमहानन्दस्यचाच्छिनत् ॥५२॥

तस्मिन्हृतेमहानन्देप्राचुर्येणपगाङ्मुखाः ।

बभूवुःपार्थिवास्तथौवपुष्मान्कुण्डिनाविपः ॥५३॥

दमेनयुधेचासौवलगर्वमदान्वितः ।

दाक्षिणात्यमहीपालतनयोरणुगोचरः ॥५४॥

युध्यमानस्यतस्योग्रंकरवालंसवैलघु ।

चिच्छेदसारथेश्चैवशिरःसंख्येतथाध्वजम् ॥५५॥

खिन्नखड्गो गदांसोऽथजग्राहवहुकण्टकाम् ।

तानप्यस्यसचिच्छेदकरस्थामेवसत्वरः ॥५६॥

बहुत समय तक इस प्रकार युद्ध करते हुए दम ने उसके हृदय में कालाग्नि के समान ज्वलंत बाण छोड़ा ॥५०॥ महानन्द ने हृदय में लगे हुए उस बाण की स्पर्श ही निकाला और दम पर अपने उज्ज्वल खड्ग की धार किया ॥५१॥ दम ने विद्युत् के समान गिरते हुए उस खड्ग की शक्ति द्वारा काट कर तुरन्त ही वेनसपत्र बाण के द्वारा उस महानन्द का जीव काट डाला ॥५२॥ महानन्द के समाप्त होते ही कुरिण्डनाविपति वपुष्मान् के अतिरिक्त अधिकतर गृह रण से विमुक्त हो गये ॥५३॥ वह राजकुत्र दाक्षिणात्य एवं अपने पराक्रम के प्रति अभिमानपूर्ण वपुष्मान् रस-क्षेत्र में दम से युद्ध करने लगा ॥५४॥ युद्ध

दोत्र मे दम ने तुगन्त वपुष्मान् की तीव्र तलवार एव उसने मारपी का सिर व
रय की इज्जा काट डाली ॥५५॥ तलवार के नष्ट होने पर वपुष्मान् ने अपने
काटो से युक्त गदा धारण की और उसने वार करने से पूर्व ही दम ने वह
गदा उसने हाथों से चण्ड चण्ड कर डाली ॥५६॥

यावदभ्यस्तमादत्ते सवपुष्मान्वरायुवम् ।

तावच्छरेणतविद्धादमोभूमावपातयत् ॥५७॥

सपातितगततोभूमौविह्वताङ्ग मवेमथु ।

यिनिवृत्तमतिमुद्धादवभूवक्षितिपात्मज ॥५८॥

तमालोवयतयाभूतमयुयुद्धमतिमात्मवान् ।

उत्सृज्यादायसुमनासुमना प्रययीदम ॥५९॥

ततोदशार्णाधिपति प्रीतिमानकरोत्तपो ।

दमस्यसुमनायाश्चविवाहविधिपूर्वकम् ॥६०॥

कृतदारोदमस्ततदशार्णाधिपतेःपुरे ।

स्थित्वाऽल्पकालप्रमयोसभार्योनिजमन्दिरम् ॥६१॥

दशार्णाधिपनिश्चासीदत्त्वानागास्तुरङ्गमान् ।

रयगोऽश्वगरोष्ट्राश्चदामीदामान्तयावहून् ॥६२॥

वस्त्रालङ्कारबापादिवरापस्त्रमामनम् ।

अन्येस्तैश्चनयाभाण्डैरिपरिपूर्णमजयत् ॥६३॥

इसने पक्ष ल वपुष्मान् द्वारा सर्वोत्तम प्रस्त्र ग्रहण करने पर भी दम ने

उम अपनी बाएँ वर्षा द्वारा टुकड़े कर पृथ्वी पर गिरा दिया ॥५७॥ तब राज-
पुत्र वपुष्मान् ने ध्याकून व कण्ठिक शरीर का पृथ्वी पर गिरा दिया व युद्ध की
तत्परता त्याग दी ॥५८॥ दम ने उमकी ऐसी स्थिति एवं उमकी मुठ के लिए
तत्परता न दग उम छोड़ दिया एवं घामःशून्य हृदय से सुषणा की लेकर चले
गये ॥५९॥ इसने पदचान् दशार्णाधिपति व आनन्दित चित्त होकर सुमना व
दम का विवाह विधिपूर्वक सम्पन्न किया ॥६०॥ भार्या प्राप्त करके दम युद्ध
गमय तब दशार्णाधिपति के कहन से रहे, तदनन्तर पत्नी के साथ अपने गृह का
चले गये ॥६१॥ उनकी विदा करन समय दशार्णाधिपति ने उन्हें अपनेकी हाथी,

घोड़े, रथ, गौ, खर, ऊँट, दास, दासी ॥६२॥ वस्त्र, आभूषण, धनुष आदि विभिन्न प्रकार की बहुमूल्य वस्तुएँ भेंट स्वरूप एवं दानस्वरूप धन, रत्न आदि प्रदान किये ॥६३॥

१२१—दम चरित्र (२)

सतांलब्ध्वा तथापत्नीं सुमनां सुमहामुने ।
 प्रणम्य सपितुः पादौ मातुश्च क्षितिपात्मजः ॥१॥
 सा च तौ श्वशुरौ सुभ्रूनां सुमना तदा ।
 ताभ्यां तौ च तदा विप्रश्च शोभिरभिनन्दितौ ॥२॥
 महोत्सवश्च संजज्ञेन रिष्यन्तस्य वै पुरे ।
 कृतदारे च सप्राप्ते दशार्णाधिपते पुरात् ॥३॥
 सम्बन्धिनं दशार्णं क्षितांश्च पृथिवीश्वरान् ।
 श्रुत्वा पुत्रेण मुमुदेन रिष्यन्तो महीपतिः ॥४॥
 सोऽपि रे मे सुमनयामहाराज सुतो दमः ।
 वरोद्धानवनोद्देशप्रासादगिरिसानुषु ॥५॥
 अथ कालेन महतारममाणादमेनसा ।
 अवाप गर्भं सुमना दशार्णाधिपतेः सुता ॥६॥
 सोऽपि राजान रिष्यन्तो भुक्तभोगो महीपतिः ।
 ययः परिरुति प्राप्य दमं राज्येऽभिषिच्य च ॥७॥
 वनं जगामेन्द्रसेनापत्नी चास्य तपस्विनी ।
 दानप्रस्थविधानेन सतत्र समतिष्ठत ॥८॥

मार्कण्डेय जी ने कहा—हे महर्षि ! दम ने अपनी भायाँ सुमना सहित आकर अपने माता-पिता के चरणों में प्रणाम किया ॥१॥ एवं इसी प्रकार सुमना ने भी उन्हें प्रणाम किया । हे द्विज ! उन दोनों माता पिता ने भी आशीर्वाद प्रदान करते हुए उनका अभिनन्दन किया ॥२॥ सुमना के भायाँ के

रूप में प्रदत्त करके दम दशासनाधिपति ने महल में आये, तो नरिष्यन्त ने महल में प्रान्दाल्यव प्रारम्भ हो गया ॥३॥ नराधिपति नरिष्यन्त को दशासराज के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित होने एवं अपने पुत्र द्वारा अन्य राजाओं को हराया वा वृत्तान्त सुनकर अत्यन्त सन्तोष हुआ ॥४॥ इसके पश्चात् राजकुमार दम अनुपम उद्यानो, वनो, महला एवं पर्वत आदि स्थलों पर भार्या सुमता के साथ विहार करने लगे ॥५॥ दम प्रवाण विहार करते हुए कुछ समय पश्चात् दशासराज गुना न गये पारण किया ॥६॥ उसी काल नृपन्द्र नरिष्यन्त ने वैभव का उपभोग कर अपनी मृदावस्था को देखकर दम को राज्याभिषेक कर दिया ॥७॥ अपनी भार्या रानी इन्द्रमना का साथ लेकर वन में प्रस्थान कर गये एक यही विधिपूर्वक वानप्रस्थ जीवन व्यतीत करने लगे ॥८॥

दाक्षिणात्य सुदुर्गत्त नमन्दनमुत्तावने ।

वपुष्मान्ममृगान्हनुययावत्पपदानुग । ६

मत्तहृद्धानरिष्यन्तनापगमलगाङ्गिनम् ।

इन्द्रसेनाचतत्पनीतपमातिमुदुबलाम् ॥१०

पप्रच्छवस्त्यभोविप्रः क्षत्रियावा वनचरः ।

वानप्रस्थमनुप्राप्तो वैश्यः । वामप्रस्थताम् ॥११

सतामोनरनीभूपानर्हि क्षत्रियात्तरवदौ ।

इन्द्रसेनाचतत्मयं माचक्षुः । मयथातयम् ॥१२

शास्वानश्चनरिष्यन्तवपुष्मान्पतररिपा ।

प्राप्तोऽमीनिचदन्वोपागच्छन्तानुपरिगृह्य च ॥१३

हाहेनिचन्द्रमेनायाग्दयः । तत्राप्यगदगदम् ।

चकारोपान्नं च वाच । च चेदमुवाच ह ॥१४

एव वार दाक्षिणात्य नृप

नृप अनुपम र माय उन वन में नरिष्यन्त का दुराचागी पुत्र वपुष्माद् अपने नरिष्यन्त की मतिन देह व निर्जना-क्षेत्र में लिए आया ॥६॥ वही वानप्रस्थी उन्ने प्रदा गुग हो हो ? दाक्षिणा-क्षेत्री इन्द्रसेना की देखकर ॥१०॥ वपुष्माद् जा वानप्रस्था जाकर वनवासी हुए हैं । यह मुझे बताओ ॥११॥ राजा मोन

व्रत में थे, इसलिए इसका उत्तर नहीं दे सके. परन्तु, इन्द्रसेना ने सब बात यथा-
वत् बता दी ॥१२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—वपुष्मान् ने उन्हें शत्रु का पिता
नरिष्यन्त जान कर “पा गया” कहते हुए क्रोधपूर्वक खनकी जटा पकड़ ली ॥१३॥
उस समय इन्द्रसेना हाहा कर रोने लगी, तभी दुराचारी ने म्यान से तलवार
निकाल कर कहा ॥१४॥

निर्जितःसमरेयेनयेनमेसुमनाहृता ।
दमस्यतस्यपितरंहनिष्येऽवतुतन्दमः ॥१५॥
येनाखिलमहीपालपुत्रा.कन्यार्थमागताः ।
अवधूताहनिष्येऽहंपितरंतस्यदुर्मतेः ॥१६॥
यौवनास्त्रस्वरूपेषुमदोयस्यदुरात्मनः ।
सदमोवारयत्वेषहन्मितस्यरिपोर्गुरुम् ॥१७॥
इत्युक्त्वासदुराचारोवपुष्मानवनीपतिः ।
क्रंदन्त्यामिन्द्रसेनायांशिरश्चिच्छेदतस्यच ॥१८॥
ततोधिग्धिङ्मुनिजनाग्रन्येचवनवासिनः ।
तमूचुःसचतंहत्वाजगामस्वपुरंवनात् ॥१९॥
गतेतस्मिन्विनिश्चस्यसेन्द्रसेनावपुष्मति ।
प्रेषयामासपुत्रस्यसमीपंशूद्रतापसम् ॥२०॥

जिसने मुझे युद्ध में हरा दिया था और जो मेरी सुमना का हरण कर
ले गया है उस दम के पिता का मैं वध करता हूं, वह दम यहां आकर इसकी
रक्षा करे ॥१५॥ कन्या की कामना से सब राजकुमारों को जिसने अपमानित
किया, उस दम के पिता को आज मैं मार रहा हूं ॥१६॥ जो योद्धाओं के
दमनकारी स्वभाव वाला है, मैं आज उस दुरात्मा शत्रु के पिता को विनष्ट
करता हूं. दम आकर इसको बचावे ॥१७॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इतना कह
कर दुरात्मा राजा वपुष्मान् ने रुदन करती हुई इन्द्रसेना के समक्ष नरिष्यन्त
का भस्तक छिन्न कर दिया ॥१८॥ यह देखकर मुनिगण और अन्य सब वन-
वासी उसे धिक्कार देने लगे और वह भी नरिष्यन्त को इस दशा में छोड़कर

अपने नगर को चला गया ॥१६॥ जब यष्टमान् चला गया, तब इन्द्रसेना ने दीर्घ रिश्ताग लेकर एक बृद्ध तपस्वी को अपने पुत्र के पास भेजा ॥२०॥

गच्छेषाम्रागुमेपुत्रदमग्रूहिवचोमम ।

अभिजोह्यसिमद्भृत् वृत्तान्तप्रोच्यतेऽयं किम् ॥२१॥

तथापिवाच्य पुत्रोमेयद्वर्षीम्यतिदुःखिता ।

लघनामीदृशीप्राप्ताविलोक्येतामहोपते ॥२२॥

मद्भृत्त्रांघ्रिदृष्टो राजाचतुर्णां परिपालकः ।

त्वमाथमाणावियुक्त तापसान्यन्नरक्षसि ॥२३॥

भर्तानमनरिप्यन्तस्तापसस्तपसि स्थित ।

विलपन्त्यास्तथानाथोयथानासिनयात्वमि ॥२४॥

आवृष्य केशेषु बलादपराधविनातत ।

हनोवपुष्मताख्यातिमितितेभूषतिर्गता ॥२५॥

एवम्वितेतत्क्रियतायथाधर्मो न लुप्यते ।

तथाचनैव यत्कथ्यमाताहतापमीभूत ॥२६॥

पितावृद्धस्तपस्वी चनापराधनेदूषित ।

निहतो येन यत्तस्य यत्तं ह्यतद्विचिन्त्यताम् ॥२७॥

मन्तिते मन्त्रिणो वीरा सर्वशास्त्रार्थवेदिन ।

तैः सहा लोभ्ययन्त्यापमेव भूते कुर्यात्तत् ॥२८॥

इन्द्रसेना ने उसमें कहा कि तुम दीर्घ हो हमारे पुत्र दम के पास जाकर

इधर का समाचार कहो, तुम सब वृत्तान्त को भले प्रकार जानते हो, इसलिए तुम्हें यतने की कोई आवश्यकता नहीं है ॥२१॥ फिर भी राजा का ऐसा अपमान उपस्थित देखकर और अत्यन्त दुःखित होकर मैं जो कह रही हूँ, वह सब मेरे पुत्र ने कहना ॥२२॥ तुम राजा हो, भारी धाम्ना के पालन भर्ता एवं स्वामी नियुक्त हुए हो, फिर भी तुम तपस्वियों की रक्षा करते, क्या यह उचित है ? ॥२३॥ मेरे पति नरिप्यन्त यहाँ तप करते थे, परन्तु, तुम रक्षा करने वाले के होने हुए भी मेरे द्वारा विनाश करते करते यष्टमान् ने उनका निरपराध हो बध कर दिया है । तुमने राजा होकर पण्डित उपलब्ध की हैं ॥२४॥२५॥

इस दशा में जिससे धर्म लुप्त न हो वैसे ही कार्य करो, इससे अधिक कहना उचित नहीं समझती ॥२६॥ तुम्हारे पिता प्रथम तो वृद्ध थे, इस पर भी तपस्वी और सर्वथा निरपराधी थे, ऐसी अवस्था में उनकी हत्या की गई है। इस विषय में अपने कर्त्तव्य का भलीभांति निश्चय करो ॥२७॥ तुम्हारे वीर मन्त्री शास्त्र ज्ञाता हैं उनसे परामर्शपूर्वक जो कर्त्तव्य हो वही करना चाहिए ॥२८॥

नास्माकमधिष्ठाकारोऽज्ञापसानानराधिप ।

क्रुद्धैतद्वितीत्यन्तमेवमभूपतिभाषितम् ॥२९॥

विदूरथस्यजमकोयवनेनयथाहृतः ।

तथायंतवपुत्रस्यकुलंतेनविनाशितम् ॥३०॥

जम्भस्यासुरराज्यस्यपितादष्टोभुजङ्गमः ।

तेनाप्यखिलपातालवासिनःपन्नगाहताः ॥३१॥

पराशरेणपितरंशक्तितंरक्षसात्हृतम् ।

श्रुत्वाऽग्नौपातितंकृत्स्नंरक्षसामभवत्कुलम् ॥३२॥

अन्यस्यापिस्ववंशस्यलंघनाकियतेहिया ।

तांनलक्षत्रियःसोढुंकिपुनःपितृमारणम् ॥३३॥

नायंपितातेनिहतोनास्मिच्छस्त्रंनिपातितम् ।

त्वामत्रनिहतमन्येत्वयिशस्त्रंनिपातितम् ॥३४॥

हे राजन् ! तुम्हारे पिता ने मरते समय कहा है कि मैं तपस्वी हूँ, इस विषय में अनधिकारी हूँ, इसलिए तुम्हें ही इसका प्रतिकार करना है ॥२९॥ हे पुत्र ! जिस प्रकार विदूरथ के पिता का यवन ने वध किया था, वैसे ही वपुष्मानन् ने तुम्हारे पिता का वध करके कुल को नष्ट किया है ॥३०॥ जब दैत्यराज जम्भ के पिता को सर्पों ने काट लिया था, तब जम्भ ने पातालवासी सभी नागों को बिह्व किया था ॥३१॥ और उस असुर के द्वारा पिता शक्ति की मृत्यु हुई सुनकर पराजित जी ने सम्पूर्ण असुर-वंश को अग्नि में दाग कर दिया था ॥३२॥ जब क्षत्रियगण अपने कुल के किसी भी व्यक्ति का अपमान सहन नहीं कर पाते तो पिता के वध की बात का तो कहना ही क्या है ॥३३॥

मैं तापझनी हूँ कि तुम्हारे पिता का वध नहीं हुआ है उन पर शस्त्र नहीं चलाया गया यदि तुम इस प्रकार तुम्हारा ही वध हुआ है ॥३४॥

विभेत्यभ्यहिन-अस्त्रन्यस्तयेनवनीकसाम् ।
तचभूपस्यपुत्रस्यमाविभेतुविभेतुवा ॥३५॥
सर्वेयताघनामुक्तायदस्मिस्तत्समाचर ।
चपुमतिमहाराजसभृत्यजातिवाघवे ॥३६॥
इतिसक्रान्तसन्देशमिन्द्रसेनाविसृज्यतम् ।
पतिदेहमुपादितप्यविवेशाग्निमनस्विनी ॥३७॥

यन वामिनी के ऊपर जो हथियार नहीं उठाता है उसका भय कौन करेगा ? भयवा उसका पीरूप ही क्या होगा ? तुम उनके पुत्र तथा पृथ्वी के पात्रक हो, यदि दाशु को नष्ट करोगे तो तुम्हारा भय सभी मानेंगे भयवा तुम्हारे दागन में भी विघ्न उपस्थित हो जायगा ॥३५॥ हे राजन् ! ये तिर-स्कार हुआ है, इमनिष्ठ भृत्या व चपुष्मान् के प्रति तुम्हें जो करना चाहिये, वही करो ॥३६॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—इन्द्रसेना ने उस तापस से यह संदेश पहुँचा कि उस विदा विद्या छोड़ पति के शरीर का आतिथन करके अग्नि में प्रवेग किया ॥३७॥

१६२—दम चारित्र्य (३)

इन्द्रगेनासमाक्षतःमगत्याशूद्रतापसः ।
समानष्टमयापूर्वंदमायनिघनपितु ॥१॥
तापमेनममान्यातेदमस्तेनपितृवंधे ।
क्रोधेनातीवज्ज्वालहवियेशाग्निमृद्धन ॥२॥
नतुत्रोपाग्निनाघोरोदक्षमानोमहामुने ।
परकरेणनिष्पत्यवाक्यमेतदुवाचह ॥३॥

अनाथ इव मे तातो मयि पुत्रे नु जीवति ।
 घातितः सुनुशं सेन परिभूय कुलं मम ॥४॥
 तापं करोम्यहं किवाप्येष क्लेशां क्लमाम्यहम् ।
 दुर्वृत्तं चांतो शिष्टानां पालनेऽधिकृता वयम् ॥५॥
 पितरं चापि निहतं हृष्टा जीवन्ति शत्रवः ।
 तत्किमेतेन बहुना हाता तेति चेत्किंपुनः ॥६॥
 विलापेनात्र यत्कृत्यंत देवोऽत्र करोम्यहम् ।
 यद्यहं तस्य रक्ते न देहो तस्येन वपुष्मतः ।
 न करोमि गुरोस्तृप्तिस्तत्प्रवेक्ष्ये हुताशनम् ॥७॥
 तच्छोणितेनोदककर्म तस्या मां सेन सम्यग्भिज भोजनं च ।
 कुर्यादपि तुस्तस्य च पिण्डदानं चेत्प्रवेक्ष्यामि हुताशनं ततः ॥८॥

मार्कण्डेय जी ने कहा—इन्द्रसेना की आज्ञा से शूद्र तापम दम के निकट जाकर उनके पिता की मृत्यु का समाचार और रानी इन्द्रमेता ने जो कहा था, वह सब कह सुनाया ॥१॥ पिता की मृत्यु का पूर्ण सम्वाद सुन कर घृतावृत्ति से तीक्ष्ण हुई अग्नि के समान राजा दम क्रोध से लाल हो गये ॥२॥ यद्यपि वह स्वभाव से क्षीर थे, परन्तु उस समय क्रोधाग्नि से प्रज्वलित होकर हाथ मलते हुए बोले ॥३॥ मुझ पुत्र के जीवित रहते हुए उस नृशंस ने मेरे कुल के अपमान पूर्वक पिता की अनाथ के समान हत्या की है ॥४॥ मैं क्रोध करूँ या क्लेशता से क्षमा कर दूँ, परन्तु, मैं दुष्टों का दमन करने और शिष्ट-जनों का पालन करने के लिये नियुक्त हुआ हूँ ॥५॥ पिता का वध करने पर भी मेरे शत्रु अभी तक जीवित हैं, परन्तु इस प्रकार अधिक वार्ता से क्या लाभ है ॥६॥ अब मुझे जो कर्त्तव्य है। वही करता हूँ। यदि वपुष्मान् के देह से निकले हुए रविर से आने पिता का तर्पण न करूँ तो पत्नी में प्रवेश कर जाऊँगा ॥७॥ यदि उसे मारकर उसके रक्त से भृत-पिता का तर्पण न करूँ और पितरों को पिण्ड-दान न करूँ तो मैं अग्नि में प्रविष्ट होऊँगा ॥८॥

साहाय्यमस्यासुरदेवयक्षगन्धर्वविद्याधरसिद्धसंघाः ।

कुर्वन्ति चेत्तानपि चास्त्रपूगैर्भस्मीकरोम्येष रषासमेतः ॥९॥

नोदूरमाधामिकमप्रज्ञस्ततदाक्षिणात्यसमरेनिहत्य ।
 भोक्ष्येत्तामृष्टृचकृत्स्नावह्निप्रवेक्ष्याम्यनिहत्यतवा ॥१०॥
 मुहुर्मतितापसवृद्धघातिनवनम्यगसाधुविधिर्विदग्धगम् ।
 हन्नाहमद्यास्त्रिनवधुमित्रपदातिहस्त्यश्ववलं समेतम् ॥११॥
 एषोऽहमादायधनुःसगज्जोरयोतयेवारिखलसमेत्य ।
 कर्णेमिवैयत्कदनममस्ता पश्यन्तुमेदेवगणा समेताः ॥१२॥
 माय महायोभविताद्यतस्यमयासमेतस्परणायभूयः ।
 तत्स्वैरनि शेषकुलक्षयायसमुद्यतोऽहनिजवाहुसैन्यः ॥१३॥
 यदिकुलशिखरोऽस्मिन्सयुगेदेवराजः,
 पितृपतिरथचोग्र दण्डमुद्यम्यकोपात् ।
 धनपतिवरणाकारिदक्षिणुस्त यतन्ते,
 निशितशरवगीर्षानियिष्येतयापि ॥१४॥
 नियतमनिन्दोप काननामण्डलोका,
 निपतितफनभक्ष मयंभूतेषुमेव ।
 प्रभयतिमपिपुत्रेहिंसिततोयेनत त,
 पिशिनरुधिगुत्तुसास्त्रम्यमन्त्वद्यगृध्रा ॥१५॥

अमुं देव दत्त, मण्डवं, विद्याधर धर्मवा तिट्ठ गग जो भी उमरी
 महापता बनेगा, उमे भी मैं अपने सम्प्रान्त मे भस्म कर डालूँगा ॥१॥ उम
 प्रतीवं अघामिक, निर्दित, दानिणात्य वो वृद्ध मे म रबर ही परपूर्ण पृथ्वी
 वो भोगूँगा अथवा उमके वध मे अनमर्थ हीने वर अग्नि मे प्रविष्ट हो जाऊँगा
 ॥१०॥ त्रिम दुमनि मे मेरे जोनिरत वनबागी मौनवनी वृद्ध पिता के दात
 वचना के उपरांत भी उनकी हत्या की है, उमे मैं अभी उमके मर वधुमो
 मित्रों तथा पंडित घोर सवार के महिष मार डालूँगा ॥११॥ मैं अब अग्नि
 घोर पनुष वो ग्रहण करता हुआ रथारूढ हीनर शत्रु-सेना के मध्य उपस्थित
 हो कर उमके महान-बापें से लपता हूँ । मेरा वह वृत्त्य सब देवगण देंगे ॥१२॥
 मुट मे मेरे साथ मित्रन पर उमका जो जो भी महापक होगा उम उमरो अपनी
 बाटु घोर सेना द्वारा कुल सहित नाश करने के लिये मैं आज तत्पर हूँ ॥

॥१३॥ इस संग्राम में वज्रधारी इन्द्र, उग्र दंड देने वाले यम, अथवा कुबेर, वरुण और सूर्य भी यदि उसकी रक्षा का प्रयत्न करेंगे तो मैं अपने श्रेष्ठ बाणों से उनको भी नष्ट कर डालूँगा ॥१४॥ मुझ प्रभावशाली पुत्र के रहते हुए भी जिसने मेरे संयमचेता दोष रहित वनवासी केवल गिरे हुए फल से जीवन-निर्वाह करने वाले एवं सब प्राणियों के प्रति मैत्री भाव रखने वाले पिता की हत्या की है । आज उसके रक्त और मांस से भूढ़-भण तृप्ति को प्राप्त होंगे ॥१५॥

१२३—वपुष्मान् बध

इतीप्रतिज्ञायतदानरिष्यंतसुतोदमः ।
 कोपामर्षविवृत्ताक्षःशमश्रुमावृत्यपाणिना ॥१॥
 हाहतोऽस्मीतिपितरं ध्यात्वा दैवं विनिश्चय ।
 प्रोवाचमंत्रिणः सर्वानानिनायपुरोहितम् ॥२॥
 यदत्र कृत्यं तदब्रूत ताते प्राप्ते सुरालयम् ।
 श्रुतं भवद्विष्यत्प्रोक्तं तेन शूद्रतपस्विना ॥३॥
 वृद्धस्तपस्वी स नृपो वानप्रस्थ ब्रते स्थितः ।
 मौनव्रतधनोऽशस्त्रो मन्मात्राचेन्द्रसेनया ॥४॥
 प्रोक्तं ससृष्टया स्वात्म्याद्याथातथ्यं वपुष्मते ।
 तेनापि खड्गमाकृष्य जटांसंभ्येन पाणिना ॥५॥
 धृत्वा जघान दुष्टात्मा लोकनाथमनाथवत् ।
 माता च सदिश्यमां धिक्छब्दं ब्रूवती सती ॥६॥
 गर्दभाग्र्यं च निःश्रीकप्रविष्टा हव्यवाहनम् ।
 तमालिग्न्यनरिष्यंतं प्रयाता त्रिदशालयम् ॥७॥

मार्कण्डेय जी ने कहा—इस प्रकार प्रण करके क्रोध में भरे हुए दश ने घूर्णित नेत्रों से भूँछों पर हाथ फेर कर उन्हें ऊँची किया ॥१॥ और अपने पिता का चिन्तन तथा देव की निन्दा करने लगे, फिर पुरोहितों को बुलाया

घोर अमात्यो के समझ उनसे बोले ॥२॥ दम ने कहा—पिता जो स्वर्गवासी होगये, शूद्र तापम के द्वारा यह बात प्राप सब को ज्ञात हो चुकी है, अब क्या बर्त्स्य, वह मुझे बताइये ॥३॥ सब पर शासन करने वाले वह महाराज वृद्धावस्था में शान्तस्थी होकर गीत व्रत का धवलम्बन कर रहे थे, वपुष्मान्द्र हाग परिचय वृद्धते पर घरी माना इन्द्रमना ने ॥४॥ उसे अपना मन्मूर्छा परिचय यथायं कर में दिया, तभी उस दृष्ट ने तत्वार निकाल कर अपने वामहस्त से ॥५॥ मेरे पिता का अनाथ के समान पकड़ लिया और उनकी हाथा बर दी, तब मेरी सती माता ने मुझ मदभाग्य और नि श्रीक को बिकारा और मेरे पिता का धानिगत करके अग्नि में प्रविष्ट होगई ॥६-७॥

सोऽहमद्यकरिध्यामिधन्ममातुरुदीरितम् ।
 हन्त्यश्चरत्पदादातसेभ्यपरिकल्प्यताम् ॥८॥
 अनिर्याप्यपितुर्वैरमहन्वापितृधातकम् ।
 अष्ट्रन्वाचवचोमातुर्जीवितु किमिहोत्तमहे ॥९॥
 ममिणस्तद्वचश्चत्वाहाहेत्युक्त्वातथाचतन् ।
 कृतवन्तोविमनसं सभृत्यबलवाहना ॥१०॥
 निर्यंयु मपरीवारा पुरस्कृत्यदमनृपम् ।
 गृहीत्वाचामिषोविप्रास्त्रिदालनात्पुरोधमः ॥११॥
 अहिराडिवनि श्वम्यदम प्रायाद्वपुष्मतम् ।
 मीमाषातादिसामताग्निघ्नन्याम्यादिशत्परा ॥१२॥
 निरीक्ष्यत समायातवपुष्मान्मपंपूरितः ।
 ततः दनमुतेनापिदमाज्ञातोवपुष्मता ।
 प्रायात सपरीवार गामात्य मपरिच्छदः ॥१३॥
 अथ पितेन मनसागसंन्यानिदिदेशह ।
 दूतचप्रेपयामासनिगम्यनगराद्वहि ॥१४॥

माना ने जो आज्ञा मुझे भेजी है धन मुझे तत्तनुवार वामें करना है, रथ, घन, पदक आदि से युक्त यह अनुरागिणी सेना गुप्तजित को जाय ॥८॥

पितृ-द्वेषी और पितृ-घातक को मारे बिना और माता की आज्ञा का पालन किये बिना जीवित रहने पर मुझ में उत्साह नहीं रह सकता ॥६॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—उनके वचन सुन कर मन्त्रिगण ने शोक व्यक्त कर राजाशा का पालन किया और वे भृत्य, सेना, वाहनादि के सहित ॥१०॥ सुपरिवार चल पड़े और त्रिकालज पुरोहितों का आशीर्वाद लेकर दम भी ॥११॥ नागराज के समान इवासेच्छुवास छोड़ते हुए श्रीमापालक सामन्तों को मारते हुए दक्षिण दिशा में गये ॥१२॥ सुपरिवार और मन्त्रिगण के साथ वीर वेश में दम का आगमन सुन कर संक्रन्दन-पुत्र वपुष्मान् ने भी क्रोध पूर्वक ॥१३॥ हृङ्गित से अपनी सेना को युद्ध करने का आदेश दिया और नगर से बाहर निकल कर दून के द्वारा यह सन्देश भेजा ॥१४॥

त्वंशीघ्रतरमागच्छनरिष्यंतःप्रतीक्षते ।

सभार्यक्षत्रबंधोत्वंसमायाहिममांतिकम् ॥१५॥

इमेमद्वाहुनिमुक्ताःशिताबाणाः पिपासिताः ।

भित्वाशरीरसंग्रामेपास्यंतिरुधिरंतव ॥१६॥

श्रुत्वादमस्तुतत्सर्वदूतप्रोक्तंययौत्वरन् ।

स्मृत्वाप्रतिज्ञापूर्वोक्तांननिःश्वसन्तुरगोयथा ॥१७॥

आहूतसमरेचैवपुमान्मेनाविकत्थनः ।

ततोयुद्धमतीवासीद्मस्यचवपुष्मतः ॥१८॥

रथोच्चरथिनानागीनागिनाहयिनाह्वी ।

अयुध्वनचविप्रर्षेतद्वृद्धंतुमुल्लूहभूत ॥१९॥

पश्यतांसर्वदेवानांसिद्धमध्वरक्षसाम् ।

चकपेवसुधाब्रह्मन्युध्यमानेदमेयुधि ॥२०॥

नगजोनरथीनाश्चस्तस्यबाणसहस्तुयः ।

ततोदमेनयुयुधेसेनाध्यःक्षावमुष्मतः ॥२१॥

अरे क्षत्रियाधम ! तू शीघ्र ही सामने आ, अरिष्यन्त भी पत्नी के सहित तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं, इसलिये तुरन्त ही मेरे पास आ ॥१५॥ यह रक्त-पिपासु बाण क्षिता पर पैनाये गये हैं और अब मेरी भुजाओं द्वारा चलाये

जाकर तेरे देह को विदीर्ण कर रक्तपान करेंगे ॥१६॥ दूत की बात सुन कर
 और पूर्व प्रतिज्ञा का स्मरण कर सर्प के समान आस त्याग करते हुए द्रुतगति
 से दम दही पहुँचे ॥१७॥ तथा युद्ध के लिये लज्जित होते हुए कहा—प्रवृत्त पुण्य
 आत्मरक्षायां कभी नहीं करते, इसके बदलाव वपुष्मान् के साथ दम का भयान्त
 घोर मराम हुआ ॥१८॥ रथी से रथी, हाथी सवार से हाथी सवार और
 भयारोही से भयारोही भिड़ गये और घोर युद्ध होने लगा ॥१९॥ हे ब्रह्मर्षे !
 उस युद्ध को घपने सामने ही सब देवता, मित्र, गंधर्वादि देख रहे थे, जब
 अत्यन्त क्रोध सहित दम युद्ध में प्रवृत्त हुए, तब पृथिवी कम्पायमान हो उठी
 ॥२०॥ उनके बाणों को मभी हाथी, भय या रथारोही सहन करते थे, दम
 के साथ वपुष्मान् का मेनापति भिड़ रहा था ॥२१॥

।द्विदिव्याधचदमहपुण्यागाधमातिकम् ।
 तस्मिन्निपतितेऽन्यपलायनपरत्सूत ॥२२॥
 मस्वामिनतत प्राहदमःप्रायु दमस्तथा ।
 फणसिदुष्टपितरपातपित्वातपस्विनम् ॥२३॥
 प्रशस्त्र चतपस्यतस्तत्रियासिनिवर्तताम् ।
 ततोनिवृत्त्यसदमगंधयामामसानुज ॥२४॥
 सपुत्र सहस्रवधिर्वाधैर्धुमुधेरथी ।
 तत शरासनान्मुक्तवाणैर्ध्यास्तास्तदादिश ॥२५॥
 दमचमरयवापुमरजालैरपूरयत ।
 तत पितृवधैर्धनैर्वापेनसदमस्तथा ॥२६॥
 चित्तेदताऽदरास्तेषांविद्याधान्यैश्चतानपि ।
 गृहेनैवेनवारोऽनसप्तपुत्रास्त्वयाद्रिज ॥२७॥
 सत्रधिवाधवान्मित्रास्त्रिनाययमसादनम् ।
 वपुष्मान्सरयोक्रोधाग्निहतात्मजवाधव ॥२८॥
 मुमुषेचमनानेजीश ततोऽपिपोषमः ।
 चित्तेदतम्यनावाणान्मदमश्रमहामुने ॥२९॥

उसके हृदय को दम ने बीँध दिया, उसके मिरते वपुष्मान् के सहित समस्त सेना भाग ने लगी ॥२२॥ तब शत्रुनाशक दम बोले—अरे दुष्ट मेरे पिता की हत्या करके तू किवर जा रहा है ॥२३॥ तूने खस्त्र रहित तपस्वी पिता का बध किया है, भाग मत, यह सुन कर वपुष्मान् अपने अनुज, पुत्र एवं बांधवादि के सहित डट कर रथ पर चढ़ा हुआ युद्ध करने लगा और उसने अपने धनुष के द्वारा बाण वर्षा करके सभी दिशाओं को ढक दिया ॥२४-२५॥ उसने अपने बाणों के जाल से रथ अश्व सहित दम को आवृत्त कर और दम ने भी अपने पिता की हत्या से उत्पन्न हुए क्रोध में उत्तेजित होकर ॥२६॥ उसके सब बाणों को काट कर, शत्रुओं के देह बाणों से बीँध कर, एक-एक बाण से उसके सात पुत्र ॥२७॥ अनुज, सम्बन्धी आदि का बध कर दिया, जब वपुष्मान् ने अपने आत्मज तथा बन्धु आदि का मरण देखा, तब वह भी अत्यन्त क्रोध में भर कर ॥२८॥ नागों के समान बाणों के द्वारा दम से युद्ध करने लगा, परंतु दम ने वे सभी बाण काट दिये ॥२९॥

युयुधातेचसंरब्धोपरस्पररजयैषिणौ ।

परस्परशराघातविच्छिन्नघनुषोत्तरा ॥३०॥

गृहीतखड्गावुत्तीर्यचिक्रीडातेमहाबली ।

दम क्षणानृपघ्नात्वापितरंनिहतंवने ॥३१॥

केशेष्वाकृष्यचाक्रम्यनिपात्यधरणीतले ।

शिरोधारायांपादेनभुजमुद्यम्यचाब्रवीत् ॥३२॥

पश्यंतुदेवताःसर्वमानुषाःपन्नगाःस्रगाः ।

पाटयमानंचतृदयंक्षत्रबधोर्वपुष्मतः ॥३३॥

एवमुवत्वाचसदमोत्तृदयंचव्यदारयत् ।

पातुकामश्चसुरैःक्षतजेननिवारतः ॥३४॥

तत्रकारतातस्यारक्तेनैवोदकक्रियाम् ।

आनृष्यंप्राप्यसपितुःपुनःप्रायात्स्वमन्दिरम् ॥३५॥

वपुष्मतश्चमांसेनपिडदानंचकारह ।

ब्राह्मणान्भोजयामासरक्षःकुलसमुद्भवान् ॥३६॥

एवविधाहिराजानोवभृवु सूर्यवसजा ।
 ग्रन्थेपिमुधिय शूरायज्विनोधर्मकोविदा ॥३७॥
 वेदातपारगास्ताश्चनसरयानुमिहोत्सहे ।
 एतेपाचरित श्रुत्वानर पार्प प्रमुच्यते ॥३८॥

इस प्रकार क्रोध पूर्वक एक क्रूर ब्रह्मर्षि को मारने की दण्ड से घोर संज्ञाप करने लग, दानो ही महाबली ये दोनों के ही धनुष टूट गये थे, तब दोनों ही तलवार से युद्ध करने लग, बन में मारे गये पिता की धातु भर याद करके दम से वसुष्मान् के ॥३७-३८॥ केश लीच कर पृथिवी में डाल दिया और उसकी प्रीति का पर्व से श्रावण कर भुजा उठा कर दम ने इस प्रकार कहा ॥३९॥ मैं इस क्षत्रियपुत्र वसुष्मान् के हृदय को विदाग्य करता हूँ, इसे सभी देवता, मनुष्य, सिद्ध और नागगण देखें ॥३९॥ ऐसा कह कर दम ने तलवार से उस का हृदय चीर डाला और उसका रक्त पीने को उद्यत हुए, तब देवताओं ने उन्हें श्रावण ॥३९॥ उन्हें रक्त से दम ने अपना पिता की उदक दान और मान से निन्दित किया इस प्रकार किन्तु शत्रु में मुक्त हुए दम अपनी राजधानी में सोट पाये ॥३९ ३९॥ सूर्यवत् में ऐसे वराहकी राजा हुए तथा अग्न्य पनड राजा पशुपति धर्मात्मा, ज्ञानी एवं वीर हुए हैं ॥३९॥ ऐसे-ऐसे वेदान्त पारंगत हुए, जिनका बल नहीं हो सका और न उनकी गलती की जा सकती है, इनका चरित्र को सुनने वाला मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है ॥३९॥

११३—पुण्य श्रवण पठन फल

एवमुवात्मारजमिनेयमार्कण्डेयामहामुनि ।
 विमृश्यत्रोत्तुकिमुनिचक्रमाख्याल्लिकीत्रियाम् ॥१॥
 प्रस्मानिश्चभ्रुतनस्माद्यत्तं प्रोक्तं महामुने ।
 भनादिसिद्धमेतद्विपुराप्रोक्तं स्वयमुवा ॥२॥

मार्कण्डेयायमुनयेयत्तेस्माभिरुदाहृतम् ।
 पुण्यं पवित्रमायुष्यं धर्मकामार्थसिद्धिदम् ॥३॥
 पठतां शृण्वतां सद्यः सर्वपापप्रमोचनम् ।
 आदावेव कृताये च प्रवृत्ताश्च त्वार एव हि ॥४॥
 पितुः पुत्रस्य संवादस्तथा सृष्टिः स्वयं भुवः ।
 तथामनुनां स्थितयो राज्ञां च चरितं मुने ॥५॥
 अस्मिन् भिरेतत् प्रोक्तं किमद्य श्रोतुमिच्छसि ।
 एतान्सर्वान्निरः श्रुत्वा पठते वासमासु च ॥६॥
 विद्वत्सर्वपापानि ब्रह्मणो ह्यालयं ब्रजेत् ।
 अष्टादशपुराणानि यानि प्राह पितृमहः ॥७॥

पक्षियों ने कहा—हे जैमिने ! महामुनि मार्कण्डेयजी ने इस प्रकार कह कर कौटुकि मुनि को विदा किया और मध्याह्न क्रिया सम्पन्न की ॥१॥ हे महामुने ! जो हमने आपसे कहा है वह सब स्वयं भगवान् मार्कण्डेय जी ने कहा था, हमने भी उन्हीं से सुना है ॥२॥ आपसे कहा गया वह मनीहर पुराण मार्कण्डेय जी के द्वारा कहा गया एवं अत्यन्त पवित्र है, इसके पढ़ने या सुनने से आयु की वृद्धि और सभी कामनाओं की सिद्धि होती है ॥३॥ और इसके पाठ करने से सभी पापों से मुक्ति होती है पहिले आपने जो चार प्रश्न किये थे, उन सब का उत्तर ॥४॥ पिता-पुत्र सम्वाद स्वायंभुव की सृष्टि, मनुष्यों की उत्पत्ति और राजामण का चरित्र भी ॥५॥ आपके प्रति कहे गये हैं, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ? इस सब को सुनने और सभा स्थल में वाचन कराने वाला मनुष्य ॥६॥ सभी पापों से छूट कर ब्रह्म में लीन हो जाता है ॥७॥

तेषां तु सप्तमज्ञेयं मार्कण्डेयं सुविश्रुतम् ।
 ब्राह्मणं पाद्वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा ॥८॥
 तथान्यन्नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम् ।
 आग्नेयमष्टमं प्रोक्तं भविष्यं नवमं तथा ॥९॥

दशमब्रह्मवेवर्त्तं त्रैलोक्येवावस्थितम् ।
 वाराहद्विदशप्रोक्तं स्वादमन्त्रमोदशम् ॥१०॥
 चतुर्दशवामनचर्मात्मपञ्चदशतया ।
 मात्स्यचर्माष्टचर्माष्टद्विदशतया चतुर्दशपरम् ॥११॥
 अष्टादशपुराणानां नामधेयानि यः पठेत् ।
 शिवाय जपते नित्यं सोऽश्वमेधफलमेव ॥१२॥
 सर्गश्च प्रतिमर्गश्च वल्लोमन्वतराणि च ।
 वशानुचरितचर्माष्टपुराणपञ्चदशतया ॥१३॥

तानि सर्वाणि नश्यन्ति तृणवातहतं यथा ॥१४॥

पितामह ब्रह्मा जी ने अठारह पुराण बहे थे उनमें यह मार्कण्डेय पुराण मानवी है, प्रथम पुराण ब्राह्म द्वितीय वायु, फिर वैष्णव, गौड, भागवत ॥१०॥ नारदीय, माण्डूकेय, शाल्वेय अविष्णु ॥११॥ ब्रह्मवेवर्त्त, लिङ्ग, वाराह, स्कन्द ॥१०॥ वामन, कौर्म, मात्स्य, गरुड और फिर अठारहवाँ ब्रह्माण्ड पुराण है ॥११॥ इन अठारह पुराणों के नाम का ही पाठ करने वाला तथा सीनी सदा में जप करने वाला अनुष्य अश्वमेध यज्ञ के समान फल प्राप्त करता है ॥१२॥ सर्ग, प्रतिमर्ग, वश, मन्वन्तर, वशानुचरित यह पाँच लक्षण पुराणों के होते हैं ॥१३॥ चार प्रश्न वाला हम मार्कण्डेय पुराण के मुनने से करोड़ बल के भी पापों का नाश होता है ॥१४॥ तथा ब्रह्महत्या आदि सब महापाप प्रचण्ड वायु से टूटे हुए तृण के समान ही हमके पाठ करने से नष्ट हो जाते हैं ॥१५॥

पुण्यरेदानजपुण्यश्रवणादस्य जायते ।

गर्भवेदाधिपफलममाप्स्याचाधिगच्छति ॥१६॥

यश्चास्यैतज्जपेत् यथादेवपितामहम् ।

गणपुष्पं त्वया चर्माष्टब्रह्मिण्यानाद्यतपंशं ॥१७॥

यथाशक्त्याचदातव्यं नृपैर्ग्रामादिवाहनम् ।
 एतत्पुराणमखिलवेदार्थरूपवृत्तितम् ।
 धर्मशास्त्रं कनिलयंश्च त्वासर्वार्थमाप्नुयात् ॥१८॥
 श्रुत्वापुराणमखिलव्याससंपूजयेद्बुधः ।
 धर्मार्थकाममोक्षाणां यथोक्तफलहेतवे ॥१९॥
 दद्याद्गांगुरवेस्वर्णवस्त्रालंकारसंयुताम् ।
 श्रवणस्य फलावाप्त्यै दानैः संतोषयेद्गुरुम् ॥२०॥
 अपूज्य पाठकर्तारं श्लोकमेकं शृणोति यः ।
 नासौ पुण्यमवाप्नोति शास्त्रचोरः स्मृतो हि सः ॥२१॥

इसके श्रवण करने से वैसा ही पुण्य मिलता है, जैसा पुष्कर में दान करने से मिलता है, इसकी सम्पूर्णता में वेदपाठ की सम्पूर्णता के समान फल की उपलब्धि होती है ॥१८॥ इस पुराण को सुनाने वाले पंडित का ब्रह्मा के समान पूजन करे, गंध, पुष्प, वस्त्रादि से पुराण का पूजन कर ब्राह्मण-भोजन कराये ॥१७॥ राजा यथाशक्ति ग्राम तथा वाहनादि प्रदान करे, यह पुराण सम्पूर्ण वेदार्थ से युक्त तथा धर्म का स्थान रूप है, इसके श्रवण करने से सर्वार्थ सिद्धि होती है ॥१८॥ इस सम्पूर्ण पुराण को सुन कर व्यास पूजन करे तो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थों की प्राप्ति होती है ॥१९॥ स्वर्ण, वस्त्र, तथा अलंकारादि से युक्त गौ गुरु को दे, क्योंकि सुनने का फल प्राप्त करने के लिये दान द्वारा गुरु को संतुष्ट करे ॥२०॥ वाचक की पूजा किये बिना जो पुष्प इसको सुनते हैं, उन्हें कुछ भी पुण्यलाभ नहीं होता, ज्ञानीजन उन्हें शास्त्र चोर कहते हैं ॥२१॥

न तस्य देवाः प्रीणन्ति पितरौ नैव पुत्रकान् ।
 दत्तं श्राद्धं तथेच्छन्ति तीर्थस्नानफलं न च ॥२२॥
 लभते शास्त्रचोरश्च निदांसज्जनसंसदम् ।
 अवज्ञायानश्रोतव्यं शास्त्रमेतद्विचक्षणैः ॥२३॥
 पठ्यमाने त्ववज्ञाते साधुभिः शास्त्र उत्तमे ।
 मूको भवति जन्मानि सप्तमूर्खः प्रजायते ॥२४॥

श्रुत्वा तत्पूजयेद्यस्तु पुराणसप्तमधुन ।

मर्चयापविनिर्मुक्तं पुनात्येव निजकुलम् ॥२५॥

पूजापातिनमदहो विष्णुलोकसनातनम् ।

अनुत्तत पुनर्नेव स भविष्यति मानव ॥२६॥

पुराणश्रवणादेव इरयोगमवाप्नुयात् ।

नास्ति कायनदा तव्यवृषले वेदनिदके ॥२७॥

गुरुद्विजातिनिदायतया भगवता यच ।

मातापित्रोर्निदकाय वेदशास्त्रादिनिदिने ॥२८॥

दक्षता उनसे २७ हो जाते हैं, पितरगण भी भयसम्पन्न होकर उनके द्वारा दिया गया ध्याद ग्रहण नहीं करते और उन्हें तीर्थ स्नान के फल से भी श्रवित होना पड़ता है ॥२२॥ सज्जनो के समाज में उनकी निन्दा होती है, इसलिए विद्वानों का भयजापूर्वक श्रवण नहीं करना चाहिये ॥२३॥ जो मनुष्य माधुमो द्वारा ज्ञान पढ़ने समय भयजा करते हैं वह कई जन्म तक गूने और सात जन्म तक बधिर होते हैं ॥२४॥ इस मतम पुराण का पूजन करने वाले मनुष्य तक पापी से मुक्त हान और अपने कुल को परित्र करते हैं ॥२५॥ यह पवित्र होकर अवश्य ही विष्णुलोक को प्राप्त होते हैं, वहाँ से पुन सत्तार में नहीं लौटते ॥२६॥ केवल इस पुराण के ही सुनने मात्र से उरट्ट ए योग की प्राप्ति होनी है परन्तु यह पुराण नास्तिक, दूद, वेदनिन्दक, गुरुद्वेषी, व्रतत्यागी, माता पिता के निन्दक और शास्त्रादि के निन्दक को प्रदान न करे ॥२७ २८॥

भिन्नमर्मादिने चैव तया वै श्राति कोपिने ।

एते पार्निवदा तव्यप्राणं वरगतरपि ॥२९॥

लोभाद्व्यापिवा माहाद्गमाद्व्यापि विशेषत ।

पठेद्वा पाठयेद्वा पितृगच्छेन्नरकं प्रवृत्तम् ॥३०॥

एतत्सर्वं मुपास्यानवम्यं स्वर्गापवर्गदम् ।

य श्रोति पठेद्वापि मिद्ध तस्य समीहितम् ॥३१॥

प्रापि व्याधिजटु मेनकदा चिन्नाभियुज्यते ।

ग्रहाहत्यादिपापेभ्यो मुच्यते नात्र स शय ॥३२॥

संतःस्वजनमित्राणि भवन्ति हितबुद्धयः ।
 नारयः संभविष्यन्ति दस्यवो वाकदाचन ॥३३॥
 सदर्थो मिष्टभोगी च दुर्भिक्षेन वसीदति ।
 परदारपरद्रव्यहिंसादिकिल्बिषः ॥३४॥
 मुच्यते नेकदुःखेभ्यो नित्यं चैव द्विजोत्तम ।
 अद्विवृद्धिः स्मृतिशान्तिः श्रीः पुष्टिस्तुष्टिरेव च ।
 नित्यं तस्य भवेद्विप्रयः शृणोति कथामिमाम् ॥३५॥

मर्यादा के तोड़ने वाले और जाति को दूषित करने वाले मनुष्य को भी न दे तथा प्राण कंठगत होने पर भी इस पुराण को प्रदान न करे ॥३६॥ यदि लोभ, मोह या भय के कारण इनमें से जो कोई पुराण का पाठ करता है या पाठ करा कर श्रवण करता है, तो वह अवश्य ही नरकगामी होता है ॥३७॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—यह समस्त उपाख्यान धर्म, स्वर्ग और मोक्ष का वाता है, इसे जो पढ़ता है, उसकी सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध होती हैं ॥३८॥ उसे कभी रोगादि से कष्ट नहीं होता और वह ब्रह्महत्या आदि के पापों से मुक्त हो जाता है ॥३९॥ उसके स्वजन और मित्र उसका हित करने वाले हो जाते हैं, उसका कोई भी शत्रु नहीं होता और न चोरों की ही बाधा उपस्थित होती है ॥४०॥ उसके यहाँ श्रेष्ठ धन विद्यमान रहता है, वह मिष्टान्न का भोजन करता और दुर्भिक्ष से कभी भी पीड़ित नहीं होता. पर नारी, पर धन, और पर हिंसा के पापों से ॥४१॥ अथवा अन्य अनेक प्रकार के दुःखों से मुक्त हो जाता है, इस कथा को जो सुनता है, अद्वि, वृद्धि, स्मृति, शान्ति, श्री, पुष्टि, तुष्टि उसके साथ रहती हैं ॥४२॥

मार्कण्डेयपुराणमेतदखिलं शृण्वन्नशो—

च्यः पुमान्यो वासम्यगुदीरयेद्रसमर्थं शोच्यो न सोपि द्विज ।

योगज्ञानविशुद्धसिद्धिसहितः स्वर्गादिलोकेऽप्यसौ—

शक्रार्थं श्रसुरादिभिः परिवृतः स्वर्गे सदा पूज्यते ॥४३॥

पुराणमेतच्छ्रुत्वा च ज्ञानविज्ञानसमुत्तमम् ।
 विमानवरमाह्वयस्वर्गलोके महीयते ॥३७॥
 पुराणाक्षरसंख्या च प्रख्याता तत्त्वबुद्धिना ।
 रत्नोक्ताना पटसहस्राणि तथा चाष्टशतानि च ॥३८॥
 इलोकास्तत्र नवाशीतिरेकादशसमाहिता ।
 कथिता मुनिना पूर्वमार्कण्डेयेन धीमता ॥३९॥
 भारतेनाभवच्छान्मेसशयस्फोटनद्विजा ।
 तद्भवद्भिः कृतयश्नकश्चिदद्य करिष्यति ॥४०॥
 मृषदीर्घायुषः स्यात् प्रज्ञाबुद्धिर्विचारदा ।
 सात्ययोगे तथा चास्तु बुद्धिरन्यमिचारिणी ॥४१॥
 पितृशापकृता ह्वादाहोर्मनस्मय्यपेतुव ।
 एतावदुबत्त्वावचनजगाम स्वाश्रममुनि ।
 चित्तमन्तरमोदारपक्षिणा वाक्यमीरितम् ॥४२॥

इस सम्पूर्ण मार्कण्डेय पुराण का श्रवण करने वाला कभी शोचनीय नहीं रहता, इसके कहने वाला विप्रगण भी शोचनीय नहीं रहते, वे योग, ज्ञान और श्रद्धा के सहित स्वर्गादि लोकों की प्राप्ति होते हैं तथा इन्द्रादि देवतार्जों के साथ रह कर सदा पूजे जाते हैं ॥३६॥ इस ज्ञान विज्ञान से युक्त पुराण का श्रवण करने वाले मनुष्य श्रेष्ठ विमान में बैठ कर स्वर्ग की गमन करते हैं ॥३७॥ पहिले मूढमदर्शी श्री मार्कण्डेय जी ने इस पुराण में छ हजार नी सी श्लोक बहे थे ॥३८-३९॥ जैमिनि ने कहा—हे सखण ! महाभारत में जो सन्देश था, वह सब तुमने मिथ्याभाव से दूर कर दिया, इस प्रकार भ्रम कीज कर लकड़ा था ? ॥४०॥ तुम मत्पन्थ दीर्घायुष्य, नीरोग और बुद्धि विचारदा हा, तुम्हारी बुद्धि सौम्य योग में चोष्ठ भक्ति वाली हो ॥४१॥ तुम पिता के वचन से ही दुर्गा प्राप्ति नहीं हुए हो, ऐसा कह कर और उन सगों के वचनों का स्मरण करते हुए मुनि अपने आश्रम में लौटे ॥४२॥

मार्कण्डेय पुराण का नैतिक व सांस्कृतिक अध्ययन

पुराण रचना की पात्रता और मार्कण्डेय की दूरदर्शिता

इस पुराण के प्रणेता अथवा रक्ता महर्षि मार्कण्डेय हैं। उन्हीं के नाम से यह पुराण अभिहित हुआ है। मार्कण्डेय उच्चकोटि के साधक और आत्मानुसंधान के प्रवीण पात्र थे। वे आत्मसाक्षात्कार की अन्तिम सीढ़ी तक पहुँच चुके थे। नारायण उनके इष्ट देव थे। उनके साक्षात् दर्शन होने के सम्बन्ध में स्वयं नारायण ने प्रकट होकर महाभारत में मार्कण्डेय को सम्बोधित करते हुए कहा 'हि मार्कण्डेय ! तुम्हारे ब्रह्मचर्य की महानता अवर्णनीय है। मेरे जिस रूप को देवता भी तत्त्व रूप से नहीं समझ सकते, उसे तुम अपने प्रत्यक्ष नेत्रों से देख रहे हो। मैं नारायण हूँ, विश्व का शाश्वत और अमय्य प्रसव स्थान हूँ। इन्द्र, प्रजापति, कुबेर, शिव, ब्रह्मा, विष्णु, यम, सोम सब मैं ही हूँ। चारों वेद मुझ से ही प्रविर्भूत होते हैं और मुझ में ही समा जाते हैं। जो कुछ भी स्थावर और जंगम वस्तुओं को तुमने देखा है, उन्हें मेरी ही आत्मा समझो, 'मैं नारायण हूँ।'

मार्कण्डेय ने महाभारत में युधिष्ठिर के एक प्रश्न के उत्तर में कहा है 'एकाग्रबीभूत स्थिति में एक वटवृक्ष की शाखा पर मैं ने एक बालक के दर्शन किए जो स्वयं नारायण थे। उन्होंने स्वयं कहा—मार्कण्डेय ! मैं तुम से सन्तुष्ट हूँ, तुम थक भये होगे, तुम मेरे शरीर में विश्राम लो।' कथा के अनुसार मार्कण्डेय उस नारायण रूपी बालक के मुख में चले गये, वहाँ उन्होंने भारत वर्ष के दिग्ग दर्शन किये—उसके जनपद, नगर, नदियाँ और पर्वत।' जिस तरह से भगवान् कृष्ण ने धर्जुन को पात्र समझ कर विराट् रूप के

दर्शन दिये थे, उसी तरह से नारायण ने मार्कण्डेय को उत्तम पाप जानकर उतरे अपना माझातु दर्शन दिया और भारत वर्ष का विराट् रूप दिखाया। दूसरे पक्षों में उन्होंने मार्कण्डेय को भारत वर्ष की भौगोलिक समीक्षा और उसके निवासियों का नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आत्मिक विवेचन करके मार्ग दर्शन करने का अधिकार दे दिया हो। नारायण को मार्कण्डेय उत्तम पाप दिखाई दिये। ऐसा लगता है कि मार्कण्डेय पुराण की रचना का भार स्वयं नारायण ने मार्कण्डेय को सौंपा हो। इसमें स्पष्ट है कि मार्कण्डेय पुराण के प्रलयन की वृद्धभूमि में स्वयं नारायण उपस्थित हैं। प्रस्तुत पुराण में जो भी शिक्षाएँ और प्रेरणाएँ दी गई हैं, वे मार्कण्डेय के मौलिक में नारायण के प्रकाश से ही आई हैं। पुराणों को जैसे भी देशों की तरफ बसाया जानी चाहती है। यद्यपि जो मिथ्यात महन रूप में प्रतिपादित किये गए हैं, उन्हें बर्णनों, कहानियों और सपनों के माध्यम से पुराणों में दर्शित किया गया है ताकि वे सर्व साधारण की समझ में आ सकें। देशों को ईश्वरीय रचना मानने में किसी को सन्देह ही नहीं हो सकता। अब यदि मार्कण्डेय पुराण की रचना के लिए नारायण ने मार्कण्डेय को पाप समझ कर आदेश दिया हो तो इसमें कुछ अतिशयोक्ति नहीं है।

पुराण की रचना में मार्कण्डेय ने अपनी पापता सिद्ध कर ली। उन्होंने युगातुरूप सामग्री का चयन किया, पुराणों को संस्कारित किया, जो दोष कुछ अन्य पुराणों में थे, उन्हें दूर किया, साम्प्रदायिक विद्वेष में दूर रहे, किसी भी साम्प्रदायिक व देवी देवता का उन्होंने घराबन नहीं किया, उनके लिए सभी देवता समान हैं, वे तो सभी को नारायण रूप देखते थे। जिसे नारायण का स्वयं साक्षात्कार हो गया हो, उसके मन में भेदभाव की उत्पत्ति कैसे हो सकती है? वे तो सभी प्राणियों में अपने ही रूप के दर्शन करके उनके ब्रह्माण्ड की योजना में भग्न रहते होते और मरने मार्कण्डेय ने किया भी कैसे हो।

मार्कण्डेय दूरदर्शी थे, उन्होंने मानव मन का गहन अध्ययन किया था, वे स्वयं मायक थे और प्रियात्मक रूप से देखा था कि किस तरह से मनुष्य

महान अथवा नीचे से ऊपर बढ़ने की क्रियाएं सम्पन्न होती हैं। वे श्रृष्टि थे, आत्मसाक्षात्कार किए हुए थे, उन्हें स्वयं आत्मा के अतिरिक्त संसार में कुछ सूझना ही न होगा। वे इस जगत की अनित्यता को भली भाँति अपने खुले नेत्रों से देखते होंगे परन्तु जगत से उन्होंने मुँह नहीं मोड़ा। वे जानते थे कि स्थूल शरीर की सुरक्षा के लिए हर प्रकार की भौतिक सामग्री की अपेक्षा रहती है। उनसे घृणा करना अपने मार्ग को अवरोध करता होगा। आत्मोत्थान के लिए दोनों का समन्वय अभीष्ट है। मार्कण्डेय ने अपने पुराण में यही किया है। भौतिक, नैतिक, सामाजिक और आत्मिक सभी विषयों का प्रतिपादन किया गया है।

भौतिक विद्याओं के विकास का समर्थन—

महर्षि ने भारत वर्ष के भूगोल का विस्तृत विवेचन किया है। जिससे भारत की प्राचीन सीमाओं का दिग्दर्शन होता है। पर्वतों और नदियों का भी विस्तार से वर्णन है। सम्पूर्ण जनपद सूची भी दे दी गई है। मार्कण्डेय राष्ट्रवादी संत थे। आज तों पढ़े-लिखे लोग अपने देश की उपेक्षा करते हैं और इङ्ग्लैंड, अमेरिका की प्रशंसा के पुल बाँधते नहीं थकते परन्तु मार्कण्डेय ने भारत को कर्म-भूमि और शेष भू-भाग को भोग-भूमि घोषित किया है। प्रह्लापुराण २७।७२-७८ में भी कहा है कि भारत में जन्म लेने वाले धन्य हैं। यहाँ सब पुण्यों के फल प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते हैं। स्वर्ग के देवता यहाँ जन्म लेने में गौरव का अनुभव करते हैं। जो कार्य यहाँ के लोग कर सकते हैं, वे देवताओं और असुरों किसी के लिए भी सम्भव नहीं है। वास्तव में प्राचीन भारत का गौरव ऐसे ही था जिसकी समृद्धि, विकास और उत्थान की ख्याति चारों ओर फैली हुई थी। आज भी यदि ऋषियों के पदचिह्नों पर चलने लगे तो उस खोए गौरव को पुनः प्राप्त कर सकते हैं।

महर्षि ने भौतिक विद्याओं की उपेक्षा नहीं की। जीवन के पूर्ण विकास को भी आवश्यक मानते हैं। तभी उन्होंने धन संग्रह करने के सभी उपायों का वर्णन किया है जिसे पद्मिनी विद्या का नाम दिया गया है। व्यापार द्वारा

धन कमाने के जितने भी साधन हो सकते हैं, उन सब का व्योरा पुराण में दिया गया है। जानिये यह है कि व्यक्ति को घोर परिश्रम करके भौतिक जीवन को सुखों वनावन के लिए धन का सम्पन्न करना चाहिए परन्तु अनैतिक उपायों से नहीं। ये धन को व्यक्तिगत सम्पत्ति भी नहीं मानते। जब राष्ट्र को उसकी आवश्यकता पड़े तो उससे मोह न करके राष्ट्रहित में सारी सम्पत्ति का दान कर देना चाहिए। हरिश्चन्द्र का मन्त्रा ध्यात्मान इसी उद्देश्य से लिखा गया है कि धनवानों को प्रपन्न धन से मोह नहीं करना चाहिए। यह ईश्वर द्वारा सन्तानों के लिए उन्हें दिया गया है। यदि वह इसका दुरुपयोग करेंगे तो उन से छीन लिया जायेगा। मार्कण्डेय धन कमाने के पक्ष में तो हैं पर हरिश्चन्द्र को आदर्श मान कर समय आने पर सर्वस्व तुटाने के लिए तैयार रहने को प्रेरणा भी देते हैं।

महर्षि जगत की अनित्य, लक्षणज्ञ, और धर्मवादी मानते हैं परन्तु भारत के इस मन्दिर की रीति की सुरक्षा पर भी पूरा ध्यान देते हैं। पुराण में शरीर विज्ञान का प्रतिपादन किया गया है, जो आधुनिक विज्ञान से मिलता है। इस मन्त्र में लिखा है कि रज और शीत के मिश्रण से विष तरह नये शरीर की रचना प्रारम्भ होती है और इस तरह उसका क्रमिक विकास होता है। गर्भ में शरीर का पोषण किस प्रकार से होता है, माता और गर्भस्थ शिशु के शारीरिक सम्बन्ध की प्राकृतिक व्यवस्था का वर्णन है। प्रायु-बोध चिह्नितता का भी वर्णन है जिससे शरीर का प्रभाव रोग होने पर भी स्वास्थ बनाया जा सके। आयुर्वेद के उपायों पर भी प्रकाश डाला गया है। इस वं पुत्र राज्य वर्धन की राखी में उसने सर पर तपस्व बाल देखा तो दुखी हुई। राजा ने समझा कि अब मृत्यु निश्चित है और ज्ञानप्रस्थ में प्रवेश कर इन में तप करने चलना चाहिए। प्रजा पाहती थी कि वही राजा राज्य स्थापन की बागदोर संभालते रहें। प्रजा ने राजा की आयुर्वेद के लिये सूर्य-देव की सामूहिक प्रार्थना का निश्चय किया और कामकाज पर्वण पर अनुष्ठान में लग गई। तीन मास की उपासना के बाद सूर्यदेव प्रसन्न हुए और राजा की आयु दस हजार वर्ष करने का वरदान दिया। अनित्यता की सीढ़ी में वर्णित

यह कथा आयुर्वृद्धि के लिए सूर्य की शरण में जाने को इज्ञित करती है। आधुनिक विज्ञान ने भी सिद्ध किया है कि सूर्य ही समस्त भौतिक शक्तियों का स्रोत है और शरीर के विकास, सुरक्षा, सुदृढ़ता और चिकित्सा के लिए सभी आवश्यक तत्व इसमें विद्यमान हैं। सूर्य किरणें शरीर के लिए अत्यन्त आवश्यक मानी जाती हैं। जो लोग सूर्यदेव से विमुख रहते हैं, उन पर ही रोग आक्रमण करने का साहस करते हैं। सूर्य किरणों से रोग मुक्ति को एक नवीन चिकित्सा पद्धति का भी आविष्कार हो चुका है। सूर्य के बिना पृथ्वी पर मानव का जीवन असम्भव है। सूर्य के भ्रमाव में जीवधारी अपने प्राणों की रक्षा नहीं कर सकते। जहाँ सूर्य के यदाकदा दर्शन होते हैं, वहाँ पर जब सूर्य निकलता है तो उत्सव मनाए जाते हैं। तभी भारत में सूर्य की देवता की संज्ञा दी गई है और मार्कण्डेय पुराण में भी उसका भव्य स्तवन किया गया है।

पुराणकार मनोरंजन के साधनों को आवश्यक मानते हैं और कला की प्रशंसा करते हैं। जिसमें गुण रूप नहीं होता, उसे नाटक में सफलता प्राप्त नहीं होती। नृत्य का सुन्दर अधिष्ठान आवश्यक है। उसके बिना नृत्य एक विडम्बना ही रह जाती है।

ऐसा लगता है कि प्राचीनकाल में सब प्राणियों की बोली समझने की विद्या का विकास हो चुका था तभी विभावरी ने जब स्वरोधिष को आत्म-समर्पण किया तो विभावरी ने सब प्राणियों की बोली समझने की विद्या को शुक्ल रूप में प्रदान किया।

जिस समय पुराण की रचना हुई, उस समय मंत्र विज्ञान की प्रक्रिया उच्चशिखर पर थी। मंत्र-विज्ञान की एक शाखा-इष्टि क्रिया का उल्लेख किया गया है। एक राजा की पत्नी किसी कारण से राजा को छोड़ कर चली गई। एक ब्राह्मण व राजा से मित्रबिन्दा नाम की इष्टि करादी और जब वह साधना पूरी हो गई तो ब्राह्मण ने राजा से कहा "अब आपकी पत्नी आप में पूर्ण अनुरूप रहेगी, अतः आप उसे प्राप्त करने का प्रयत्न कीजिए" यह मंत्रविज्ञान का ही चमत्कार है।

कर्तव्य परायणता का निर्देश—

पुराणों में क्षत्रिय राजाओं के दायें, साहस और जीवन क्षत्रियों का मित्रता उत्प्रेषित मिलता है। उनमें क्षत्रियों के क्षत्रिय का पूर्ण पवित्र मित्रता है। वे प्रथम शरीर की प्राप्ति केन्द्र भी कर्तव्य पालन करते हैं और प्रजा को सुरक्षा को अन्त आकर्षण धर्म मानते हैं। सभी कहा है “हृष्य यमवान क्षत्रियों के सामने यदि हम कन्या का अन्वेषण हो जाये तो हमारे जीवन की धिक्कार है। जो दुष्ट लोगों से दुष्टी शक्ति की सुरक्षा करता है, वही सच्चा क्षत्रिय है।

असक के पूरने पर महात्म्या ने ब्रह्माण्ड के धर्म का विवेकन करते हुए कहा “दान, अन्नदान और यज्ञ यह ब्राह्मण के निरपेक्ष धर्म हैं” चारों पणों और धर्मों के कर्तव्यों का उत्प्रेषण है।

राजा के कर्तव्य तो विस्तार से वर्णित किये गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ब्राह्मण की तरह उस समय भी शासन धर्म में स्वाभिमन्यता का अन्वेषण का युक्त था सभी कह कहे शब्दों में शासकों की चेष्टावली देते हैं कि “वैश्य धर्मों का धर्म १२ माँ माँ राजा की इच्छा देता है कि उनके जान-मान की सुरक्षा हो सके। धान, धी, लक्ष आदि का तथा विमान अनाज का छटा भाग इनीनिए देते हैं। जो राजा व्यापारियों से उसकी वाप का अधिनाम माग मने हैं वह बोर हैं। यदि वह लेकर भी राजा प्रजा की सुरक्षा में असमर्थ रहता है और प्रजा की धर्म उपायों का महारा लेता पड़ता है तो राजा निश्चय ही नरक जाता है। यदि जो-से रक्षा नहीं कर सकता तो वह पापी कहलाता है।”

इस तरह से मार्कण्डेय एक स्वतन्त्र और निर्भय विचारक की तरह अपने विचार व्यक्त करते हैं। उनका उद्देश्य प्रजा की भलाई है। उनमें उन्हें ब्रह्म भी महता पडे तो उनके लिए वे तैयार हैं। शासन धर्म का ब्रह्म विरोध करने पर क्या परिणाम निकलने है, इसमें यही परिचित है। फिर भी सभी क्षत्रियों की धार्मिक को अन्त नहीं करते बल्कि निर्भय रूप से उनका प्रसार करते हैं। शासन में ऐसे विचारक हो जनहित में सफल होते हैं।

मार्कण्डेय आध्यात्मवादी है, आत्म-साक्षात्कार कर चुके हैं, परन्तु भौतिक वाद की ओर आँख मूँदना उन्हें अभीष्ट नहीं है। इसीलिए अनेकों प्रकार की भौतिक विद्याओं की ओर उन्होंने अपने पाठकों की आकृष्ट किया है। वे चेतावनी भी देते हैं कि इन में लिप्त रहना निरी मूर्खता होगी, केवल भौतिक विकास पर ही सन्तुष्ट न हो जाना, मानव का चहुँमुखी विकास होना आवश्यक है। पारिवारिक, सामाजिक, नैतिक और आत्मिक सभी धाराओं में उसका प्रवेश होना चाहिये और बिना विश्राम के प्रगति पथ पर निरन्तर आगे बढ़ते चले जाना चाहिए। केवल भौतिक या आध्यात्मिक—दोनों एकांगी हैं। दोनों का विकास ही पूर्ण विकास माना जाता है।

पारिवारिक व सामाजिक समस्याओं का समाधान—

मार्कण्डेय योग्य चिकित्सक थे। वे उलझी गुस्त्रियों को सुलझाना जानते थे और हवा का रुखा देखा कर उसी के अनुसार अपनी नीति का निर्धारण करते थे। उनके सामने बौद्ध धर्म का व्यापक प्रचार हो रहा था। जनता का भुक्ताव प्रवृत्ति मार्ग की अपेक्षा निवृत्ति मार्ग की ओर अधिक होने लगा था। परिणामतः गृहस्थ में प्रवेश की अपेक्षा लोग सन्यास ग्रहण करना अधिक पसन्द करते थे। गृहस्थ में प्रत्यक्षरूप से लौकिक सुख की उपलब्धि थी परन्तु सन्यास में पारलौकिक कल्याण का लोभ निहित था। इससे अनीश्वरवादी धारा का प्रवाह वह चला। समाज में एक अजीब पागड़पन प्रागया। भारतीय ऋषियों ने चार आश्रम बड़ी सूझबूझ से बनाये थे। उसमें भी सन्यास का विधान है परन्तु गृहस्थ और वानप्रस्थ आश्रम के बाद जब सावक उसकी पात्रता प्राप्त कर लेता है। जब तक मनःस्थिति में सन्यास का रंग न आए, तब तक उससे अपेक्षित लाभ की आशा करना व्यर्थ है भले ही घर बार छोड़ने और त्यागमय जीवन व्यतीत करने का ढोंग रचा जाये। मार्कण्डेय ने इस व्यववहारिक प्रवृत्ति का विरोध किया, अपने पक्ष में व्यववहारिक समाधान प्रस्तुत किया, गृहस्थ के आदर्श कर्तव्यों का निरूपण किया। उन्होंने बताया कि किस प्रकार से गृहस्थ आश्रम में रहकर ही

लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार की विद्विषी प्राप्त की जा सकती है। इनके सभी पक्षों का प्रतिपादन किया। महातत्त्वा के माध्यम से उन्होंने अपनी विचारधारा प्रकट करते हुए कहा है कि जिसने गृहस्थ आश्रम ग्रहण किया, यह समझता चाहिए कि उसने विश्व के पालन का भार अपने कंधों पर ले लिया है। देव, पितर, मूनि, भूत, मनुष्य, रुमि, कीट, पतंग, पशु और पक्षी सभी गृहस्थ आश्रम से ही जीवित रहने हैं और उन्हीं से गृह होते हैं। तेरहवें मनु रोष्य की जन्म जन्मा मे प्रजापति रवि और पितरो के सम्हाल मे भी यह अर्वा आई है। पितरो ने रवि को सम्बोधित करते हुए कहा 'वरस। तुमने गृहस्थ को छोड़ कर अशुभ काम नहीं किया। गृहस्थाश्रम स्वयं और मोक्ष दोनों का माधन है। उन्ही आश्रम में रहकर ही शक्ति देवता, ऋषि, पितर और मतिधियों के प्रति अपने कर्तव्य को निभाते हुए उत्तम लोकों की प्राप्ति कर सकता है।'

सन्धास मागियों की दृष्टि तो एक ओर थी परन्तु मार्कण्डेय ने चारों ओर घूम कर देखा तभी एक मुनिद्वित नीति को अपनाया। यदि युवक सन्धासी हो जाए तो सोच की युक्तियों का क्या होगा। जीवन के प्रवेग पर काम भावों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है, यदि उनकी पूर्ति की सामाजिक व्यवस्था न हो पाये तो अर्न्तगत उपायों की ओर मन का दौटना कौन रोक सकता है? हर एक में समय की साधना कहाँ से आए? इसका कुप्रभाव अरिष्ट पर पड़ेगा और स्वच्छ जल में कीचड़ के छींटे पड़ जायेंगे। इस कुप्रवृत्ति का विरोध करते हुए मार्कण्डेय ने व्यवस्था दी कि सन्ध्याम श्रेष्ठ है परन्तु गृहस्थ उससे भी श्रेष्ठ है क्योंकि सन्धासी गृहस्थ पर निर्भर करते अपनी माधन का संवाहन करता है। घादती और रयाग समय पर ही शोभा देते हैं। मन की इस के अनुरूप परिपक्व करने पर ही यह अच्छे लगते हैं। किरकहीन रयाग का कोई मूल्य नहीं होता। जब मन से प्रेरणा उत्पन्न होती है और वह उसे निभा सकने की सामर्थ्य रखता हो तो सभी रयाग की बाह्यारिक रूप देना चाहिये।

दूसरा मार्ग यह है कि जब युवक सन्यासी हो रहे हैं तो युवतियाँ भी उसी मार्ग पर चलने लगे। सन्यास ग्रहण करने पर भी जब युवक और युवतियाँ साथ रहेंगे तो वहाँ पर भी वही प्राकृतिक प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न होंगी, जिन्हें दोष, व्यभिचार और चरित्रहीनता की संज्ञा दी जाती है। मठों में जहाँ स्त्री और पुरुष दोनों निवास करते हैं, वहाँ ऐसी घटनाओं की चर्चा प्रायः सुनी जाती है। युवक सन्यासियों के पास जहाँ स्त्रियों का आश्रय जाना बना रहता है, वहाँ भी बड़ा हुआ काम उभर पड़ता है और अपने बाह्य वेष को लविजित करने में संकोच नहीं करता। सम्भव है उस समय भी ऐसी घटनाएँ घटी हों और दूरदर्शी ऋषि ने समाज को नया मोड़ देना चाहा हो। कुछ भी हो, वे विवाह के पक्ष में थे। तभी उन्होंने कहा कि स्त्रियों को बहुत दिन तक पिता के घर बन्धु बान्धवों के बीच रहना यशस्कर नहीं होता। उनका अपने पति के घर रहना ही बन्धु बान्धवों को अभीष्ट होता है। विवाह होने पर भी स्त्री का अधिक दिन तक बन्धु बान्धवों के बीच रहना ठीक नहीं माना गया है। सातवें मनु की कथा में इसका विवेचन है। स्वष्टा की पुत्री संज्ञा का पाणिग्रहण-संस्कार सूर्य से हुआ था। एक बार संज्ञा को पिता के घर अधिक दिन हो गये तो पिता ने पुत्री से कहा—“इस तरह से तुम्हारे धर्म का लोप हो रहा है। बन्धु बान्धवों के बीच स्त्री का अधिक दिन तक रहना ठीक नहीं है। तुम मेरे लिए पूज्य हो और मैं तुम से प्रसन्न भी हूँ पर तुम्हारा पतिग्रह मैं जाना ही ठीक है।”

विवाह के नियमों का विस्तृत विवेचन है। पिता के अभाव में स्त्रियों को अपने पति के चुनाव की स्वतंत्रता दी गई है। कौसी कन्या से विवाह करना चाहिए, उसके लक्षणों का भी वर्णन किया गया है। पुत्र प्राप्ति के वैज्ञानिक नियम का भी उल्लेख है कि “जो पुरुष कन्या जन्म नहीं चाहता। वह पाँचवीं रात छोड़ कर छठवीं रात में स्त्री संग करे क्योंकि इसके लिए शुभ रात्रि ही श्रेष्ठ मानी गई है।” ऋतुकात्र के दिन, चौदश, अमावस्या, अष्टमी अथवा, संक्रान्ति काल में नारी समापम का निषेध किया गया है।

विवाह ८४ पवित्र आयोजन है, सामाजिक सुखद्वया का साधन है, कृति सच मन की एक व्यवस्थित प्रक्रिया है, ऋषियों ने इसे पूरुषा प्राप्ति का साधन बनाया है भोग का नहीं। भोग को सोमा स्त्री के ऋतुमती होने पर ही है अन्यथा नहीं। नारी को केवल भोग की सामग्री मात्र मान लेना उचित नहीं है। जो नारी को केवल अपनी वसला की तृप्ति का साधन मानते हैं, वे अपनी पत्नी से सन्तुष्ट नहीं होते और निरव नया स्थान देखने की टोह में रहते हैं। इसी रूपिण विचारधारा ने बहुपत्नी प्रथा को जन्म दिया। राजाओं में इसका प्रचलन था। इस से पारिवारिक क्लेश भी वृद्धि होती है। दोनों पतिमा द्वेष की अग्नि में जलती रहती हैं। उनकी सन्तान भी इसी महारोग का शिकार होती है। यह छूत्र का रोग पीडियों का वलन है। राम दत्तवाम की पृष्ठभूमि में इसी कुप्रथा का शीघ्र भनकता है। कन्या के द्वेष में ही राम की राजतिलक की वज से बन जाने की बाध्य किया। ऋषि न स्वरोचित के सम्बन्ध में कहा है कि यह पुरुष धन्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि 'एक स्त्री से समस्त दुसरी स्त्री के सम्पर्क करने में इसे लज्जा नहीं आती। यह भनक स्त्री से भी सम्पर्क रखता है। इसका बिन कितो में अनुरक्त नहीं है। किसी एक आनन्दन में प्रसुराम होना बिल का स्वभाव है, धन धनेक आमापी में इसकी प्रीति कैसे हो सकती है। यह निरवच जानो कि न इन स्त्रियों में इसका प्रेम है और न इसमें इन स्त्रियों का प्रेम है। इनका परस्पर प्रेम अवज्ञा एक विनोद मात्र है।' स्वरोचित ने अपनी पत्नी मनोरमा के अतिरिक्त त्रिमावरी और कन्यावती से भी विशाह कर लिया था। पति-पत्नी में हार्दिक प्रेम न होने पर पारिवारिक सुख धान्ति की उपमन्त्रि सम्भव नहीं।

पारिवारिक जीवन को सुखी बनाने के लिए दोनों को अपने धर्तव्यों पर ध्यान देना चाहिए। पुराणकार ने दोनों का ध्यान इस ओर आहूत किया है। कहा है 'वेद की आज्ञा है कि पति की मरती पत्नी की रक्षा करने का चाहिए, क्योंकि पत्नी की रक्षा में सन्तान की रक्षा होती है। पत्नी में अति सनद के रूप में स्वयं जन्म लेता है। जब पत्नी की रक्षा में स्वयं अपनी

रक्षा होती है।" एक और स्थान पर कहा है। "पति को सदैव अपनी पत्नी का भरण और रक्षा करनी चाहिये क्योंकि धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति में पत्नी पति की सहायिका होती है। जब पत्नी और पति प्रेम पूर्वक व्यवहार करते हैं, तभी धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि होती है। पत्नी को त्यागने से धर्म का त्याग हो जाता है। व्यक्ति किसी भी वर्ण का क्यों न हो, वह पत्नी के अभाव में किसी भी कर्म के योग्य नहीं रह जाता।

आदर्श पत्नी के कर्तव्य का बोध कराते हुए ऋषि ने अनसूया जी से कहलवाया है "पुरुष महान कष्ट उठाकर जो पुरुष प्राप्त करते हैं, स्त्रियाँ केवल पति सेवा से ही उसका आधा भाग प्राप्त कर लेती हैं। स्त्रियों के लिए दश, आठ और उपवास के लिए प्रत्येक विधान नहीं है, वे पति की सेवा से ही इहलोकी को प्राप्त कर लेती हैं। पति नारी की श्रेष्ठ भति है।" एक कौशिक नाम के कोड़ी ब्राह्मण की कथा दी गई है जिसकी पतिव्रता पत्नी ने सूर्य का उदय रोक दिया था क्योंकि मूली पर चढ़े एक अन्य ब्राह्मण ने उसके पति को शाप दिया था कि सूर्य उदय होते ही उसकी मृत्यु हो जायेगी। ऐसी पतिव्रता नारियों की कथाएँ अन्य पुराणों में भी वर्णित हैं। पत्नी पति की सच्ची मित्र और सलाहकार होती है। हरिश्चन्द्र के आश्वान में जब विश्वामित्र को वसिष्ठा देने का कोई साधन दिखाई नहीं देता और वह चिन्ताग्रस्त हो जाता है, तो पत्नी उनसे कहती है—महाराज ! चिन्ता छोड़ दो, सत्य का पालन करो, सत्य से च्युत मनुष्य इमशान के समान त्याग्य होता है। पुरुष के लिए सत्यता से बढ़ कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। जिसका वचन असत्य होता है, उसके अग्निहोत्र, वेदाध्ययन, दान आदि समस्त पुण्य कर्म व्यर्थ हो जाते हैं। धर्म शास्त्रों में सत्य से उत्थान और असत्य से पतन होना बताया है।" आदर्श पत्नी के यह विविध रूप दिखाए गए हैं।

पत्नी का एक और महत्वपूर्ण रूप माता का है। मदालसा को प्रसिद्ध कथा इसका माध्यम चुना गया है। मदालसा अपनी संतान को इच्छानुसार धनाढी है। मृत्यु की प्रवित्र धारा के साथ अपने उद्देश्य के अनुकूल वस्त्र

को सोरियो देनी है। परिणाम स्वरूप बच्चे में जैसे ही संस्कार उत्पन्न होते हैं। मनोविज्ञान के पाठवाक्य पण्डितों ने तो आज इस तथ्य की खोज की है परन्तु हमारे ऋषियों ने हजारों वर्षों पूर्व इसे प्रकट कर दिया था। मदालसा ने अपने तीन पुत्रों को सोरियो और उपदेशों से व्याघ्रात्मवादी बनाया तो राजा को विभत्ता होने लगी कि हमारे सभी पुत्र विरक्त होने गए तो हमारे बाद राज्य का संचालन कौन करेगा? राजा के अनुरोध पर मदालसा ने चौथे पुत्र को अपने की शिक्षा दी। वह पुत्र आदर्श शासक निकला।

परिवार में माता-पिता के साथ पुत्र का भी अपना स्थान है। सभी की मिलाकर एक परिवार बनता है। जब सभी को अपने-अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। ऋषि ने कहा है 'पिता द्वारा प्रजित यश, धन और वीर्य को जो कम नहीं होना देता, वह मध्यम कोटि का पुत्र है। जो अपनी शक्ति से पिता के वीर्य आदि से अधिक वीर्य प्राप्ति का सम्पादन कर लेता है, वह उत्तम कोटि का पुत्र है और जो अपनी प्रकृत्ययता से पिता के यश, धन को कम कर देता है, वह मध्यम कोटि का पुत्र है।' कुपुत्र की अनेक स्थानों पर अभ्यन्ता की गई है। "मनुष्य का पुत्रहीन होना अशुद्धा पर कुपुत्रवान् होना अप्रज्ञा नहीं क्योंकि कुपुत्र माता पिता के हृदय को सदा संतप्त करता रहता है और स्वर्गस्थ पितरों को नीचे गिरा देता है। उस दुर्बली का जन्म माता-पिता के लिए दुःखदायक होता है। वह माता-पिता की चिन्ता से असमय में ही मृत्यु बना देता है।" तुल्यनाम के ब्राह्मण ने पाप एक बार इन्द्र परी के रूप में आए और अपने भ्रातिभ्य के लिये मनुष्य का मांस प्रकट करके रक्त माँगा। ब्राह्मण ने अपने पुत्रों से पक्षी का पानिष्य कराना चाहा परन्तु शरीर के मोह में पड़कर उन्होंने अपनी प्रममयंता प्रकट की। इस पर ब्राह्मण ने अपने पुत्रों की पक्षी होने का दाव दिया।

परिवार की स्वर्गीय बनाने के लिए जहाँ पति पत्नी का प्रेममय व्यवहार आवश्यक है, वहाँ सन्तान की भी ध्यातावनी होना चाहिए। शरीर के सभी अंग पुत्र होने पर ही शरीर स्वस्थ रह सकता है। एक छोटा सा छोटा भी सारे शरीर के लिए दुःखदायी हो जाता है। परिवार में जब एक

भी सदस्य अपने कर्तव्यों की अवहेलना करता है तो स्वर्ग को नरक बनने में देर नहीं लगती ।

उत्थान के व्यक्तिगत व सामाजिक नियमों का विवेचन—

परिवार की शान्ति सदस्यों के आपसी नम्र व्यवहार पर निर्भर करती है परन्तु यही पर्याप्त नहीं है । सुख वृद्धि के लिए उनके शरीर हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ होने चाहिये । स्वस्थता के नियमों की जानकारी होनी चाहिए । सभी को सदाचारी, चरित्रवान और सिद्ध होना चाहिए तभी समाज में उनका सम्मान स्थिर रह सकता है । चरित्र को सम्पत्ति माना गया है । परिवार को यह शोभा है । जहाँ इसका प्रभाव रहता है, वह निर्धन परिवार कहलाता है । आस्तिकता का सदाचार से घनिष्ठ सम्बन्ध है क्योंकि ईश्वर को सर्वत्र व्यापक मानने वाला दुराचारों से भय खाकर दूर रहता है ।

स्वस्थ और सम्य नागरिक बनने के लिए महर्षि मार्कण्डेय ने विस्तृत नियमों का प्रतिपादन किया है जो विज्ञान और अनुभव की कसौटी पर खरे उतरते हैं । प्रातःकाल उठकर मल-मूत्र त्याग, दंत धावन, तेल मर्दन और स्नान के नियम बताये गये हैं । स्नान करने पर विशेष बल दिया गया है । स्वच्छता को स्वास्थ्य का एक आवश्यक नियम बताया गया है । यहाँ तक कि दूसरे के पहने हुए जनेऊ विभूषण और कर्मरत्न को भी ग्रहण करने की मनाही की गई है ।

ब्रह्ममूहूर्त में उठने का आदेश देकर स्नान आदि निश्चय कर्मों से निवृत्त होकर पूर्वभिमुख बैठकर तक्षक के स्थित रहते हुए ही सन्ध्या करने का उपदेश दिया गया है । सायंकालीन सन्ध्या भी सूर्य के स्थित रहते बताई गई है । प्रातः सायं हवन करने को भी कहा गया है । पाँच महायज्ञों और पितृ तपण करने की भी शिक्षा दी गई है । आत्मतत्त्व का चिन्तन भी आवश्यक बताया गया है । पूजा उपासना करने के बाद ही भोजन की आज्ञा दी गई है । अधिक नमक, अत्यन्त गरम अन्न का व बहुत दिनों का रखा हुआ अथवा वासी भोजन का निषेध किया गया है ।

सद्विचारों का स्वास्थ्य से गहरा सम्बन्ध है। बुरे विचारों वाला व्यक्ति कभी पूर्ण स्वस्थ नहीं रह सकता। स्थान-स्थान पर कहा गया है कि गृहस्थ को सदाचर परावर्ण होना चाहिए, पर नारी को बुरी दृष्टि से न देखे मग्न में शिष्ट व्यवहार करे, अहंकार, उद्धृष्टता की गन्ध न हो, बाणी से धेम भक्तवत्ता हो। ऋषि ने स्पष्ट शब्दों में कहा है "भाषार का पालन, गृहस्थ का नियम कर्तव्य है। जिसमें भाषार नहीं उसे न यहाँ सुख मिलता है न वहाँ। सदाचार के बिना यज्ञ, दान, तप कोई करे भी तो क्या लाभ? त्रित पुरुष में भाषार का नियम नहीं बँधा, उसे दीर्घ आयु नहीं मिलती।"

अतिथि सत्कार को भी भाषार का एक भग्न माना गया है, अतिथि का अभिगम केवल भोजन कराना ही नहीं है बल्कि अभावग्रस्त के अभाव को दूर करना, सड़कग्रस्त के सड़क को दूर करना और दुखी प्रणी को हर प्रकार में सहायता करना है। जो सामर्थ्य रखते हुए ऐसा नहीं करता, वह निन्दा का पात्र माना गया है। ऋषि के धर्मनिराकरण में समाजवाद के दर्शन होते हैं। वह अपने मत का स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं "समाज में धनवान् व्यक्तियों के रहने अन्य लोगों को धनमाय के कारण जो 'कुर्म' करने पड़ते हैं उनका उत्सृष्टादित्व धनी व्यक्तियों पर ही होता है।" परिश्रम-पूर्वक धन कमाने की सलाह भी दी गई है परन्तु उसका अनुभाव किसी अन्य पर न पड़े, इसकी चेतावनी भी दे दी गई है अन्यथा समाज में परस्पर असातोष और हृष की भावनाओं को जन्म मिलेगा।

महर्षि मार्कण्डेय अपने पाठक को आध्यात्म की साधना प्रारम्भ करने के पूर्व उत्तम नागरिक बनाना चाहते हैं। उनके मतानुसार नागरिकता के नियमों की अपेक्षा कर के अध्यात्म पथ पर बढ़ना अस्मभव है क्योंकि यह ही उत्तम पहली सीढ़ी है। उत्तम स्वास्थ्य तो उसकी नींव है ही।

अरगुणों के प्रति चेतावनी—

मनुष्य धेनुजम सामाधिक प्राणी है क्योंकि उसे बुद्धि जैसी महान्तम सम्पत्ति से विभूषित दिया गया है। अपने इस गौरव की विपरता के लिये

आवश्यक है कि वह बुद्धिमानों जैसे कार्य करे। बुद्धिमान वही है जो अपने विचारों की स्वस्थ और पवित्र रखता है क्योंकि मानव-जीवन की समस्त सुख-शान्ति उसके विचारों पर ही निर्भर करती है, इन्हीं से वह अपने भविष्य की, अपने भाग्य की रेखाओं का निर्माण करता है। विचारों को जो तत्व बदला देता है, उन्हें दूर करना आवश्यक है। बुरे विचारों को आसुरी शक्तियों की संज्ञा दी जाती है। इनसे सुरक्षा के लिये हमारे शास्त्रकारों ने बारबार चेतावनी दी है। सिद्धार्थ को गौतम बुद्ध बनने के लिये भी यही करना पड़ा था।

आध्यात्म पथ के पथिकों को आत्म-निरीक्षण की शिक्षा दी जाती है ताकि मन के एक करने में घुसे हुए दुर्गुणों को छांट-छांट कर बाहर निकालने का प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि इनसे बढ़कर अपना और कोई शत्रु नहीं है। यह ऐसे शत्रु हैं जो निरन्तर अपने साथ रहते हैं और पग-पग पर चोट पहुँचाने का प्रयत्न करते रहते हैं। दुर्गुणी व्यक्ति अपनी आत्मिक शान्ति खो बैठता है क्योंकि उसे बाह्य जीवन में सब घोर सांझना, असफलता और तिरस्कार ही मिलता है। जिस प्रकार गन्ने, गलीब, छिनीने और छूत के रोगी से बचने का हर कोई प्रयत्न करता है, इसी प्रकार दुर्गुणी व्यक्ति जिधर जाता है, उधर से दुस्कारा जाता है। शरीर में घुसे हुए रोगों को दूर करने की हम चेष्टा करते हैं परन्तु अन्तः क्षेत्र को, अस्त-व्यस्त कर डालने वाले दुर्गुणों की ओर कोई ध्यान नहीं देता। वास्तविकता यह है कि शारीरिक रोगों की अपेक्षा मानसिक दोष दुर्गुणों से अधिक हानि की सम्भावना होती है। दुर्गुण मानव के लिये एक अभिशाप है, एक कलङ्क है।

समाज में सर ऊँचा उठाकर चलने के लिये दुर्गुणों से रक्षा आवश्यक है। मार्कण्डेय ने बार-बार चेतावनी दी है, दुर्गुणों के दुष्परिणामों के भयङ्कर चित्र खींचे हैं सम्भव है उन्हें असम्भव की संज्ञा दी जाने लगे। परन्तु ऋषि का उद्देश्य केवल उन दुर्गुणों के प्रति सजग रहने की प्रेरणा मात्र है कि इनसे यह परिणाम भी निकल सकते हैं। उदाहरण के लिये मद्यपान से बचने के लिये बलराम की कथा दी गई है कि जब महाभारत युद्ध में उन्होंने पाण्डवों और कौरवों में से किसी का भी पक्ष लेना उचित नहीं समझा तो वह तीर्थ

यात्रा को चल पड़े। एक दिन उन्होंने अधिक मद्यपान कर लिया और रेवत यन में प्रदेश दिया जहाँ पर श्रमियों ने समस्त सूतजी की बधा हो रही थी। श्रुति बलराम जी के सम्मान में उठ गड़े हुए परन्तु सूतजी ने व्यास जी की मर्यादा का पालन किया और शासन पर बैठे रहे। इससे बलराम जी को क्रोध आ गया और उन्होंने सूतजी का वध कर दिया। मोदी देर के बाद उन्हें होश आया तो इन कुटुम्ब पर सज्जित हुए और शर्मभित्त के रूप में नये तिर्रे से तीर्थागत का आरम्भ किया।

धराय को भी लोग पीते हैं। वह गाली, गलीब और सडाई-मगडा तो बरते देते जाते हैं परन्तु ऐसा बुरा नहीं मुना कि किसी दारावी ने मद्य में बुर होकर किसी का वध कर दिया हो। यदि दो-चार हत्याएँ इस तरह की हो जायें तो इसे कानून से ही बन्द करना पड़े क्योंकि इससे लोगों के आत्ममान को सुरक्षा का रास्ता उत्पन्न हो जायगा। परन्तु वास्तव में ऐसा होता नहीं है। महर्षि मार्कण्डेय भी इस तथ्य से अवश्य परिचित होंगे परन्तु उन्होंने अग्निदीप्ति सीमा में अपरोक्ष में मद्यपान के दोष का ही वर्णन किया है कि मद्य में जब ज्ञान तनु सदा धूम्य हो जाते हैं तो उस धातुक पागसपन का प्रवाह किसी भी और वह सक्ता है और वह व्यक्ति मारपीट से लेकर हत्या तक कर सकता है।

काम भी एक मद्य है जो मनुष्य को मग्ना बना देता है। मन में इसकी उत्तेजना इतनी तीव्र होती है कि कामी व्यक्ति सामाजिक मर्यादाओं का उत्संघन कर गड़े दुःसाहस कर बैठता है। भावकल युवतियों से छेड़-छाड़ तो साधारण बात हो गई है। सब्ब पर जाती हुई युवती का अपहरण कर लिया जाता है और उसके मनमाने कुटुम्ब दिये जाते हैं। वह युवती अपने बुभारिष और फिर मगवान को कीमती होती कि उसने यह पशुरूप में कैसे मालव बना दिये जो मानव शरीर की भी सज्जित करते हैं। वह इस समाज से भी घृणा करने लगती है जो पतन की पराकाष्ठा में पहुँच गया हो, फिर शासन को दोष देती है जहाँ किसी को राज सुरक्षित नहीं है। इन घटनाओं पर सभी विचारक रोद प्रबट करते हैं परन्तु यह यातावरण उत्पन्न करने वाले जो माध्यम हैं,

उनकी ओर किसी को ध्यान नहीं जाता । अश्लील फिल्में और उपन्यास, पत्रिकायें जिनसे इस विषय की उत्पत्ति होती है, उनमें सुधार की आवश्यकता है ताकि युवकों में यह सद्बिचार उत्पन्न हों कि समाज की हर युवती उनकी बहिन है । यही सभ्य समाज की निशानी है अथवा तथाकथित विकसित युग की दुहाई देने से कोई लाभ नहीं है ।

इतिहास साक्षी है कि काम भावना से प्रेरित होकर रावण ने सीता का हरण किया और एक महान् युद्ध को निम्नत्रण दिया । अलाउद्दीन खिलजी ने पद्मिनी को प्राप्त करने के लिये भीषण नर संहार कराया । काम के कारण हृत्पात्रों के समाचार आज भी प्राप्त होते रहते हैं । इसी ओर महर्षि ने हमारा ध्यान आकर्षित किया है । एक कथा इस प्रकार से दी गई है कि नरिष्यन्त के पुत्र दम को दशरथ के राजा चारुवर्मा की पुत्री राजकुमारी सुमना के स्वयंवर में अपना पति चुना परन्तु भद्रप्रदेश के राजकुमार महानन्द, विदर्भ के राजकुमार वष्पुमान व महाधनु को यह सहन नहीं हुआ । उन्होंने एक पद्यन्त्र रचा जिसके अनुसार सुमना को वलपूर्वक छीन लेना था और यह निश्चित किया गया कि वह हम तीनों में से जिसको भी चुन लेगी, उसकी पत्नी हो जायेगी । यदि वह हममें से किसी को चुनेगी तो उसका वध करने वाला ही उसका पति माना जायगा । एक सुन्दर स्त्री को अपनी पत्नी बनाने के लिये वह घोर अन्धकार और अधर्म पर उतार हो गये । जब सुमना ने स्वयंवर में अपना पति चुन लिया तो इस दिशा में कोई भी पग जिसकी लाठी उसकी भैंस की संज्ञा में आ जाता है । दम और उसके शत्रुओं में घोर युद्ध हुआ । दम ने महानन्द का मस्तक काट दिया और वष्पुमान को बाणों से वीध दिया और सुमना को अपने घर ले गया । यदि कथा का मोड़ इस प्रकार से होता कि वह तीनों दम को कैदी बना लेते, या उसका वध कर देते और सुमना को भगा कर ले जाते और तीनों में कोई समझौता न हो पाता तो वह भी परस्पर युद्ध की लपेट में आकर नष्ट हो जाते तो और भी सुन्दर होता क्योंकि काम वासना के अन्तिम परिणामों तक कथा पहुँच जाती ।

पर स्त्री को बुरी दृष्टि से देखने वाले को पारलौकिक भय भी दिखाया गया है। कहा है कि ऐसे बर्मा व्यक्ति को नरक में तो जाना पड़ता है परन्तु वहाँ पर ब्रह्म की शोष वाले पत्नी उनकी शक्ति नष्ट करते हैं। यह बातना बार-बार दो जाती है और सम्मे समय तक चलती है। जिसने शायें तक यह पाप किया जाय, उसने वहाँ तक इसका फल भुगतना पड़ता है। नेत्रों से शोष करने वाले को नेत्रों की ही यातना दी जाती है। नियम यही है जिस अङ्ग से दोष किया जाता है, उसके सुधार के लिये उस अङ्ग को ही प्रताड़ना दी जाती है ताकि उसे अपने बिये पर पड़तावा हो और फिर उसकी पुनरावृत्ति न करने का सम्बन्ध ले।

महर्षि ने यह भी दिखाने का प्रयत्न किया है कि बल व्यक्ति की कभी परीक्षा की पड़ी भी जाती है जब उनको काम वासना की ओर घसीटा जाता है परन्तु इस समय किवेक से काम लेना चाहिए। महर्षि दुर्वासा को पतित करने के लिये बभ्रु नाम की अप्सरा ने सब तरह की काम विद्याएँ कीं तो अन्तिम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा परन्तु अब वह फिर भी अपने हाव भाव प्रदर्शित करने में लगी रही तो दुर्वासा ने उसे शपथ दिया कि तुम सुपूर्ण गौत्र में पैदा होनी बनी। मार्कण्डेय ने काम वाली से सुरक्षा के लिये सजग रहने की प्रेरणा दी है क्योंकि किसी समय भी आक्रमण होने का भयभर भा सकता है।

क्रोध मानव का दुर्जय शत्रु है। सब जानते हैं कि इससे मस्तिष्क की नसों में उद्वेगना उत्पन्न होती है, वह बसती है बिना कुप्रभाव सारे शरीर के स्वास्थ्य पर पड़ता है, मन व इन्द्रियाँ भी इस अग्नि की लपेट में जाती हैं, बुद्धि भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती। गांधीजी ने इसे शराब और मफीम के नशे की संज्ञा दी है क्योंकि इनके सन्नयन मिलते-जुलते हैं। कवियों ने भी कहा है कि पाप का मूस क्रोध है और क्रोध के मिटे बिना शोष का सन्ताप नहीं मिट सकता। गीता में क्रोध से अविवेक की उत्पत्ति कही है क्योंकि क्रोधी को उस क्षण के बाद ही वास्तविकता से परिचय होता है। इसे नरक द्वार भी बताया गया है। यह अघ्यःत्म शापना को तो नष्ट हो करने वाला है। इन

दुष्परिणामों के कारण ही महर्षि मार्कण्डेय ने इस महारोग के प्रति सावधान किया है। इसके लिये उन्हें अनेकों कथाओं का सहारा लेना पड़ा।

वैवस्वत मनु के पुत्र पृथ्वी एक बार मृगया के लिये वन में गये, तो एक ब्राह्मण की गौ को गलती से मार दिया। तब ब्राह्मण ने पृथ्वी को ब्रूढ़ हो जाने का शाप दिया। क्रोध से क्रोध की वृद्धि होती है। राजा को भी क्रोध आ गया। राजा भी ब्राह्मण को शाप देने लगा। इस पर ब्राह्मण राजा को नष्ट करने के लिए दूसरा शाप देने को प्रस्तुत हुआ। उसी समय उसका पिता वहाँ पहुँच गया और उसे समझाया कि ब्राह्मण का भूषण क्रोध नहीं क्षमा है। क्रोध से तो धर्म, अर्थ और काम तीनों का नाश होता है। यदि ब्राह्मण का पिता बीच में न आ जाता तो दोनों की उत्तेजना बढ़ती ही जाती और दोनों एक दूसरे को शाप देते ही जाते, जब तक कि उन दोनों में से कोई एक नष्ट न हो जाता।

विश्वामित्र और वशिष्ठ का द्वेष और संघर्ष पुराण प्रसिद्ध है। इस पुराण में भी उसे दिया गया है परन्तु बदले हुए रूप में। वशिष्ठ हरिश्चन्द्र के पुरोहित थे। जब विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र से राज्य लिया तो वह जल में तपस्या कर रहे थे। जब वह बारह वर्षों के बाद तप करके आएँ तो उन्हें हरिश्चन्द्र के भूषण कष्टों से परिचय कराया गया। उन्हें क्रोध का आवेश आया और विश्वामित्र को बक पक्षी होने का शाप दिया। विश्वामित्र तो क्रोध के लिए प्रसिद्ध हैं ही। उन्होंने वशिष्ठ को सारस हो जाने का शाप दे डाला। मनुष्य से पक्षियों की योनि प्राप्त होने पर भी दोनों की शान्ति न मिली और युद्ध पर उतारू हो गये। इससे सारे विश्व में हाहाकार मच गया और देवताओं की प्रेरणा से ब्रह्मा को बीच-बचाव के लिए आना पड़ा, तब कहीं वह दान्त हो पाए। इसमें क्रोध की पक्षियों के अज्ञान से तुलना की गई है और बताया है कि क्रोध से मानव कितना गिर जाता है। वह इसके आवेश में आकर घोर से घोर अपराध कर सकता है।

एक अन्य कथा में विश्वामित्र के क्रोध से विद्याओं का नाश बताया गया है। विद्या का अभिप्राय ज्ञान और विवेक है। क्रोध की उत्पत्ति ही अज्ञान और

प्रविवेक की नींव पर होती है। मन शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक स्वास्व्य के हस्तक्षुब्ध व्यक्ति की इससे वचना चाहिए, तभी आध्यात्म साधना में कुछ प्रगति की प्राप्ति की जा सकती है।

क्रोध का आधार अहङ्कार होता है। जब अहङ्कार को ठेस पहुँचती है तो क्रोध से उसकी क्षान्ति करने का प्रयत्न किया जाता है परन्तु उसका परिणाम घनाग्नि ही होता है। जो व्यक्ति इन दोनों के पजे में फँस जाता है, उसमें बड़ बड़े अपराध हो जाते हैं। बलराम जैसे बुद्धिमान् व्यक्ति भी उससे नहीं बच पाए, जिसको भगवान् का अवतार भी माना जाता है। उनकी क्षान्ति, सामर्थ्य व अन्य बलों का दृष्टि में रखते हुए ही यह उद्यम सम्मान दिया गया होगा परन्तु सूनजी जैसे बयाबाचक उनके धायमन वर सम्मान के प्रदर्शन व लिए छट्टे नहीं होने लगे उनके अहङ्कार को छोकर लगती है। जैसे दुखी और विवर्तित व्यक्ति अपने दुःख को दुःख दायो के लिए भुनाने के लिए शराब पीता है, उसी तरह तो अहङ्कार की पुष्टि न शान का जो दुःख होता है, उसकी नेष्टि के लिए क्रोध के लसे की आवश्यकता आ पड़ती है। क्रोध का परिणाम कुछ भी हो, उससे अहङ्कार का रोग तो दूर हो ही जाता है। ऐसीवैधिव दवाओं का भी वही प्रभाव पड़ता है। प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले रोग को वह क्षीय हो दवा गयी है परन्तु निहित रूप से अन्य भयकर रोगों की उत्पत्ति होती है। उसका परिणाम कुछ भी है। परन्तु रोगी व समिभावक को यह प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि रागी जिस रोग से पीड़ित हो रहा था, वह ठीक हो गया। अहङ्कार की औषधि क्रोध है परन्तु क्रोध तो मार-पीट, गाली गलौज, युद्ध, सवर्ष और हत्या आदि में ही मान्य होता है, उसका माह्वार बहुत ही भयकर राक्षसों का सा है। इसका कारण तो अहङ्कार ही है। यदि अहङ्कार की उत्पत्ति न हो तो क्रोध का जन्म लेना भी सम्भव नहीं है। यत अहङ्कार रुपी जड़ की तो काट देना चाहिए जिसमें अन्य दोषों की वृद्धि न होने पाए।

पुराणकार ने शीम के भोग्य रूप को भी प्रस्तुत किया है। एक राजा जिना वारण्य दूसरे के राज्य पर अपना अधिकार जमाना चाहता है। उस पर शासकण्ड बरता है, घोर युद्ध और नर-मह्वार होने हैं और क्षतिकाली

राजा कमजोर को दवा देता है । अनेकों बार राजाओं के मन में सारी पृथ्वी का सम्राट बनने की लालसाएँ उत्पन्न की गई हैं । लोभ के भयङ्कर परिणामों को भी प्रस्तुत किया गया है ।

भोग से पुण्य का क्षय बताया गया है । एक कथा में इससे शक्ति का नाश होना भी व्यक्त किया गया है । सुव्रत तपस्वी ने राजा विदूरथ को कुजृम्भ नाम के एक राक्षस के बारे में जानकारी देते हुए कहा कि जिस दिन उसे कोई स्त्री छू देती है, उसकी शक्ति कम हो जाती है, दूसरे दिन पुनः बढ़ जाती है । इससे स्पष्ट है कि स्त्री के संसर्ग से शक्ति का व्यय होता है । भोग मानव पर अपना चहुँमुखी प्रभाव डालते हैं । इसीलिए प्राचीन काल में वानप्रस्थ और सन्यास की व्यवस्था बनाई गई थी ताकि भोगों से निवृत्त होकर आत्मकल्याण की साधना में अपना पूरा समय लगाया जा सके । यह तभी सम्भव है जब शक्ति के व्यय को रोका जाए । राजा राज्य वर्धन का जब एक बाल पक गया तो उसने समझा कि यह यमराज का दूत है और मृत्यु का संदेश लेकर आया है । अतः मुझे अपने राज्य का भार अपने पुत्रों को सौंपकर विषय-भोगों से निवृत्त होकर वन में जाकर तप करना चाहिए ।" गृहस्थ में रहकर इस साधना को किया जा सके तो अत्यन्त उत्तम है ।

इस तरह से पतन के जितने भी मार्ग हो सकते हैं, उनका ऋषि ने दिग्दर्शन कराया है और दुष्ट भावों से बचने की प्रेरणा दी है क्योंकि दुर्गुणों के गृहते हुए इस लोक और परलोक दोनों में शान्ति की सम्भावना नहीं हो सकती, चाहे सैकड़ों प्रकार के भौतिक साधन उपलब्ध हों । दुराचारी सदैव अधान्त रहता है । शान्ति के लिए सदाचारी बनना आवश्यक है । उस मार्ग पर चलने के लिए मार्कण्डेय प्रेरित करते हैं ।

मानव दोषों का पुतला है । अपने प्रबल संस्कारों व बुरे सङ्ग के कारण वह बुरे काम करता है परन्तु जब रोग उत्पन्न होते हैं, तो उनको दूर करने के लिए दवाओं की भी खोज कर ली गई है । शारीरिक रोगों की तरह मानसिक रोगों के भी उपचार हैं । भारतीय मनीषियों ने मानसिक विकारों की निवृत्ति का प्रमोद उपाय यह बताया है कि पापी अपने पाप की घोषणा सार्वजनिक

रूप से कर दे। यदि वह अपने मन में उसे दबाए रखता है तो उसकी ग्रन्थि बन जाती है जो जन्म-जन्मान्तरो तक कष्ट का कारण बनती है। तभी विधान बनाया गया है कि जब किसी से गौ हत्या हो जाय तो ग्राम में घूमकर घोर उस गाय की पूछ पकड़ कर बिस्तर २ कर कहे कि मैंने इस गाय का वध किया है। यह उस पाप का प्रायश्चित्त मान लिया जाता है। दण्ड से पाप नहीं धुंलता है और न ही पापी को फिर पाप करने में बचाया जा सकता है। पाप एक मानसिक रोग है, उसी का उपचार भी इसके अनुरूप ही होना चाहिए। मार्कण्डेय ने भी यही दवा बताई है। जब बलराम जी से मद्यपान के नशे में सुखी का वध हो गया तो नशा उतरने पर वह अपने कुकर्म पर लज्जित हुए। उन्होंने निश्चय किया कि इस पाप का क्षय करने के लिए अपने दुर्गम का बलान करता हुआ बारह वष का व्रत करूँगा। वही मेरे पाप का सर्वोत्तम प्रायश्चित्त होगा। धार्मिक मनोविज्ञान ने भी इस सिद्धान्त को अपनी स्वीकृति प्रदान की है।

मद्गुणों के विकास पर बल

मद्गुणों के प्रति सावधान रहने के साथ साथ मद्गुणों का विकास भी आवश्यक है। मद्गुणों को बहुमूल्य सम्पत्ति, पानव-जीवन की सबसे बड़ी विभूति मानी जाती है। मद्गुणों की सच्ची सम्पत्ति इसलिये कहा जा सकता है कि उन्हीं के आधार पर समस्त प्रकार की प्रगति कर सकता सम्भव होता है। दूसरों की सहायुभूति, श्रद्धा एवं सद्भावना केवल उन्हें मिल सकती है जो मद्गुणी हैं। स्वास्थ्य, शिक्षा, कौशल आदि के आधार पर आमतौर पर कुछ कहा जाता है पर मधी शिक्षा और निरस्पाधी समृद्धि केवल मद्गुणों के आधार पर ही सम्भव होती है। ऐसी ही समृद्धि से मनुष्य का सीनिक और पारमौनिक जीवन सुख शान्तिमय बनता है।

पुराणकार ने इसकी ओर विशेष ध्यान दिया है। वह अपने पाठक को गल्पवारी, गद्यपदी, चरित्रवाक्, श्रेष्ठ, परिधर्मी और स्वावलम्बी देशना चाहते हैं। मार्कण्डेय का मिश्र-मिश्र स्थानों पर आदेश है कि—“गृहस्थ की सदाचार

परायण होकर हव्य, कव्य और आन्नदान करते हुए पितर, देवता, अतिथि और बांधवों का पूजन करने वाला होना चाहिए । इनके प्रतिरिक्त भूत, भृत्य, पशु, पक्षी, पिपीलिका, मिशुक, याचक या पर अपर जो कोई भी जैसे प्रार्थना करे, गृहस्थ यदि नित्य नैमित्तिकी क्रिया का उल्लंघन करे तो उसे पाप का भागी होना पड़ता है ।***गृहस्थ को सदैव सदाचार का पालन करना चाहिए, आचार हीन पुरुष को लोक में कभी भी सुख नहीं मिल सकता, जो पुरुष सदाचार को छोड़कर संसार मार्ग में प्रवृत्त होता है, उसके द्वारा किये हुए यज्ञ, दान और तपस्या आदि सभी अमङ्गलजनक होते हैं ।*****दुराचार में प्रवृत्त मनुष्य बोधजीवी कदापि नहीं हो सकता, इसलिये सदाचार में ही प्रवृत्त होवे, सदाचार से दुरे लक्षण नष्ट हो जाते हैं ।*****गृहस्थ को उपाजित किये हुए धन का चतुर्थ भाग धर्म के लिये संचित करना चाहिए, आधे भाग से अपना पोषण और नित्य नैमित्तिक कार्य करे, और शेष भाग की मूलधन के रूप में वृद्धि करे***** गुरु को देख कर उठ कर खड़े होने इत्यादि से सत्कार पूर्वक आसन है और प्रणाम करके अनुकूल वार्त्तालाप करे । उनके गमन समय उनके पीछे चले, प्रतिकूल वचन न बहे ।***विजाति की निन्दा न करे ।***गुरु के दुष्कर्म को किसी प्रकार प्रकट न करे तथा उनके कुपित होने पर उन्हें प्रसन्न करे ।*****किसी के धर्म को व्यथित न करे, किसी को न कोसे, चुगली न करे, दंभ, अभिमान और तीक्ष्ण व्यवहार को छोड़ दे । मूर्ख, उन्मत्त, दुःखी आनन्दप्रस्त, विरूप, मायावी, अङ्गहीन अथवा अधिकङ्ग की हंसी उड़ा कर न छेड़े ।*****परमारीगमन न करे क्योंकि परमारीगमन से दृष्टापूर्त्त नष्ट होता है और दीर्घायु का हास होता है । इस लोक में इस पाप के समान अन्य कोई पाप नहीं है, देव-पूजन, अग्नि कार्य और गुरुजनों को प्रणाम सदा कर्त्तव्य है ।***पूर्वाह्न में देवताओं का, मध्याह्न में मनुष्यों एवं अपराह्न में पितरों का पूजन करे ।*****देवता, वेद, ब्राह्मण, सत्यनिष्ठ, महात्मा, गुरुजन, पतिव्रता, यज्ञ और तप परायण पुरुष इनकी हंसी न उड़ावे । यदि कोई ध्विनय वाला पुरुष इनकी निन्दा करे तो उधर ध्यान न दे, देवता, पितर और अतिथि का पूजन सदा करे । सावधान चित्त सेवेदाध्ययन करे, अपने से खेष्ट या निम्न

मनुष्य को शय्या बसवा आसन पर न बैठे । समगत चेष्टा न धारे, समगत वचन न बहे ।** गुरु या देवता के सामने पैर फैलाना भी निषिद्ध है ।

दुर्वासा की तरह अपने चरित्र की सुरक्षा के लिये क्रिस्ति प्रकार सज्ज रहना चाहिए, श्रुति एवं ब्राह्मण की वचा के माध्यम से स्पष्ट करते हैं । लाग यह समझ सकते हैं कि दुर्वासा को श्रुति थे, वह तो हर प्रकार की सामर्थ्य रखते हैं परावृत्त एक सामारण गृहस्थ कैसे पतन के मार्ग पर बसने से बच सकता है । एक क्षण के रूप लावण्य पर मुग्ध होकर अश्विनी नाम की अक्षरा प्रणम—प्रार्थना करती है । निर्जन पर्वतीय स्थान और युवती का प्रणम प्रस्ताव, स्वीकृति के लिय बड़ी बाधा नहीं, समाज का कोई बन्धन नहीं, धर्म-मान का कोई अवसर नहीं, फिर भी जिनका विषय जाग्रत रहता है और उच्च भावनाओं से ओत-प्रोत रहते हैं, वह कोई देवता हो या नहीं, कदापि दुष्कर्म नहीं कर सकते क्योंकि वह ईश्वर को सर्वव्यापक मानते हैं और उसके सह्य वशों का अनुग्रह करते हैं । प्राणल कुमार ने बाह्य रूप का मूल्यांकन न किया और प्रस्ताव को तत्काल दुहरा दिया । ब्राह्मण के तत्त्व ध्यान देने योग्य है —

“ब्राह्मण के लिये भोग चेष्टा, प्रज्ञा नहीं मानी गई है अपितु धर्मनृपान और वतस्यपरायणता का प्रयत्न ही श्रेष्ठ है क्योंकि वह इस लोक में वसना देने वाली होने पर भी परलोक में उत्तम फल देती है । मेरे गुहजनों की यह शिक्षा है कि परायी स्त्री की अभिवादा कभी नहीं करनी चाहिए । भक्त में तुम्हें किसी प्रकार का श्वीकार नहीं कर सकता भले ही तुम रोती विरलाती रहो और निराशा के क्षण से मूढ जाओ ।”

ब्राह्मण की प्रार्थना पर ही उसके चरित्र का परिचय मिलता है । “यदि मैंने कभी भी ठीक समय पर वैदिक कर्म का त्याग न किया हो और कभी भी मेरे मन में पराये धन और परायी स्त्री की इच्छा न हुई हो तो मेरा मनोवृत्ति पूर्ण हो, चरित्रवान् स्त्री का मन सबल और आत्मा अतिशाली होती है, उगका कोई भी बट्टिन ने बट्टिन वार्य दवा नहीं रहना । जीवन के हर वग पर सचकना उगका स्वायत्त करती है ।

सद्गुणों के विकास और चरित्र के उत्थान व स्थिरता के लिए अच्छे सङ्ग की अपेक्षा रहती है। सङ्ग का प्रभाव अपरिहार्य है। अच्छा सङ्ग भाग्यवानों को ही प्राप्त होता है। ऋषि ने भी शिक्षा दी है कि “सदाचारी साधु मनुष्यों के साथ ही मित्रता करे, बुद्धिमान्, उद्योगी को मित्र बनावे। वेदज्ञान से युक्त, विद्वान्, व्रत परायण और स्नातक का सङ्ग करे,” बुद्धिमान् मदालसा ने भी कष्ट आने पर सत्पुरुषों का सङ्ग करने की शिक्षा दी है। मदालसा ने अपने पुत्र अलर्क को एक अँगूठी दी थी कि जब सङ्कट आए तो इसमें लिपटे कागज पर लिखी शिक्षा का सहारा लेना। एक बार अलर्क के बड़े भाई सुबाहु ने काशीश्वर की सहायता से अलर्क के राज्य पर आक्रमण करके उसे राज्य-च्युत कर दिया तो उसने माता की अँगूठी में लिपटी शिक्षा खोली। उसमें लिखा था “प्रत्येक को सङ्ग का त्याग करना चाहिए। ऐसा सम्भव न हो तो सज्जनों के साथ ही सङ्ग करना चाहिए। सज्जन पुरुषों का सङ्ग औषधि है।” माँ की इस शिक्षा को शिरोधार्य कर अलर्क योगीराज दत्तात्रेय के पास गए। वहाँ से उसके दुःख का समाधान हुआ।

सत्सङ्ग का प्रभाव यदि मनुष्य के व्यवहार पर अनुकूल नहीं पड़ता तो उस सङ्ग से क्या लाभ? मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह समाज में उच्च सम्मान का इच्छुक रहता है परन्तु झूठ, छल, कपट से वह मान मिट्टी में मिल जाता है, और सरल सत्य-व्यवहार से सम्मान की वृद्धि होती है। लोग उस पर विश्वास करते हैं। कपटी और छली व्यक्ति पर अपने बन्धु-बान्धव भी विश्वास नहीं करते और उसके हर व्यवहार को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। इसलिए पुराणकार ने घोर से घोर सङ्कट में भी सत्य का परित्याग न करने की शिक्षा दी है। इसके लिए राजा हरिश्चन्द्र का लम्बा आध्यान देना पड़ा है। रानी के मुख से ही सत्य पालन के प्रति दृढ़ निष्ठा की प्रेरणा दिलाई गई है। “राजन् ! चिन्ता का त्याग करो, सत्य का पालन करो। सत्य से च्युत व्यक्ति शमशान की तरह त्याग योग्य होता है। व्यक्ति के लिए सत्य पालन से बड़ा कोई धर्म नहीं है। सत्य पालन न करने वाले के अग्निहोत्र, वेदाध्ययन, दान और समस्त पुण्य कर्म नष्ट हो जाते हैं। धर्म शास्त्र कहते हैं कि सत्य से

उत्पान और अस्त्य से पतन होता है। सत्य से ही सूर्य तपता है। सत्य पर ही पृथ्वी टिकी हुई है। सत्य सर्व श्रेष्ठ धर्म है। स्वयं का अधिष्ठान भी सत्य ही है। एक पलड़े पर सत्य को और दूसरे पर एक हजार अश्वमेध यज्ञों का फल रखा दिया जाए तो सत्य का पलड़ा ही भारी रहेगा।" ब्राह्मण का तो यह विशेष गुण घोषित किया गया है। कहा है, "ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व इसी में है कि वह यज्ञों का सामने भी सत्य का पालन करे। ब्राह्मण को जो पुण्य सत्य व्यवहार से होता है वह अश्वेदी दक्षिणा याने यज्ञों से भयभीत किसी उत्तम काम से नहीं प्राप्त हो सकता।"

सत्यवादी ही सदा मित्र समझा जा सकता है, उस पर कोई भी विश्वास कर सकता है। उसका सामाजिक सम्बन्ध निस्तृत हो जाते हैं। जन नेतृत्व के योग्य भी वही होता है। मित्रता का कसौटी उपकार बताई गई है। ऋषि ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए कहा है 'मित्रता का स्थायं जिससे अपूर्ण नहीं रहना, वह मनुष्य धन्य है, उसका जन्म और जीवन धन्य है। मित्रों के उपकार का बदला चुकाए बिना जो अपने को अविश्व समझता है, उसके जीवन को विनकार है।' इसको पुष्टि के लिए एक रोचक कथा का भी सहारा लिया गया है। मदासमा न जब अपने पति राजा ऋतुध्वज की मृत्यु का समाचार सुना तो वह उसी क्षण मूर्छित होकर यमपुर पहुँच गई। यह समाचार मल्ल पाल। जब ऋतुध्वज आए तो उन्हें बहुत दुःख हुआ और जीवन भर विवाह न करने का निश्चय किया। नागराज अभ्यन्तर के पुत्र इनके मित्र थे। उन्होंने यह पटना अपने पिता की मुनाई। पिता अपने पुत्रों को अपने मित्र का स्वागत सरकार न उपकार करने की शिक्षा देते थे परन्तु पुत्रों की दलील थी कि सत्कार की हर वस्तु उसको उपलब्ध है, केवल पाली का उसे भयभाव है जो सर्वथा असम्भव है। पिता न सोच ही कि पुत्रपार्थ करने पर हर असम्भव वस्तु भी सम्भव हो जाती है। पिता के प्रयत्न से यह भी सम्भव हो गया। मित्रता मानवता का एक आवश्यक सहाय है।

पुत्रपार्थ की सहिमा का गान भी स्थान २ पर किया गया है। तक्ष्मी की प्रति का अधिकारी भी उस हो बताया गया है।

पराजित होने पर सज्जा का अनुभव करने वाले एक राजकुमार ने पुरुषार्थमय जीवन की कामना की है। राजा करन्धम का पुत्र अवीक्षित एक स्वयम्बर में गया। राजकुमारी को बलात् अपने वश में कर लिया। यह अन्ध राजकुमारों को बुरा लगा। सबने विरोध किया और विरोध संघर्ष में बदल गया। अन्त में अवीक्षित को बन्दी बना लिया गया। फिर उसके पिता ने अपनी सेनाओं की सहायता से उसे छुड़ाया। जब राजा बन जाने लगे तो राज्य का भार उसको सौंपना चाहते थे। इस पर पुत्र ने कहा कि "मैं इस योग्य नहीं हूँ, मैं अपनी पराजय से लज्जित हूँ। मुझ बन्दी का आपने मुक्त कराया था, मैं स्वयं मुक्त न हो सका। फिर मुझमें क्या पुरुषत्व है? पौरुष से युक्त व्यक्ति पृथ्वी का शासक होने योग्य है। जो पिता की अर्जित सम्पत्ति का भोग करे, या पिता द्वारा सज्जुट से उभारा जाए, कुल में ऐसा व्यक्ति नहीं होना चाहिए, जो अपने बल, पौरुष से सम्पत्ति और स्याति का अर्जन करते तथा अपने पौरुष से सज्जुटों को पार करते हैं, मैं उन जैसे लोगों की गति चाहता हूँ", ऐसे विचार वाला व्यक्ति ही गौरव के साथ नेपोलियन की तरह सर ऊँचा करके कह सकता है कि असम्भव शब्द को मेरे कोष में से निकाल बाहर करो। इसे कायरों ने बनाया है, मैं इसे सुनना भी नहीं चाहता। मार्कण्डेय भी यही प्रेरणा देते हैं कि पुरुषार्थ और स्वावलम्बन की सत्प्रवृत्ति से ही मानव का उत्थान सम्भव है।

परमार्थ तत्व का निरूपण

वान के कुछ अनोखे उदाहरण पुराण में वर्णित हैं। साधारण बुद्धि उसकी कल्पना भी नहीं कर सकती। उन पर सहज में विश्वास भी नहीं होता। हरिश्चन्द्र का विश्वामित्र को अपना सारा राज्य दान में दे देना एक कल्पनातीत घटना है। देने वाला अनुमान लगा सकता है कि उसे जीवन में कितनी ठोकरें खानी पड़ेगी? निर्बल व्यक्ति पर यदि कोई कष्ट आता है तो उसका सहन करना सरल होता है क्योंकि अभावों का देखना उसका स्वभाव बन चुका है परन्तु जिसकी नस-नस में ऐश-आराम ओत-प्रोत हैं, उन पर मुसीबतों के पहाड़

हट पड़े, तो उनका आत्म-हत्या जैसी निराशाजनक बातों के सोचने के प्रति-रिक्त घोर कोई मार्ग नहीं दिखाई देता । किसी बरोडपति को एक दिन में वस्त्रांत कर दिया जाय तो उससे हृदय की गति बन्द हो जायगी परन्तु हरि-श्रद्ध ने सब कुछ प्रसन्नतापूर्वक भेला । कारण स्पष्ट है, उसके मन में दिव्यता छाई हुई थी, उसकी प्रवृत्ति देने की थी । यदि वह स्वर्णी स्वभाव का होता, सब तो वह अवश्य जीवन से निराश हो जाता । श्रद्धि प्रेरित करते हैं कि यदि समाज हित के लिये घोर कष्टों का सामना करना पड़े तो भी उनका स्वागत करना चाहिए ।

ज्ञान से परमार्थ की सद्प्रवृत्ति का उदय होता है । मन स्थिति में उदात्तता प्राप्ती है, स्वार्थपरता का नाश होता चलता है और अनुस्यू धरने अतिरिक्त दूसरों के बारे में भी सोचता है । उनसे दिन को अपना हित मानने लगता है । पुराणकार ने लिखा है कि जो दूसरों के अहित की योजना बनाता है उसका स्वयं ही अहित होता है । एक कथा में राजा तनित्र के मन्त्री विश्ववेदी ने समक दिग्गज पद्मगन्धर्व राजा चार पुरोहितों से अभिनारक प्रयोग करवाये जिससे चार कृत्यायें उत्पन्न हुई परन्तु वह तनित्र का कुछ भी न बिगाड़ सकी । परिणाम स्वरूप उन्होंने लौटकर चार पुरोहितों और विश्ववेदी पर आक्रमण किया और उन्हें मार डाला ।

पुराणकार ने इस कुरी भावना से बचने घोर परमार्थ भावना को मन में स्थिर रखने पर बल दिया है । हरिश्रद्ध के कष्टों के नाटक का जब अन्त हुआ तो देवता उन्हें स्वर्ग लेने के लिये धाये परन्तु राजा ने अस्वीकार कर दिया और कहा कि मैं भयोध्या की प्यारी प्रजा को व्यथित छोड़ कर अवेसा नहीं जा सकता । वह अपनी पुण्य शक्ति का उपयोग अपनी प्रजा के साध करना चाहते हैं । यदि वह सब के सब मेरे साध स्वर्ग जा सकें तभी मैं वहाँ का पार्श्वका धन्यवाद उनके साध मुझे नरक जाना ही पसन्द होगा ।”

एक बार किसी कारण से विदेहराज की थोड़े समय के लिये नरक जाना पड़ा । उसने पढ़ेंवते ही नरकवासियों को बहुत खुश प्रतीत हुआ । राजा ने उनका कारण पूछा तो समझूत ने कहा—“भापके पुण्य अनगिनत है,

आपने बहुत से अश्वमेध यज्ञ किये हैं। समुद्र में जल की लूँदों, आकाश में तारों, मेघ में से जल की बरसती हुई जलधाराओं और बंगाल में बालू के कणों की तरह आपके असंख्य पुण्य हैं। उसके कारण आपको स्पर्श करके जो वायु चल रही है, उससे नरकवासियों को अपने कष्टों में कभी अनुभव हो रही है।” यह सुनकर विदेहराज ने नरक से जाने को मना कर दिया और स्पष्ट कहा कि जब तक यह लोग नरक में पड़े हैं, मैं भी यहीं रहूँगा।” यह कहना सरल है करना कठिन है। जिसने जीवन भर सुख ही देखे हों उसके लिये दुःख की एक धड़ी भी युग के बराबर होती है परन्तु जिसके मन में ऐसी उच्च भावनाएँ उठती हैं, वह मानव नहीं महामानव है। मार्कण्डेय ऐसा ही महामानव अपने पाठकों को देखना चाहते हैं तभी भिन्न-भिन्न कथाओं द्वारा इस प्रकरण को दुहराया गया है।

राजा राज्यवर्धन की आयु बढ़ाने के लिये प्रजा ने सूर्यदेव की सामूहिक प्रार्थना की। इससे राजा की आयु दस हजार वर्ष बढ़ गई। राजा इससे चिन्तित हुए कि “मैं तो दस हजार वर्ष तक जीवित रहूँगा, मेरे प्रजाजन यम-राज के शिकार होते रहेंगे। मुझे यह आयु तभी ग्राह्य है जब मेरी प्रजा की भी यही आयु हो।” इस परमार्थ भावना से ओत-प्रोत हो राजा ने सूर्यदेव की एक वर्ष तक आराधना की और सारी प्रजा की आयु भी दस हजार वर्ष की हो गई तभी वे सन्तुष्ट हुए।

ऋषि ने इस मत का प्रतिपादन किया है कि स्वार्थ आसुरी वृत्ति है, परमार्थ दैवी गुण है। इस गुण के विकास के लिये सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए। इससे जो मानसिक शान्ति मिलती है, उसकी कल्पना नहीं की जा सकती। इस शान्ति को हीरे-पत्थरों से नहीं खरीदा जा सकता, इसे तो अपनी भावनाओं को उदार बनाकर सारे ब्रह्माण्ड में बिखेर देने से आकर्षित किया जा सकता है। इस भावना की पुष्टि व संवर्धन के लिये विश्व कल्याण की प्रार्थना को बड़े ढङ्ग से संजोया गया है “सब प्राणी सुखी हों, अन्धों में स्नेह रखें, समस्त प्राणियों का कल्याण हो और उन्हें किसी प्रकार का कष्ट न हो।

जीवों को किसी प्रकार का शारीरिक व मानसिक रोग न हो, सब लोग सबके मित्र हो... तुम्हारे बुद्धि में सब प्राणियों के कल्याण की भावना हो। जिस प्रकार अपना धीरे अपनी सन्तान का हित चाहते हो, उसी तरह सब प्राणियों के कल्याण की बात सोचो।..... जो मुझसे प्रेम करता है, उसका सदैव हित साधन हो। मुझसे हानि करने वाले का भी सदैव कल्याण हो।”

इन पवित्र भावनाओं की अपने जीवन का भङ्ग बनाने वाले ही विश्व हितधी महामानव बन पाते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

इस भावना के विकास के लिये ऋषि ने एक अनुभव सिद्ध साधना का भी निर्देश किया है। वह है यज्ञ। यज्ञ का अर्थ है त्याग, बलिदान, परमार्थ, निःस्वार्थता। यज्ञ का साधन शत्रु और मित्र सभी को एक समान पहुँचता है। यह हम तभी तो कर सकते हैं कि त्याग को साधना है। यज्ञ करने वाले का कोई शत्रु नहीं रह जाता, उसे सब ओर अपना ही रूप दिखाई देता है। तभी तो वह अपने गाढ़े पसीने की बमाली को वायु में बिखेरने के लिये प्रसन्न हो जाता है। वह जानता है कि अपने द्वेषियों का भी लाभ पहुँचाने से वह रोक नहीं सकता। यद्यपि वह शत्रु को शत्रु मानना ही छोड़ देता है। यज्ञ से वह सारे ब्रह्माण्ड से अपना नाता जोड़ता है। पहले वह केवल अपने परिवार तक ही सीमित था परन्तु यज्ञ का प्रभाव तो ईश्वर सत्त्व के माध्यम से सारे विश्व में फैल जाता है, यद्यपि वह अपने शरीर की ही ब्रह्माण्ड शरीर मानने लगता है।

जाति-पात, रगभेद और सम्प्रदाय के सङ्कीर्ण विचारों से ऊपर उठकर विश्व मैत्री की सच्ची भावना को जागृत करने के लिये यज्ञ सरल व श्रेष्ठ साधन है। प्राचीन काल में इसी माध्यम से जनता के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाया जाता था। पुराणकार का कहना है कि गरुड ने एक बहुत बड़ा यज्ञ किया जिसकी प्रतिविम्ब स्वरूप जनता ने असंख्य यज्ञ किये। पूर्व में अठारह करोड़, प्रथम में सात करोड़, दक्षिण में चौदह करोड़ और उत्तर में पन्द्रह करोड़ यज्ञ सम्पन्न हुए। इन महान् योजनाओं के फलस्वरूप ही जन-साधारण की सङ्कीर्ण भावनाओं का परिष्कार हो पाया और राम राज्य का साकार रूप देखने की मिना जहाँ पाप, लालच, चोरी, डकैती, छल कपट, आदि का नाम

निश्चान न था । लोभ इस लोक की अपेक्षा परलोक का अधिक ध्यान रखते थे । आज उसके विपरीत है । वह युग पुनः था सकता है यदि हम ऋषियों की योजनाओं के अनुसार अपने जीवन को मोड़ दें तो ।

जीवन निर्माण के सिद्धान्तों का प्रतिपादन—

मार्कण्डेय पुराण में विभिन्न प्रकार के सिद्धान्तों का उल्लेख है जिनका प्रगति पथ पर आरुढ़ होने वाले हर मानव के लिए समझना आवश्यक है ।

भौतिकवादी स्थूल नेत्रों से दिखाई देने वाले इस पञ्चभौतिक शरीर को ही सर्वस्व मानते हैं, उससे आगे की वे कल्पना भी नहीं कर सकते । वे उस सूक्ष्म, चेतन तत्व से अपरिचित हैं जिसके आधार पर समस्त क्रियाओं का सञ्चालन होता है । भारतीयों ने उस जीवनतत्त्व का नाम आत्मा रखा । जो इसे समझता नहीं, वह दुःखी रहता है क्योंकि शरीर अनित्य व नष्ट होने वाला है, उस पर अपने भविष्य को निर्भर करने वाला कभी शाश्वत सुख की आशा नहीं रख सकता । शान्ति के लिए मूल तत्व को जानना होगा । उसके लिए प्रयत्न करने होंगे । आत्मा को जान कर उस के उत्थान की योजनाओं को क्रियान्वित करना होगा । जो विघ्न बाधाएँ इसके मार्ग में आती हैं, उन्हें हटाना होगा, अपनों विचारबारा और जीवन पद्धति को परिष्कृत करना होगा ।

पुराणकार ने दुःख की निवृत्ति के लिए शरीर भावना के त्याग का परामर्श दिया है । जब मदालसा पुत्र अलर्क के राज्य पर सुबाहु और काशिराज ने आक्रमण करके उसके राज्य को छीन लिया तो उसे अपनी माँ की उस शिक्षा का स्मरण हो आया कि संकट के समय इस अगूँठी में लिपटी शिक्षा के मार्गदर्शन में चलना । उसमें सत्पुरुषों के संग की प्रेरणा दी गई थी । अलर्क योगी दत्तात्रेय के पास गया । दत्तात्रेय ने कहा कि तुम अपने दुःख का कारण बताओ, मैं आज ही उसे नष्ट कर दूँगा । जब अलर्क ने उस पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया तो लगा कि उसने भारी भूल की, दुःख तो शरीर, मन, बुद्धि और इन्द्रियों से सम्बन्ध रखता है और वास्तव में

में इन में मिश्र है । दुःख तो मेरे बाह्य उपकरणों को था, मुझे नहीं, मैं तो इनसे सर्वथा मिश्र हूँ । मुझे तो दुःख तू भी नहीं सकता । मेरे अज्ञान के कारण उस ने मुझे दबाये रखा । अब मैं शरीर से सम्बन्धित नहीं हूँ । इसलिये दुःख में परे हूँ ।

जब तक मनुष्य शरीर भावना से निश्चिन्त रहता है, तब तक वह पार्श्वीय परिवर्तनों से प्रभावित होता रहता है । इस से ऊपर उठकर जब आत्म भावना में स्थित होता है तभी उसे आनन्द का मार्ग मिलता है । इसी मार्ग पर चलने की प्रेरणा ऋषि देते हैं ।

इस सम्बन्ध में साधना का भी पक्ष प्रदर्शन किया है । आत्मा की जीतने के लिए लिखा है “प्राणायाम से दोषों को, धारणा से पापों को, प्राणायाम से विषयों को और ध्यान से अनीश्वर गुणों को अस्म करे । जैसे अग्नि में पड़कर सब घातु दोष-रहित होती हैं, वैसे ही प्राण वायु के निग्रह से इन्द्रियों के सब दोष नष्ट होते हैं ।” यह आत्मदर्शन में बाधक तत्त्व हैं, इन्हें दूर करना आवश्यक है ।

जिसे आत्मदर्शन हो जाते हैं, वह सौमार्थिक दुखों से अलिप्त रहता है । मृत्यु उसका कुछ भी गिनाह नहीं सकती । वे मृत्यु का प्रसन्नता पूर्वक, आतिथ्य करते हैं, अपने सम्बन्धियों की मृत्यु पर शोक नहीं मनाते । मृत्यु की तो वे केवल बन्धों का बदलना मात्र मानते हैं । जीवन तो एक अत्यन्त सरल है । शरीर नाम से उनका नाम समझव है । एक शरीर के नाश के बाद आत्मा दूसरा शरीर धारण करेगी, उस के भी नष्ट होने पर तीसरा धारण करेगी, जब तक जीवन का उद्देश्य पूर्ण नहीं हो जाता, यह यात्रा चलती ही रहेगी । यह तो यात्रा के भिन्न-भिन्न पड़ाव हैं, इनकी वास्तविकता में अभी भूदण्ड रीता घोटता अज्ञानता है । मदासना ने अपने पति की मृत्यु के समाचार सुन कर शरीर त्याग दिया तो राजा ने कहा कि “तब प्रकार के सम्बन्धों की अनित्यता पर विचार करने पर ऐसा सगुना है कि क्या पुनः के नित्ये रोऊँ और क्या पुनः बन्धु के लिये रोऊँ ? अर्थात् दोनों में किसी के नित्य रोने का कोई कारण नहीं है ।”

इन विचारों की पुष्टि के लिये पुर्नजन्म के सिद्धान्त को उभारा गया है। सुमति नाम के एक ब्राह्मण कुमार की कथा दी गई है कि जब उसका उपनयन संस्कार किया गया तो उसे उपदेश दिया गया कि उसे क्रमशः ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास चार आश्रमों में प्रवेश करना होगा। इनके कर्तव्यों का दृढ़ता पूर्वक पालन करने पर ही उसे ब्रह्म प्राप्ति होगी। इन पर सुमति ने अपने घनेकों जन्मों का वृत्तान्त सुनाया। उन जन्मों में वेदाध्ययन और आश्रम धर्मों के पालन की बात कही, कैसे एक बार नरक की यातना भोगनी पड़ी, उसका भी वृत्तान्त है। पुर्नजन्म का सिद्धान्त बताता है कि शरीर के नाश से हमारी प्रगति अवरुद्ध नहीं हो जाती। जितना विकास हम ने इस शरीर के माध्यम से कर लिया है, वह भी नष्ट नहीं होता, उसके संस्कार हम सूक्ष्म शरीर के साथ ले जाते हैं और आगामी जीवन में हम इस विकास का उपयोग करते हैं। कई व्यक्तियों में जन्मजात विलक्षण प्रतिभा बाल्यकाल से ही प्रस्फुटित होने लगती है, वह उनके इस जन्म के कारण नहीं बरन् पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण होता है।

इसीलिए मार्कण्डेय ने जीवन निर्माण के प्रमुख सूत्र कर्म को प्रमुखता दी है। कर्म को ही समस्त सफलताओं का श्रेय दिया है। कहा है “कर्म का बल पृथ्वी के मानव की श्रेष्ठतम शक्ति है। यही उसकी विजय का रहस्य है। यही कारण है कि स्वर्ग के देवता भी पृथ्वी पर जन्म लेने को उत्सुक रहते हैं। जिनके पास कर्म का हथियार होता है, वह उसकी सहायता से देवत्व, इन्द्रत्व और ब्रह्मत्व सभी को प्राप्त करने की क्षमता रखते हैं। जिन व्यक्तियों का चित्त, इन्द्रियाँ और आत्मा अपने वक्ष में हैं और जो कर्म करने के लिये उत्सुक हैं, उनके लिये कुछ भी असम्भव नहीं होता। चलती हुई भीटी हजारों योजना चल जाती है, बिना चले गरुड़ भी एक पग नहीं जा पाता।”

इन सशक्त शब्दों से ऋषि आशा की जीवन ज्योति जलाते हैं और आश्वासन देते हैं कि जैसी भी परिस्थितियाँ इस जीवन में उपलब्ध हुई हैं,

उनसे निगाह न होना चाहिये, उनके लिये भाग्य और भगवान को कीसना कायरता और निवसता की निधानी है, कर्म का विस्तृत क्षेत्र मानव के लिये खुला पड़ा है, वह स्वतन्त्रता ध्रुव अपने कर्मों का जाल बिछा सकता है, उन्हें नष्ट करने का अधिकार किसी भी मानव को नहीं दिया गया। यह अलग बात है कि उनमें बिघ्न बाधाएँ उपस्थित हों, जिन्हें दूर करने के लिये कुछ प्रतिरिक्त पुनर्थाय करना पड़े परन्तु जम दयालु परमात्मा ने उन्नति का मार्ग हमारे चित्त खुला छोड़ दिया है। हम अपने कर्मों के द्वारा अकृष्यतम शासन पर स्थित हो सकते हैं। यदि हम भागे नहीं बढ रहे तो इसका कारण हम स्वयं हैं न कि भाग्य और भगवान। किसी को हमारे लिये कुछ नहीं करना है। करन वाले हम स्वयं हैं। अपने भाग्य को हम स्वयं सिखना है, बनाना है। इसी पर ऋषि ने विदोष बन दिया है।

जब राजा समुजित के पुत्र अपने वित्र ऋतुष्वज के दुःख निवारण के लिए कुछ नहीं कर सके तो पिता ने कहा 'पुत्रो! तुम्हारी यह धारणा ठीक नहीं है। बुद्धिमानों के लिए कोई कार्य असाध्य नहीं होता, पुरुषार्थ से सब कुछ उपलब्ध किया जा सकता है—उद्योगी व्यक्ति के लिए कोई भी स्थान अगम्य और कोई स्थान अगम्य नहीं होता। कहाँ भूतल और कहाँ ध्रुव का पद? फिर भी हम भूतल पर निवास करने वाले ध्रुव ने उद्योग द्वारा ध्रुव का पद पा ही लिया।

एक राजकुमार ने कामना की है कि "जो अपने बल वीर्य से सम्पत्ति और स्वाति प्रविष्ट करते हैं और अपने वीर्य से ही सबकों को पार करते हैं मैं उन जैसे लोगों की गति चाहता हूँ।" पुरुषार्थ ऐसा अस्त्र ॥ जिससे सासारिक विघ्न बाधाओं, कठिनाइयों व रुकावटों को दूर करके मानव लौकिक और पारलौकिक सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त कर सकता है। उसी की ओर ऋषि ने हमें आह्वान किया है।

मानव को कुमार्ग से बचाने और सदमार्ग की ओर प्रेरित करने के लिये अनेकों प्रकार के उपाय उपनाये जाते हैं। उनमें एक नरकों के भय

दिखाना भी है। कर्मफल के सिद्धान्त को तो हर भारतीय स्वीकार करता ही है। वर्तमान बुरी या अच्छी परिस्थितियों का श्रेय भी पिछले जन्मों के बुरे या अच्छे कर्मों को ही होता है। नरक अथवा स्वर्ग का सम्भोग तो वह यहाँ भी कर लेता है। यदि इन्हीं तथ्यों को भीपण रूप से वर्णित करके नरक और स्वर्ग पृथ्वी से दूर किसी दूरस्थ लोक में बताये जाते हैं तो उन पर साधारणजन विश्वास कर लेते हैं और उनमें दी जाने वाली यातनाओं की भयङ्करता को सुनकर वह भयभीत हो जाते हैं और बुरे कर्मों से बचते हैं। इसी उद्देश्य से मार्कण्डेयपुराण में नरकों का विस्तृत वर्णन है जिनमें लाखों करोड़ों जीव अपने दुष्कर्मों के भोग भोगते दिखाये गये हैं। वहाँ की लोमहर्षक यातनाओं को सुनकर हृदय बाँप उठना है। उदाहरण के लिए "जिन नराधम मनुष्यों ने पर नारी को दूषित नेत्रों से देखा है अथवा पराये धन को हड़पने की इच्छा, वांछि नेत्रों से देखा है, उनके दोनों नेत्रों को यह वज्रतुण्डी पक्षी हरण करते हैं तथा वही नेत्र बारम्बार उत्पन्न हो जाते हैं, इन मनुष्यों ने जितने पलक लगने तक यह पाप किये हैं, उतने ही संहस्र वर्ष यह इस नेत्र पीड़ा को प्राप्त करते रहेंगे, जिन्होंने शत्रु की भी ज्ञान दृष्टि का हरण करने के लिये अन्याय पूर्वक विपरीत वा.स्त्रोपदेश अथवा भ्रमात्मक परामर्श दिया है या मिथ्या भाषण किया है।"

"जिन्होंने वेद, देवता, ब्राह्मण और गुरुजनों की निन्दा की है, यह वज्र-तुण्डी पक्षी उनकी जीभ को काटते हैं, जितनी धार यह पाप किया है, उतने ही वर्ष उन्हें ऐसी यन्त्रणा मिलती है तथा जिन्होंने मित्रों में या पिता-पुत्र से भेद डलवाया है अथवा याज्ञिक-यजमान में, माता-पुत्र में या पति-पत्नी में मत-मुटाव करा दिया है, वे इस कर पत्र से ग्राहत होते हैं अथवा जो किसी को क्रोध दिलाते या किसी की प्रसन्नता नष्ट करते हैं, जो ताड़ का पंखा या खस या चन्दन का हरण करते अथवा साधुओं को प्राणान्तक पीड़ा देते हैं, वे पापी तम रेत में गिर कर पाप का फल पाते हैं अथवा जो एक श्राद्ध में निमन्त्रित होकर दूसरे के यहाँ भोजन करते हैं उनको यह पक्षीगण व्यथित करते हैं।"

पुनर्जन्म का सिद्धान्त सर्वमान्य है। यह निश्चित है कि हजारों प्रकार

की पशु, पक्षी, कीट, पक्ष्म आदि की नीच योनियों से होकर मानव की यह योनि प्राप्त होती है। इस योनि में भाकर भी यदि वह पतित कार्य करता है तो पुनः उस योनियों में उसे जाना पड़ता है। कैसे कर्म से किन योनियों में जाना पड़ता है, इसकी विस्तृत सूची पुराणकार ने दी है। उदाहरण के लिए "पतित मनुष्य से घन लेने वाला ब्राह्मण मछी की योनि को प्राप्त होता है तथा पतित मनुष्य को यज्ञ करने पर नरक से मुक्त होकर इमि योनि पाता है। उपाध्याय के प्रति धन करने उसकी स्त्री या अन्य वस्तु की इच्छा करने से श्वान-योनि मिलती है। माता पिता का अश्रमान करने वाला मया और उन्हें गाली देने वाला मीना होता है। भाई की पत्नी का अश्रमान करने वाला बकुर होता है उसे पीड़ित करने से बधुषा होता है। स्वामी का बिना भोजन करने की उसका अभिनिमित्त नहीं करता, वह मोह में भरकर अरुणान्तर्ग बन्दर बनता है। रिनी की चरोहर हड़बने वाला गरुड से मुक्त होने पर शूनि होता है, धमूषा करने वाला मरुवास्त में राक्षस होता है।'

नरको, उसमें ही जाने वाली बातनाको और विभिन्न प्रकार की योनियों के वर्णन का उद्देश्य यह है कि मानव कुत्सर्गों से बचे और सत्कर्माओं का अनुष्ठान करे ताकि उसे श्रेष्ठतम योनि में पाकर पुनः पुनः योनियों में न जाना पड़े। यह मानव की अति आवश्यकता का ही परिणाम ही सचचा है। पतन से बचने के लिए ही मार्गशेख ने यह उपदेश दिया है।



साधनात्मक प्रक्रियाएँ

इस सिद्धान्त से हर व्यक्ति परिचित है कि इस जीवन की सुख-सुविधाएँ पिछले उदार कार्यों के कारण प्राप्त हुई हैं और कठिन परिस्थितियों का कारण सङ्कीर्ण और धुंध्र भावनाएँ रही हैं। स्वर्गोप सुखों का भोग करना तो हर कोई चाहता है परन्तु उसके अनुरूप सद्कार्यों का करना हर किसी के बस की बात नहीं है। मनुष्य न चाहते हुए भी पाप करता है। बुरे कार्यों को बुरा समझते हुए भी उनमें फँसता है। इसका कारण उसका अपवित्र और निर्बल मन है। पवित्र और सबल मन में ही सद्विचार उठते हैं। परन्तु मन को अपनी इच्छा-नुसार चलाना सरल नहीं है। उसकी गति वायु से भी तीव्र है। इसकी चञ्चलता तो प्रसिद्ध है ही। इसे पवित्र, शक्तिशाली और अपने नियन्त्रण में रखने के लिए अनेकों प्रकार की आध्यात्मिक साधनाओं का आविष्कार किया गया है जिन्हें अपना कर हितसाधन किया जा सकता है। जप, तप, योग और विचार-साधना निम्नलिखित मार्ग हैं जिनमें से कुछ का मार्ग दर्शन किया गया है।

मार्कण्डेय ने प्रणव की साधना की ओर साधकों का ध्यान आकृष्ट किया है। यह मन्त्रों का सेतु व शिरोमणि है। योगियों ने समाधि अवस्था में देखा कि सूक्ष्म प्रकृति के अन्तराल में जो ध्वनि निरन्तर हो रही है, वह प्रणव की ध्वनि से मिलती-जुलती है। अतः उस ध्वनि को अपने दिव्य कणों द्वारा श्रवण करके उन्होंने मानव के हितार्थ साधना का रूप दे दिया ताकि मानव उसके अनुरूप अपने को बना सके। अनुकूलता में शक्ति का विकास और प्रति-फलता में उसका हास होता है। इसलिए प्रणव को श्रेष्ठतम साधना माना गया है जिसकी महिमा का गान स्वयं पुराणकार ने किया है—“जो विश्व स्वरूप, विश्वेश्वर और विश्वभावन हैं तथा विश्व ही जिनके पाद, ग्रीवा और मस्तक हैं, उन्हीं परब्रह्म को प्रत्यक्ष करके योगी उनको पाने के लिये ‘ॐ’ इस एकाक्षर मन्त्र का जप करे। यही उनका स्वाध्याय है, इसी ओंकार का श्रवण करना चाहिये.... योगी अक्षर-अक्षर में ओंकार युक्त होता है, प्राण को धृप रूप, आत्मा को वाण रूप और ब्रह्म को लक्ष्य रूप जाने.... ओंकार ही त्रिवेद,

मंलोत्पद्य धीर तीनों अग्नि, ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा ऋक्, यजु, साम स्वरूप है.....नेचन '३३' का उच्चारण करके ही सदैव सन् अमृत का ग्रहण हो जाता है.....जो योगी अंगार स्वरूप या ब्रह्म को जानकर उनका 'ध्यान' करते हैं वह समार चक्र का अतिक्रमण करते हुए तीनों बन्धनों को छोड़ कर उस पर-ब्रह्म में ही लीन हो जाते हैं। यदि उनके कम बन्धन छोड़ न हो तो वह अष्टि द्वारा मृत्यु जानकर उन समय स्मृति लाभ पूर्वक योगित्व को पुन प्राप्त होने हैं।" यह शास्त्र में वर्णित ऋषियों के अनुभवों से भी इन तथ्यों की पुष्टि होती है।

योग साधना की भी विस्तृत शिक्षा पुराणकार ने दी है। अस्तेय, ब्रह्मचर्य, त्याग, अलोभ, अहिंसा के पाँच यमों और अक्रोध, गुदसेवा, शौच, तपु आहार और नित्य स्वाध्याय के पाँच नियमों के पालन को आवश्यक माना गया है। इसी स्थिति पर आगामो क्रियाओं का सफल सम्पादन सम्भव है। योग की नींव को दृढ़ करने के लिए इन नैतिक नियमों का पालन आवश्यक है। प्राणायाम में दोषों को धारणा, म पात्रों को, परम हार से विषयों की ओर ध्यान से अनीश्वर गुणों को भस्म करने की श्रेयता दी गई है। प्राण वायु के निषेध से इन्द्रियों के समस्त दोषों का नष्ट होना बताया गया है। आत्मा पर विजय प्राप्त करने का साधन योग की इन साधनाओं को माना गया है। इन सभी क्रियाओं को खोलकर समझाया गया है। इनमें प्राप्त होने वाली सिद्धियों का भी वर्णन है। अष्ट सिद्धि की प्राप्ति का आश्वासन दिया गया है और इन्हें अन्तिम मध्य तक पहुँचाने वाली कहा गया है। ध्यान के सम्बन्ध में कहा है— 'निश्चल चेद और सब प्रकार की यज्ञ क्रिया उत्कृष्ट है, उस यज्ञ से अप श्रेष्ठ है, जप से सातमार्ग और ज्ञानमार्ग से निमज्ज और रागहीन 'ध्यान' श्रेष्ठ है क्योंकि इन ध्यान के द्वारा ही आश्चर्य ब्रह्म की प्राप्ति होती है। जो नावधानी है ब्रह्मपरायण, प्रमादरहित, एवान्तवामी और जिनेन्द्रिय होकर योग साधन करते हैं वे आत्मा में आत्मा के संगोप का पाकर मोक्ष लाभ करते हैं।" इन साधनाओं को शिवा रूप देकर निश्चिन्त रूप से आत्मा और परमात्मा के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

तप की प्रेरणा तो पग-पग पर दी गई है। जितने भी राजाओं के जीवन-चरित्रों अथवा कथाओं का पुराण में वर्णन है, लगभग सभी ने वृद्धावस्था आने पर राज्य का भार अपने पुत्रों को सौंप कर तपश्चर्या के लिए वन के लिए प्रस्थान किया। तपस्वी का वेष धारण करके वे क्रोध, हिंसा, बदले की भावना से वंचित रहे हैं। कई बार जब वन में मुनियों को नागों, राक्षसों व अन्य आसुरी शक्तियों ने परेशान किया तो उन्हें शाप द्वारा स्वयं भस्म करने की शक्ति-सामर्थ्य रखते हुए भी वे राजा के पास रक्षा की प्रार्थना के लिये जाते हैं क्योंकि क्रोध से उनकी आध्यात्मिक शक्ति के क्षय होने की सम्भावना थी। तप द्वारा शक्तियों और सिद्धियों की प्राप्ति का वर्णन है।

आत्मोद्धार के लिये चिन्तन-मनन एक उच्चकोटि की साधना है। इसमें दोनों पक्षों की ओर ध्यान रखना आवश्यक होता है। एक तो अपनी भावनाओं में सात्विकता लानी चाहिये। नागराज ने जब ऋतुध्वज से वर माँगने के लिये कहा तो उसने उत्तर दिया—“यदि आप कुछ देना ही चाहते हैं तो मुझे यह वर दें कि मेरे हृदय से धर्म की भावना कभी दूर न हो।” वास्तविकता के धारण करने का धर्म कहते हैं। कर्तव्य पालन ही सच्चा धर्म है। धर्म-भावना तो आत्म-विकास की नींव है। इसका पुष्पित-फलवित्त होना आवश्यक है।

आत्म-दर्शन के लिए शरीर-भावना से ऊपर उठकर आत्म-भावना के क्षेत्र में प्रवेश करना पड़ता है तभी मोक्ष का—स्वतन्त्रता का मार्ग प्रशस्त होता है। जब साधक आत्मभावना में दक्ष हो जाता है तो उसका कोई शत्रु मित्र नहीं रह जाता, सबको वह समान दृष्टि से देखता है, किसी से घृण-द्वेष नहीं करता। वह जगत् के कल्याण के लिए अपनी समस्त शक्तियों के व्यय के लिए तत्पर रहता है। जब मदालसा-पुत्र अलर्क को दत्तात्रेय के सत्संग से आत्मज्ञान हुआ तो उसकी भी यही स्थिति हो गई। वह चारों ओर अपनी आत्मा के ही दर्शन करने लगा। यह आत्म-साधना की उच्च स्थिति है।

इस स्थिति तक पहुँचने के लिए आत्म-संयम की साधना एक सहेतवपूर्ण अङ्ग है जिसकी प्रेरणा पुराणकार ने दी है। इसे मोक्ष का साधन माना गया है। संयम से शक्तियों की सुरक्षा होती है। शक्ति ही साधना का मूल है।

उसकी सुरक्षा के लिये विरोधी सांसारिक भावनाओं के प्रति सावधान रहना पड़ता है। इनमें अनित्यता, असम और ममता के त्याग पर श्रद्धा ने विशेष बल दिया है। अनित्यता की भावना ने सामासिक वस्तुओं के क्षय होने पर दुःख नहीं होता। उनकी स्वाभाविक गतियों को वह मनी प्रकार जानता है, उनमें नित नही रहता, अनित्यता की भावना से मोत प्रोन रहता है। ममता के प्रति विशेष रूप से मजबूत रहने को कहा गया है क्योंकि "ममता मनुष्य के हृदय में एक महाभू वृक्ष के रूप में स्थित है। छद्मों को इसका बीज, महच्छार को प्रभु और मरकार को तना बढ़ा गया है। घर द्वार, धेनी-बाड़ी को छायाएँ, धन सम्पत्ति की पत्ते, स्त्री पुत्र को पत्तव, पाप पुण्य को पुष्प, सुख-दुःख को फल, इच्छाओं को भ्रमर की सज़ा भी गई है। यह आदि जाल से लडा है और निरन्तर बढ रहा है। यह साधक को आत्म विस्मृत करता है। सत्सङ्ग और विद्या के धर्मों से इसकी बाटा जाना सम्भव है तभी मोक्ष मार्ग प्रशस्त होगा।"

प्रलय के विस्तृत वर्णन करने का उद्देश्य यह है कि हम नित्य के मनन चिन्तन और ध्यान में यह अनुभव करें कि हम विश्व की जितनी वस्तुओं से हमारा सम्बन्ध है, वह धरे धीरे नष्ट होती जा रही हैं। बंधु-बान्धव साथ छोड़ते जा रहे हैं, पञ्चभौतिक शरीरों का निरन्तर क्षय होता जा रहा है, वे विनाश की आरंभ गति से बढ़ रहे हैं, बड़े-बड़े भवन और प्रामाद छस्त होने जा रहे हैं, भक्तियों जीव-जन्तु अपने प्राण छोड़ रहे हैं, बड़े बड़े राजा-महाराजा और 'धन' कुबेर भी इस प्रवाह में बहे जा रहे हैं। किसी में हफने की क्षमता नहीं है। स्थिति यहाँ तक पहुँच गई है कि सारा विश्व जल कर भस्म हो गया है और चारों ओर जल ही जल दिखाई दे रहा है।

यह भावना हठ होन पर साधा झूठ, छद्म, कपट, करेब, धोखेबाजी, घुस, धिक्काट आदि धन एकत्रित करने के अनुचित उपायों से विरत हो जाना है और सद्मार्ग पर चलने का प्रयत्न करना है। उनका किसी से लड़ाव नहीं रहता, धनित प्राप्ति से वह जगत् में विचरता है।

देवी उपासना का निर्देशन इस पुराण की एक प्रमुख विशेषता है। देवी के भाविर्भाव, उद्देश्य, आमुरी शक्तियों से सङ्घर्ष आदि का विस्तृत वर्णन

है। देवता देवी की स्तुति करते हुए कहते हैं। “इस प्राणी जगत् को अपने प्रभाव से विस्तार करने वाली, समस्त देवगणों की एकत्रित शक्ति से उत्पन्न होकर साकार रूप में परिणित हुई हैं एवम् जो समस्त सुदृगणों एवम् महामुनियों की पूज्या हैं, अनन्त भगवान्, ब्रह्मा, एवम् महेश भी जिनकी शक्ति और प्रभाव का वर्णन करने में असमर्थ हैं, वह देवी शण्डिका समस्त विश्व का पोषण करने के लिये और उसके अहित व भय के नाश के लिये आकांक्षित हों। समस्त विश्व की ओर विपत्ति को क्षमन करने वाली आप ही हैं। आप ही बुद्धि स्वरूप हैं, कठिन भव सागर से निस्तार करने वाली अनुपम नौका स्वरूप हैं, कंटभ शत्रु के वध कर्त्ता भगवान् विष्णु के हृदय में निवास करने वाली लक्ष्मी और महादेव के बाएँ अङ्ग पर प्रतिष्ठित गौरी आप ही हैं। आपका पराक्रम किसी अन्य के साथ तुलना नहीं किया जा सकता। आपका रूप शत्रुओं की भयदाता एवम् अत्यन्त अनुपम है।”

देवी का आविर्भाव देव शक्तियों के संग्रह से हुआ है। जब-जब राष्ट्र पर घोर सङ्कटों के बादल छाए हैं, तब-तब विष्व पुरुष एकत्रित होकर अपने समस्त सामर्थ्यों को राष्ट्र हित के लिये समर्पित कर देते हैं। परन्तु पृथक् प्रयत्नों का कोई आशा-जनक फल नहीं प्रतीत होता। सङ्कटन से ही शक्ति का विकास होता है। जब महिषासुर, मधु, कैटभ, वृंभ निशूँभ आदि शक्तिशाली विरोधियों ने सर उठाया तो देव शक्तियों ने उनसे अलग-अलग जूझने में अपने को असमर्थ पाया। वह सब मिलकर एक हो गए तब असुरों को पराजित होता पड़ा। भगवान् कृष्ण ने भी ग्वालों को कहा था, तुम अपनी-अपनी अँगुली लगा दो, यह गोवर्धन सहज में ही उठ जायगा। यह सङ्कटन शक्ति की ओर ही संकेत था। भगवान् राम ने वानरों की निम्न स्तर की जाति का संगठन करके ही लङ्का पर आक्रमण किया और सिद्धहस्त सेना को परास्त कर दिया। आज हमारा सामाजिक, नैतिक व सांस्कृतिक ढाँचा अस्त-व्यस्त हो रहा है। चारों ओर से आसुरी शक्तियाँ हमें और ध्वस्त करने का प्रयत्न कर रही हैं। अब यह लड़खड़ाती स्थिति में है। इसे स्थिर रखने के लिये आवश्यक है देवी की उपासना की जाए, देव शक्तियों को एकत्रित किया जाए और असुरों के नगरों

व गहो को नष्ट भइ किया जाए तावि देवता मुझ की साँस ले सकें । अर्थात् राष्ट्र का नैतिक व सांस्कृतिक विकास हो । ऐसे सगठन बनाये जायें या बने हूँ तो का सहयोग किया जाए तो सामाजिक रोगों और कुरीतियों के विह्वल अभिमान चलायें, उन से घोर सचेत करें, उन्हें नष्ट करके ही दम लें, ताकि सारे राष्ट्र में नैतिकता की प्रज्वल धारा प्रवाहित हो ।

देवी उपासना का एक उद्देश्य यह भी है कि जब हम देवी को जग-जलनी मानते हैं तो भयस्त स्त्री जाति को ईश्वर रूप मानना होगा । भ्रातृ हृदि हृदि की बनी नदी है । बही भी इसका अनुभव किया जा सकता है । नारी जाति के प्रति आदर व सम्मान की भावनायें रखना और उन्हें पुत्री, भगिनी और मातृत्व की पवित्र भावना से देवता ही सच्ची देवी उपासना है । इसी की ओर पुराणकार न इंगित किया है । अस्वीलता, भ्रूवसियों का अपहरण, बलात्कार, कामवासना के ताण्ड्य मृत्यु चारों ओर होने दिखाई दे रहे हैं । इनका समन दम देवी उपासना से ही सम्भव है ।

समन्वयान्मक दृष्टिकोण

मार्कण्डेय पुराण के रचयिता एक सामाजिक व्यक्तित्व से युक्त महर्षि हैं जो आत्मसाक्षात्कार प्राप्त हैं । वह चाहते तो इसमें अपने पक्ष का प्रतिपादन करते और बुद्ध व भारद्वाज की तरह सार को ही गृह-स्थाय की निष्ठा देकर सत्यासी बना देते । गीता का प्रतिपादक त्रिपय तो कर्म-योग है परन्तु हर टीकाकार आचार्य ने अपनी भाष्यनामाओं के अनुसार उसे अपने अनुकूल मोड़ दे दिया । मार्कण्डेय चाहते तो वे भी भुविषापूर्वक कर सकते थे परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया । उन्होंने तो जगत् के ब्रह्माण्ड की पवित्र भावना से इसका निर्माण किया था । जन-साधारण का हित इसी में है कि उनके बौद्धिक-स्तर और पात्रता के अनुसार ही उन्हें निष्ठा व प्रेरणा दी जाय ताकि वह उसे भुविषापूर्वक अपना लें । निष्ठाएँ ऐसी व्यङ्ग्यारिक होनी चाहिये जिन्हें जन-साधारण के लिए समझ न पड़े जा सके । मार्कण्डेय दूरदर्शी थे । उन्होंने जगत् के प्रवाह का गिरापूर्वक अध्ययन किया और अपने अनुशासनों की इस धारा के अनुकूल ही

हर व्यक्ति को उपदेश दिया । धारा के विरुद्ध चलने में कड़ा सङ्घर्ष करना पड़ता है जो सर्वसाधारण के लिए अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है । इसलिये उन्होंने ऐसे मार्ग का निर्देशन किया जिसे अपनाकर हर कोई क्रमिक विकास करता हुआ उच्चतम स्थिति तक पहुँच सकता है ।

मार्कण्डेय स्वयं विरक्त थे परन्तु उन्हें गृहस्थ से विद्वेष नहीं था । उन्होंने भौतिक जीवन को हर प्रकार से समुन्नत करने की प्रेरणा दी, सभी साधनों को पूर्णरूप से विकसित करने पर बल दिया परन्तु इन समस्त प्रक्रियाओं का आधार धर्म और कर्तव्य ही माना है । गृहस्थ की उन्होंने प्रशंसा की है क्योंकि इसमें संघर्षमय जीवन की क्रियात्मक शिक्षा मिलती है । सङ्घर्ष से ही सब प्रकार की शक्तियों का विकास होता है जिन्हें आध्यात्मिक भाषा में सिद्धियाँ कहा जाता है । यही जीवन-निर्माण की आधार शिला बनती हैं । प्रगति पथ पर आरुढ़ होने के लिये अवश्यक नियमों का विवेचन किया गया है और सद्गुणों के विकास पर बल दिया गया है । साथ ही साथ अद्भुतों के प्रति चेतावनी भी दी गई है, ताकि उपाजित शक्तियाँ सुरक्षित रह सकें, उनका व्यय होकर वह मानव को दीन-हीन न बना दें ।

ऋषि व्यक्तिगत उत्थान के समस्त सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं, परन्तु इस उत्थान को वे अझूरा मानते हैं जब तक कि परहित की उदार भावनायें मनः क्षेत्र में जाग्रत न हो जायें । पूर्णता की प्राप्ति के लिये वह सारे विश्व को अपना परिवार मानने पर बल देते हैं । इस स्थिति तक पहुँचने के लिये महत्वपूर्ण साधनाओं का भी मार्ग दर्शन किया गया है ।

मार्कण्डेय ने भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के जीवन का उचित मूल्याङ्कन किया है । वे भौतिकवाद की उपेक्षा नहीं करते, उसे भी आवश्यक समझते हैं परन्तु केवल उन्हीं के लिये जीवन नष्ट करने को अज्ञानता मानते हैं । उनका दृष्टिकोण समन्वयात्मक है । यही जन-साधारण के अनुकूल है । इसीलिये इसे एक उच्चकोटि का पुराण माना जाता है ।

भारतीय संस्कृति के गौरवशाली धर्म

हिन्दी अनुवाद सहित

१. चारों वेद ८ जिल्दों में—

ऋग्वेद ४ खण्ड	***२७
अथर्व वेद २ खण्ड	***१३
यजुर्वेद १ खण्ड	*** ६
सामवेद १ खण्ड	*** ६

२. १०८ उपनिषदें (३ खण्डों में)

ज्ञान खण्ड	*** ७
ब्रह्म-विद्या खण्ड	*** ७
साधना खण्ड	*** ७

३. षट् दर्शन (६ जिल्दों में)

वेदान्त दर्शन	*** ४
सांख्य दर्शन	***
योग दर्शन	***
मैत्रेयिक दर्शन	*** ४
न्याय दर्शन	*** ४
मीमांसा दर्शन	*** ४

४. २० स्मृतियाँ २ खण्ड

.. ११

५. शिव पुराण

***१२

वायु पुराण २ खण्ड

***१४

विष्णु पुराण २ खण्ड

***१४

प्रकाशक

संस्कृति संस्थान स्वामीजीकुतुब, बरेली (उ.)

देव वाद

का

वैज्ञानिक स्वरूप

भाग-१ विष्णु रहस्य

●●

पूर्व हिन्दुसंस्कृति के जितने भी विवादस्पद विषय हैं, उनमें देव आश्रममुख स्थान रखता है। देव वाद ठोस मनोवैज्ञानिक विचार-इस पर आधारित है। देव देवियों का स्वरूप निर्धारित करते समय की के व्यवहारिक व क्रमिक विकास पर ध्यान दिया गया है, परन्तु है का शिक्षित वर्ग इनके बाह्य रूप को देखकर आलोचना करने होना है। देव देवियों सम्बन्धी समस्त शंकाओं का समाधान करने के किशोरा वाद का वैज्ञानिक स्वरूप चार खण्डों (१. विष्णु रहस्य, गङ्गा रहस्य, २. ब्रह्मा रहस्य, ४. देव रहस्य) में प्रकाशित किया को है।

प्रथम खण्ड विष्णु रहस्य छपकर तैयार हो चुका है। इसमें पर के स्वरूप, क्षीर सागर में निवास, शेष शय्या, समुद्र मंथन, भागी रूप, शालग्राम, चक्र, पद्म, गदा, शंख, वैजयन्ती माला, विरस, वाण, धनुष, लक्ष्मी से सम्बन्ध, वेद, उपनिषदों, रामायण, महाभारत, पुराणों आदि शास्त्रों में प्रतिपादन, उनके विभिन्न अवतारों। रहस्य आदि समस्त विषयों का प्रमाणित व शास्त्रीय विवेचन सा गया है जिससे विष्णु साधना एक उच्चकोटि की जीवन निर्माण प्रक्रिया सिद्ध होती है।

पुस्तक अत्यन्त खोज पूर्ण है। इस विषय पर यह सर्व प्रथम तक है। मूल्य केवल छः रु० मात्र है।

प्रकाशक :

कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब, बरेली (उ.प्र.)

सांस्कृतिक विचारधारा के प्रकार का प्रतिनिधि मानिक पत्र-१

“युग-संस्कृति”

“युग-संस्कृति” युग की वाणी व पुकार है। इसका उद्देश्य नवीन, आधुनिक, वैज्ञानिक ढंग से भारतीय संस्कृति की विशेषताओं, महत्ताओं, विचारधाराओं व परम्पराओं का बौद्धिक आधार पर प्रतिपादन करना है। भारतीय तत्त्वज्ञान के मूलाधार तत्वों का स्पष्टीकरण करके संस्कृति के विशुद्ध व परिष्कृत रूप को जनता के सम्मुख रखना है। व्रत, त्योहार, रीतिरिवाजों, आचार-विचार, पूजा-उपासना पद्धति को मनोवैज्ञानिक उपयामिता को प्रस्तुत करना है। वेद-विज्ञान, सत्कार-विज्ञान, योग-विज्ञान, परलोक-विज्ञान, तुलसी-विज्ञान, पुराण-विज्ञान, पर प्रकाश डालना है। ऋषि चरित्रों, व्रत कथाओं व पुराणों में असम्भव दिखाई देने वाली कथाओं में निहित वास्तविक तथ्यों का अनुसन्धान करना है। उपनिषदों की ज्ञान-गंगा का प्रवाह, स्मृतियों की नीति, रामायण की पारिवारिक शिक्षा व गोता का तात्त्विक विवेचन इसकी विशेषता है। धर्म व संस्कृति की भावना का व्यापक विस्तार, समाज, का नव-निर्माण, व नैतिक पुनरुत्थान इसका लक्ष्य है।

यदि आप अपने धर्म के प्रत्येक अङ्ग को आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर नारा उतरता देना चाहते हैं तो युग-संस्कृति को पढ़ें।

पत्रिका साइज के ३४ पृष्ठों व बढ़िया ग्लेज कागज के दो-रंगे टाइप से मुद्रित होने पर भी मूल्य केवल ४) वार्षिक है। वर्ष में एक विशेषांक भी छपता है।

नमूने की प्रति मुफ्त मंगाइये
प्रकाशक-संस्कृति-संस्थान, ग्वाजालुतुब, बरेली (उ.प्र.)